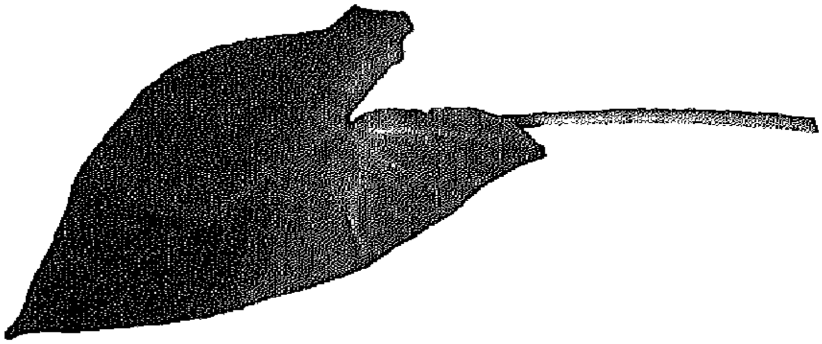


जीव विज्ञान

कक्षा 12 के लिए पाठ्यपुस्तक
भाग 2

लेखक

ब्रह्मदेव सिंह
डी.पी. चक्रवर्ती
दिनेश कुमार
जे.एस. गिल
जे.एस. सिंह
जितेंद्र सिंह
कृष्ण भगवान गुप्त
के.सी. बंसल
के.पी. सिंह
एस.के. मुखोपाध्याय
सुरेश चंद्र जैन
शारदा रानी गुप्ता

संपादक

बी.डी. सिंह
डी.पी. चक्रवर्ती
जे.पी. खुराना
जे.एस. गिल
जे.एस. सिंह
के.पी. सिंह

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

प्रथम संस्करण
अगस्त 2003
श्रावण 1925

PD 5T MB

ISBN 81-7450-220-3

एन.सी.ई.आर.टी. के प्रकाशन विभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस	108, 100 फीट रोड, होस्डेकेरे	नवजीवन ट्रस्ट भवन	सी.डब्लू.सी. कैंपस
श्री अरविंद मार्ग	हेली एक्सटेंशन बनाशंकरी III इस्टेज	डाकघर नवजीवन	निकट : धनकल बस स्टॉप
नई दिल्ली 110016	बैंगलूर 560 085	अहमदाबाद 380 014	पनिहटी, कोलकाता 700 114

प्रकाशन सहयोग

संपादन मरियम बारा
उत्पादन अतुल सक्सेना
आवरण जितेंद्र सिंह

रु 70.00

एन.सी.ई.आर.टी. वाटरमार्क 80 जी.एस.एम. पेपर पर मुद्रित।

प्रकाशन विभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली 110 016 द्वारा प्रकाशित तथा बंगाल ऑफसेट वर्क्स, 335, खजूर रोड, करोल बाग, नई दिल्ली 110 005 द्वारा मुद्रित।

प्राक्कथन

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् विद्यालयी शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार हेतु कार्यरत है। परिषद् ने समय-समय पर पाठ्यक्रम के कई प्रारूप विकसित किए हैं। जिनको राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों द्वारा स्वीकृत/अनुकूलित किया गया है। परिषद् भारत सरकार की राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में दिए गए मार्गदर्शन एवं दिशा निर्देशों तथा सन् 1992 में रूपांतरित आधार पर कार्यरत है।

परिषद् ने *विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की रूपरेखा - 2000* का प्रकाशन किया। जिसमें विज्ञान तथा गणित की शिक्षा पद्धति में माध्यमिक स्तर पर तथा जीव विज्ञान में उच्चतर माध्यमिक स्तर पर गुणात्मक सुधार की आवश्यकता पर बल दिया है। इसी के अनुसार विभिन्न स्तर तथा विषयों के पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तकों का निर्माण किया गया है।

जीव विज्ञान की शिक्षा को उच्चतर माध्यमिक स्तर पर एक वैकल्पिक विषय के रूप में पढ़ाने के लिए संस्तुति की गई है। कक्षा 11 के लिए जीव विज्ञान की पुस्तक संशोधित पाठ्यक्रम पर आधारित थी जिसका प्रकाशन हो चुका है। वर्तमान पुस्तक इस शृंखला की तीसरी इकाई है तथा यह कक्षा 12 का द्वितीय भाग है।

इस पाठ्यक्रम का प्रारूप एक लेखन मंडल द्वारा तैयार किया गया, जिसमें विश्वविद्यालयों, अन्य उच्चतर शिक्षा संस्थानों तथा विज्ञान एवं गणित शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी. के विशेषज्ञ हैं। लेखन मंडल ने इसके उपयोगकर्ताओं के अनुभवों को तथा विषय वस्तु एवं शिक्षा शास्त्र में समकालीन परिवर्तन को समायोजित किया। यह प्रयास किया गया है कि जीव विज्ञान विद्यार्थियों के लिए अधिक सुसंगत तथा लाभदायी हो सके। पादपों, प्राणियों तथा मानवों के विभिन्न रोगों के लिए जैव प्रौद्योगिकी एवं नैदानिक तकनीकों के समकालीन विकासों को तथा पर्यावरण संरक्षण की रणनीतियों को इस पाठ्यक्रम में समायोजित किया गया है। जीवन के साथ-साथ पर्यावरण की गुणवत्ता को समुन्नत करने के लिए जीव विज्ञान की भूमिका पर बल दिया गया है। इस पाठ्यपुस्तक में पर्यावरण एवं जीवों से संबंधित मूल्य एवं नैतिकता के विषय में भी चर्चा की गई है। पुस्तक के प्रारूप को मूल्यांकन और समीक्षा हेतु शिक्षकों तथा विषय विशेषज्ञों के समक्ष प्रस्तुत किया गया था, उनके महत्त्वपूर्ण सुझावों को भी इस पुस्तक में समायोजित किया गया है। अंतत: इस पुस्तक की पांडुलिपि को विषय विशेषज्ञों द्वारा संपादित किया गया।

मैं लेखन मंडल के अध्यक्ष एवं सभी सदस्यों के योगदान, तथा इस पाठ्यपुस्तक को नियत समय में पूर्ण करने के लिए आभारी हूं। मैं समीक्षा हेतु आयोजित कार्यशाला में सम्मिलित अध्यापकों एवं विषय विशेषज्ञों का भी धन्यवाद व्यक्त करता हूं जिन्होंने पांडुलिपि सुधारने में महत्त्वपूर्ण योगदान एवं सुझाव दिए।

इस पाठ्यपुस्तक के सुधार हेतु आपके सुझाव आमंत्रित हैं।

जगमोहन सिंह राजपूत
निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

नई दिल्ली
फरवरी 2003

आमुख

जीव एक अत्यंत जटिल क्रियात्मक तंत्र है। पादप इनके एक महत्त्वपूर्ण समूह हैं जिनमें यह क्षमता है कि सूर्य के प्रकाश में निहित ऊर्जा को उपयोग में लाकर जल तथा कार्बन डाइऑक्साइड जैसे दो आधारभूत पदार्थों से कार्बनिक यौगिकों का निर्माण कर सकते हैं। उनमें यह क्षमता भी अवश्य होनी ही चाहिए कि वे अपने शरीर के विभिन्न भागों में जल, खनिज तथा संसाधित कार्बनिक यौगिकों को पहुंचा सकें। सभी अन्य जीवों का अस्तित्व पादपों की इस कार्यक्षमता पर निर्भर करता है। जीव जो अपना भोजन प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से पादपों से ग्रहण करते हैं, उनमें भोजन को पचाने की सामर्थ्य एंवं भोजन में निहित विषैले अवशेषों को निष्कासित करने की भी प्रतिभा होनी चाहिए।

जीवों में गति करने की सामर्थता भी होनी चाहिए। गति उपकोशिकीय कणों से अंगों तक तथा जीव स्तरों तक होती है। जीवों में व्यवस्थित ढंग से वृद्धि तथा विकास करने की भी क्षमता होनी चाहिए जिससे कि प्रजनन हो सके तथा प्रत्येक कोशिकाओं, ऊतकों, तथा अंगों तक सभी अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। उनमें यह भी कुशलता होनी चाहिए कि वे विभिन्न भौतिक तथा रासायनिक परिस्थितियों में, परिवर्तनों का प्रतिवेदन कर सकें। उनके अंदर यह भी योग्यता आवश्यक है कि वे अपनी संरचना की समग्रता तथा क्रियात्मकता को अपने परिवेशीय परिस्थितिकी में होने वाले वृहत परिर्वतनों के बाद भी बनाए रखें। जीवों को भविष्य में अपनी संरचना के प्रति अनुकूलित तथा जीवन प्रक्रियाओं को रूपांतरित करते रहना होगा ताकि विभिन्न पर्यावरणीय परिस्थितियों में अपनी उपस्थिति बनाए रखें तथा प्रजनन कर सकें।

सभी जीवन क्रियाओं को निष्पादित करने के लिए जीवों को ऊर्जा की आवश्यकता होती है तथा वे इस ऊर्जा की प्राप्ति ऑक्सीकरण तथा अवकरण प्रतिक्रियाओं द्वारा जटिल कार्बनिक अणुओं के टूटने से प्राप्त करते हैं। इस प्रक्रिया से उत्पादित ऊर्जा का वृहत् भाग रासायनिक रूप में संचित किया जाता है तथा कार्बनिक यौगिकों का उपयोग जीवन क्रियाओं के लिए अन्य महत्त्वपूर्ण यौगिकों को उत्पन्न करने में होता है।

जीवन को निर्वाहित करने तथा सतत् बनाए रखने के लिए आवश्यक सभी क्षमताओं तथा प्रक्रियाओं का आधार एक जटिल तथा विविध शरीर के क्रियात्मक प्रक्रियाओं पर निर्भर करता है। जीव कभी भी पृथक एकक के रूप में नहीं पाया जाता है। वे जनसंख्या तथा जैविक समुदायों के रूप में संगठित रहते हैं, जिनके एक विशिष्ट अभिलक्षण तथा गुण होते हैं। जैविक समुदायों का पर्यावरण के निर्जीव कारकों के साथ ऊर्जा प्रवाह तथा पोषक चक्रों द्वारा संयुग्मन होता है। इससे ऐसी पारिस्थितिकी का प्रादुर्भाव होता है, जो संरचनात्मक तौर पर सुव्यवस्थित होती है तथा प्रकृति की एक इकाई के रूप में कार्य करती है। जीव, समुदाय, पारिस्थितिकी तथा पर्यावरण, जोकि मानव के लिए एक विशिष्ट प्रकार का प्राकृतिक संसाधन बनाता है, वह मानव जनसंख्या वृद्धि के कारण तथा इससे उत्पन्न अति-दोहन एवं प्रदूषण के द्वारा उत्पन्न परिस्थितियों के कारण अत्यंत दबाव में है। मानव क्रियाओं का प्रभाव एक चिंतनीय स्तर पर है तथा इसके परिणामस्वरूप जैव विविधता का ह्रास हुआ है। अन्य अनैच्छिक भूमंडलीय परिवर्तन भी हुआ है। उपरोक्त कही गई सारी बातों को पर्यावरण विज्ञान के अंतर्गत दर्शाया गया है।

उपर्युक्त हालातों के बावजूद मनुष्य स्वयं भी एक अद्‌वितीय संसाधन है। उसने आधुनिक विज्ञान की तकनीकों एवं उपकरणों के उपयोग के द्‌वारा संततियों एवं जैविक संसाधनों में कई सुधार किए हैं जो, कल्याणकारी सिद्‌ध हो रहे हैं। इस पुस्तक के अंतिम एकक में जीव विज्ञान के मानव कल्याण के उपयोगों को निरूपित किया गया है।

मैं प्रो. जगमोहन सिंह राजपूत, निदेशक, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के प्रति आभार व्यक्त करता हूं जिन्होंने मुझे इस राष्ट्रीय प्रयास में योगदान करने का अवसर प्रदान किया। मैं विज्ञान एवं गणित शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी. के विभागाध्यक्ष प्रो. रामदुलार शुक्ल का पुस्तक की तैयारी में उनकी रुचि एवं सतत् सहयोग के लिए आभारी हूं। इस कार्य के समन्वयक प्रो. सुरेश चंद्र जैन का मैं विशेष रूप से आभारी तथा ऋणी हूं जिनके सहयोग तथा समन्वय के बिना इस परियोजना का पूर्ण होना संभव नहीं था।

इस पुस्तक में हम संशोधन-सुधार के लिए पाठकों के अमूल्य सुझावों का स्वागत करेंगे।

प्रो. जे. एस. सिंह
अध्यक्ष
लेखन मंडल

लेखन मंडल के सदस्य

जे.एस. सिंह (**अध्यक्ष**)
प्रोफेसर, वनस्पति विज्ञान विभाग
बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी

बी.डी. सिंह
प्रोफेसर, स्कूल ऑफ बायोटैक्नोलॉजी
बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी

शारदा रानी गुप्ता
प्रोफेसर, वनस्पति विज्ञान विभाग
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

डी.पी. चक्रवर्ती
रीडर एवं अध्यक्ष
प्राणि विज्ञान विभाग, प्रेसीडेंसी कॉलेज
86/1, कॉलेज स्ट्रीट, कोलकाता

एस.के. मुखोपाध्याय
रीडर, प्राणि विज्ञान विभाग
मौलाना आजाद गवर्मेंट कॉलेज
कोलकाता

के. सी. बंसल
वैज्ञानिक (प्रोफेसर)
बायोटैक्नोलॉजी केंद्र
भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान
नई दिल्ली

के.पी. सिंह
प्रोफेसर, वनस्पति विज्ञान विभाग
बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी

एन.सी.ई.आर.टी. संकाय
विज्ञान एवं गणित शिक्षा विभाग

जे.एस.गिल, *प्रोफेसर*

कृष्ण भगवान गुप्त, *प्रोफेसर*

दिनेश कुमार, रीडर

जितेंद्र सिंह, *लैक्चरर*

सुरेश चंद्र जैन, प्रोफेसर (**समन्वयक**)

हिंदी रूपांतर

गणेश शंकर पालीवाल
प्रोफेसर, (अवकाश प्राप्त)
216, वैशाली
पीतमपुरा, दिल्ली

कृष्ण कुमार शर्मा
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
म.द.स. विश्वविद्यालय, अजमेर

गोविंद चंद मिश्रा
प्रोजेक्ट वैज्ञानिक
ग्रामीण विकास एवं प्रौद्योगिकी केंद्र
आई.आई.टी., नई दिल्ली

ब्रह्म देव सिंह
प्रोफेसर, स्कूल ऑफ बायोटैक्नोलॉजी
बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी

दिनेश कुमार
रीडर, विज्ञान एवं गणित शिक्षा विभाग
एन.सी.ई.आर.टी.
नई दिल्ली

संपादन

राम स्वरूप गुप्त
प्रोफेसर (अवकाश प्राप्त)
73, सुंदर वास (उत्तरी)
उदयपुर

कृष्ण कुमार शर्मा
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
म.द. स. विश्वविद्यालय
अजमेर

गोविंद चंद मिश्रा
प्रोजेक्ट वैज्ञानिक
ग्रामीण विकास एवं प्रौद्योगिकी केंद्र
आई.आई.टी., नई दिल्ली

गांधी जी का जंतर

तुम्हें एक जंतर देता हूँ। जब भी तुम्हें संदेह हो या तुम्हारा अहम् तुम पर हावी होने लगे, तो यह कसौटी आज़माओ :

जो सबसे गरीब और कमज़ोर आदमी तुमने देखा हो, उसकी शक्ल याद करो और अपने दिल से पूछो कि जो कदम उठाने का तुम विचार कर रहे हो, वह उस आदमी के लिए कितना उपयोगी होगा। क्या उससे उसे कुछ लाभ पहुँचेगा? क्या उससे वह अपने ही जीवन और भाग्य पर कुछ काबू रख सकेगा? यानी क्या उससे उन करोड़ों लोगों को स्वराज्य मिल सकेगा, जिनके पेट भूखे हैं और आत्मा अतृप्त है?

तब तुम देखोगे कि तुम्हारा संदेह मिट रहा है और अहम् समाप्त होता जा रहा है।

पाठ्यपुस्तक समीक्षा कार्यगोष्ठी के सदस्य

जे.एस. सिंह (**अध्यक्ष**)
प्रोफेसर
वनस्पति विज्ञान विभाग
बनारस हिंदू विश्वविद्यालय
वाराणसी

जी.एस. पालीवाल
प्रोफेसर (अवकाश प्राप्त)
वनस्पति विज्ञान विभाग
स्वामी श्रद्धानंद कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

आर.एस. गुप्ता
प्रोफेसर (अवकाश प्राप्त)
73, सुंदर वास (उत्तरी)
उदयपुर

बी.डी. शर्मा
पी.जी.टी. (अवकाश प्राप्त)
एस.यू.-166, विशाखा एन्क्लेव
पीतमपुरा, दिल्ली

ललिता यादव
पी.जी.टी. (जीव विज्ञान)
सर्वोदय कन्या विद्यालय
मालवीय नगर, नई दिल्ली

रेखा भदौरिया
रीडर, वनस्पति विज्ञान
जीवाजी विश्वविद्यालय
ग्वालियर

वी.डी. सिंह
प्रोफेसर, स्कूल ऑफ बॉयोटैक्नोलॉजी
बनारस हिंदू विश्वविद्यालय
वाराणसी

उमा कौशिक
प्राध्यापक, जंतु विज्ञान
राज्य विज्ञान संस्थान
इलाहाबाद

विजय कुमार
उप-प्राचार्य
गवर्मेंट सेकंडरी स्कूल
मंडावली, दिल्ली

मानवेंद्र सिंह
पी.जी.टी.
आदर्श विद्या निकेतन
न्यू कॉलोनी, पलवल
हरियाणा

सरिता राय
प्राचार्य, गवर्मेंट सहशिक्षा सीनियर
सेकंडरी स्कूल, चिल्ला, मयूर विहार
दिल्ली

शशि आनंद
सीनियर लैक्चरर
नेहरू कॉलेज, फरीदाबाद
हरियाणा

वी.पी. चमोला
लैक्चरर, वानिकी
एच.एन.बी. गढ़वाल विश्वविद्यालय
श्रीनगर, उत्तरांचल

जी.सी. मिश्रा
प्रौजेक्ट वैज्ञानिक
ग्रामीण विकास एवं प्रौद्योगिकी केंद्र
आई.आई.टी.
नई दिल्ली

एस.सी. पालीवाल
रीडर एवं अध्यक्ष
वनस्पति विज्ञान विभाग
पालीवाल (पी.जी.) कॉलेज
शिकोहाबाद (उ.प्र.)

वाई. शर्मा
लैक्चरर, जंतुविज्ञान विभाग
अग्रवाल कॉलेज, आगरा रोड
जयपुर

मधु गुप्ता
लैक्चरर, वनस्पति विज्ञान
गवर्मेंट कॉलेज, अजमेर

के.के. शर्मा
अध्यक्ष, जंतुविज्ञान विभाग
एम.डी.एस. विश्वविद्यालय
अजमेर

एन.सी.ई.आर.टी. संकाय
विज्ञान एवं गणित शिक्षा विभाग

कृष्ण भगवान गुप्त, *प्रोफेसर*
जे.एस. गिल, *प्रोफेसर*
दिनेश कुमार, *रीडर*
जितेंद्र सिंह, *लैक्चरर*
सुरेश चंद्र जैन, *प्रोफेसर* (**समन्वयक**)

कक्षा 12

भाग 1 की विषय सूची

एकक छः:
पादप कार्यिकी

अध्याय 1 पादप-जल संबंध
अध्याय 2 पादप पोषण
अध्याय 3 प्रकाश-संश्लेषण
अध्याय 4 श्वसन

एकक सात
प्राणियों की कार्यिकी

अध्याय 5 प्राणियों में पोषण
अध्याय 6 प्राणियों में श्वसन
अध्याय 7 प्राणियों में परिसंचरण
अध्याय 8 प्राणियों में परासरण नियमन तथा उत्सर्जन
अध्याय 9 प्राणियों में गति एवं चलन
अध्याय 10 प्रणियों में तंत्रिका समन्वयन एवं एकीकरण
अध्याय 11 प्राणियों में रासायनिक समन्वयन

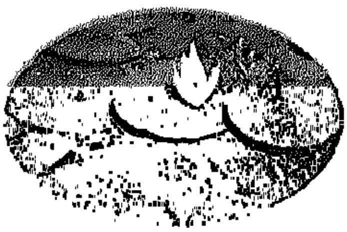
एकक आठ
जनन, वृद्धि एवं परिवर्धन

अध्याय 12 पुष्पी पादपों में जनन
अध्याय 13 पादप वृद्धि एवं गतियां
अध्याय 14 प्राणियों में जनन एवं परिवर्धन
अध्याय 15 वृद्धि, पुनरुद्भवन एवं जरण

विषय सूची

प्राक्कथन

प्रस्तावना

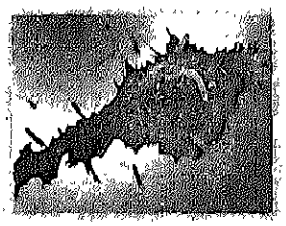


एकक नौ
पारिस्थितिकी और पर्यावरण

अध्याय 16	**जीव तथा पर्यावरण**	**225**
16.1	संगठन के स्तर	225
16.2	पर्यावरण, आवास तथा निकेत	227
16.3	पर्यावरणीय कारक	228
16.4	पारिस्थितिक अनुकूलता	235
अध्याय 17	**जनसंख्या, जैविक समुदाय तथा अनुक्रमण**	**242**
17.1	जनसंख्या	242
17.2	पारिस्थितिक निर्भरता एवं पारस्परिक क्रियाएं	245
17.3	जैविक समुदाय संगठन	248
17.4	अनुक्रमण	250
अध्याय 18	**पारिस्थितिक तंत्र : संरचना एवं कार्य**	**256**
18.1	पारिस्थितिक तंत्र के घटक	256
18.2	पारिस्थितिक तंत्र : सरंचना एवं कार्य	257
18.3	उत्पादकता	257
18.4	अपघटन	258
18.5	ऊर्जा प्रवाह	260
18.6	पारिस्थितिक पिरामिड	262
18.7	पारिस्थितिक दक्षता	263

18.8	पोषण चक्र	264
18.9	पारिस्थितिक नाइट्रोजन चक्र	266
18.10	पारिस्थितिक फॉस्फोरस चक्र	267
18.11	प्रमुख जीवोम	268
18.12	वन जीवोम	268
18.13	घासस्थल तथा सवाना जीवोम	270
18.14	मरुभूमि जीवोम	272
अध्याय 19	**प्राकृतिक संसाधन तथा उनका संरक्षण**	**275**
19.1	प्राकृतिक संसाधनों का वर्गीकरण	275
19.2	प्रमुख प्राकृतिक संसाधन	276
19.3	मृदा संसाधन	276
19.4	जल संसाधन	277
19.5	भू-संसाधन	278
19.6	वन	278
19.7	घास स्थल	280
19.8	नम भूमि	281
19.9	ऊर्जा संसाधन	281
19.10	समुद्री संसाधन	282
19.11	खनिज संसाधन	283
19.12	वन्य एवं वन्यजीव नियम	285
19.13	पर्यावरणीय नैतिकता तथा संसाधनों के उपयोग	285
अध्याय 20	**जैव विविधता**	**289**
20.1	जैव विविधता का परिमाप	289
20.2	जैव विविधता के स्तर	290
20.3	जैव विविधता की प्रवणता	294
20.4	जैव विविधता के उपयोग	295
20.5	जैव विविधता को खतरा	296
20.6	जैव विविधता का संरक्षण	299

20.7	जैव विविधता के तप्तस्थल	301
20.8	जैव विविधता संरक्षण के अंतर्राष्ट्रीय प्रयास	303
20.9	भारत में जैव विविधता संरक्षण	303
अध्याय 21	**प्रदूषण एवं भूमंडलीय पर्यावरण परिवर्तन**	**307**
21.1	प्रदूषण के प्रकार	307
21.2	वायु प्रदूषण : स्रोत, प्रकार एवं प्रभाव	308
21.3	वायु प्रदूषण का नियंत्रण	311
21.4	जल प्रदूषण : स्रोत, प्रकार तथा प्रभाव	312
21.5	जल गुणवत्ता को सुधारना	316
21.6	मृदा प्रदूषण	316
21.7	ध्वनि प्रदूषण	317
21.8	प्रदूषण नियंत्रण के लिए पर्यावरणीय कानून	318
21.9	भूमंडलीय पर्यावरण परिवर्तन	318
21.10	भूमंडलीय दुष्प्रभावों को कम करने के लिए अंतरराष्ट्रीय प्रयास	324



एकक दस
जनन, वृद्धि एवं परिवर्तन

अध्याय 22	**मानव जनसंख्या एवं स्वास्थ्य**	**329**
22.1	चरघातांकी वृद्धि एवं मानव जनसंख्या विस्फोट	329
22.2	पर्यावरण एवं मानव जनसंख्या दाब	331
22.3	विकास एवं पर्यावरण	331
22.4	मानव जनसंख्या वृद्धि	331
22.5	मानव जननिक स्वास्थ्य	334
22.6	किशोरावस्था	335
22.7	मानसिक स्वास्थ्य	336
22.8	जनसंख्या एक संसाधन के रूप में	339

अध्याय 23	**आनुवंशिक सुधार एवं रोग नियंत्रण**	**341**
23.1	लक्षणप्ररूप	341
23.2	उन्नत किस्में	342
23.3	नई किस्मों का विकास	343
23.4	जननद्रव्य संग्रह एवं संरक्षण	345
23.5	संकरओज एवं अंत:प्रजनन ह्रास	346
23.6	उत्परिवर्तन प्रजनन	347
23.7	फसल सुधार में बहुगुणिता	348
23.8	पोषण गुणवत्ता के लिए प्रजनन	350
23.9	रोग रोधिता के लिए प्रजनन	350
23.10	जंतु प्रजनन	351
23.11	संकर	352
23.12	पादप रोग एवं उनका नियंत्रण	353
23.13	जंतु रोग एवं उनका नियंत्रण	356
अध्याय 24	**पादप ऊतक संवर्धन एवं जैव प्रौद्योगिकी**	**362**
24.1	पादप ऊतक संवर्धन	362
24.2	जैव प्रौद्योगिकी	368
24.3	आनुवंशिकता रूपांतरित फसलें	368
24.4	आनुवंशिकता रूपांतरित खाद्य	370
24.5	प्रतिपालनीय कृषि	371
24.6	जैवपेटेंट	373
24.7	जैवदस्युता	373
24.8	जैविक युद्ध	374
24.9	जैव नैतिकता	374
अध्याय 25	**प्रतिरक्षित तंत्र तथा मानव स्वास्थ्य**	**379**
25.1	सहज तथा अर्जित असंक्राम्य	379
25.2	सहज (अविशिष्ट) असंक्राम्य	379
25.3	अर्जित प्रतिरक्षा	381

25.4	क्लोनीयवरण तथा प्राथमिक एवं द्वितीयक प्रतिरक्षा	383
25.5	लसीकाभ अंग	384
25.6	टीकाकरण तथा प्रतिरक्षण	384
25.7	रक्त समूह	385
25.8	अंग प्रत्यारोपण तथा प्रतिरक्षी	386
25.9	असंक्राम तंत्र अव्यवस्था	386
अध्याय 26	**जैव चिकित्सा तकनीकियां**	**390**
26.1	निदान सूचक प्रतीक	390
26.2	शरीर की प्रमुख क्रियाओं का परीक्षण	393
26.3	जैव रासायनिक स्वत: जांच यंत्र	396
26.4	डाइगनॉस्टिक किट	396
26.5	अंतर्दर्शी प्रक्रिया	396
26.6	लेजर सूक्ष्मशल्य चिकित्सा	397
26.7	कैंसर जीव विज्ञान तथा उपचार	398
26.8	प्रत्यारोपण	400
26.9	हीमो अपोहन	400
26.10	प्रोस्थेसिस	401
26.11	प्रतिस्थापन शल्य चिकित्सा	403
26.12	क्रायो शल्य-चिकित्सा	403
26.13	प्रतिरक्षी उपचार	404
26.14	हॉर्मोन उपचार	404
26.15	जीन उपचार	404
26.16	एच.आई.वी. संक्रमण की जांच	405
26.17	लैंगिक संचरित रोग (एसटीडी) की जांच	405

भारत का संविधान

भाग 4क

नागरिकों के मूल कर्तव्य

अनुच्छेद 51क

मूल कर्तव्य – भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह –

(क) संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे,

(ख) स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे,

(ग) भारत की संप्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण बनाए रखे,

(घ) देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे,

(ङ) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभावों से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो महिलाओं के सम्मान के विरुद्ध हों,

(च) हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्त्व समझे और उसका परिरक्षण करे,

(छ) प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्राणिमात्र के प्रति दयाभाव रखे,

(ज) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे,

(झ) सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे, और

(ञ) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत् प्रयास करे, जिससे राष्ट्र निरंतर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊंचाइयों को छू सके।



एकक नौ

पारिस्थितिकी और पर्यावरण

अध्याय 16

अध्याय 17

अध्याय 18

अध्याय 19

अध्याय 20

अध्याय 21

सभी सजीवों की वृद्धि एवं प्रजनन उस पर्यावरण द्वारा प्रभावित होता है जिसमें वह रहता है। दूसरी ओर, सभी जीव अपनी गतिविधियों द्वारा अपने पर्यावरण को प्रभावित करते हैं। जलवायु और मृदा, पर्यावरण के महत्त्वपूर्ण अवयव हैं। पादप तथा प्राणी, सामान्यतया विभिन्न आवासों में पर्यावरणीय कारकों द्वारा बदलाव के प्रति अनुकूलित होते हैं। जीवों तथा उनके पर्यावरण के व्युत्पन्न संबंध का जनसंख्या, समुदाय तथा पारिस्थितिक तंत्र के स्तर पर अध्ययन किया जाता है, जो कि जटिलता के बढ़ते क्रम के पदानुक्रम को दर्शाती है। पारिस्थितिक तंत्र, फलनत: प्रकृति की स्वतंत्र इकाई है जो कि अभिलक्षणिक ऊर्जा-प्रवाह तथा पोषक चक्रण को दर्शाता है। विश्व में पाए जाने वाले बृहत् प्रकार के पारिस्थितिक तंत्रों को जीवोमों में वर्गीकृत किया जा सकता है जैसे कि वन, घासस्थल, मरुस्थल आदि। पारिस्थितिकी, मानव के लिए कई प्रकार की सेवा उपलब्ध कराती है। वे कई संसाधन भी उपलब्ध कराती है जिसका उपयोग भोजन, चारा, आवास इत्यादि के रूप में होता है। मानव क्रियाकलापों में हुई वृद्धि के द्वारा, विशेषकर पिछली शताब्दी में, सभी स्तरों पर (जीन, जाति तथा पारिस्थितिक तंत्र) हमारी जैव विविधता प्रभावित हुई है। इस प्रकार मानव जाति की उत्तरजीविता को बनाए रखने के लिए, जैव विविधता का संरक्षण बहुत ही महत्त्वपूर्ण हो गया है। मानव गतिविधियों, जैसे कि औद्योगिकीकरण, ऊर्जा उत्पादन, शहरीकरण इत्यादि के द्वारा हमारे जीवन को बनाए रखने वाले तंत्रों (वायु, जल तथा मृदा) को बहुत तेजी से प्रदूषित कर रहे हैं। इन गतिविधियों से, वायुमंडल में ग्रीन हाऊस गैसों की मात्रा में वृद्धि होती है जो हाल ही में महसूस की गई घटनाएं जैसे कि भूमंडलीय ऊष्मता तथा ओजोन छिद्र को बढ़ावा देती हैं।

इस इकाई में हम जीवों तथा पर्यावरण के बीच पारस्परिक क्रियाओं तथा जीवों की अनुकूलता; जनसंख्याओं के अभिलक्षण तथा वृद्धि; जैविक समुदायों में संगठन तथा अनुक्रम; पारिस्थितिक तंत्र की संरचना तथा क्रियाविधि, प्रमुख स्थलीय जीवोम के पर्यावरणीय लक्षणों; प्राकृतिक संसाधनों तथा उनके संरक्षण; विभिन्न स्तरों पर जैव विविधता, उनके ह्रास के कारण तथा संरक्षण उपायों; प्रदूषण तथा भूमंडलीय पर्यावरणीय परिवर्तन के कारणों तथा दुष्प्रभावों के बारे में सीखेंगे ।



रामदेव मिश्रा

(1908-1998)

प्रो. रामदेव मिश्रा ने भारत में पारिस्थितिकी विज्ञान की शिक्षा तथा शोध कार्य का प्रारंभ किया। उनके नेतृत्व में वनस्पति विज्ञान विभाग को उष्णकटिबंधीय पारिस्थितिकी (वनों, घास स्थलों, तालाबों, झरनों इत्यादि) में अंतर्राष्ट्रीय पहचान प्राप्त हुई। उनके शोध के द्वारा, उष्णकटिबंधीय समुदायों को समझने के लिए तथा उनके अनुक्रमण, पादप जनसंख्याओं के पर्यावरणीय प्रतिवेदनों तथा उष्णकटिबंधीय वनों तथा घास स्थलीय पारिस्थितिकी तंत्रों में उत्पादकता तथा पोषक तत्त्वों के चक्रण की आधारशिला रखी। प्रो. मिश्रा ने भारत में पारिस्थितिकी में स्नातकोत्तर स्तर के अध्ययन की रूपरेखा तैयार की। उनके निर्देशन में 50 से अधिक शोधार्थियों ने पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की तथा देश के अन्य विश्व विद्यालय एवं संस्थानों में पारिस्थितिकी शिक्षा तथा शोध कार्य का शुभारंभ किया। उन्हें इंडियन नेशनल साइंस अकादमी तथा विज्ञान के विश्व अकादमी द्वारा फैलोशिप से सम्मानित किया गया तथा पारिस्थितिकी एवं पारिस्थितिक विज्ञान के क्षेत्र में संजय गांधी सम्मान से भी विभूषित किया गया। उनके प्रयासों के कारण, भारत सरकार की पारिस्थितिक योजना तथा समन्वय (1972) के लिए राष्ट्रीय समिति का गठन संभव हो पाया, जो कि बाद के वर्षों में, पर्यावरण तथा वन मंत्रालय (1984) के गठन के लिए अहम् साबित हुआ। प्रो. मिश्रा द्वारा सन 1956 में गठित उष्णकटिबंधीय पारिस्थितिकी अंतर्राष्ट्रीय सोसाइटी से उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में पारिस्थितिकी विषयों को समझने में बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

अध्याय 16

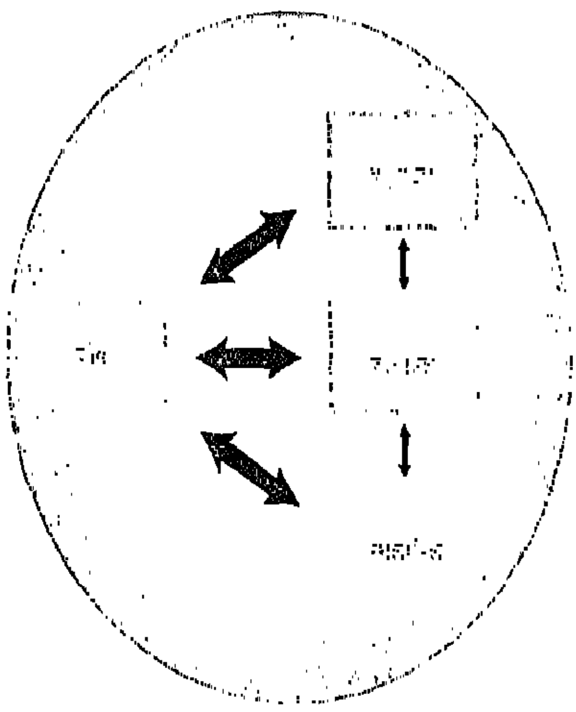
जीव तथा पर्यावरण

प्रकृति में, जीव केवल उपयुक्त वातावरण में ही जीवित रह सकते हैं, एक-दूसरे के साथ पारस्परिक क्रिया करते हैं तथा पर्यावरण के संपूर्ण जटिल कारकों द्वारा प्रभावित होते हैं। जीव विज्ञान की वह शाखा, जोकि जीवों तथा पर्यावरण के बीच की पारस्परिक क्रियाओं का अध्ययन करती है, **पारिस्थितिकी** कहलाती है। संसाधनों के सतत् उपयोग के लिए पारिस्थितिकी के सिद्धांतों को समझना आवश्यक है, जिससे स्थानीय, क्षेत्रीय तथा भूमंडलीय स्तरों की पर्यावरणीय समस्याओं को सुलझाने के लिए युक्तिपूर्ण उपायों को विकसित किया जाता है। इस अध्याय में हम, जीवों पर पर्यावरणीय कारकों का प्रभाव, सहनशीलता की सीमाओं का महत्त्व, तथा परिवर्तनशील भौतिक पर्यावरणीय स्थिति में जीवों के अनुकूलन के प्रभावों के बारे में सीखेंगे।

16.1 संगठन के स्तर (Levels of Organisation)

पारिस्थितिकी (ecology) में, हम जीवों के वितरण एवं प्रचुरता पारस्परिक क्रियाओं एवं भौतिक वातावरणों के विषय में अध्ययन करते हैं। भौतिक वातावरण स्थलमंडल, जलमंडल तथा वायुमंडल से बना होता है (चित्र 16.1)। जर्मन जीव विज्ञानी अर्न्स्ट् हीकल् ने इकॉलजी शब्द सन् 1869 में दिया जोकि ग्रीस में *ओइकोस*, (*Oikos* तात्पर्य घर) तथा *लोगोस* (*Logos* तात्पर्य अध्ययन करना होता है) से उत्पन्न हुआ है। दूसरे अध्ययनों की तुलना में, पर्यावरण के क्षेत्र में विकास की दर धीमी रही है। पारिस्थितिकी का विकास, प्राकृतिक इतिहास तथा जैवभूविज्ञान से पारिस्थितिक पर्यावरण तक हुआ है। हाल ही में, जलवायु परिवर्तन पर ध्यान देकर, जैव विविधता संरक्षण तथा पारिस्थितिक निर्वहन द्वारा भूमंडलीय पारिस्थितिकी पर जोर दिया जा रहा है।

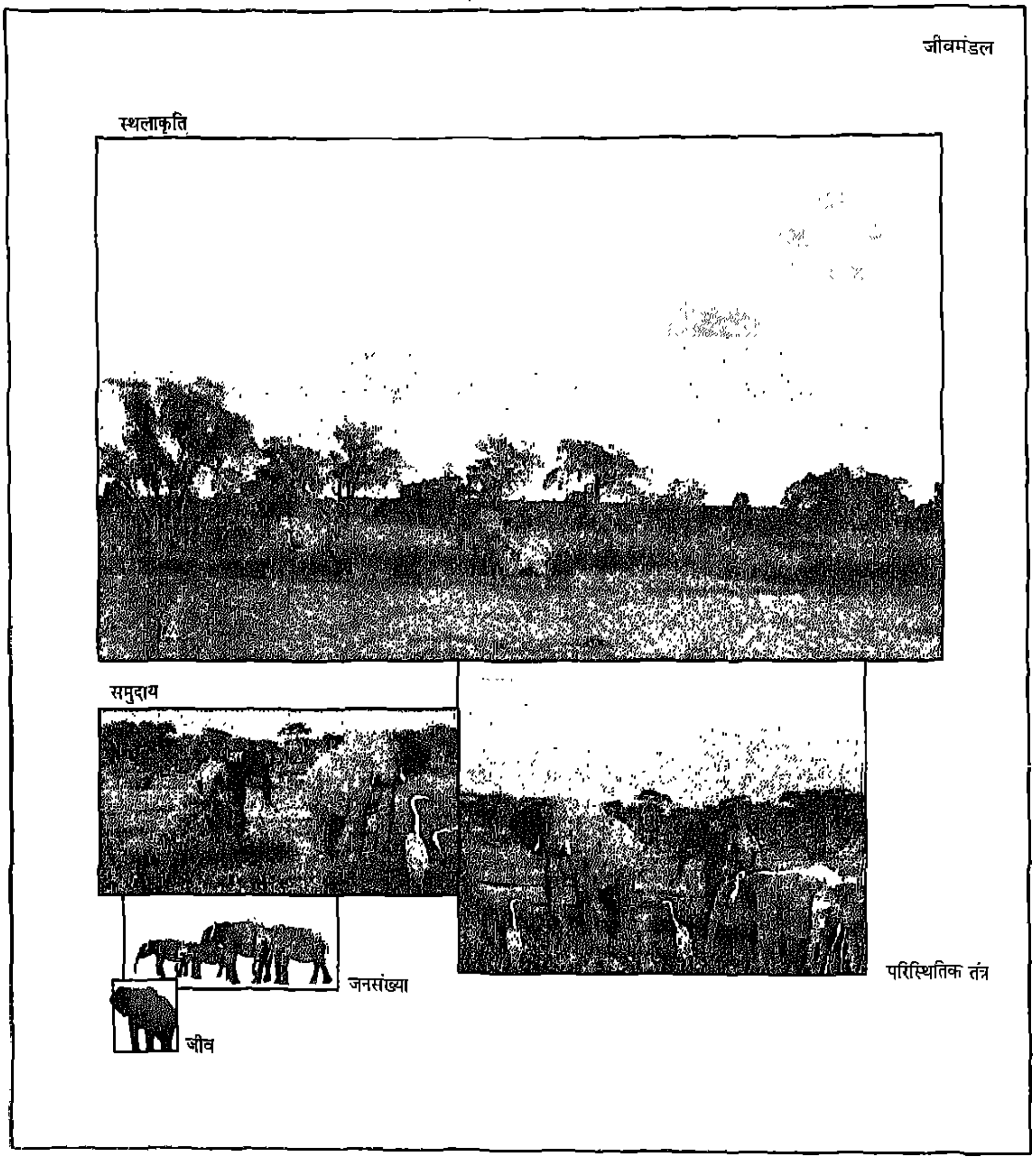
जीव विज्ञान, जीन (genes) से पारिस्थितिकी तंत्र तक का जिज्ञासा क्षेत्र है, जो कि विभिन्न स्तरों के संगठन पर प्रकाश डालता है। इन संगठनों की जटिलताओं के बढ़ते क्रम इस प्रकार हैं ; जीन, कोशिका, अंग, एकाकी जीव, जनसंख्या, जैविक समुदाय, पारिस्थितिक तंत्र, भूदृश्य पटल, जीवोम तथा जैवमंडल। पारिस्थितिकी में हम जीवों, जनसंख्याओं, जैविक समुदायों, पारिस्थितिक तंत्रों तथा जीव मंडलों के बारे में अध्ययन करते हैं। यह समझना चाहिए कि एक स्तर की संरचना, दूसरे स्तर के साथ जुड़ी हुई है तथा इनके विभिन्न स्तरों के बीच अभिलक्षणिक



चित्र 16.1 जीव अपने भौतिक पर्यावरण के साथ पारस्परिक क्रिया करते हैं जो वायुमंडल, जलमंडल तथा स्थलमंडल से बना होता है

तौर पर कोई स्पष्ट रेखा या विच्छेद् नहीं होता है। उदाहरण के तौर पर, एक जीव उसी जाति के अन्य जीवों के साथ मिलकर, जनसंख्या का एक भाग बनाता है। इसी प्रकार, पारिस्थितिक तंत्र में, पोषक चक्रों के चक्रण तथा ऊर्जा के प्रवाह के कारण एक जैविक समुदाय का निर्वाह होता है।

संरचना के पारिस्थितिक स्तरों को संक्षेप में निम्न प्रकार से वर्णित किया गया है। **जीव**, पारिस्थितिकी अध्ययन की आधारभूत इकाई है। जीवों के स्तर पर हम आकृति, शरीर क्रिया, तथा परस्पर व्यवहार को तथा वातावरणीय पारिस्थिति के अनुकूलन के संबंध को समझने का प्रयास करते हैं। एक



चित्र 16.2 पारिस्थितिकी में, जैविक संरचनाओं के स्तर जीव से जैव मंडल तक की श्रेणी से जुड़े हुए हैं

ही तरह के जीवों, जिसमें परस्पर संकरण की क्षमता होती है और जो निषेची संतति को जन्म देते हैं, **जाति** कहलाती है। किसी भी आवासीय क्षेत्र में निवास करने वाले पौधों तथा प्राणियों की जातियों के समूहों को **जनसंख्या** कहते हैं। उदाहरण के तौर पर, एक क्षेत्र में रहने वाले सभी हाथियों की संख्या, उसकी जनसंख्या बताती हैं। आपने यह भी पढ़ा है कि किस तरह दो जनसंख्याओं के बीच पारस्परिक क्रियाएं होती हैं। जैसे, एक परभक्षी का उसके भक्ष्य से या एक परजीवी का उसके परपोषी से पारस्परिक संबंध होता है। प्रतियोगिता, सहोपकारिता एवं परभक्षण, जीवों के बीच विभिन्न प्रकार की पारस्परिक क्रियाओं के उदाहरण हैं। **जैविक समुदाय**, पौधों, प्राणियों, जीवाणुओं तथा कवकों के जनसंख्याओं का एकत्रीकृत समूह है, जोकि एक ही क्षेत्र में रहते हैं तथा आपस में पारस्परिक क्रिया करते हैं। जैविक समुदायों में एक खास प्रजाती बनावट तथा संरचना होती है। **पारिस्थितिक तंत्र**, एक विशेष जैविक समुदाय, तथा उसके भौतिक पर्यावरण से समाकलित होते हुए ऊर्जा के आदान-प्रदान तथा पोषक तत्त्वों के पुन: चक्रण द्वारा परस्पर जुड़ा रहता है (चित्र 16.2)। पारिस्थितिक तंत्र की संरचना तथा कार्यप्रणाली को अध्याय 18 में विस्तार से वर्णित किया गया है।

दृश्यभूमि, भूमि की वह इकाई है जो मौजैकनुमा भू-भाग की प्राकृतिक परिसीमाओं द्वारा घिरी रहती है। साधारणतया ये भू-भाग, अलग-अलग पारिस्थितिक तंत्र को दर्शाते हैं। **जीवोम** एक बड़ी क्षेत्रीय इकाई है, जो एक प्रमुख प्रकार की वनस्पतियों तथा उससे जुड़े प्राणी जातियों द्वारा एक विशेष जलवायु मंडल में पाया जाता है। मरुस्थल, शीतोष्ण पर्णपाती वन, उष्णकटिबंधीय वर्षा प्रचुर वन आदि स्थलीय जीवोम के उदाहरण हैं। भूमंडलीय स्तर पर, पृथ्वी पर स्थित सभी स्थलीय जीवोम तथा जलीय परितंत्र मिलकर जीवमंडल का निर्माण करते हैं। जीवमंडल के अंतर्गत वायुमंडल का निचला भाग, भूमि तथा समुद्र, नदियां एवं झीलें आती हैं, जिसमें सजीव पाए जाते हैं।

16.2 पर्यावरण, आवास तथा निकेत (Environment, Habitat and Niche)

पर्यावरण (Environment)

पर्यावरण सभी जैविक तथा अजैविक अवयवों का सम्मिश्रण है, जो जीवों को चारों ओर से प्रभावित करता है। पर्यावरण के कुछ कारक संसाधन के रूप में कार्य करते हैं, जबकि दूसरे कारक, नियंत्रक का काम करते हैं। पर्यावरण के विभिन्न अवयव एक-दूसरे से जुड़े हुए और परस्पर आश्रित रहते हैं। पर्यावरण को बृहत् तथा लघु स्तर पर समझा जा सकता है। यह क्षेत्रीय तथा भूमंडलीय जलवायु के रूख तथा स्थानीय सूक्ष्म जलवायु द्वारा प्रदर्शित होता है।

स्थानिक तथा पर्यावरण का समय मापक्रम (Spatial and Time Scales of Environment)

अधिकतर जीव अपने पर्यावरण के अनेक स्थानिक तथा समय मापक्रम के अनुरूप पारस्परिक क्रिया करते हैं। उदाहरण के तौर पर, मृदा में स्थित एक जीवाणु, एक घन सेंटीमीटर क्षेत्र से भी कम भाग में वायु तथा जल से पारस्परिक क्रिया करता है। दूसरी तरफ, एक वृक्ष एक बड़े स्थानिक स्तर पर वायु, जल तथा मृदा के साथ पारस्परिक क्रिया करता है। जलवायु में परिवर्तन, मृदा प्रकार तथा स्थलाकृति में अंतर के कारण, विभिन्न स्थानों का पर्यावरण भिन्न होता है। जीवों के क्रियाकलापों द्वारा पदार्थ तथा ऊर्जा के आदान-प्रदान से, जलमंडल, निचला वायुमंडल तथा स्थलमंडल की नजदीकी ऊपरी पटल प्रभावित होती है। जीवों को बाह्य वातावरण के साथ एक समय-सीमा तक, जोकि कुछ मिनटों से दिनों, ऋतुओं या भू-वैज्ञानिक समय मापक्रम के लंबे अंतराल तक जूझना पड़ सकता है। उदाहरण के तौर पर, जलीय परिवेश में प्रकाश की स्थिति में परिवर्तन होने से कुछ ही दिनों में पादप्लवकों की जनसंख्या में परिवर्तन हो सकता है। दूसरी ओर, स्थलमंडल में, यह परिवर्तन धीरे-धीरे एक लंबे अंतराल में होता है।

जलवायु (Climate)

एक नियत जगह तथा नियत समय पर, वायुमंडल में क्षणिक लक्षणों को (जैसे कि तापमान, दाब, आर्द्रता, वर्षा, सौरप्रकाश, बादल तथा वायु) **मौसम** कहते हैं। क्षेत्र विशेष का औसत मौसम, जिसमें वायुमंडल स्थिति की सामान्य अवस्थाएं, ऋतु परिवर्तन तथा मौसमी चरम सीमाओं के लंबे समय की औसतन स्थिति, **जलवायु** कहलाती है। इस प्रकार, मौसम में घंटा, दिन या साप्ताहिक परिवर्तन होता है, जबकि जलवायु एक लंबे अंतराल पर, ऋतुओं या वर्षों के आधार पर तय होती है। तापमान तथा वर्षा वह दो प्रमुख कारक हैं, जिन पर उस क्षेत्र की जलवायु का निर्धारण होता है। विभिन्न क्षेत्रों में विभेदी सौर विकिरण के विविध निवेश तथा वायु एवं समुद्री लहरों द्वारा ताप ऊर्जा के स्थानांतरण से तापमान तथा वर्षा का भूमंडलीय स्तर पर निर्धारण होता है। भूमंडल के विभिन्न क्षेत्रों में तापमान, वर्षा तथा आर्द्रता में बदलाव होने से भूमंडलीय जलवायु स्तर का निर्माण होता है, जोकि पृथ्वी पर स्थित सभी जीवों को संचालित करता है।

जलवायु कटिबंध : अक्षांशों के साथ माध्य तापमान में बदलाव के आधार पर, मुख्य जलवायु क्षेत्र इस प्रकार हैं:-

(i) उष्णकटिबंधीय (0°-20° अक्षांश)

(ii) उपोष्ण (20°-40° अक्षांश)

(iii) शीतोष्ण (40°-60° अक्षांश)

(iv) आर्कटिक तथा अंटार्कटिक (60°-80° अक्षांश)

जैसे-जैसे हम उष्णकटिबंधीय क्षेत्र से आर्कटिक क्षेत्र की ओर बढ़ते हैं, माध्य तापमान घटता है। पर्वतों में ऊंचाई के साथ इसी तरह का एक जलवायु कटिबंध बनता है। उष्णकटिबंधीय क्षेत्र में अवस्थित पर्वत पर ऊंचाई के बढ़ते क्रम में उष्णकटिबंधीय, उपोष्ण कटिबंधीय, शीतोष्ण कटिबंधीय तथा अल्पाइन मंडल होता है। इसी प्रकार, शीतोष्ण कटिबंध में ऊंचाई पर अल्पाइन जलवायुवीय परिस्थितियां होंगी। तापमान आधारित प्रत्येक जलवायु कटिबंध में वार्षिक अवक्षेपण (वर्षा तथा/या बर्फ गिरना) में अंतर होता है। यही दो कारक, तापमान तथा अवक्षेपण, मिलकर वनस्पति तथा मृदा प्रकार का निर्धारण करते हैं।

सूक्ष्म जलवायु (Microclimate)

सूक्ष्म जलवायु जलवायु की वह स्थिति है, जोकि स्थानीय स्तर पर या छोटे से क्षेत्रों में जैसे कि पौधों तथा प्राणियों के समीपीय भाग में पाई जाती है। सूक्ष्म जलवायु साधारणतया उपस्थित क्षेत्रीय जलवायु स्थितियों से भिन्न होती है, जैसे कि घने जंगलों में वृक्षों की पत्तियां, जमीन पर पड़ने वाले प्रकाश की मात्रा कम कर देती है। इसके कारण वायु के तापमान स्तर में भी परिवर्तन हो जाता है। वनों के अंदर, दिन में वायु का तापमान, बाहर के तापमान से नीचे रहता है। साथ ही, वनों के आंतरिक भाग में आर्द्रता की मात्रा, समीपीय वन विहीन क्षेत्रों से अधिक होती है।

आवास तथा निकेत (Habitat and Niche)

वह स्थान जहां जीव निवास करते हैं, **आवास** कहलाता है। आवास, स्पष्ट भौतिक लक्षणों से युक्त होता है जिसमें वनस्पति तथा प्राणी, जीवन के प्रबल रूप में सम्मिलित हो सकते हैं। हम इस प्रकार भी समझ सकते हैं कि आवास उस स्थान को इंगित करता है जो संपूर्ण जैविक समुदाय द्वारा अध्यासित रहता है। उदाहरण के तौर पर, वन आवास में कई तरह की जातियां पाई जाती हैं। आवास विशेष की पर्यावरणीय स्थिति, वहां रहने वाले पौधे तथा प्राणियों को प्रभावित करते हुए कुछ विशिष्ट लक्षण दर्शाती है। उदाहरण के लिए, लवणयुक्त मृदा में उगने वाले पौधों में ऐसे कई विशेष लक्षण होते हैं, जोकि सामान्य लवण विहीन मृदा में उगने वाले पौधों में नहीं पाए जाते हैं।

एक आवास से कई निकेत हो सकते हैं तथा यह कई जातियों को वहन कर सकता है। किसी भी जीव का **पारिस्थितीय निकेत** विभिन्न स्थितियों को दर्शाता है, जैसे सहनशीलता, संसाधनों के उपयोग की क्षमता, तथा पारिस्थितिक तंत्र में इसकी अभिलक्षणिक भूमिका। प्रत्येक जाति का एक विशिष्ट निकेत होता है तथा कोई भी दो जातियां एक ही निकेत में नहीं रह सकती।

16.3 पर्यावरणीय कारक (Environmental Factors)

हम जानते हैं कि भौतिक वातावरण, वायु, प्रकाश, ताप, जल, मृदा तथा हवा जैसे कारकों से बना होता हैं। ये अजैविक कारक, जीवों की सफलता का निर्धारण उनकी बनावट, जीवन चक्र, शरीर क्रिया विज्ञान तथा व्यवहार पर प्रभाव डालकर करते हैं। जीव के विकास तथा प्रजनन पर जैविक कारकों का भी प्रभाव पड़ता है।

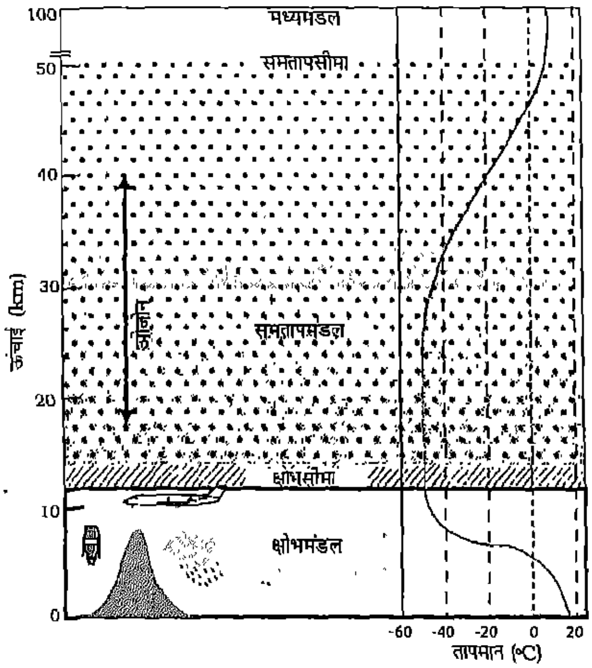
भौतिक तथा जैविक प्रक्रिया में विभिन्न कारकों की भूमिका का संक्षिप्त वर्णन नीचे दिया गया है।

वायुमंडल (Atmosphere)

वायुमंडलीय परत : वायुमंडल को विभिन्न ऊंचाइयों पर तापमान तथा दबाव में बदलाव के कारण संकेंद्रीय कवच या स्तरीय गोलाइयों में विभाजित किया जाता है। ये संकेंद्रीय कवच हैं : क्षोभमंडल, समतापमंडल, मध्यमंडल, तथा तापमंडल (चित्र 16.3)।

क्षोभमंडल : वायुमंडल का निचला भाग, जोकि धरातल की सतह से लगभग 8-16 कि.मी. की ऊंचाई तक फैला रहता है, क्षोभमंडल कहलाता है। इसमे वायुमंडल की 90 प्रतिशत से ज्यादा गैस रहती है। साधारणतया **क्षोभसीमा** (क्षोभमंडल का ऊपरी स्तर) तक ऊंचाई बढ़ने से तापमान घटता जाता है। भूमि सतह के समीप का तापमान औसतन 15° से. रहता है तथा क्षोभसीमा पर यह तापमान घटकर -57° से. तक हो जाता है। जो कि समतापमंडल का प्रारंभ इंगित करता है।

समतापमंडल : यह 30-50 किमी. तक फैला रहता है। क्षोभमंडल तथा समतापमंडल के बीच गैसों का मिश्रण कम होता है। 15 से 30 कि.मी. की ऊंचाई पर समतापमंडल में ओजोन की एक पतली परत रहती है। समतापमंडल तथा मध्यमंडल के बीच की परत **समतापसीमा** कहलाती है।



चित्र 16.3 वायुमंडल की उर्ध्वाधर स्तरें, पृथ्वी सतह से लगभग 120 कि.मी. ऊंचाई तक। विभिन्न स्तरों में तापमान अंतर पर गौर करें

मध्यमंडल : समतापमंडल के बाहर, यह 80 कि.मी. की ऊंचाई तक फैला रहता है तथा ऊंचाई के साथ इसके तापमान में गिरावट आती है।

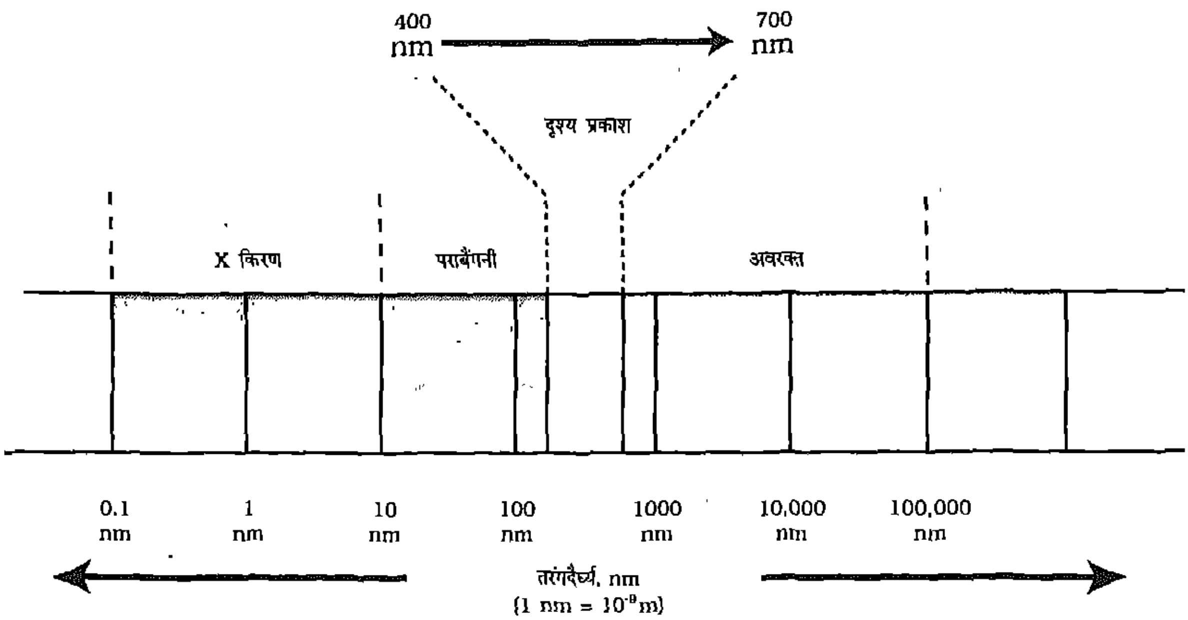
वायु-रचना : क्षोभमंडल में, नाइट्रोजन तथा ऑक्सीजन गैस सबसे प्रचुर मात्रा मे पाई जाती है, जोकि कुल गैसीय आयतन का क्रमशः 78 प्रतिशत तथा 20.9 प्रतिशत होती है। बचे हुए 1 प्रतिशत में आर्गन, जलवाष्प, कार्बन डाइऑक्साइड, ओजोन तथा अन्य गैसें होती हैं। वायुमंडल में जलवाष्प, कार्बन डाइऑक्साइड, तथा ओजोन बहुत ही सूक्ष्म मात्रा में पाई जाती है परंतु पृथ्वी पर जीवन संचालन के लिए ये बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। जलवाष्प, जलीय चक्र को नियंत्रित करता है, जिससे स्थलीय तथा जलीय पारिस्थितिक तंत्र में जीवन निर्वाह होता है, साथ ही साथ यह धरातल से अवरक्त विकिरण को अवशोषित करता है। कार्बन डाइऑक्साइड, जलवाष्प तथा ओजोन पृथ्वी पर ताप संतुलित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वायुमंडल की रचना, जीवित जीवों के क्रिया-कलापों का परिणाम है।

जलीय गैसें : जलीय तंत्र में, ऑक्सीजन, कार्बन डाइऑक्साइड तथा अन्य गैसें, जल में आंशिक रूप से घुली रहती हैं। साधारणतया गहरी झीलों व भारी मात्रा में कार्बनिक पदार्थ वाले जलाशयों में पादप्लवकों तथा अन्य जलीय जीवों की वृद्धि के लिए ऑक्सीजन सीमाकारी कारक का काम करती है। जल के अंदर ऑक्सीजन की पूर्ति का नियंत्रण, वायु से तथा जलीय पौधों के प्रकाश संश्लेषण की क्रिया से उत्पन्न गैसों के विसर्जन द्वारा होता है। कार्बन डाइऑक्साइड जल में अत्यधिक घुलनशील होती है, तथा यह भिन्न मात्राओं में उपस्थित रहती है। यह जल के साथ मिलकर, कार्बोनिक अम्ल बनाती है (H_2CO_3), जोकि उपलब्ध चूना पत्थर के साथ क्रिया कर कार्बोनेट (CO_3^{2-}) तथा बाइकार्बोनेट (HCO_3^-) बनाती है।

प्रकाश (Light)

विद्युत चुंबकीय स्पैक्ट्रम : आप जानते हैं कि पृथ्वी पर अवस्थित प्रायः सभी जीवों के लिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सूर्य ही ऊर्जा का अंतिम स्रोत है। सौर विकिरण, वायुमंडल में प्रवेश करने से पहले (पृथ्वी तल से 83 कि.मी. ऊपर), 2 कैलोरी प्रति वर्ग सें.मी. प्रति मिनट की दर से ऊर्जा निहित रखता है, जिसे हम **सौर ऊष्मांक** कहते हैं। सौर स्पैक्ट्रम, प्रकाश एवं लंबी सूक्ष्म तरंग विकिरण से परिपूर्ण रहता है। सूक्ष्म तरंग विकिरण में कॉस्मिक किरणें, एक्स किरणें, तथा पराबैंगनी किरणें पाई जाती हैं, जिनका तरंगदैर्ध्य 400 nm से कम होता है। प्रकाशीय स्पैक्ट्रम के दृश्य स्पैक्ट्रम, जिसका तरंगदैर्घ्य 400 nm से 700 nm होता है, वह **प्रकाश संश्लेषी सक्रिय विकिरण** (PAR) कहलाता है। अवरक्त तरंगदैर्घ्य 740 nm से ज्यादा होता है (चित्र 16.4)। समतापमंडल में स्थित ओजोन परत द्वारा पराबैंगनी तरंगदैर्ध्य विकिरण (तरंगदैर्घ्य लंबाई 100 nm से 400 nm) का तेजी से अवशोषण हो जाता है, जिसके कारण पराबैंगनी विकिरण का सिर्फ अल्प भाग ही पृथ्वी तल तक पहुंचता है। तरंगदैर्घ्य के आधार पर, पराबैंगनी विकिरण तीन प्रकार के होते : UV- C (100 से 280 nm), **UV-B** (280 से 320 nm) तथा **UV-A** (320 से 400 nm)। इन तीनों में, UV-C विकिरण घातक होता है तथा UV-B भी जीवों के लिए अत्यधिक नुकसानदेह होता है (चित्र 16.4)।

पौधों पर प्रकाश का प्रभाव : जीवों के लिए प्रकाश का प्रकार (तरंगदैर्ध्य), तीव्रता (जूल में मापी गई ऊर्जा) और अवधि (दिन की अवधि) महत्त्वपूर्ण होते हैं। अक्षांश तथा दिन



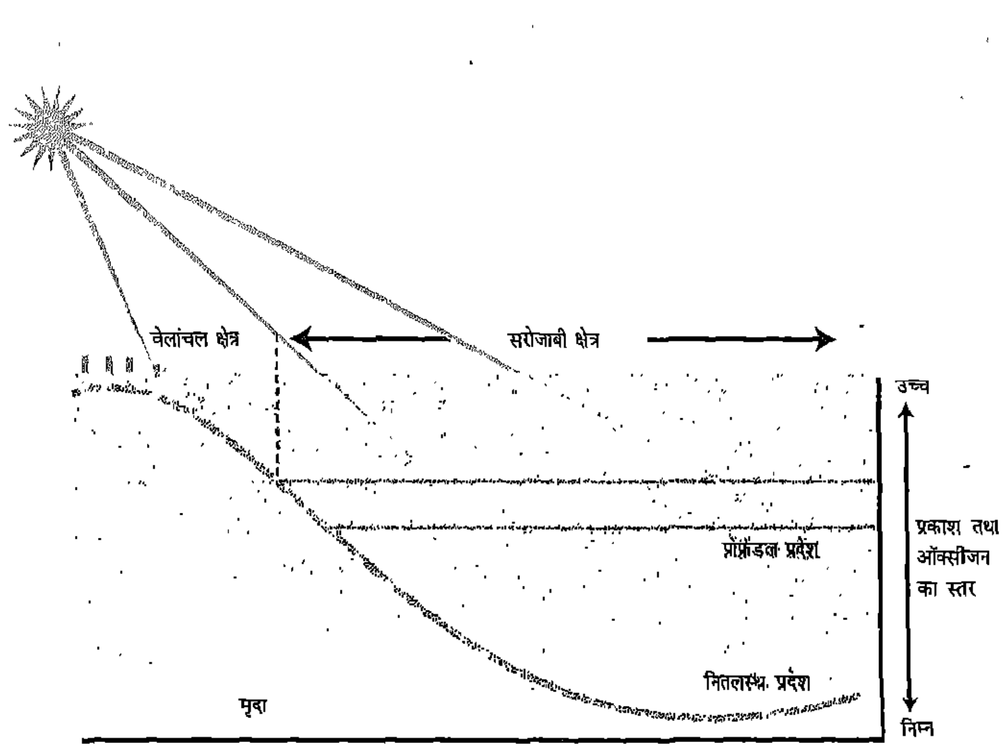
चित्र 16.4 सौर विकिरण का विद्युत चुंबकीय स्पैक्ट्रम

के समय के अनुसार प्रकाश की तीव्रता परिवर्तित होती रहती है। आपने पहले पढ़ा है कि, प्रकाश द्वारा पौधों में प्रकाश संश्लेषण, वृद्धि तथा प्रजनन प्रभावित होते हैं। प्रकाश के प्रकार, पुष्पन, बीज अंकुरण और पादप गति आदि क्रियाओं में प्रमुख भूमिका निभाते हैं। पादप घटना विज्ञान क्रियाओं, जैसे पुष्पन और फलन को प्रकाश की अवधि नियंत्रित करती है। बदलते पर्यावरण की स्थिति में घटना विज्ञान, पौधों में ऋतुनिष्ठ क्रियाओं का समय (phenology) दर्शाता है। बहुत से प्राणियों में प्रवासियता, शीतनिष्क्रियता तथा प्रजनन व्यवहार दिन और रात की तुलनात्मक अवधि से नियंत्रित होते हैं।

जलीय तंत्र पर प्रभाव : जलीय तंत्र में जैविक क्रियाएं अधिकतर प्रकाश की उपलब्धता द्वारा नियंत्रित होती हैं। गहरे पानी जैसे समुद्र और झील जल तंत्र में पौधे के लिए प्रकाश सदैव एक सीमित कारक होता है। जलीय तंत्र में प्रकाश की उपस्थिति, उत्पादक तथा उपभोक्ता की उपस्थिति निर्धारित करती है। उदाहरण के लिए पादप्लवक (पाद=पौधा, प्लवक=छोटा) जल की प्रकाशित सतह पर रहते हैं, जबकि नितलस्थ (benthic) जीव झील के तलछट में या तलछट पर रहते हैं। प्रकाश की भेदता के अनुसार झील को तीन भागों में बांटा गया है : (i) **वेलांचल क्षेत्र** झील के किनारे पर छिछला पानी क्षेत्र सतह होता है, जहां पर अधिकतर जड़युक्त वनस्पति पनपती है। इसमें प्रकाश छिछले पानी को भेदते हुए जाता है (चित्र 16.5); (ii) वेलांचल क्षेत्र के आगे का खुला जल क्षेत्र **सरोजाबी क्षेत्र** कहलाता है, जहां पादप्लवक प्रचुरता से वृद्धि करते हैं। जल की स्वच्छता के आधार पर सरोजाबी क्षेत्र में, प्रकाश 20 से 40 मीटर तक की गहराई में पहुंच सकता है (iii) अंधकार क्षेत्र जहां प्रकाश की पहुंच नहीं होती है उसे **गंभीर क्षेत्र** कहते हैं। झीलों व तालाबों की तलीय मिट्टी **नितलस्थ क्षेत्र** बनाती है, जो कि नितलस्थ जीवों जैसे घोंघा, स्लगों और सूक्ष्मजीवीओं का आवास स्थल होता है (चित्र 16.5)।

तापमान (Temperature)

तापमान किसी पदार्थ के गर्म या ठंडा होने का परिमाण होता है। तापमान में अंतर को प्रभावित करने वाले कारक



चित्र 16.5 झील में जल सतह से निचले भाग तक के क्षेत्रों का निर्धारण, प्रकाश, ऑक्सीजन तथा तापमान की प्रवणता द्वारा होता है

हैं: अक्षांश, ऊंचाई, स्थलाकृति, वनस्पति तथा ढलान। पृथ्वी की सतह पर उर्ध्वाधर तापमान प्रवणता, **ह्रास दर** कहलाती है, जोकि प्रति हजार मीटर पर 6.5° से. है। जलवायु स्थिति, पौधों की वृद्धि, अनुक्रिया तथा जीवों के क्रियाकलापों पर तापमान का महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। तापमान, पौधों के लिए उद्दीपन का कार्य कर सकता है तथा उनकी वृद्धि का समय निर्धारित करता है। उदाहरण के लिए, तापकालिता (दिन-रात के तापक्रम का अंतर) कुछ पौधों में अनुकूल वृद्धि के लिए आवश्यक है। ठंडा वातावरण बीजों के अंकुरण को बढ़ाता है और साथ ही कुछ पौधों में पुष्पन प्रेरित करता है।

ताप नियमन तथा समस्थापन

जीवों के अंदर की क्रिया तथा इसके क्रियाकलापों की दर को तापमान नियंत्रित करता है। **असमतापी** (शीतरक्त प्राणी) में शरीर का तापमान उस वातावरण के समान होता है, जिसमें वे रहते हैं। कई सक्रिय असमतापियों जैसे कि मेंढक तथा सांप अपने शरीर का तापमान वातावरण के अनुसार नियंत्रित करते हैं। कुछ असमतापी रात्रिचर प्राणी होते हैं तथा वे रात को भोजन करते हैं।

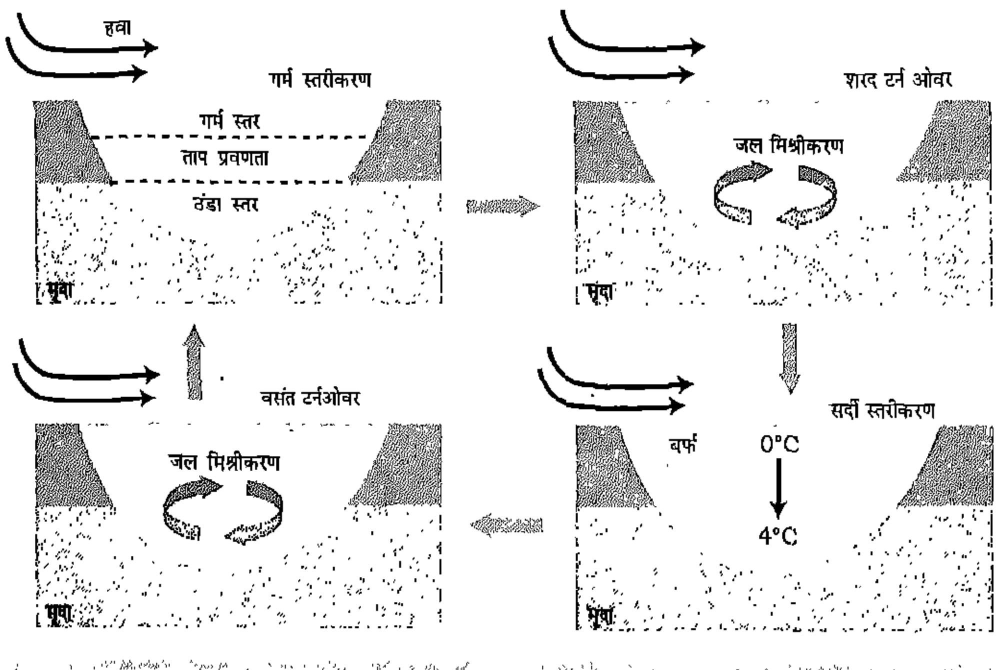
समतापी (गर्म रक्त प्राणी) ऐसे प्राणी हैं जो अपने शरीर का तापमान शारीरिक क्रियाओं द्वारा एक-जैसा बनाए रखते हैं। बाहर का तापमान बदलते रहने पर भी (पक्षियों तथा स्तनधारियों में) उनके अंदर शारीरिक क्रियाओं द्वारा तापमान को निश्चित करने या सहन सीमा के भीतर रखने की क्षमता होती है। आपको याद होगा कि बाहरी वातावरण में परिवर्तन होते हुए भी आंतरिक वातावरण को स्थिर बनाए रखने की प्रक्रिया, **समस्थापन** (homeostasis) कहलाती है। समतापी प्राणियों में शरीर तापमान स्थिर बनाए रखने से इन्हें दूसरे जीवों की तुलना में एक उपापचयी लाभ की स्थिति प्रदान कराता है। हम जानते हैं कि समतापी जीवों में जीव रसायनी क्रियाएं तथा एंजाइम 37° से. तापमान पर सबसे अधिक क्रियाशील होते हैं। इसलिए, ये प्राणी ऊष्मा ह्रास को कम करने के लिए अपने आप में कई तरह के अनुकूलन लाते हैं, जिससे ये शीत स्थितियों में भी अपने आपको सक्रिय रख पाते हैं।

झीलों में तापीय स्तरण : गहरे जलाशयों में विभिन्न गहराइयों पर जल के तापमान में अंतर होने के फलस्वरूप ऊष्मीय स्तरण होता है। गर्मियों में सतही जल का तापमान ज्यादा रहता हैं, जोकि **ताप प्रवण स्तर** (शनैः शनैः तापमान में परिवर्तन होने वाले क्षेत्र) द्वारा गहराई में स्थित जल से अलग रहता है। ताप प्रवण स्तर अधिकतर एक ही जलाशय में दो अलग स्तरों का निर्माण करता है जैसे कि **अधिसर** (जल का ऊपरी स्तर) तथा **अधसर** (जल का निचला स्तर) (चित्र 16.6)। शीतोष्ण झीलों में सर्दी के मौसम में सतहों का जल हिमकारी ताप पर रहता है जबकि, निचले स्तरों का तापमान करीब 4° से. रहता है। सतही जल, शरद ऋतु में ठंडा रहता है और बसंत ऋतु में गर्म रहता है। इसके फलस्वरूप, संपूर्ण जलाशयों में जल का स्वतंत्र रूप से मिश्रण होता है, जोकि शरद् तथा बसंत ऋतुओं की ताप उत्पादकता कहलाती है (चित्र 16.6)। जल के इस तरह से तापमान में अंतर के कारण ऑक्सीजन तथा पोषक तत्त्वों का पुन: वितरण होता है जिससे पादप्लवकों की पुष्पपुंज में तीव्र वृद्धि होती है। स्तरित स्थिति में, सर्दियों तथा ग्रीष्म ऋतुओं में, पोषक तत्त्वों तथा ऑक्सीजन की कम उपलब्धता के कारण पादप्लवकों की कम वृद्धि होती है।

जल (Water)

जल पृथ्वी पर प्राकृतिक रूप से पाया जाने वाला एक-मात्र अकार्बनिक तरल पदार्थ है, जोकि संसाधन, परिस्थिति या आवास के रूप में कार्य आ सकता है। पृथ्वी पर, जल की कुल मात्रा समान रहती है, जबकि यह एक जगह से दूसरी जगह जाता है तथा जीवों की विभिन्न प्रक्रियाओं को नियंत्रित करता है। जल, वर्षा वितरण तथा तापमान परिवर्तन द्वारा जलवायु को नियंत्रित करता है। वनस्पति प्रकार तथा उसके संघटन पर इसका महत्त्वपूर्ण प्रभाव होता है।

जलीय चक्र : वायु तथा जमीन के बीच जल के संचलन को जलीय चक्र कहते हैं। जलवाष्प, वायुमंडल का एक महत्त्वपूर्ण अवयव है जोकि संघनित होकर बादलों का निर्माण करके वृष्टि करता है। वाष्पोत्सर्जन प्रक्रिया के द्वारा पौधे जलीय चक्र में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। उष्णकटिबंधीय वनों में वार्षिक वर्षा का 75 प्रतिशत भाग पौधों द्वारा वायुमंडल में वापस हो जाता है, जो कि वायुमंडलीय जलवाष्प का पुन:भरण कर देता है। जब वायुमंडल में प्रचुर मात्रा में नमी रहती है, तब यह संघटित होकर कोहरा, बादल, वर्षा या बर्फ का निर्माण करता है। मरुस्थलों में बहुत कम वर्षा होती है



चित्र 16.6 झील में ऊष्मीय स्तरीकरण होता है। शीतोष्ण झील का मौसमी मिश्रण प्रतिरूप का निर्धारण इसके तापमान परिच्छेदिका द्वारा होता है

(<100 मि.मी. प्रतिवर्ष), दूसरी तरफ, कुछ क्षेत्रों में अधिक वर्षा होती है (जैसे कि चेरापूंजी में प्रतिवर्ष >11,000 मि.मी. वर्षा होती है)।

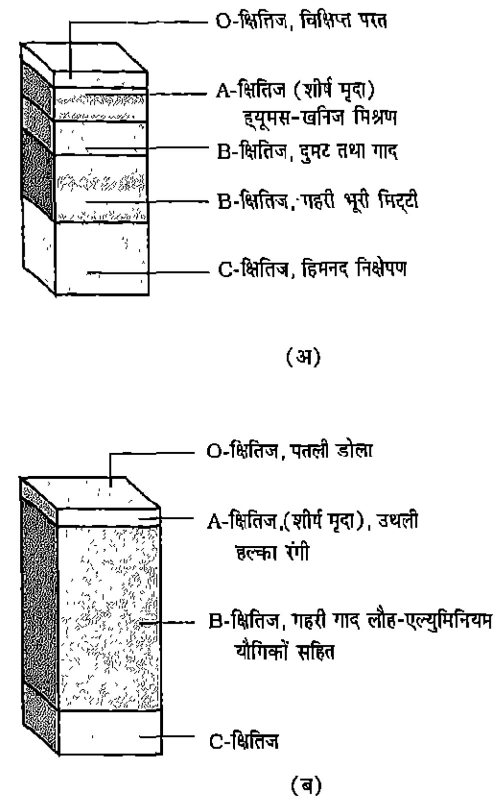
पादप-जल संबंध : स्थलीय पौधों के लिए जल का मुख्य स्रोत हैं वर्षा तथा बर्फ का पिघलना। जल विभव वह बल है जिससे कि मृदा, जल के साथ बंधित रहता है तथा जिसे दबाव के रूप में प्रमाणीकृत किया जाता है। समुद्रतल पर वायुमंडल द्वारा प्रेषित दबाव एक बार होता है, जो कि लगभग 0.1 मेगापास्कल्स (Mpa) के बराबर होता है। मृदा में जल उपलब्धता की ऊपरी सीमा को **मृद्जल धारिता** कहते हैं। मृद्जल धारिता पर मृदा का जल विभव लगभग −0.01 Mpa होता है। मृदा में, जल की उपलब्धता की निचली सीमा, **म्लानि बिंदु** कहलाती है, जिसका जल विभव -1.5 Mpa होता है। जैसे-जैसे जल विभव का मान ऋणात्मक होता है, पौधों की जल उपलब्धता घटती जाती है। पौधों की जड़ों में परासरणी विभव के कारण मृदा से जल का पौधों की जड़ों में प्रवेश होता है। पौधों ने, आवासीयवरण, घटनाविज्ञानी समायोजन या जल उपयोग की उच्च दक्षता द्वारा उत्पन्न जल उपलब्धता में परिवर्तन के अनुसार अपने आप को अनुकूलित किया है।

मृदा (Soil)

मृदा, अपक्षई भू-पर्पटी की सबसे ऊपरी परत है, जोकि खनिज तथा आंशिक रूप से अपघटित कार्बनिक पदार्थों से बनी होती है। मृदा का निर्माण तब होता है जब शैलों का अपने स्थान पर अपक्षयन होता है, या स्थानांतरित तलछटों का जल या वायु द्वारा अपरदन होता है। मृदा का निर्माण मूल शैल, जलवायु, सजीवों, समय तथा स्थलाकृति के बीच पारस्परिक क्रियाओं द्वारा होता है। जल, पोषक तत्त्व तथा स्थिर स्थान उपलब्ध कराकर पौधों की वृद्धि के लिए मृदा एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। मृदा द्वारा पौधों, फसलों, घासस्थल तथा वनों की वृद्धि होती है, जिस पर हम भोजन, वस्त्र (रेशे), लकड़ी तथा निर्माण सामग्री के लिए आश्रित रहते हैं। मृदा का खनिज अवयव, उसके मूल पदार्थों के खनिज तथा अपक्षयता के ऊपर निर्भर करता है।

मृदा परिच्छेदिका : मृदा की ऊर्ध्वाधर स्तरीय संरचना को, मृदा परिच्छेदिका कहते हैं। मृदा परिच्छेदिका का निर्माण, अपक्षयता प्रक्रिया, कार्बनिक पदार्थों के जमाव तथा खनिज पदार्थों के रिसने से होता है। चित्र 16.7 में, शीतोष्ण पर्णपाती वनों तथा उष्णकटिबंधीय वर्षा वनों की मृदा परिच्छेदिका को तुलनात्मक दर्शाया गया है। मृदा परिच्छेदिका में चार प्रमुख संस्तर होते हैं: O-संस्तर वह कार्बनिक परत है जोकि पहचानने योग्य मृत कार्बनिक अवशेषों से बना होता है; A-संस्तर को शीर्ष मृदा कहते हैं, यह खनिज परत का सबसे उपरी स्तर है, जिसमें कि जड़ें तथा आंशिक रूप से अपघटित कार्बनिक पदार्थ होते हैं; B-संस्तर अवमृदा है; तथा C-संस्तर मूल पदार्थ का कम अपक्षयित भाग है। मृदा परिच्छेदिका विकास मुख्यतया जलवायु तथा वनस्पति प्रकार के द्वारा नियंत्रित होता है।

घासस्थल, वन तथा मरुस्थल, जीवोम की मृदा, रंग, मृत्तिका, कार्बनिक पदार्थों की मात्रा तथा गहराई के अंतर द्वारा एक-दूसरे से भिन्न होती है। मरुस्थलीय मृदा की शीर्ष मृदा में नमी की मात्रा बहुत ही कम या नहीं के बराबर होती है। अवमृदा बालू, मृत्तिका, खनिज तथा लवणों का मिश्रण होता है। घासस्थलों में, पौधों की जड़ें जमीन की गहराई में जाकर कोस मृदा का गुच्छा बनाती हैं, जोकि नमी को बनाए रखते हुए



चित्र 16.7 मृदा परिच्छेदिका की तुलना (अ) शीतोष्ण पर्णपाती वन, तथा (ब) उष्णकटिबंधीय वर्षा वन

अपरदन को रोकती हैं तथा मृदा में प्रत्येक वर्ष अधिक मात्रा में कार्बनिक पदार्थ मिलाती हैं। शीतोष्ण वनों की मृदा की ऊपरी परत में ह्यूमस तथा अकार्बनिक मृदा अवयवों की प्रचुर मात्रा रहती है (चित्र 16.7 अ)। उष्णकटिबंधीय वर्षा प्रचुर वन में घनी मृत्तिका अवमृदा, प्रचुर वर्षा तथा उच्च तापमान के कारण, पोषकतत्त्व विहीन तथा छिछले मृदा का निर्माण होता है (चित्र 16.7 ब)।

मृदा के गुण : मृदा चार अवयवों - अकार्बनिक (खनिज कण) एवं कार्बनिक पदार्थ, वायु, जल तथा विभिन्न प्रकार के जीवों - से मिलकर बनी होती है। शैलों के अपरदन से लघु खनिज कणों का निर्माण होता है। मृत तथा जीवित पौधों तथा प्राणियों से, कार्बनिक पदार्थों की उत्पत्ति होती है। एक सामान्य मृदा में, कुल आयतन का लगभग 45 प्रतिशत भाग खनिज कणों का तथा लगभग 5 प्रतिशत भाग कार्बनिक पदार्थों का होता है। शेष 50 प्रतिशत भाग मृदा, वायु तथा जल से भरा रहता है। सामान्यतः वायु तथा जल की मात्रा में परिवर्तन होता रहता है तथा यह इस बात पर निर्भर करता है कि विशेष समय में मृदा में कितनी नमी है।

मृदा में अवस्थित विभिन्न आकार के खनिज कणों की मात्रा के द्वारा इसके गठन (texture) का निर्धारण होता है। मृदा में खनिज कणों के आकार में भिन्नता होती है। जिनका आकार 0.2 से 2 मि.मी. के बीच होता है, वह **अपरिष्कृत बालू** कहलाती है, 0.02 से 0.2 मि.मी. आकार वाले कण **परिष्कृत बालू** होते हैं, 0.002 से 0.02 मि.मी. के आकार वाले कण **गाद** होते हैं तथा 0.002 मि.मी. से छोटे कण **मृत्तिका** कहलाते हैं। परिष्कृत गठित मृदा में मृत्तिका एवं गाद कणों की प्रचुरता होती है तथा अपरिष्कृत गठन वाली मृदाओं में बालू कणों की प्रचुरता रहती है।

मृदा कार्बनिक पदार्थ : मृदा में संचित कार्बनिक पदार्थ में दो भाग होते हैं : (i) हाल ही में मृत (freshly dead) पौधों तथा प्राणियों तथा आंशिक रूप से अपघटित कार्बनिक पदार्थ, जिसे **अपरद या करकट** कहते हैं; तथा (ii) कोलाइडी, रवाहीन तथा गहरे रंग युक्त पदार्थ, जो कि **ह्यूमस** कहलाता है। मृदा में मृत कार्बनिक पदार्थों के अतिरिक्त, अधिक संख्या में जीवाणु उपस्थित होते हैं, जैसे कि अपरद भक्षी (दीमक, केंचुआ), बैक्टीरिया तथा कवक। पौधे तथा प्राणी अवशेषों के अपघटन के लिए मृदा अवस्थित जीव महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

आग (Fire)

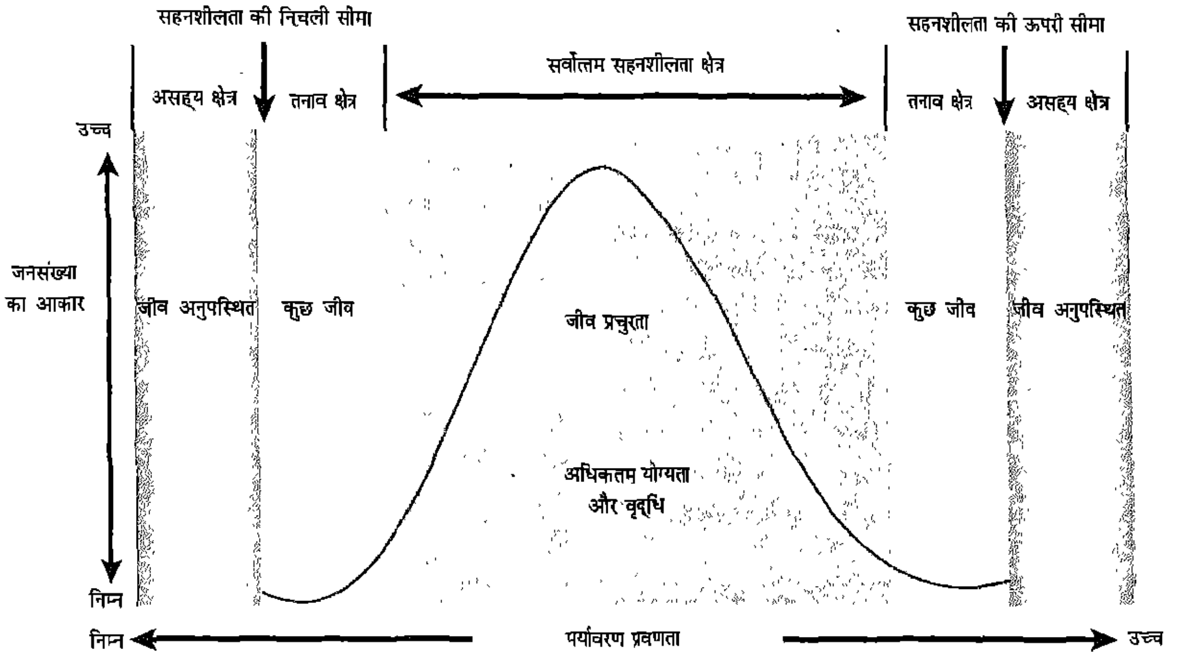
आदिकाल से मानव ने अपने लाभ के लिए आग द्वारा पारिस्थितिकी में हेरफेर किया है। अनेक स्थानों पर वहां के मूल निवासियों द्वारा आग का उपयोग शिकार को बढ़ावा देने के लिए, दृश्यता उत्कृष्ट करने के लिए तथा चारा प्रदान करने के लिए किया है। पादप आवरण को नष्ट करने के लिए, मृदा सतह पर अवस्थित करकटों को जलाने के लिए, तथा वाष्पीकरण द्वारा पोषक तत्त्वों के क्षय के लिए, आग का भौतिक वातावरण पर विशेष प्रभाव पड़ता है। कभी-कभी अवसरवादी आग द्वारा विभिन्न प्राणी समूहों की मृत्यु हो जाती है। शीतोष्ण वनों, घासस्थलीय क्षेत्रों में तथा उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों के शुष्क मौसमों में आग एक महत्त्वपूर्ण कारक है।

जैविक कारक (Biotic Factor)

जीवित जातियां भोजन के उत्पादक (हरे पौधे) या भक्षक (शाकभक्षी, परभक्षी, परपोषी या सर्वभक्षी) हो सकते हैं। जातियों का जनसंख्या वृद्धि एवं अन्य जातियों पर अच्छा अथवा बुरा या उदासीन प्रभाव हो सकता है।

सहनशीलता की सीमा (Range of Tolerance)

जैविक जातियों में, वातावरणीय कारकों को सहन करने की सीमाएं होती हैं। ये कारक अपने प्रभाव में भिन्न-भिन्न होते हैं तथा जो कोई भी कारक सबसे कम मात्रा में रहता है, वह सीमाकारी कारक हो सकता है। उदाहरण के लिए, अधिक उंचाइयों पर तापमान के कम होने से पौधों की वृद्धि अवरुद्ध हो जाती है, मरुस्थलों में जल की कम उपलब्धता के कारण, वृद्धि अवरुद्ध होती है तथा गहरी झीलों में फॉस्फोरस की कमी के कारण पादप्लवकों की वृद्धि अवरुद्ध हो जाती है। यह आवश्यक नहीं है कि किसी कारक की अल्पमात्रा से ही वृद्धि अवरुद्ध होती है, बल्कि यह भी हो सकता है कि किसी भी कारक की बाहुल्यता से जीवों की वृद्धि तथा वितरण प्रभावित हो सकता है। पर्यावरणीय कारकों (तापमान, सौरप्रकाश या पोषक सांद्रता) के साथ किसी जीव की प्रतिवेदन करने की प्रवणता को घंटीनुमा वक्र (चित्र 16.8) के रूप में उद्धृत किया जाता है। कारकों की इष्टतम सीमा में जीव अधिकतम योग्यता, वृद्धि तथा उत्तरजीविता दर्शाते हैं। प्रतिबल क्षेत्र में, केवल कुछ जीव ही जीवित रह पाते हैं, लेकिन वे प्रजनन नहीं कर पाते हैं। असह्य परिवेश में जीवाणुओं की उपस्थिति नहीं होती है। इस तरह, 'न्यूनतम' तथा 'अत्यधिक' के बीच की सीमा ही ऐसी 'सह्यता सीमा' है, जोकि जीवों की उपस्थिति तथा बहुल्यता दर्शाती है। जीवों का वितरण अधिक सीमा तक हो सकता है, यदि वे विस्तृत सहनशीलता रखते हो, परंतु उनका वितरण सीमित हो सकता है, यदि उनकी सहनशीलता की सीमा संकीर्ण हो।



चित्र 16.8 जीव के पर्यावरणीय कारक (तापमान, प्रकाश, पोषक तत्त्व, इत्यादि) के क्रमों या प्रवणता के प्रति प्रतिवेदन

परिस्थिति अनुकूलन (Acclimatisation)

कुछ प्राणियों में वितरण की सहनशीलता सीमा तथा इष्टतम परिसीमा ऋतुओं के अनुसार बदलती है। यदि कुछ पर्यावरणीय कारक उसकी सहनशीलता सीमा को पार कर जाते हैं, तो वह जीव विराम की अवस्था में आ जाता है, या वह प्रवास पर चला जाता है, या वह अपने आपको दशानुकूलन की स्थिति में ले आता है। शनैः शनैः परिवर्तनशील नए वातावरण में धीरे-धीरे शरीर क्रियात्मक अनुकूलन को दशानुकूलन कहते हैं।

16.4 पारिस्थितिक अनुकूलता (Ecological Adaptations)

पौधे तथा प्राणियों का वह विशेष गुण जिसके द्वारा वे मौजूद पर्यावरणीय स्थिति में अपनी सक्रियता बनाए रखते हैं, **अनुकूलता** कहलाती है। प्राकृतिक परिवेश में जीवों द्वारा विभिन्न प्रकार की अनुकूलता दर्शाई जाती है, जैसे कि आकृतिक, शरीर क्रियात्मक तथा व्यवहार संबंधी। यह विशेष गुण एक लंबे समय के अंतराल के बाद प्राकृतिकवरण प्रक्रिया द्वारा विकसित हुआ है। जीव अपनी उत्तरजीविता के लिए भोजन तथा आवास प्राप्त करना अंतिम लक्ष्य मानते हैं। बहुत से जीवों में अनुकूली विशेषता उन्हें विभिन्न पर्यावरणीय तथा आवासीय क्षेत्रों में रहने तथा संघर्ष करने की क्रियाविधि प्रदान करती है।

समलक्षणी सुघट्यता तथा पारिस्थितिक प्रारूप (Phenotypic Plasticity and Ecotypes)

किसी जीव की उसके पारिस्थितिकी तथा जीनी संरचना के बीच की पारस्परिक क्रियाओं की भौतिक अभिव्यक्तता को **समलक्षणी प्रारूप** (phenotype) कहते हैं। स्थानीय आवासीय क्षेत्र में पर्यावरणीय कारकों में भिन्नता के कारण समलक्षणी प्रारूप में भिन्नता होती है। आवास की स्थानीय स्थिति के द्वारा एकाकी जीवों की उत्पन्न हुई भिन्नता, **समलक्षणी सुघट्यता** कहलाती है। सामान्यतया ऐसी जातियां जिनका वितरण काफी फैला हुआ होता है, उसके द्वारा आनुवंशीकृत अनुकूलित स्थानीय जनसंख्या विकसित होती है। उस नई जनसंख्या को पारिस्थितिक प्रारूप (ecotype) कहते हैं। आकृतिक तथा शरीर क्रिया लक्षणों के आधार पर पारिस्थितिक

प्रारूप आपस में एक-दूसरे से भिन्न होते हैं। जबकि किसी जाति का पारिस्थितिक प्रारूप एक-दूसरे से आनुवंशिकृतः भिन्न होते हुए भी परस्पर जननक्षम होते हैं। पारिस्थितिक प्रारूप सहज रूप से पौधों तथा स्थानबद्ध प्राणियों में पाए जाते हैं।

पौधों में अनुकूलन की युक्तियां (Strategies of Adaptations in Plants)

पौधों में विशेष गुण होते हैं, जिसके द्वारा वे अपनी सहनशीलता की सीमा को बढ़ाकर प्रकाश की अवधि, सूखे की स्थिति, उच्च तापमान, जल-संतृप्त स्थिति तथा लवणीय वातावरण जैसी परिस्थिति में अपने आपको अनुकूलित कर लेते हैं। पौधों में, पुष्प अपने में एक विशेष संरचना विकसित किए हुए होते हैं, जिससे कि उसमें परागण की क्रिया कीटों या अन्य प्राणियों द्वारा संभव हो पाती है। पौधे अपने अंदर कई तरह की अनुकूलता विकसित कर पर्यावरण की प्रतिबल स्थितियों से जूझने की क्षमता बनाते हैं।

प्रकाश प्रवृत्ति के साथ अनुकूलन : प्रत्येक पौधा एवं पौधा समुदाय, विभिन्न प्रकाश तीव्रताओं के प्रति अपने आप को छाया सहनशील (**छायारागी**) या प्रकाश अनुकूलित (**आतपोद्भिद**) करता है। आतपोद्भिद, उच्च तापमान में भी प्रकाश संश्लेषण की क्रिया करने की क्षमता रखते हैं साथ ही उनके श्वसन क्रिया की दर भी उच्च होती है। छाया अनुकूलित पौधों में, सामान्यतया प्रकाश संश्लेषण, श्वसन तथा उपापचयी क्रियाओं की दर कम होती है। फर्न तथा अन्य कई शाकीय पौधे, जोकि घने वितानी वृक्षों के नीचे धरातल पर पाए जाते हैं, वे ''छाया सहनशील पौधे'' होते हैं।

जलाभाव तथा ताप के प्रति अनुकूलन : गर्म मरुभूमि के पौधे शुष्क मृदा तथा उच्च तापमान में जीवित रहने के लिए अनुकूलित होते हैं। ऐसे पौधे जो शुष्क स्थिति को टालते हैं, उसे **इफिमीरल** कहते हैं। उदाहरण के लिए राजस्थान के मरुभूमि क्षेत्रों में बहुत से वार्षिक पौधे बीज से अंकुरित होकर अपना जीवन चक्र वर्षा ऋतु में जल्दी जल्दी पूरा करते हैं, तथा शुष्क मौसम में बीज के रूप में जीवित रहते हैं। कुछ पौधों की गहरी अपसारण जड़ें होतीं हैं, जो शुष्क मौसम में जल पटल तक पहुंच जाती है जिससे गहरी भूमि से जल अवशोषित करना संभव होता है। कुछ प्रमुख पौधे जिनकी गहरी जड़ प्रणाली होती है, वे हैं, *प्रोसोपिस* (मिसक्वाइट), खजूर तथा *एकेसिया*। शुष्क जलवायु की झाड़ियों तथा वृक्ष, जैसे *एकेसिया नीलोटिका* तथा *कैपरिस डिसीडुआ* के पर्णपाती पत्ते होते हैं। रंध्र गर्त में डुबे हुए होते हैं जैसे ओलियेंडर (कनेर), मरुभूमि के पौधों के पत्ते छोटे होते हैं। रंध्र डूबे हुए चर्मिल सतह वाले पत्ते तथा क्यूटिकल मोमदार होते हैं, जिससे कम वाष्पोत्सर्जन होता है।

कैक्टी तथा मांसलोद्भिद में भी ऐसा ही होता है, मांसल पत्तों तथा तनों में जल **संग्रहित** रहता है, जो कि शुष्क पर्यावरण के लिए अनुकूलित होता है (चित्र 16.9)। कैक्टी पौधों के पत्ते कांटे में परिवर्तित हो जाते हैं तथा तनों की बनावट मांसल और गूदेदार होती है। कुछ कैक्टी के तने फैलने योग्य होते हैं जिसमें जल संचित रहता है तथा जड़ें भूमि की उपरी सतह पर फैली हुई होती हैं।



चित्र 16.9 शुष्क तथा गर्म स्थिति में कैक्टस तथा मांसलोद्भिद् (सौजन्य : नवतेज सिंह)

अनेक उष्णकटिबंधीय पौधों में, खासकर घासों में, जो कि गर्म तथा आर्द्र जलवायु में उगते हैं प्रकाश संश्लेषण का C_4 पथ भी पाया जाता है, जैसा कि आपने अध्याय 3 में पढ़ा है। इस तरह की प्रणाली वाले पौधे कम भूमि जल वाले पर्यावरण में बेहतर ढंग से उगते हैं। इन पौधों में प्रकाश संश्लेषण की उच्च दर को प्राप्त करने के लिए कम जल की आवश्यकता पड़ती है। खासकर उच्च तापमान पर। बहुत से मरुभूमि के पौधे, जैसे कैक्टी तथा मासलोद्भिद अपने रंध्र को दिन में बंद कर लेते हैं तथा कम वाष्पोत्सर्जन के लिए रात में खोल लेते हैं। अध्याय 3 के द्वारा आपको पता है कि ऐसे पौधों में सी.ए.एम. (CAM) पथ वाला प्रकाश संश्लेषण होता है। कई मरुस्थलीय पौधे कोशिकाओं में प्रोलाइन (अमीनो अम्ल) इकट्ठा करते हैं। जिसमें पत्तों में परासरणी तथा जल विभव बना रहता है। ताप

प्रधाती प्रोटीन (केपरोनींस) पौधों को उच्च तापमान पर शरीर क्रियात्मक अनुकूलन प्रदान करते हैं। ये प्रोटीन दूसरे प्रोटीन को उनकी संरचना बनाए रखने में मदद करते हैं तथा उच्च तापमान पर विकृतिकरण से रोकते हैं।

***जलीय पर्यावरण में अनुकूलन* :** वे पौधे जो स्थाई रूप से जल में रहते हैं, **जलोद्भिद्** कहलाते हैं। ये या तो पूरे डूबे हुए होते हैं या आधे डूबे होते हैं तथा **पर्णवतों** में (बड़े वायु क्षेत्र) वायु तक की उपस्थिति दर्शाते हैं। प्रकाश-संश्लेषण के क्रम में तैयार ऑक्सीजन का स्थानांतरण वायु कोशिका के द्वारा होता है तथा इनको दूसरे हिस्से में स्वतंत्र मिश्रण में मदद करता है। ऑक्सीजन रहित भूमि में उपस्थित जड़ों में भी यह जाता है। इनके ऊतक पौधों में उत्प्लावकता प्रदान करते हैं। *आइकहॉर्निया* (जल कुम्भी) में फूले हुए पर्णवृत की उपस्थिति में पौधे जल की सतह पर तैरते हुए रहते हैं। जड़ें अच्छी तरह विकसित नहीं होती। स्वतंत्र रूप से तैरने वाले जलोद्भिद, जैसे *सालविनिया, सिरेटोफाइलम, वुलफिया* में जड़ें पूर्ण रूप से अनुपस्थित होते हैं, या अच्छी तरह से विकसित नहीं होते हैं, जैसे *हाइड्रिला* में। डूबे हुए जड़युक्त जलोद्भिद् पौधों का उदाहरण *निफिंया* है जो तालाब में उगता है (चित्र 16.10)। पौधों तथा दूसरे जलमग्न जलोद्भिदों (पत्ते जल सतह से ऊपर) में हवा निकास प्रणाली लगातार होती है। जो जलमग्न पौधों को



चित्र 16.10 तालाब में निम्फिया तथा कुछ अन्य जलोद्भिद् (सौजन्य : नवतेज सिंह)

बाहर उपस्थित पर्णवृतों के द्वारा वातावरण से गैसों को बदलने में मदद करती है।

***लवणयुक्त पर्यावरण में अनुकूलता* :** लवणयुक्त पर्यावरण के पौधे लवणमृदोद्भिद कहलाते हैं, जो कि जल या मृदा में लवण की उच्च सांद्रता में उगने के लिए अनुकूलित होते हैं। लवणमृदोद्भिद ज्वार कच्छ तथा तटीय टिब्बा, मैंग्रोव और लवणयुक्त मृदा में पाए जाते हैं। लवणमृदोद्भिद पौधे, गर्म तथा नम परिस्थिति में गूदेदार हो जाते हैं तथा कोशिकाओं, तनों और पत्तों में तनु आयन सांद्रता वाली लवण को संचित करते हैं।

मैंग्रोव उष्णकटिबंधीय डेल्टा तथा सागर के उपरी भाग वाले कच्छ में पाए जाते हैं। मैंग्रोव की कुछ प्रजातियां अपनी लवण ग्रंथियों से लवण का उत्सर्जन पत्तों पर करती हैं। कुछ मैंग्रोव की जड़ों में अत्यधिक लवण को पंपन द्वारा मृदा में निष्कासित कर देती है। उच्च लवण सांद्रता तथा परासरणी विभव परिस्थिति के योग्य बनने के लिए, कई मैंग्रोव पौधों में उच्च कार्बनिक विलेय स्तर होता है, जैसे प्रोलाइन तथा सोरबिटोल। *डुनेलिया* प्रजातियां हरे तथा लवणमृदोद्भिद शैवाल उच्च लवणीय झीलों में पाए जाते हैं। जो उन्हें परासरणनियतन में मदद करते हैं। ये अपनी कोशिकाओं में ग्लीसरोल संचित रखते हैं, जिसके कारण वे लवणीय परिस्थिति को सहन करने योग्य होते हैं।

मैंग्रोव वन में *एवीसीनीया* तथा *राइजोफोरा* (लाल मैंग्रोव) प्रबल जातियां हैं। यद्यपि, लवण मृदोद्भिद नम भूमि में लवण तथा ऑक्सीजन की अनुपस्थिति में प्रकट होते हैं। वे विशेष अनुकूलन विकसित किए हैं, जैसे कि श्वसन मूल, छादाधार तथा अवस्तंभ मूल तथा जरायुजता इत्यादि। वृक्ष पर रहते हुए ही बीज का अंकुरण हो जाता है। श्वसनमूल की उपस्थिति, वायुमंडल से ऑक्सीजन प्राप्त करने तथा उसे मुख्य जड़ तक स्थानांतरित करने में मदद करती है। मैंग्रोव की कई जातियों में छादाधार तथा अवस्तंभ मूल, जराजयुजता, पौधों को बीज अंकुरण के समय लवणता के प्रभाव से बचाते हैं।

***मितपोषणी मृदा के प्रति अनुकूलन* :** मितपोषणी मृदा में अल्प मात्रा में पोषक तत्त्व रहते हैं। ये मृदा सामान्यतया पुराने तथा, भौगोलिक तौर पर स्थाई भागों में विकसित होती है, जो कि उष्णकटिबंधीय वर्षा प्रचुर वन क्षेत्र के अधिकतर भागों में पाई जाती है। गहन अपरदन तथा उच्च अवक्षालन दर के कारण, इन मृदाओं में पोषक तत्वों को निहित रखने की क्षमता बहुत ही कम होती है। अल्प पोषक तत्त्व वाले मृदाओं के वनस्पति में पोषक तत्त्व ज्यादा जमा होते हैं। कई पौधे, जो कि अल्प पोषक वाले मृदाओं में आते हैं, उनमें **कवक मूल** होते हैं, जिनका जड़ों

या कवकों के साथ सहोपकारिता संबंध होता है (कवक जड़)। कवक मूल, पोषक तत्त्वों के तेजी से अवशोषण में सहायता करते हैं (जैसे कि फॉस्फेट्स)। कवक दो प्रकार के होते हैं, अंतः **कवक मूल** तथा **बाह्य कवक मूल**। अंतः कवक मूल में, कवक तंतु जड़ों के अंदर वास करते हैं। इस प्रकार के कवक मूल, कई संवहनीय पौधों में पाए जाते हैं। बाह्य कवक मूल में, कवक जाल जड़ के बाहरी भाग में एक पट्टिका का निर्माण करते हैं। अंतः कवक मूल, शीतोष्ण क्षेत्रों के बहुत सारे वृक्ष तथा झाड़ी वाली जातियों में पाए जाते हैं।

प्राणियों में अनुकूलता की कार्यनीति (Strategies of Adaptations in Animals)

पौधों की तरह प्राणियों में भी उत्तरजीविता तथा वृद्धि के लिए विभिन्न पारिस्थितिक परिस्थितियां समायोजित होती हैं। मांसाहारियों तथा शाकाहारियों में एक निश्चित प्रकार के भोजन को खाने की अनुकूलता रहती है। कुछ प्राणियों में परभक्षियों द्वारा खाए जाने से बचने के लिए अनुकूलता होती है। अन्यों में संयुग्मी को *आकर्षित करने के लिए व्यावहारिक अनुकूलता होती है।* कुछ प्राणियों के नरों में चमकीले रंग (खास कर पक्षियों के पक्षति) होते हैं, जो कि उन्हें लैंगिक वरण तथा संयुग्मीयों को आकर्षित करने में मदद करते हैं। यद्यपि पर्यावरणीय परिवर्तन तथा प्रतिबल परिस्थिति में प्राणियों में ज्यादातर अनुकूलता, शरीर क्रियात्मक तथा व्यवहारात्मक होती है जैसा कि सारणी 16.1 तथा 16.2 में दिखाया गया है। इनमें से कुछ अनुकूलता की व्याख्या नीचे दी गई है।

प्रवास : प्रवास में, एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में, लंबी दूरी या कम दूरी की संचलन होती है। कई जीव, जो कि उड़ान भरते हैं या तैरते हैं, वे विस्तृत अभिगमन को अपनाते हैं। कुछ प्राणियों की अभिगमन गतिविधियों को सारणी 16.1 में दिखाया गया है। आर्कटिक कुररी, जो कि समुद्री पक्षी हैं, वे अपने उत्तरी अटलांटिक प्रजनन स्थल से अंटार्कटिक तक की हजारों मील की दूरी का चक्कर प्रति वर्ष लगाते हैं। अफ्रीका में, जंगली पक्षी लंबी दूरी तक प्रवास करते हैं, जो कि ऋतुनिष्ठ वर्षा तथा नए वनस्पति की उपलब्धता के भौगोलिक प्रतिरूप का अनुसरण करते हैं। टिड्डे नए भोजन स्थल की तलाश में अधिक संख्या में मरुस्थलीय प्रदेशों के भोजन विहीन क्षेत्रों से अभिगमन कर जाते हैं।

छद्मावरण : कुछ प्राणियों में, परिवेश के साथ संमिश्रण होने की क्षमता या छद्मावरण एक सामान्य अनुकूलता है। कुछ कीटों, सरीसृपों तथा स्तनधारियों में उनके शरीर पर चिह्न होते हैं, जिससे कि उन्हें छाया तथा टहनियों या समूह के दूसरे सदस्यों से भेद करना कठिन होता है।

शीतनिष्क्रियता तथा ग्रीष्मनिष्क्रियता : बहुत ही ठंडे या शुष्क वातावरण में वैसे प्राणी, जो अभिगमन करने में अक्षम होते हैं, *वे शरीर क्रियात्मक सुसुप्तावस्था में चले जाते हैं। शीतकाल* को सुसुप्तावस्था में बिताना, शीतनिष्क्रियता कहलाता है। दूसरी ओर, शुष्क, गर्म अवधि को, निष्क्रिय अवस्था में बिताना, ग्रीष्म निष्क्रियता कहलाता है (उदाहरण, सारणी 16.2 में)।

अनुहरण : दो जातियां एक-दूसरे जैसी दिखती है, एक जाति अनुहारक कहलाती है, जो कि दूसरे परभक्षी के लिए स्वादिष्ट होता है, लेकिन दूसरे जाति जैसी दिखती है। उसे प्रतिरूप कहते हैं जो कि परभक्षी के लिए स्वादहीन होता है। **बेटसी अनुहरण** में, अनुहारक सुरक्षाहीन होता है, लेकिन उसमें प्रतिरूप जैसा प्रति परभक्षी चिह्न होता है, जिसमें परभक्षी के विरुद्ध सुरक्षात्मक उपाय रहता है। इस प्रकार, अनुहारक,

सारणी 16.1 : अभिगमन, प्राणियों में अनुकूलता की कार्यनीति

अभिगमन के प्रकार	उदाहरण	गतिविधियां
लंबी दूरी	आर्कटिक कुररी	गर्मियों में ध्रुव के समीप घोंसला, शीत ऋतु में अंटार्कटिका से दक्षिण में उड़कर जाना, प्रत्येक बसंत में उत्तरी ध्रुव में पुनः वापस आना।
अल्प दूरी	कई पक्षी	दिशा तथा संचालन के लिए सूर्य, चंद्रमा, तारे या चुंबकीय क्षेत्रों को उपयोग कर, पक्षी अभिगमन करते हैं।
	कैरीबू, एल्क तथा व्हेल	प्रत्येक शरद ऋतु में भोजन की तलाश में गर्म स्थानों की ओर अभिगमन करते हैं।
आवर्ती अभिगमन	टिड्डा	ज्यादातर जनसंख्या, भोजन स्थल की तलाश में अभिगमन करते हैं।

सारणी 16.2 : प्राणियों में अनुकूलता की व्यावहारिक कार्यनीति

प्रकार	उदाहरण	प्रक्रियाएं तथा क्रियाएं
शीत निष्क्रियता	उत्तरी स्थलीय गिलहरी	वास्तविक शीतनिष्क्रियक शीत ऋतु में सोते हैं, शरीर तापमान में कमी होती है, श्वसन तथा हृदय गति में कमी होती है
ग्रीष्म निष्क्रियता	दक्षिण-पश्चिम मरुस्थलों में स्थलीय गिलहरी	गर्मी से बचने के लिए, शुष्क-गर्म अवधि को बिलों में निष्क्रिय अवस्था में बिताता है
गुप्त प्रगटन (छद्मावरण)	पत्ती जैसे टिड्डा (*एरेन्सीया रेक्टीफोलया*), शिकार करने वाला मैंटिस (*फाइलोक्रेनिया पाराडोक्सा*)	टिड्डा, पूर्ण पत्ती जैसा या पत्ती के एक भाग के जैसा दिखता है मृत पक्षी तथा वनस्पति की पृष्ठभूमि जैसा दिखता है
बेटसी अनुहरण	एक आदिदारूक तितली तथा अनुहारक वाइसरॉय तितली	एक आदिदारूक तितली (शरीर में आविष रखते हैं) तथा वाइसरॉय तितली जैसा अनुहारक (विष रहित)
म्यूलरी अनुहरण	एक आदिदारूक तितली तथा रानी तितली जैसा अनुहारक	दोनों तितली जाति एक जैसी दिखती हैं तथा स्वादहीन भी होती हैं।
प्रतिध्वनि निर्धारण	अश्वनाल जतूक	उच्च तीव्रता वाली ध्वनि उत्पन्न करता है। वस्तुओं से उत्पन्न हुई प्रतिध्वनि की उपस्थिति को पहचानता है, सोनार के सिद्धांत के उपर

परभक्षी के आक्रमण से अपने आपको बचाने में समक्ष होता है। उसी प्रकार, एक आदिदारूक तितली (विषयुक्त, परभक्षी के प्रति विषैला), वाइसरॉय तितली द्वारा अनुहारित होती है। (विष विहीन) **म्यूलरी अनुहरण** वह प्रक्रिया है, जब अनुहारक प्रतिरूप जैसा ही सुरक्षात्मक उपाय दर्शाता है।

चेतावनी रंजन : गोपक रूप तथा रंजन एक जाति को उसके प्राकृतिक परभक्षी से बचने के लिए सहायक होता है। दक्षिणी अमेरिका उष्णकटिबंधीय वर्षा प्रचुर वन के चमकीले रंग वाले तथा अत्यधिक विषैले प्रासक मेंढक *(फाइलॉबेट्स बाइकलर, डेंड्रॉबैट्स पुमीलियो)* परभक्षी द्वारा आसानी से पहचाने जाते हैं तथा उससे बचाए जाते हैं।

जलाभाव के प्रति अनुकूलन : मरुस्थलीय प्रदेशों में रहने वाले प्राणियों में दो प्रकार का अनुकूलन प्रमुख है, जैसे कि जलह्रास को जितना संभव हो सके उतना कम करना, तथा मरुस्थलीय परिस्थिति के प्रति अनुकूलता। उदाहरण के लिए, कंगारू चूहा ठोस मूत्र उत्सर्जित कर जल को संरक्षित करता है, तथा जन्म से मृत्यु तक बिना पानी पीए भी जीवित रह सकता है। ऊंट, मरुस्थल परिस्थिति के प्रति विशिष्ट समायोजन दर्शाता है, जो कि जल का उपयोग बहुत ही मितव्ययता से करता है, शरीर तापमान में बहुत उतार चढ़ाव के प्रति सहिष्णुता दिखाता है तथा अत्यधिक ताप प्रतिबल के समय में भी रुधिरधारा की आर्द्रता बनाए रखने में सक्षम होता है।

शीत के प्रति अनुकूलता : स्थानबद्ध प्राणी, जैसे कि बर्नाकल्स तथा घोंघा, जो कि उत्तरी तटों के अत्यधिक ठंडे अंतराज्वारीय क्षेत्रों में रहते हैं। कई कीट तथा मकड़ी शीत दौर के प्रभाव का प्रतिरोध शीत सहनशील प्रक्रिया द्वारा करते हैं। हिम सहनशील जीवों को हिम केंद्रीय प्रोटीन होता है, जो कि बहुत ही कम अवशून्य तापमानों पर कोशिका बाह्य स्थानों में हिम निर्माण को प्रेरित करता है। कुछ हिम परिहार्य करने वाले प्राणी, ग्लिसरौल प्रतिहिम प्रोटीन को जमाकर, जो कि उनके शरीर की तरल को हिमांक से नीचे ले आता है, वे 0° सें. से नीचे के पर्यावरणीय तापमान को सहन कर सकते हैं। उस प्रकार के प्रतिहिम पदार्थों की उपस्थिति, अंटार्कटिक क्षेत्रों की मछलियों को समुद्री जल में सक्रिय रहने में सहायता करती है।

सारांश

जीवों तथा उसके पर्यावरण के बीच पारस्परिक संबंधों के अध्ययन को पारिस्थितिकी कहते हैं। पारिस्थितिकी में जैविक संरचना के स्तर हैं: जीव – जनसंख्या-समुदाय-पारिस्थितिकी-जीवमंडल। समुदाय में विभिन्न जाति के कई जीव रहते हैं। पारिस्थितिकी में जैविक समुदाय उसके भौतिक पर्यावरण के साथ समाकलित रहता है। जीवमंडल के अंतर्गत पृथ्वी पर स्थित सभी पारिस्थितिक तंत्र आते हैं। उपस्थित क्षेत्रीय पर्यावरण की जलवायु का प्राणि तथा वनस्पति पर बृहत्मान प्रभाव होता है। सूक्ष्म जलवायु, सजीव जीवों के समीपी भाग की जलवायु स्थिति दर्शाती है। आवास वह स्थान है जहां जीव रहता है जबकि निकेत, जीवों की क्रियात्मक भूमिका होती है।

प्रकाश तथा तापमान, जलवायु, पौधों तथा प्राणियों और जीवों की उपापचयी प्रक्रियाओं को प्रभावित करता है। वायुमंडल, जलवाष्प वाष्पोत्सर्जन तथा अवक्षेपण, जलीय चक्र को नियंत्रित करता है। मृदा, जल, पोषक तत्त्व तथा स्थिरक स्थान उपलब्ध कर पौधों की वृद्धि के लिए महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है, तथा मृदा जीवों के विविध जनसंख्याओं के लिए आवास भी उपलब्ध कराता है। नमी एवं ताप कारक सामान्यता स्थलीय जीवों की क्रियाओं को सीमित करते हैं, जबकि जलीय जीवों को प्रकाश एवं ऑक्सीजन प्रभावित करती है। असीमित सहनशीलता वाले जीव का विस्तृत वितरण एवं सीमित सहनशीलता वालों का सीमित वितरण होता है।

मरुस्थलीय पौधे, जलाभाव के प्रति अनुकूलता इस प्रकार दर्शाते हैं– गहरे मूसला जड़ तंत्रों से जल को अवशोषित कर, जल को मांसलोद्भिद् पत्तियों तथा तनों में संचित कर, तथा वाष्पोत्सर्जन की दर को घटाकर। पौधे, मृदा तथा जल में लवण की उच्च सांद्रता के प्रति अनुकूलन इस प्रकार दर्शाते हैं – लवण उत्सर्जन, लवण अपवर्जन द्वारा या तनों तथा जड़ों में कार्बनिक विलेय को जमा कर। मितपोषणी मृदा, अल्प पोषक तत्त्व वाले मृदा हैं। इन मृदाओं की वनस्पति में, पोषक तत्वों की धारिता उच्च होती है तथा कवकमूल पौधों के खनिज पोषण में सहायता पहुंचाते हैं।

ज्यादातर प्राणी अनुकूलताएं शरीर क्रियात्मक तथा व्यवहारात्मक होती हैं जैसे कि, अभिगमन, शरीर तापमान का नियंत्रण, तथा परभक्षियों से बचने के लिए अनुहरण। बेटसी अनुहरण में, अनुहारक सुरक्षा विहीन होता है। म्यूलेरियन अनुहरण में, अपुहारक उसी प्रकार की सुरक्षात्मक प्रक्रिया अपनाता है जैसा कि प्रतिरूप अपनाता है। कुछ जीव, गोपक प्रगटप या चेतावनी रंजन द्वारा परभक्षण से बचाव करते हैं। ठंडे पर्यावरण में, जीव अपने शरीर के तरलों को अतिशीतलन द्वारा अनुकूलित करता है या प्रतिहिम अवयवों द्वारा अपने शरीर के तरलों को हिमांक से नीचे लाकर करता है।

अभ्यास

1. जटिलता के क्रम में संरचना के पारिस्थिति स्तरों को इस क्रम में व्यवस्थित किया गया है ____________________।
2. पारिस्थितिक तंत्र में जीव की भूमिका को __________ कहते हैं।
   (क) आवास
   (ख) निकेत
   (ग) शाकभक्षिता
   (घ) पारस्परिक क्रिया

3. मरूस्थलों में कंगारूचूहा तथा ऊंट, शुष्क तथा गर्म स्थिति के प्रति —————— द्वारा अनुकूलित होता है।
4. प्राणियों में निम्न तापमान तथा हिमीकरण के प्रति अनुकूलता —————— के उत्पादन के कारण होती है।
   (क) प्रतिहिम प्रोटीन
   (ख) प्रोलीन
   (ग) केपरोनीनस्
   (घ) एनालीन
5. जलवायु तथा मौसम में क्या अंतर है?
6. छद्मावरण तथा अनुहरण के बीच अंतर स्पष्ट करें।
7. पौधे किस प्रकार मितपोषणी मृदाओं में अनुकूलित होते हैं?
8. निम्न शब्दों को परिभाषित करें –
   (क) अधिगमन
   (ख) समतापमंडल
   (ग) समुदाय
   (घ) जीवमंडल
9. निम्न शब्दों की व्याख्या करें –
   (क) अनुहरण
   (ख) दशानुकूलन
   (ग) बाह्योष्मीय
   (घ) अंत:उष्मीय
10. पर्यावरणीय कारकों की व्याख्या करें तथा पौधों तथा प्राणियों के प्रति उनका क्या महत्त्व है?
11. व्याख्या करें कि, पर्यावरणीय कारकों के प्रति सहनशीलता, जातियों के वितरण को किस प्रकार प्रभावित करती है?
12. पौधे, जलाभाव तथा लवणीय पर्यावरण के प्रति किस प्रकार अनुकूलित होते हैं ?
13. प्राणियों में विभिन्न प्रकार का अनुकूलन क्या हैं? उपयुक्त उदाहरण द्वारा व्याख्या करें।

अध्याय 17

जनसंख्या, जैविक समुदाय तथा अनुक्रमण

पिछले अध्याय में आपने भौतिक पर्यावरण के कारकों तथा उनका जीवों पर पड़ने वाले प्रभावों के बारे में पढ़ा है। आप यह भी जानते हैं कि सभी जीव विभिन्न पर्यावरणीय परिस्थितियों में जिंदा रहने तथा सफल जीवन व्यतीत करने के लिए अनुकूलित होते हैं। कोई भी जाति अलग-अलग नहीं रह सकती बल्कि एक खास जगह में रहकर एक जनसंख्या तैयार करती हैं। आवास स्थल में जीवों का रहना कोई संयोग की बात नहीं है बल्कि पर्यावरण में उनकी उपस्थिति तथा उपयुक्तता, जीवित रहने के लिए एक लंबे समय तक के संघर्ष को दर्शाती है। प्राकृतिक स्थिति में हम पाते हैं कि विविध प्रकार के पौधे, प्राणी तथा सूक्ष्म जीव एक ही आवास स्थल में एक साथ रहते हैं। एक क्षेत्र में रहने वाले विभिन्न प्रकार के जीव, जो कि पौधों, प्राणियों तथा सूक्ष्म जीवों की विभिन्न जातियों का प्रतिनिधित्व कर **जैविक समुदाय** *बनाते हैं* (इनका संगठन तथा संरचना निर्धारण, जातियों की पारस्परिक क्रियाओं द्वारा होता है)। एक क्षेत्र में विकसित होने वाले जैविक समुदायों का प्रकार जैविक तथा भौतिक प्रक्रियाओं की पारस्परिक क्रियाओं पर निर्भर करता है। जातियों की पारस्परिक क्रियाओं के अध्ययन से जैविक समुदायों की जटिलता तथा प्रकार्यों को समझने में मदद मिलती है। प्राकृतिक पादप समुदायों की गतिशील प्रकृति ही उनका सबसे महत्त्वपूर्ण गुण है, यहां तक कि देखने में सबसे स्थाई समुदायों में भी समय के साथ परिवर्तन होता है। यह अध्याय जनसंख्या तथा संगठन के समुदाय स्तरों, जनसंख्या अभिलक्षण तथा वृद्धि, आकाशीय क्षेत्र में एक समुदाय की जैविक प्रतिमानता, समुदाय में जातियों के बीच पारस्परिक क्रियाएं, समुदाय संरचना में समय के साथ परिवर्तन के बारे में बताता है।

17.1 जनसंख्या (Population)

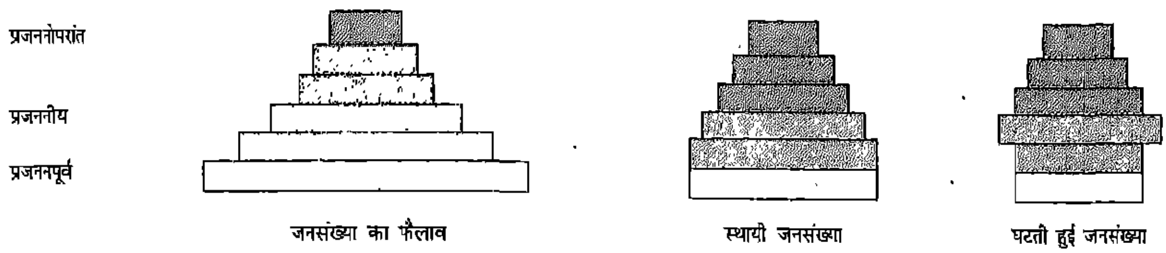
अध्ययन के विभिन्न क्षेत्रों में, जनसंख्या शब्द की व्याख्या कई प्रकार से की गई है। मानव जनसांख्यिकी में, एक दिए गए क्षेत्र, जैसे कि, एक गांव, शहर, राज्य या देश या यहां तक की पृथ्वी ग्रह पर आवास करने वाले मानवों का समुच्चय जनसंख्या कहलाता है। आनुवंशिकी में, उसी जाति के एकाकीयों के साथ संकरण करने वाले समूह, जोकि इसके समूहों से विलगित रहते हैं, जनसंख्या कहलाती है। विभिन्न प्रकार के जैविक अवरोधकों के कारण, विभिन्न जातियों की जनसंख्याएं एक दूसरे के साथ संकरण के लिए सक्षम नहीं हो पाती हैं।

पारिस्थितिकी में, उसी क्षेत्र में रहने वाले उसी जाति के समूह को जनसंख्या कहते हैं। जनसंख्या के कुछ उदाहरण हैं- एक क्षेत्र में रहने वाले सामान्य घास *सायनोडॉन* (दूब घास) के सभी व्यष्टि, उसी जाति के घोंघा का समूह, चीड़ वृक्षों, व्हेल, इसकी जनसंख्या को दर्शाते हैं। एक जनसंख्या में सभी जीव, एक ही प्रकार के जीवन चक्रों से गुजरते हैं तथा जीवन चक्र के एक नियत चरण पर, एक समान पारिस्थितिक प्रक्रिया से गुजरते हैं। जनसंख्या को कई स्थानगत मापक्रमों पर परिभाषित किया जा सकता है। स्थानीय जनसंख्या, एक अस्थायी जल के कुंड, जैसे छोटे आवासीय भागों में अपना स्थान ले सकती है। स्थानीय जनसंख्या का एक समुच्चय, जो कि परिक्षेपी एककों द्वारा जुड़ा रहता है, **मेटा जनसंख्या** (metapopulation) कहलाता है। जनसंख्या का क्षेत्रों, द्वीपों, महादेशों या समुद्रों के मापक्रम पर विचार किया जा सकता है। विलुप्तप्राय जातियों की जनसंख्या को प्रबंधित करने, साथ ही साथ पौधों, प्राणियों के बीमारी नियंत्रण को समझने के लिए जनसंख्या का अध्ययन उपयोगी होता है।

जनसंख्या विशेषता

जनसंख्या के कई गुण हैं इसे मापने के लिए हम हमेशा दूसरी जनसंख्या के साथ तुलना करते हैं। इसके आकार में परिवर्तन को समझने के लिए हम जनसंख्या घनत्व, जीवों के स्थानिक वितरण तथा जनसंख्या वृद्धि को प्रभावित करने वाले कारकों के बारे में पढ़ते हैं। एक जनसंख्या समूह की विशेषता उसका घनत्व, जन्म दर, मृत्यु दर तथा उम्र होती है।

घनत्व : जनसंख्या की विशेषता उसका घनत्व है तथा यह जनसंख्या के आकार को भी दर्शाता है। इसे इस तरह समझा



चित्र 17.1 काल्पनिक जनसंख्या की उम्र संरचना जिसके बढ़ने या स्थाई रहने या समय के साथ घटने की संभावना रहती है

जा सकता है: जीवों की कुल संख्या प्रति इकाई क्षेत्र या आयतन में दिए गए समय में। उदाहरण के लिए, एक प्रजाति के वृक्षों की संख्या 50 प्रति हैक्टेयर क्षेत्र में, या साइनोडोन घास की संख्या 70 प्रति वर्ग मीटर में है। घनत्व निकालने के लिए पहले से निर्धारित आकार में नमूना इकाई तैयार करते हैं। बड़े प्राणियों के लिए गिनती की जाती है। जनगणना या गिनती मनुष्यों की जनसंख्या के लिए भी की जाती है। एक जाति का घनत्व, समय-समय पर तथा एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में बदलता है। किसी दिए गए समय में उपलब्ध संसाधन जैसे पोषक तत्त्व, जल आदि से उसका आकार मापा जाता है तथा दूसरे गुण जैसे जन्म दर, मृत्यु दर तथा उम्र इत्यादि।

जन्म दर : दिए गए पर्यावरणीय परिस्थिति में जनसंख्या में व्यक्तियों की संख्या में वृद्धि जन्म दर कहलाती है। बढ़ोतरी, साधारणत: जन्म, अंडजोत्पत्ति, अंकुरण तथा कायिक जनन से होती है। जब वृद्धि को एक समय अवधि के अनुसार समझते हैं तो उसे जन्म दर कहते हैं।

मृत्यु दर : किसी जनसंख्या में मृत्यु के द्वारा संख्या में कमी एक दिए गए पर्यावरणीय स्थिति में मृत्यु कहलाती है। एक समय अवधि में, मरने वाले व्यक्तियों की संख्या को मृत्यु दर कहते हैं।

बिखराव : अधिकांश जीव अपने जीवन काल में एक बार फैला या बिखरा हो सकता है। जीवों का समूह में पाया जाना, प्रकृति में सबसे सामान्य है। किसी जीव का जनसंख्या में आना या जनसंख्या से बाहर जाना, उसकी जनसंख्या के आकार को प्रभावित करता है। उदाहरण के लिए साइनोडोन घास का समूह तथा चिड़ियों का झुंड या शहर में लोग। प्राणियों में स्थान का बचाव तथा उनके आवास स्थल के वितरण की समस्या सामान्य है, इस तरह का वितरण मरुभूमि के पौधों में पाया जाता है। जनसंख्या में व्यक्ति का बिखरा हुआ वितरण, वन की सतह पर कीट भक्षी मकड़े में पाया जाता है।

उम्र वितरण : जनसंख्या उम्र संरचना जन्म तथा मृत्यु से काफी प्रभावित होती है। जनसंख्या में विभिन्न उम्र समुदाय मिलकर उसकी प्रजनन स्थिति को निश्चित करते हैं। अध्ययन से यह पता चलता है कि युवा सदस्यों की जनसंख्या वृद्धि तेजी से होती है, जबकि घटती हुई जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा बुजुर्गों का होता है (चित्र 17.1)। तीन उम्रों की जनसंख्या को परिस्थितिक आयु कहा जाता है - प्रजनन पूर्व, प्रजनन के समय तथा प्रजनन उपरांत। उम्र समूहों का आगे वितरण जनसंख्या वृद्धि को प्रभावित करता है।

जैविक विभव तथा पर्यावरण प्रतिरोध : किसी जीव का प्रजनन या संख्या वृद्धि क्षमता, उसका अंतर्निहित गुण होता है, जब पर्यावरण इसमें कोई रुकावट नहीं डालता तो उसे **जैविक विभव** (जिसे 'r' संकेत से दर्शाया जाता है) कहते हैं। यह पैदा हुए युवा की संख्या का जोड़ दिए गए समय में प्रजनन संख्या तथा उसकी मौजूदा पर्यावरणीय परिस्थिति में सामान्य रूप से जीवित रहने की क्षमता, हालांकि प्रकृति जैविक विभव स्पष्टीकरण पर नियंत्रण रखती है। उदाहरण के लिए अगर एक जोड़ा मक्खी को अनियंत्रित रूप से प्रजनन के लिए छोड़ दिया जाए तो यह कुछ वर्षों में पृथ्वी पर भर जाएंगी। जनसंख्या पर पर्यावरण का नियंत्रण या इसके जैविक विभव को **पर्यावरण प्रतिरोध** कहते हैं। यह अजैविक (जल, स्थान) तथा जैविक कारकों (भोजन प्रतियोगिता) के सीमित प्रभाव को दर्शाता है, जो कि जीवों को उनके जैविक विभव तक नहीं पहुंचने देते हैं। ढोने योग्य क्षमता व्यक्तियों की ज्यादा से ज्यादा संख्या हैं, जोकि दिए गए क्षेत्र में निश्चित रूप से रह सके।

जनसंख्या वृद्धि (Population Growth)

एक समय अवधि के दौरान, जनसंख्या के आकार में वृद्धि को जनसंख्या वृद्धि कहते हैं। हम यह परिकल्पना करें कि, एक जनसंख्या जिसका प्रारंभिक आकार N_O से एक समय अंतराल t में आकार में वृद्धि कर N_t प्राप्त करती है। इस प्रकार जनसंख्या की आकृति में परिवर्तन को इस प्रकार दर्शाया जा सकता है:

$$N_t = N_O + B + I - D - E$$

जहां, N_O = परिवर्तन के प्रारंभ में जनसंख्या का आकार, B = जन्म दर, I = देशांतरवास की दर (आने वाले एकाकी), D = मृत्यु दर, तथा *E = स्वदेश त्याग की दर (एकाकीयों का* बाहर जाना)।

एक समय अवधि के दौरान मापी गई जनसंख्या वृद्धि को, 'वृद्धि दर' कहते हैं। वृद्धि दर या तो गुणात्मक या ऋणात्मक हो सकती है। जनसंख्या वृद्धि दर का योग उसके समूह के अभिलक्षण के आधार पर भी किया जा सकता है, जैसे वृद्धि दर, मृत्यु दर, उम्र अनुपात तथा जनसंख्या की आनुवंशिक बनावट। हम यह पहले बता चुके हैं कि जनसंख्या वृद्धि तथा विकास जीवों की तरह ही होता है।

जनसंख्या वृद्धि रूप (Population Growth Form)

जनसंख्या वृद्धि की दो मूल पद्धतियां J तथा S आकार, जो कि कई जनसंख्याओं में वृद्धि पर आधारित पाई गई हैं। नए वातावरण या उन कारकों की अनुपस्थिति, जिससे जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण होता है, साधारणतः पाई जाती है। J आकार की जनसंख्या पद्धति में व्यक्ति की संख्या तेजी से चरधातंकी तरीके से बढ़ती है। एक निश्चित समय अंतराल में यह संख्या दुगुनी हो जाती है, उदाहरण के लिए यदि जनसंख्या वृद्धि के आकार में चरधातंकी तरीके से वृद्धि होती है जैसे, 2, 4, 8, 15, 32 तथा और आगे तब तक, जब तक कि जनसंख्या को सीमित नहीं किया जाए *[चित्र 17.2 (अ)]*। एक आदर्श रूप में J आकार के वक्र की जनसंख्या वृद्धि को समीकरण द्वारा दर्शाया जा सकता है:

$$\frac{dN}{dt} = rN$$

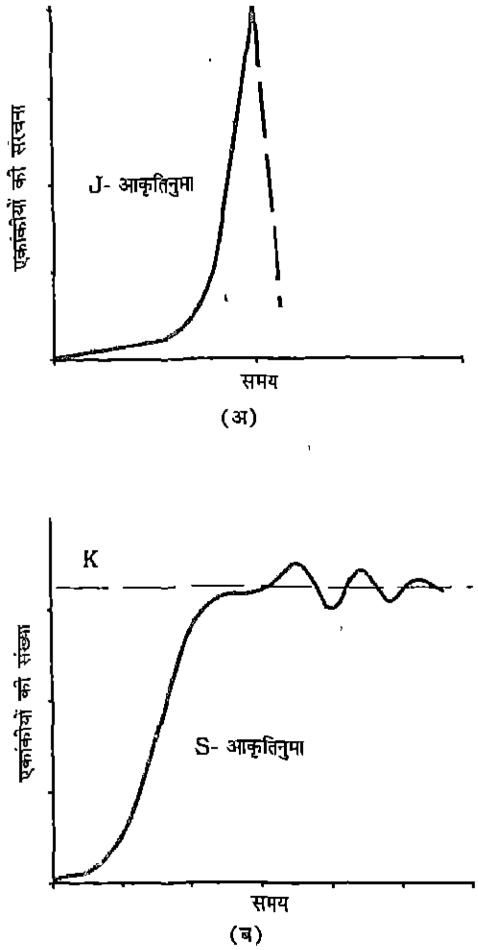
dN = जहाँ, d/t जनसंख्या आकार में परिवर्तन की दर, δt

r = विशिष्ट वृद्धि दर या जैविक विभवता को दर्शाता है।

N = एकाकियों की संख्या

t = समय की अवधि

dN = संख्या में परिवर्तन



चित्र 17.2 जनसंख्या वृद्धि रूप
(अ) J-आकृतिनुमा, (ब) S-आकृतिनुमा.
K वहन क्षमता को दर्शाता है

एक जीव की जनसंख्या द्वारा इसे समझाया जा सकता है :

N = 50

ΔN = 100 (एक घंटे मे परिवर्तन)

$\frac{\Delta N}{\Delta t}$ = 100 प्रतिशत

$r = k \frac{\Delta N}{N \Delta t} = 2$; प्रतिघंटा 200 प्रतिशत की वृद्धि को दर्शाता है।

S = आकृति या सिग्मारूपी वृद्धि प्रतिरूप प्रारंभ में धीरे-धीरे वृद्धि को बतलाता है, उसके बाद तीव्र वृद्धि तथा उसके

पश्चात् धीरे-धीरे वृद्धि में ह्रास। यह मंदी, पर्यावरणीय प्रतिरोध के बढ़ने के कारण होती है। यह बढ़ने की उपरी सीमा है जिसके बाद वृद्धि रुक जाती है। ऊपरी सीमा को वहन क्षमता कहते हैं, इसे समीकरण में k के द्वारा दर्शाया जाता है:

$$\frac{dN}{dt} = rN\left(\frac{K-N}{K}\right) = rN\left(1-\frac{N}{K}\right)$$

जहां δN जनसंख्या आकार में परिवर्तन को दर्शाता है,

$$\left(\frac{K-N}{K}\right), \text{या } \left(1-\frac{N}{K}\right)$$

पर्यावरणीय प्रतिरोध को दर्शाते हैं। समय के साथ वृद्धि को आलेखित करने पर, S – आकृति या सिग्मानुमा वक्र बनता है [चित्र 17.2 (अ), (ब)]।

17.2 पारिस्थितिक निर्भरता एवं पारस्परिक क्रियाएं (Ecological Interdependence and Interactions)

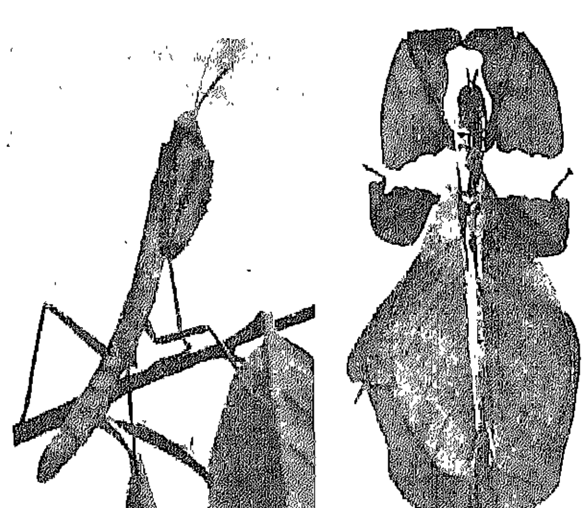
जातियों की एक-दूसरे पर निर्भरता (Species Interdependence)

किसी क्षेत्र के जैविक समुदाय के सदस्य एक दूसरे पर निर्भर रहते हैं। एक दूसरे पर निर्भरता, उनकी पारस्परिक क्रियाओं जैसे कि, मुख्य रूप से भोजन, आवास, प्रजनन तथा सुरक्षा में प्रतिलक्षित होती है। ये पारस्परिक क्रियाएं, एक समूह के रूप में समुदायों की उत्तर जीविता के लिए महत्त्वपूर्ण होती हैं। भोजन सहसंबंध पोषक संरचनाएं (आहार शृंखलाओं) में प्रतिलक्षित होते हैं। पोषक संरचनाएं प्राणियों तथा सूक्ष्म जीवाणुओं से बनी होती हैं।

पौधों तथा प्राणियों में प्रजनन के लिए एक-दूसरे पर निर्भरता सर्वविदित है। निर्भरता को कीटों में भलीभांति समझाया जा सकता है। कीट, पुष्प विशिष्ट होते हैं तथा उनमें मकरंद चूसने तथा परागन के लिए उपयुक्त संरचना होती है। दूसरी ओर, पुष्प भी कीट विशिष्टता वाले होते हैं। उदाहरण के लिए, क्षिप्रव्याध पुष्प में कीट के प्रवेश तथा उस पर बैठने के लिए ओष्टांकार पंखुड़ी होती है। पुष्प तथा कीट दोनों ही इस प्रकार विकसित हुए हैं, कि उनकी एक-दूसरे पर निर्भरता बनी हुई है। किसी समुदाय के कीट की जनसंख्या में उतार-चढ़ाव से परागन में कमी हो सकती है, इससे पौधों की जनसंख्या प्रभावित हो सकती है। फसलों में कीटनाशक के प्रयोग से मधुमक्खियां मर जाती हैं, और इस प्रकार, फसलों के परागन प्रभावित होते हैं। पक्षी तथा स्तनधारी, बीजों तथा फलों के परिक्षेपण में सहायता पहुंचाते हैं। समुदायों में एक-दूसरे पर निर्भरता को निम्न उदाहरणों द्वारा दर्शाया जा सकता है- कोकिल, पक्षियों के घोसलों में अंडा देती है, विटिका बर्र, अपने अंडे को पौधों के उत्तकों में गहराई में रखते हैं ताकि निषेचन तथा सुरक्षा ठीक प्रकार से हो सके।

जैविक समुदाय के कुछ सदस्य, विशेषकर ऐसे प्राणी जो अत्यधिक प्रतियोगिता के दौर से गुजरते हैं, या तो नष्ट हो जाते हैं या प्रवास पर चले जाते हैं। ये शत्रुओं से बचने या उन्हे रोकने के लिए, विशेष सुरक्षात्मक विधियां अपनाते हैं। पहचाने जाने से बचने के लिए, कमजोर सदस्य, कभी-कभी, छद्मावरण धारण करते हैं। आप पाएंगे कि तितलियों तथा शल्यों का रंग, कठिनाई से पहचाना जाता है। क्योंकि ये अपने जैसा रंग पुष्पों या पत्तियों जैसा अपना शिकारी मैंटिस, तथा टिड्डों को छद्मावरण आसानी से दिखाई दे जाता है (चित्र 17.3)। यह पत्तियों तथा टहनियों की आकृति जैसा दिखाई देता है, इन्हें अनुकरण कहते हैं।

जहां तक रंगों का संबंध है आप आर्किड को भी तितलियों के रंगों का अनुहरण करते देख सकते हैं। यह देखा गया है कि, प्राणियों में सामान्यत: कमजोर सदस्य, ताकतवर सदस्यों का तेजी से चलने वाले तथा ऐसी जातियां जिनके प्राकृतिक शत्रु कम हों, उनका अनुहरण करते हैं। उदाहरण के लिए, विषहीन सर्प शत्रुओं को डराने के लिए, विषैले सर्पों जैसी अनुहरणता दर्शाते हैं। पक्षी, अन्य प्राणियों की तरह आवाज निकालते हैं। अनुहरण क्रिया की प्रवृत्ति सुरक्षात्मक के साथ-साथ प्रहारक भी हो सकती है। हर्मित केकड़ा अपने कोमल उदर की रक्षा के



चित्र 17.3 भक्षण कर रहे मैंटीस (बाईं) तथा पर्ण कीट (दाईं) द्वारा छद्मावरण प्रदर्शित करना

सारणी 17.1 : जैविक समुदाय के विभिन्न जातियों के जनसंख्याओं के बीच पारस्परिक क्रियाएं

पारस्परिक क्रियाओं के प्रकार	जाति A	जाति B	पारस्परिक क्रियाओं की प्रकृति
सहोपकारिता	+	+	A और B दोनों के लिए लाभदायक
सहभोजिता	+	0	A के लिए लाभकारी तथा B पर कोई प्रभाव नहीं
परजीविता	+	–	A के लिए लाभदायक (परजीवी) तथा B के लिए नुकसानदेय (मेजबान)
परभक्षण	+	–	A के लिए लाभदायक (परभक्षी) तथा B को अवरोध करना (भक्ष्य)
प्रतियोगिता	–	–	A और B दोनों पर बुरा प्रभाव पड़ना

0 जातियों पर कोई प्रभाव नहीं; + सकारात्मक प्रभाव; – नकारात्मक प्रभाव।

लिए उपयुक्त आकार के घोंघे के खाली कवच को चुनता है।

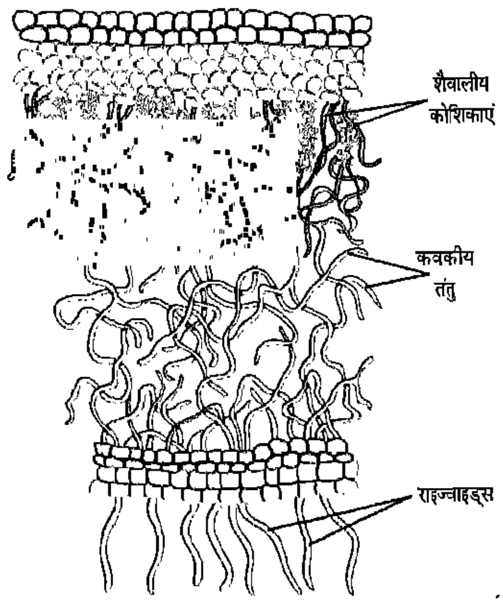
जातियों की पारस्परिक क्रियाएं (Species Interactions)

एक समुदाय में जातियों के बीच की पारस्परिक क्रियाओं को, पारस्परिक क्रिया करने वाले जीवों पर पड़ने वाले प्रभाव के स्वभाव के आधार पर, सकारात्मक (लाभदायक) तथा नकारात्मक (अवरुद्ध कारक) वर्गों में विभाजित किया जाता है (सारणी 17.1)।

सकारात्मक प्रभाव वाली पारस्परिक क्रियाएं
(Interactions with Positive Effect)

समुदाय में कुछ पारस्परिक क्रियाएं, सदस्यों के सहयोगिता का परिणाम होती हैं, जहां पारस्परिक क्रिया करने वाली दोनों जातियां लाभान्वित होती हैं। वे वृद्धि के प्रति सकारात्मक रूख अपनाती हैं, तथा एकक को, अस्थायी पर्यावरणीय उतार-चढ़ाव में अनुकूलित होने में सहायता प्रदान करती हैं। इन लाभकारी पारस्परिक क्रियाओं की प्रकृति, विभिन्न प्रकार की होती है, जोकि पारस्परिक क्रिया करने वाली जातियों की प्रकृति तथा लाभ के स्तर पर निर्भर करती हैं।

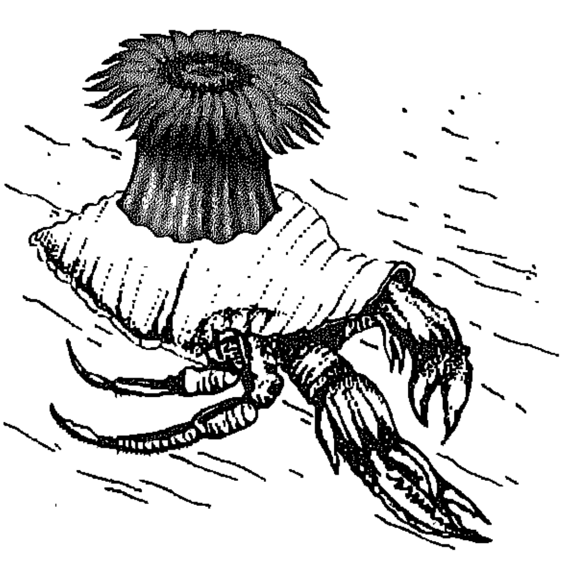
सहोपकारिता : सहजीविता, सामान्यतः जैविक समुदाय की दो जातियों के साथ रहने को कहते हैं। यह दो विभिन्न जीवों का सहजीवन होता है, जो जीव इसमें संलग्न होते हैं, उन्हें सहजीवी कहते हैं। पर्यावरणीय तौर पर, सहजीविता, एक भौतिक संलग्नता से आगे की अवस्था है। यह दो जातियों का सहयोग है, जिसमें दोनों सहोपकारी लाभान्वित होते हैं। यह एक क्रियात्मक साहचर्य है न कि सिर्फ साथ रहना। यह सहोपकारी लाभकारी व्यवस्था, सहोपकारिता कहलाती है। पारस्परिक क्रिया करने वाली दोनों में से कोई भी जाति, एक-दूसरे के बगैर जीवित नहीं रह सकती है। सहोपकारिता, अविकल्पी (जाति एक दूसरे पर पूर्णतः अश्रित रहती है) या विकल्पी (एक जाति, अपने दूसरे सहयोगी जाति की अनुपस्थिति में भी जीवित रह सकती है) हो सकती है। सहोपकारिता को फली के मूल ग्रंथिका में रहने वाले नाइट्रोजन यौगिकीकरण करने वाले बैक्टिरीया (*राइजोबियम*) के द्वारा उद्धृत किया जा



चित्र 17.4 एक लाइकेन का खंड, जो कि शैवालीय तथा कवकीय सहयोगियों को दर्शाता है।

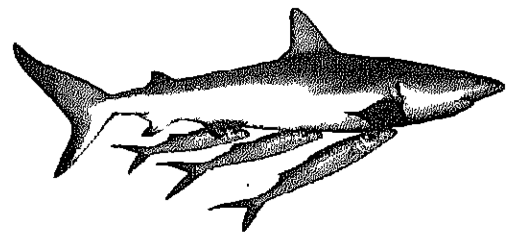
सकता है। जहां, बैक्टिरीया पोषी पादप से पोषण प्राप्त करता है, वायुमंडलीय नाइट्रोजन का यौगिकीकरण करता है तथा पौधों के लिए उपलब्ध करता है। शैवाल तथा कवक, लाइकेन के द्वारा लाभकारी ढंग से एक दूसरे के साथ रहने का उदाहरण है (चित्र 17.4)। जहां कवक, शैवाल को सुरक्षा प्रदान करता है, जबकि शैवाल कवक के लिए भोजन तैयार करता है। प्रवाल भिति के उदाहरण में, सीलंटरेट तथा शैवाल विकल्पी संबंध को बताता है। कवक मूल, लगभग 80 प्रतिशत उच्चस्तरीय पादपों के जड़ों तथा कवकों के बीच सहोपकारिता का संबंध दर्शाते हैं। कवक उन पादपों को खनिज पोषण में सहायता प्रदान करते हैं, जिनके साथ वे जुड़े होते हैं तथा बदले में पौधों से कार्बोहाइड्रेट्स प्राप्त करते हैं। कुछ प्राणियों (मवेशियों) की आंत्र में रहने वाले जीवाणु, सेल्यूलोज के पाचन में सहायता प्रदान करते हैं।

सहोपकारिता को समुद्री ऐनीमोन तथा हर्मिट केकड़े के उदाहरण द्वारा दर्शाया जा सकता है (चित्र 17.5)। पहला तो घोंघा के खाली कवच के साथ जुड़ जाता हैं जबकि, केकड़ा, इसे सुरक्षा कवच के रूप में उपयोग करता है। समुद्री ऐनीमोन एक कम गति से गतिशीलता दर्शाने वाला प्राणी है। इन कवचों के द्वारा, इनका विस्तृत परिक्षेपण हो जाता है। परिक्षेपण के समय ये अपना भोजन भी तलाशते हैं।



चित्र 17.5 केकड़ा तथा समुद्री एनीमोन की सहोपकारिता, समुद्री एनीमोन, हर्मिट क्रैब के पीठ पर अपने को जोड़ता हुआ

सहभोजिता : यह दो जातियों के बीच ऐसा संबंध है, जिसमें एक जाति लाभन्वित होती है, जबकि दूसरी जाति को सामान्य स्थिति में न तो लाभ होता है न ही नुकसान। कुछ जीव बड़े प्राणी के शरीर के अंदर रहकर अपने को दुश्मनों से तथा विपरीत पर्यावरण परिस्थिति से सुरक्षित रखते हैं।



चित्र 17.6 चूषक मत्स्य तथा शार्क के बीच सहभोजिता

सहभोजिता को चूषक मछली तथा शार्क के उदाहरण द्वारा उद्धृत किया जा सकता है (चित्र 17.6)। चूषक मछली अपने पृष्ठ फिन के द्वारा शार्क की सतह पर जुड़ी रहती है, जो कि रूपांतरित होकर स्थापपांग में परिवर्तित हो जाता है। चूषक मछली दूर-दूर तक भ्रमण करने के क्रम में अच्छे-अच्छे भोजन की तलाश कर पाती है। इसके अतिरिक्त, यह मछली शार्क के साथ संबंध होने के कारण, परभक्षी से सुरक्षा प्राप्त करती है। यद्यपि, शार्क को चूषक मछली से कोई लाभ नहीं होता है तथा इसे कोई नुकसान भी नहीं होता है।

अधिपात (Epiphytes) (जैसे कि, मॉस, फर्न, आर्किड, मनी पादप) जो कि वृक्षों पर वृद्धि करते हैं तथा अच्छी प्रकार से फायदा उठाते हैं लेकिन सामान्यतया वे वृक्षों को कोई नुकसान नहीं पहुंचाते हैं। बहुत सारे काष्ठिय आरोही लता, वृक्ष का सहारा लेते हैं ताकिं, अपने आवरण को जमीन की सतह से ऊपर रख सकें तथा इस क्रम में वे वृक्षों को कोई नुकसान नही पहुंचाते हैं। ये संबंध भी सहभोजिता का उदाहरण है।

नकारात्मक प्रभाव वाली पारस्परिक क्रिया
(Interactinos with Negative Effects)

विभिन्न जातियों के बीच कुछ पारस्परिक क्रियाएं एक या दोनों जातियों पर नकारात्मक प्रभाव डालती हैं। परजीवीता तथा परपोषिता ऐसी पारस्परिक क्रिया है, जिसमें एक जाति को लाभ होता है तथा दूसरे को नुकसान। लेकिन ऐसी पारस्परिक क्रियाओं से जिसमें प्रतियोगिता होती है, दोनों जातियों को नुकसान होता है।

प्रतियोगिता : ऐसी पारस्परिक क्रिया जिसमें दोनों को नुकसान होता है, उसे प्रतियोगिता कहते हैं। प्रतियोगिता तब होती

है जब जगह, प्रकाश तथा पोषक तत्त्व जैसे संसाधन की पूर्ति कम होती है। प्रतियोगिता के परिणामस्वरूप, दोनों जातियों की वृद्धि तथा बीज उत्पादन घट जाता है।

प्रतियोगिता सामान्यतया दो प्रकार की होती है: (i) अंतराजातीय, तथा (ii) आंतरजातीय। **अंतराजातीय प्रतियोगिता**, एक ही आवास क्षेत्र में रहने वाले दो अलग जातियों के एकाकीयों के बीच होती है। दूसरी ओर, **आंतरजातीय प्रतियोगिता** एक ही जाति के एकाकियों के बीच होती है। सामान्यतया, आंतरजातीय प्रतियोगिता, अंतराजातीय प्रतियोगिता से ज्यादा उग्र होती है। एक जाति के एकाकीयों की आवश्यकता पूर्णत: समान ही होती है, इसलिए, वे बहुत गहनता से एक दूसरे के प्रतियोगी बनते हैं।

परभक्षण : जातियों के बीच पारस्परिक क्रिया जिसमें भक्ष्य को मारना तथा भोजन कर समाप्त करना संलग्न है, परभक्षण कहलाता है। वह जाति जो दूसरे को खाती है, **परभक्षी** कहलाती है तथा जिसका भक्षण होता है, वह **भक्ष्य** कहलाता है। परभक्षण को सामान्यतया शाक भक्षी, मांसभक्षी की पारस्परिक क्रिया द्वारा, घास-हिरण-बाघ आहार शृंखला द्वारा उद्धृत किया जाता है। उदाहरण के लिए, बाघ, जोकि एक परभक्षी है, वह हिरण (भोज्य) की जनसंख्या पर नियंत्रण रखता है। अगर, परभक्षी की जनसंख्या में वृद्धि होती है, तो यह ज्यादा भक्ष्य को भक्षित कर इसकी जनसंख्या को घटा देता है। भक्ष्य की जनसंख्या में कमी होने पर कुछ भक्षी बुभुक्षित होते हैं तथा कुछ अभिगमन कर जाते हैं और इस प्रकार परभक्षी की जनसंख्या में भी कमी आ सकती है। परभक्षी की जनसंख्या में कमी होने से भक्ष्य की जनसंख्या में वृद्धि होती है क्योंकि उनका भक्षण नहीं होता है। भक्ष्य की जनसंख्या में वृद्धि होने से वे घासों का अति चारण करते हैं, जिससे पुन: उनकी जनसंख्या कम हो जाती है तथा शाक में कमी आने से भक्ष्य की जनसंख्या कम हो जाती है। इसके द्वारा अंतत: परभक्षी की जनसंख्या प्रभावित होती है। इस प्रकार, इन संबधों के द्वारा एक समुदाय के अंदर भक्ष्य-परभक्षी की जनसंख्या स्थायीकृत रहती है।

परजीविता : परजीविता नामक पारस्परिक क्रिया में छोटे आकार की जाति (परजीवी), बड़े आकार की जाति (मेजबान) के अंदर या उसके ऊपर रहती है, जिससे वह भोजन ग्रहण करती है। परजीविता में परजीवी द्वारा भोजन करने के अतिरिक्त वह उसे शरण भी देता है। कस्क्यूटा (अमरबेल), लोरेंथस (मिस्टलेटो), भिस्कम तथा रिफलेसीया जैसे पौधे परजीवी पौधे हैं, जो कि अन्य पुष्पीय पौधों पर रहते हैं।

परजीवी, मेजबान की जनसंख्या वृद्धि को प्रभावित कर सकते हैं। जीवन-चक्र को कम करते हैं। मेजबान को कमजोर करते हैं तथा प्रजनन को इस हद तक कम करते हैं कि उनमें नपुंसकता आ जाती है।

ऐसे परजीवी जो मेजबान के बाहर रहते हैं, **बाह्य-परजीवी** या बाहरी परजीवी कहलाते हैं (जैसे, किलनी, चिंचड़ी तथा लाइस)। वे सामान्यतया मेजबान की त्वचा तथा रोम से जुड़े रहते हैं। उनमें से कुछ चूषक, कलैंप, चिपकने वाले सतहों को खाने के लिए, काटने के लिए, डसने के लिए जड़नुमा उभारों का उपयोग करते हैं। मेजबान भी अपने आपको परजीवी से सुरक्षित रखने के लिए सुरक्षात्मक प्रक्रिया अपनाता है, जैसे कि, पैर विहीन मेजबान में।

परजीवी भी परभक्षी की तरह, मेजबान जातियों की जनसंख्या को नियंत्रित रखता है, लेकिन वे सामान्यतया मेजबान विशिष्ट होते हैं तथा परभक्षी की तरह कोई पसंद या विकल्प उनमें नहीं होता है। वे आकार में छोटे होते हैं तथा परभक्षी की तुलना में उनमें ज्यादा जैविक प्रजनन क्षमता होती है। परजीवी वितरण तंत्र कमजोर होता है तथा मेजबान तक पहुंचने के लिए तथा उन पर आक्रमण करने के लिए विशिष्ट संरचना की आवश्यकता होती है। दूसरी ओर, परभक्षी काफी घुमंतु प्रवृत्ति वाले तथा भोज्य को पकड़ने में सक्षम होते हैं। नए अधिग्रहण करने वाले परभक्षी तथा परजीवी, पुराने की तुलना में ज्यादा खतरनाक होते हैं क्योंकि, ये ज्यादा परिचित होते हैं तथा प्रभावित होने वाली जातियों में अपने आपको अनुकूलित कर चुके होते हैं।

17.3 जैविक समुदाय संगठन (Biotic Community Organisation)

विभिन्न प्रजातियों की जनसंख्या जो एक ही क्षेत्र में रहती है तथा एक-दूसरे के साथ परस्पर क्रिया करती है, जैविक समुदाय कहलाती है। वस्तुत: यह विभिन्न जातियों की विविध प्रकार की जनसंख्या का साहचर्य या समाहार है। एक समुदाय में विभिन्न प्रजातियों के कई जीव रहते हैं, जिसकी अलग जाति संरचना होती है। इनकी संरचना जातियों की पारस्परिक क्रिया के कारण एक दूसरे से क्रिया, पर्यावरणीय संबंध तथा अभिलक्षण होता है। इनके गतिक सत्ता होने के कारण यह लघु तथा लंबे समय अवधि, दोनों पैमाने पर बदल जाते हैं। जैविक वृद्धि में समुदायों की उपलब्धि, स्थानीय संरचना तथा कालिक बदलाव के कारण होती है। प्रमुख समुदाय अभिलक्षणों का वर्णन नीचे किया गया है।

समुदाय अभिलक्षण (Community Characteristics)

जाति रचना : किसी समुदाय में वर्ष भर उपस्थित पौधों की कुल संख्या की गणना, जाति रचना कहलाती है। किसी भी

समुदाय की जाति रचना, दूसरे समुदाय से भिन्नता दर्शाती है। यहां तक की, एक ही समुदाय के पादप जातियों में ऋतुओं के अनुसार परिवर्तन हो सकता है।

प्रभाविता : जैविक समुदाय में विभिन्न जातियों की जनसंख्या रहती है। किसी भी समुदाय में एक या अधिक जातियों की बाहुल्यता रहती है तथा वे अपनी प्रमुखता दर्शाते हुए अन्य जातियों की संख्या तथा जीवभार उत्पादन को प्रभावित करती हैं। ये प्राणी वितरण का निर्धारण भी करती हैं, उदाहरण के तौर पर, स्थलीय समुदायों में सामान्यत: लंबे वृक्ष प्रभावी होते हैं। यहां तक कि पशु चारण, छोटे शाकीय पौधों समुदाय को प्रभावित करते हैं। समुदाय का नामकरण सामान्यत: प्रभाविता के आधार पर किया जाता है। उदाहरण के लिए वन समुदाय, जिसमें चीड़ वृक्ष प्रमुख होते हैं, चीड़ वन कहलाते हैं। घने वृक्षों वाले क्षेत्र को वन समुदाय तथा ऐसे क्षेत्र जिनमें वृक्ष दूर-दूर फैले होते हैं, उसे अरण्य भूमि समुदाय कहते हैं। घास स्थल, ऐसे समुदाय का प्रतिनिधित्व करते हैं जिसमें अन्य पादपों के ऊपर घास की प्रमुखता रहती है। समुदायों का नामकरण महत्त्वपूर्ण पर्यावरणीय कारकों से भी निर्धारित किया जाता है, जैसे कि, मरुस्थल समुदाय जोकि शुष्क स्थिति को दर्शाता है, समुद्री समुदाय, जोकि लवणीय पारिस्थिति में पाया जाता है।

रूपाकृति विज्ञान तथा स्तरण : समुदाय को पहले रूपाकृति विज्ञान द्वारा पहचाना जाता है। *रूपाकृति विज्ञान* किसी समुदाय की बाह्य उद्भव या दृष्टि को कहते हैं। बाह्य उद्भव वनस्पति के प्रभावी प्रजातियों की उदग्र बनावट एवं उसके स्थापत्यकला के योग का प्रभाव है। उदाहरण के लिए वन का उच्च रूपाकृति घासस्थल निम्न रूपाकृति से पूरी तरह भिन्न होता है। यद्यपि, अनेक समुदायों की रूपाकृति एक जैसी होने के बावजूद भी उनकी प्रजाति बनावट तथा प्रबलता के आधार भिन्न होते हैं (जैसे अनेक वन प्रकार)।

समुदाय का स्तरण वनस्पतियों के स्तरण को दर्शाता है। विभिन्न स्तर विभिन्न प्रजातियों से अध्यासित रहते हैं। उदग्र स्तरण पौधे समुदाय को भौतिक बनावट प्रदान करते हैं, जिसमें विभिन्न प्रकार के पौधे तथा पशु रहने के अनुकूल होते हैं। एक विकसित वन पारिस्थितिकी तंत्र, उच्चस्तरीय बनावट को दर्शाता है, जो वनस्पतियों के कई स्तरों से बना होता है। इन स्तरों में आवरण (कैनोपी), अंत:स्तरीय वृक्ष स्तर, झाड़ियों के स्तर एवं शाक के स्तर होते हैं। उसी तरह एक तालाब समुदाय में, सतह पर रहने वाला एवं नीचे रहने वाला समुदाय होता है। उदग्र स्तरण में प्रजातियों की संख्या घटती है तथा विभिन्न प्रकार के पौधों के द्वारा आवास स्थलों के संसाधनों का सक्षमता से उपयोग होता है। जलीय पारिस्थितिकी तंत्र में सतह से लेकर नीचे तक प्रकाश की पहुंच, तापमान एवं ऑक्सीजन की उपस्थिति के आधार पर स्तरण होता है।

जाति विविधता : किसी भी समुदाय की विविधता का निर्धारण, उसकी जनसंख्या की विभिन्नता के आधार पर किया जाता है। कुछ समुदायों, जैसे कि, उष्णकटिबंधीय वर्षा प्रचुर वन तथा प्रवाल भित्ति समुदाय, अत्यधिक विविधता वाले होते हैं, जिनके प्रत्येक पोषण स्तर पर कई विभिन्न प्रकार की जातियां जीवनयापन करती हैं। अन्य समुदायों, जैसे कि मरुस्थल या ज्वारनदमुख में, अपेक्षाकृत कुछ ही जातियां रह सकती हैं। किसी समुदाय में उपस्थित जातियों की कुल संख्या, जातियों की अनुपातिक प्रचुरता तथा उनकी प्रमुखता, पारिस्थितिकी विविधता को दर्शाती है। किसी भी समुदाय में जातियों की संख्या, जाति समृद्धता को दर्शाती है। जातियों के बीच, एकक (वैयक्तिक) वितरण, जाति समता या जाति साम्यता कहलाती है। सभी जातियों की एकक जाति समृद्धि तथा जाति साम्यता के गुणन को जाति विविधता कहते हैं। संख्या बराबर हो तो जाति साम्यता बढ़ जाती है। विविधता, जैविक समुदाय की महत्त्वपूर्ण कार्यात्मक इकाई है। आप अध्याय 20 में विविधता से जुड़े कई पहलुओं को पढ़ेंगे।

प्रमुख तथा जोड़ने वाली जातियां : वह जातियां जो किसी समुदाय में प्रचुरता तथा जीवभार की अल्पता के वावजूद समुदाय अभिलक्षणों पर प्रभाविता दर्शाती हैं, **प्रमुख जातियां** (keystone species) कहलाती हैं। ये जातियां अन्य जातियों की अनुपातिक प्रचुरता को नियंत्रित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। केवल कुछ ही जातियां, प्रमुख जातियों की तरह कार्य करती हैं तथा अन्य क्रांतिक कड़ी जातियों के रूप में कार्य करती हैं। कवकमूल कवकें, मृदा तथा विभिन्न अवशेषों से पोषक तत्त्वों के उत्सर्जन का पारिस्थितिक तंत्र में योजन कर क्रांतिक कड़ी जातियों के रूप में कार्य करती है। कुछ क्रांतिक कड़ी जातियां, अन्य जातियों के लिए भोजन व्यवस्था, परागण, बीजों तथा फलों के परिक्षेपण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

उष्णकटिबंधीय वर्षा प्रचुर वनों में क्रांतिक कड़ी जातियां बहुतायत में पाई जाती हैं, क्योंकि ज्यादातर वनस्पतियों का परागण, बीज वफल निक्षेपण प्राणियों पर निर्भर करता है। उदाहरण के लिए, उष्णकटिबंधीय वर्षा प्रचुर वनों मे, अंजीर की विभिन्न जातियां क्रांतिक कड़ी जातियां हैं। ये प्रचुर मात्रा में फलों का उत्पादन करती हैं। भोजन के अभाव के समय, ये फल, बंदरों, पक्षियों, चमगादड़ों, तथा अन्य कशेरुकीयों द्वारा खाए जाते हैं, इस प्रकार, अंजीर वृक्षों को सुरक्षित रखने से, उनके ऊपर निर्भर रहने वाले प्राणियों का भी संरक्षण होता है।

संक्रमिका तथा कोर प्रभाव : दो या उससे अधिक विविध समुदायों के मध्य संक्रमण क्षेत्र को **संक्रमिका** (ecotone) कहते हैं जैसे घासस्थल तथा वन के बीच के क्षेत्र। समुद्री कोमल तल प्राणियों तथा कठोर तल प्रणियों के बीच के क्षेत्र, संक्रमिका कहलाते हैं। संलग्न समुदाय क्षेत्रों की तुलना में यह एक संकड़ी क्षेत्र है। संक्रमिका क्षेत्र में अतिव्यापी समुदाय के जीव पाए जाते हैं तथा ये अपनी संक्रमिका तक ही सीमित रहते हैं। संक्रमिका क्षेत्र में, जातियों की संख्या तथा जनसंख्या घनत्व, उनसे संलग्न समुदायों की अपेक्षा ज्यादा होता है। समुदाय संगम पर जीवों की वर्धित प्रकार तथा घनत्व की प्रवृत्ति को **कोर प्रभाव** कहते हैं। वे जैविक जातियां, जो अपना अधिकतम समय, समुदायों के संगम पर बिताती हैं, **कोर जातियां** कहलाती हैं। स्थलीय, समुदायों में, कोर प्रभाव, पक्षी जनसंख्याओं में अधिक लागू होता है।

पौधे-समुदाय का विश्लेषण (Analysis of Plant Communities)

समुदाय के अभिलक्षण का विश्लेषण इस प्रकार किया जाता है (क) अंत: समुदायिक एवं अंतरसामुदायिक विभिन्नताओं को रिकार्ड करना एवं (ख) समुदाय का नामांकरण एवं वर्गीकरण। सामुदायिक विश्लेषण के अंतर्गत एक समुदाय के या दृच्छिक नमूने के तौर पर लिए गए प्लॉट में (***क्वाडरेट*** भी कहा जाता है) विभिन्न लक्षणों की माप करना आता है। नमूने वाले प्लॉट में किए गए माप को सही सतह से समाहित करने से पूरे समुदाय के अभिलक्षण का पता लगता है। विभिन्न समुदाय के अभिलक्षण को इस प्रकार वर्गीकृत किया गया है:

(i) **विश्लेषक लक्षण**, जो कि नमूने वाले प्लॉट में शीघ्र ही मापा या देखा जाता है।

(ii) **कृत्रिम लक्षण**, जो कि विश्लेषक लक्षणों को मापने के बाद पाया जाता है।

विश्लेषक अभिलक्षण या तो गुणात्मक या मात्रात्मक हो सकता है। गुणात्मक विश्लेषक अभिलक्षण अमात्रात्मक परीक्षण पर आधारित है। उदाहरण के लिए प्रजातियों की बनावट एवं वनस्पतियों का स्तरण। दूसरी तरफ मात्रात्मक विश्लेषक लक्षण, जैसा कि नाम से स्पष्ट है, इसे मापा जाता है। प्रमुख मात्रात्मक विश्लेषक लक्षण हैं।

(i) **आवृत्ति** (यह प्लॉट की संख्या पर आधारित है जिसमें प्रजातियां रहती हैं, यह इसके क्षेत्र में फैलाव को प्रदर्शित करते हैं)

(ii) **विविधता** (व्यक्तियों की संख्या प्रति इकाई क्षेत्र में, यह प्रजातियों की समानुपातिक प्रचुरता दर्शाती है)

(iii) **आवरण** (प्रजाति के द्वारा प्रतिशत भूमि क्षेत्र में लिया गया क्षेत्र, यह प्रभाव दर्शाता है। प्रजातियों के क्षेत्र आवरण को आधारी आवरण कहा जाता है, तनों के द्वारा लिया गया जगह आधार, या आवरण के द्वारा घिरा क्षेत्र, मुकुट आवरण कहलाता है)

(iv) **जैव भार** (जीवित पदार्थों की प्रति इकाई क्षेत्र में मात्रा प्रजाति के विकास को दर्शाता है (जैव भार तथा प्रजनन के बारे में विस्तारपूर्वक आप अध्याय 18 में पढ़ेंगे)

(v) **पत्ते का आकार** (प्रजातियों की प्रतिशता जिनमें विभिन्न आकार की पत्तियां पायी जाती हों, जो कि उपस्थिता पर्यावरणीय परिस्थिति में वनस्पति की अनुकूलता को दर्शाती है।

कृत्रिम लक्षण (जैसे उपस्थिति एवं स्थिरता) यह फैलाव के पैटर्न एवं विभिन्न प्रजातियों का सभी जगहों के द्वारा, जहां समुदाय है वहां निष्पादन को दर्शाता है।

17.4 अनुक्रमण (Succession)

जैविक समुदाय प्राकृतिक तौर पर गतिशील है तथा समय के साथ परिवर्तन दर्शाता है। एक क्षेत्र में समय के साथ समुदायों के प्रतिस्थापन को **पारिस्थितिक अनुक्रमण** कहते हैं। उस परिवर्तन में अजैविक तथा जैविक अवयव संलग्न रहते हैं। अनुक्रमण, समुदाय द्वारा नियंत्रित परिघटना है, जो कि जीवित प्राणियों के क्रिया-कलापों द्वारा होती है।

अनुक्रमण के समय, पादप तथा प्राणी समुदायों में परिवर्तन होता है। यद्यपि पादप अनुक्रमण आसानी से दृष्टिगोचर होता है। अनुक्रमण के दो आधारभूत प्रकारों में अंतर स्पष्ट किया जा सकता है। पहले से अनध्यासित जगहों, जैसे कि चट्टान या हिमानी हिमोढ़ पर होने वाले अनुक्रमण को **प्राथमिक अनुक्रमण** कहते हैं। द्वितीयक अनुक्रमण, जो कि ऐसे क्षेत्रों में होता है जहां प्राकृतिक वनस्पति को या तो नष्ट कर दिया गया हो या उसे हटा दिया गया हो। उदाहरण के लिए, अग्नि तथा काष्ठ-कर्तन से नष्ट हुए वनों में प्रारंभिक अवस्था में शाकीय पादपों का अध्यासित होना। वैसे क्षेत्रों में समुदायों का पुनःउपस्थित होना तथा स्थापित होना, **द्वितीयक अनुक्रमण** कहलाता है।

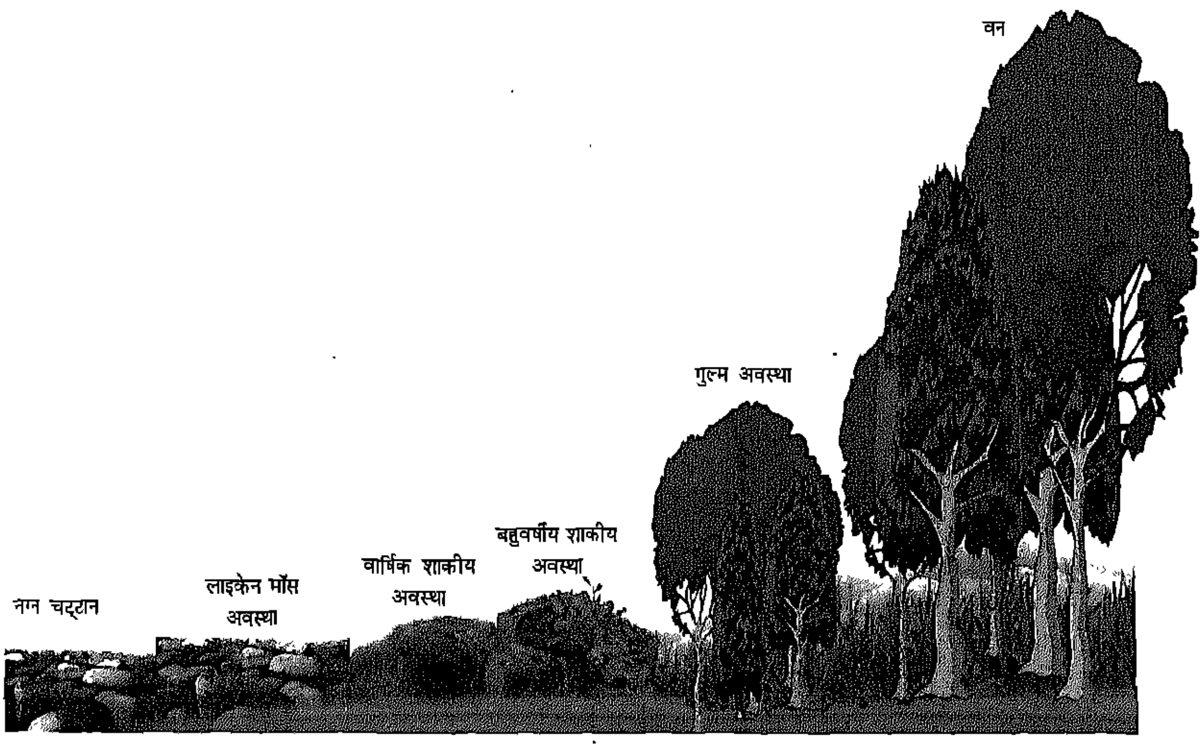
ऐसे पादप, जो प्रारंभ में नग्न जमीन को आक्रमित करते हैं, **पायोनीयर जाति** कहलाते हैं। कई पायोनीयर जातियां इकट्ठा होकर **पायोनीयर समुदाय** बनाती हैं। सामान्यतया, पायोनीयर जातियों में वृद्धि दर अधिक होती है लेकिन, उनकी जीवन अवधि कम होती है। समय के साथ, पायोनीयर समुदाय अलग जाति रचना वाले दूसरे समुदाय द्वारा प्रतिस्थापित होते हैं। यह दूसरा समुदाय, एक तीसरे समुदाय द्वारा प्रतिस्थापित होता है और इसी तरह यह क्रम जारी रहता है। अनुक्रमण के क्रम में, विभिन्न

समुदायों या चरणों को, जो कि मॉस, शाक, झाड़ी तथा वृक्षों द्वारा एक-दूसरे को प्रतिस्थापित करने की प्रक्रिया की दौड़ से गुजरते रहते हैं, उसे क्रम की प्रावस्था या **क्रमकी समुदाय** (seral stages) कहते हैं। ऐसी पादप जाति जो अनुक्रमण के क्रम में देर से स्थापित हो जाती है उसे **विलंबित अनुक्रमणीय जाति** (late successional species)कहते हैं। ये जातियां धीमी-गति से वृद्धि करती हैं, तथा इनकी जीवन अवधि ज्यादा होती है। अनुक्रमण की सर्वोच्च प्रावस्था में चरम समुदाय आते हैं। **चरम समुदाय** (climax community) स्थायी भी होता है तथा जाति रचना में कोई परिवर्तन तब तक नहीं दर्शाता है, जब तक कि पर्यावरणीय स्थिति में कोई बदलाव न आ जाए। अनुक्रमण के क्रम में समुदायों की प्रावस्थाएं जो एक के बाद दूसरे द्वारा अध्यासित होती है, उसे **क्रमक** (sere) कहते हैं।

तालाब तथा झीलों जैसे जलीय तंत्रों में होने वाले अनुक्रमण को **जलारंभी अनुक्रमण** कहते हैं तथा कम नमी वाले स्थलीय भागों में (उदाहरण के लिए चट्टान, बालू) होने वाले अनुक्रमण को **शुष्कतारंभी** कहते हैं। इन दो प्रकार के अनुक्रमण को नीचे वर्णित किया गया है।

नग्न चट्टानों पर अनुक्रमण (Succession on a Bare Rock-Xerarch)

लाइकेन जैसे निम्नस्तरीय पौधे नग्न चट्टानों पर एक क्रस्ट का निर्माण करते हैं तथा अपने जैविक अवशेषों से तथा पत्थरों के रासायनिक अपघटन में तेजी लाकर मृदा का निर्माण प्रारंभ कर देते हैं। लाइकेन के बाद की प्रावस्था मॉस की आती है, जो कि बहते हवा के कणों को संग्रहित कर मृदा जमाव की प्रक्रिया में तेजी लाता है। मॉस झुंड में वृद्धि करते हैं तथा ये लाइकेन के साथ मिलकर अधःस्तर के ऊपर एक चटाईनुमा आकृति का निर्माण करते हैं। लाइकेन तथा मॉस जो कि नग्न चट्टानों के ऊपर स्थापित होता है उसे पायोनीयर समुदाय कहते हैं। लाइकेन मॉस चटाई में मृदा कणों का जमाव होने से शाकीय पौधों के बीजों, जो कि इसमें बिखेरे जाते हैं, उनके अंकुरण के लिए उपयुक्त अधःस्तर उपलब्ध कराते हैं। चट्टानों पर नवनिर्मित मृदा के आंतरनिवास में उच्चस्तरीय पौधों के बीच अंकुरित होते हैं। तथा सफलतापूर्वक वृद्धि करते हैं (चित्र 17.7)। धीरे-धीरे ज्यादा मृदा का जमाव होता है तथा शाकीय जाति, झाड़ियों तथा वृक्षों के आगमन के लिए रास्ता बनाता जाता है। मृत प्ररोह तथा

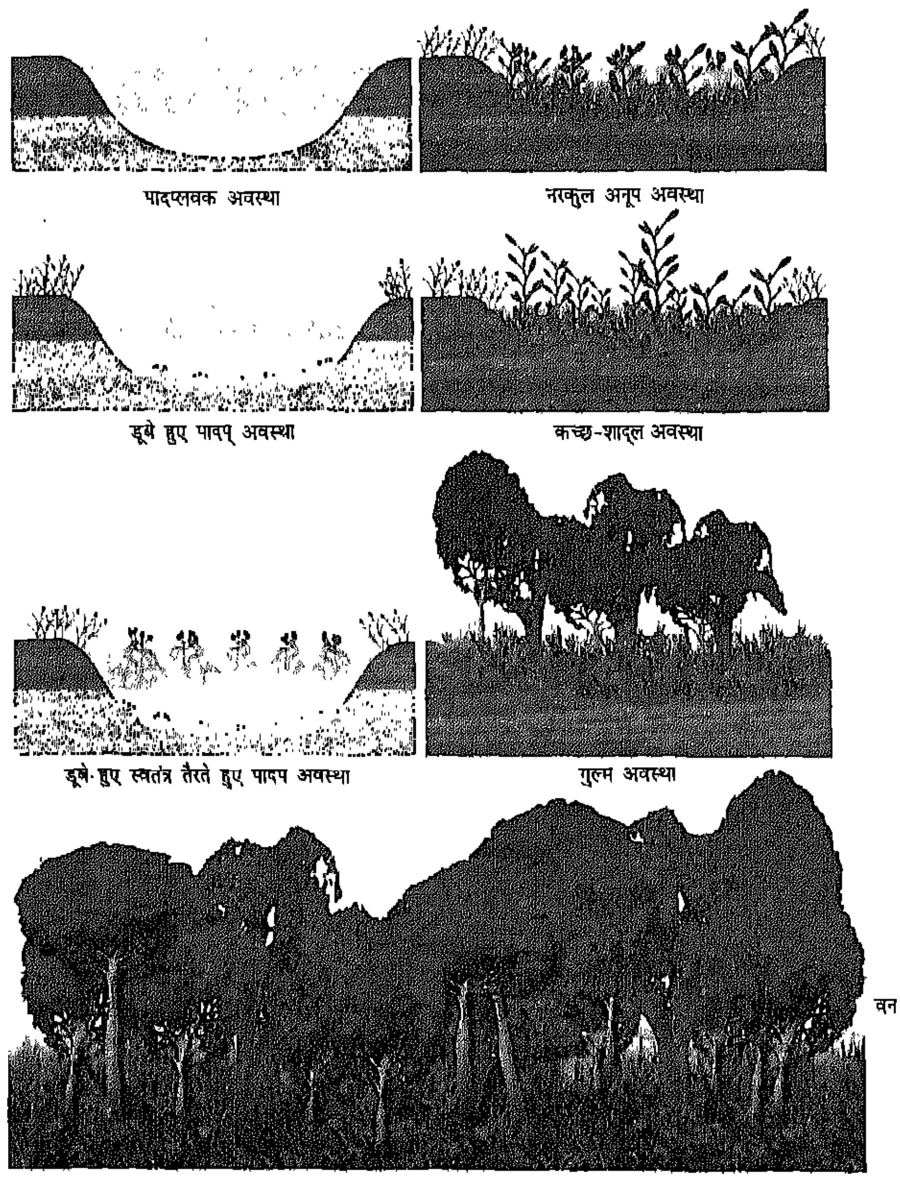


चित्र 17.7 नग्न चट्टान पर शुष्कतारंभी अनुक्रमण

गिरी हुई पत्तियां जमा होती जाती हैं तथा मृदा को ज्यादा ताकतवर बनाती हैं। समय के साथ क्रम की प्रावस्थाओं से गुजरते हुए, चरम समुदाय पूर्णतः स्थापित हो जाता है। जलवायु परिस्थितियां तथा मृदा निर्माण के आधार पर चरम समुदाय सामान्यतया वृक्षों द्वारा प्रभावी होता है। पायोनीयर से चरम प्रावस्था को प्राप्त करने के क्रम में जैविक समुदायों में होने वाले परिवर्तनों को सैकड़ों वर्ष लग सकते हैं।

जलीय पारिस्थिति में अनुक्रमण (जलारंभी) (Succession in Aquatic Environment-Hydrarch)

पारिस्थितिक अनुक्रमण तालाबों तथा झीलों जैसे जलीय तंत्रों में भी होता है। जलीय तंत्रों में गाद का जमाव आसानी से होता है, क्योंकि नजदीकी आस-पास के क्षेत्रों से मृदा अपरदन होता रहता है। भूमि के खिसकने से तथा बांधों के निर्माण होने से नदियां अवरुद्ध होती हैं, जिससे नई झीलों का निर्माण होता है, जहां



चित्र 17.8 एक तालाब में जलारंभी अनुक्रमण

जलीय जातियों के आक्रमण शुरू हो जाते हैं तथा जलारंभी अनुक्रमण प्रारंभ हो जाता है (चित्र 17.8)। तालाब में, प्लवी पाद तथा प्राणी प्लवक मिलकर पायोनीयर समुदाय का निर्माण करते हैं। डूबे हुए वे जलीय पौधे, जिनकी जड़ें कीचड़ से निकलती हैं वे तालाब में दूसरी कॉलोनी की प्रावस्था को दर्शाते हैं। इन पादपों के मृत अवशेष तालाब के निचले तलों पर जमा हो जाते हैं। इसके अलावा, तैरने वाले पौधों की जातियों का आक्रमण तालाब में होता है। विगादीकरण के लगातार होने से, तालाब का तल धीरे-धीरे ऊपर आता है तथा जल स्तर छिछला होता जाता है तथा उसमें पोषक तत्वों की प्रचुरता बढ़ती जाती है। परिणामस्वरूप, जड़युक्त, जल से बाहर आने वाले पौधे, जिनमें एरीयल पत्तियां पाई जाती हैं जैसे कि रीड्स (reeds), वे तालाबों में निवहन होने में सक्षम होते हैं। इसके बाद ड्रैगन फ्लाई, क्रस्टेशीयाई तथा पौधों की वैसी जातियां जो ज्यादा जड़युक्त होती हैं, उनका आगमन होने लगता है। इस प्रकार तालाब की जाति रचना समय के साथ बदलती रहती है। गाद के जमाव में वृद्धि होने से तथा तैरने वाले एवं जड़युक्त जातियों से उत्पन्न मृत कार्बनिक पदार्थों के जमाव से तालाब ज्यादा छिछला होता जाता है और धीरे-धीरे स्थलीय आवास में रूपांतरित हो जाता है। अंततः घासों, झाड़ियों तथा वृक्षों जैसी जैवस्थलीय जातियां तालाब के भाग में उपनिवेशन करती हैं तथा चरम समुदाय को स्थापित करती हैं। स्थलीय पादपों द्वारा निवहभवन तालाब के किनारे से केंद्र की ओर होता है।

समुदाय अभिक्षणों में परिवर्तन तथा चरम (Change in Community Characteristics and Climax)

जातियों तथा समुदायों का वास्तविक क्रम जो कि प्राथमिक या द्वितीय अनुक्रमण के समय दिखता है, वह आवास की परिस्थिति के साथ परिवर्तित होता है। क्रम की प्रावस्थाएं बाद की अनुक्रमणीय या चरम अवस्थाओं से भिन्नता दर्शाती हैं जो कि, संरचना तथा कार्यों के आधार पर निर्भर करता है (सारणी 17.2)। एकाकीयों के औसत आकार में सामान्यतया बढ़ोत्तरी होती है तथा क्रमकी समुदाय की तुलना में चरम समुदाय में समुदाय संरचना ज्यादा जटिल हो जाती है। अनुक्रमण की प्रावस्थाओं में आहार-जाल ज्यादा जटिल हो जाता है। जैसे-जैसे समुदाय चरम प्रावस्थाओं की ओर अग्रसर होता है वैसे-वैसे ऊर्जा के उपयोग की दक्षता तथा पोषक तत्वों के संरक्षण की दक्षता में बढ़ोत्तरी होती जाती है।

चरम प्रावस्थाओं की जाति रचना का निर्धारण क्षेत्रीय जलवायु के साथ-साथ मृदा की स्थानीय परिस्थिति, टोपोग्राफी तथा जल की उपलब्धता के आधार पर निर्धारित होता है। चरम प्रावस्था वनस्पति की उच्चतर सीमा को दर्शाती है तथा उससे जुड़े हुए जंतुओं की, जो कि दी गई पर्यावरणीय स्थिति को दर्शाती है।

सारणी 17.2 : पारिस्थितिकी अभिलक्षण जोकि अनुक्रमण के समय परिवर्तित होता है

अभिलक्षण	स्तर	
	क्रमकी	चरम
समुदाय संरचना		
एकाकीयों का आकार	छोटा	बड़ा
पर्यावरणीय निकेत	कुछ सामान्य	कई विशिष्ट
समुदाय संगठन		
समुदाय कार्य		
आहार श्रृंखला तथा भोजन	सामान्य	जटिल
ऊर्जा उपयोग की दक्षता	कम	उच्च
पोषक तत्वों का संरक्षण	कम	उच्च

सारांश

जीव, पर्यावरण के साथ-साथ अन्य जीवों के साथ भी पारस्परिक क्रिया करता है। जीवों तथा पर्यावरण के भौतिक कारकों, दोनों का आपस में प्रभाव होता है। जनसंख्या का अध्ययन, इसके घनत्व, जन्म दर तथा मृत्यु दर जैसे लक्षणों के द्वारा किया जाता है। सजीवों की दुनियां में सुव्यवस्थित समूह जैसे अलग-अलग जनसंख्या तथा समुदाय होता है। एक क्षेत्र में अलग-अलग जातियों द्वारा जनसंख्या का निर्माण होता है। जनसंख्या के सदस्य आपस में ही संकरण करने के लिए सक्षम होते हैं। जबकि जीने के लिए संघर्ष करने वाले कुछ अलग-अलग समूहों का पर्यावरण में उतार-चढ़ाव के कारण विलोपन हो जाता है। जनसंख्या के साथ केवल अपनी उत्तरजीविता बनाए रखने में सक्षम होते हैं। जब जनसंख्या के कुछ अलग-अलग समूह वातावरण के उतार-चढ़ाव से समाप्त के लिए संघर्ष करते हैं, फिर भी जनसंख्या का समूह जिंदा रहता है।

जनसंख्या वृद्धि वो नमूने : J -आकृति पक्ष S-आकृति पक्ष बनाती है। ये वृद्धि नमूने संख्या की तीव्र वृद्धि तथा तीव्र कमी पर आधारित होती हैं। जनसंख्या आकार को घनत्व या संख्या में मापा जाता है। यह

जाति की प्रजनन क्षमता द्वारा प्रभावित होता है। जनसंख्या वृद्धि की एक सीमा होती है, जोकि वहन क्षमता द्वारा व्यक्त की जाती है तथा जिसका निर्धारण पर्यावरणीय प्रतिरोधों के द्वारा होता है। एक क्षेत्र की विभिन्न जातियों की जनसंख्या उसके जैविक समुदाय को दर्शाती है। एक क्षेत्र में समुदायों के स्तर विन्यासित होते हैं। समुदायों का अध्ययन, प्रचुरता, प्रभाविता, स्तरविन्यास, तथा पारस्परिक क्रियाओं जैसे लक्षणों के द्वारा होता है। दो विभिन्न समुदायों के बीच के परिवर्तनीय क्षेत्र को संक्रामिका (इकोटोन) कहते हैं। समुदायों के सदस्य, भोजन, प्रजनन तथा सुरक्षा के लिए एक दूसरे पर निर्भर रहते हैं। भोजन संबंध को आहार शृंखला तथा पोषण रीति द्वारा दर्शाया जाता है। पौधों के प्रजनन के लिए परागण में कीटों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। शत्रुओं द्वारा पहचाने जाने से बचने के लिए जीव छद्मावरण बना लेते हैं। शत्रुओं को डराने के लिए कुछ प्राणी, यहां तक कि परभक्षी को अनुहरित करता है। कीटों तथा गिरगिट द्वारा खाए जाने से बचने के लिए तितलियों द्वारा परिवेश के अनुसार अनुहरण करना सामान्य बात है। जैविक समुदाय, विभिन्न जनसंख्या की अनुपस्थिति के अतिरिक्त भी कई प्रकार की पारस्परिक क्रियाएं दर्शाते हैं। जाति के सदस्य पर, कुछ का सकारात्मक प्रभाव तथा अन्य का बुरा प्रभाव पड़ता है। ये पारस्परिक क्रियाएं सहयोग तथा प्रतियोगिता पर आधारित होती हैं।

एक साथ रहने वाले जीव आपसी सहयोग द्वारा लाभान्वित हो सकते हैं या दूसरे को प्रभावित किए बिना, एक जीव लाभान्वित हो सकता है। जबकि, कभी-कभी एक जीव (भक्षी) दूसरे को प्रभावित कर सकता है। परजीविता ऐसा संबंध है जिसमें परजीवी मेजबान को उसी तरह से प्रभावित करता है। सफलतापूर्वक जीवन व्यतीत करने के लिए, परजीवियों में सामान्य जीवन चक्र होता है तथा गतिहीनता तथा तंत्रिका परावर्तन का आभाव रहता है। इसमें कई गुणा वृद्धि होती है। दूसरी ओर, मेजबान जीवों में निश्चित सुरक्षात्मक उपाय होते है, जैसे, घातक अम्लों का उत्सर्जन, बाहरी तत्त्वों को परिग्रहण करने वाली कोशिकाएं।

समुदायों का आपस में तथा पर्यावरण के साथ पारस्परिक क्रिया द्वारा, परिवर्तन होता है। ये परिवर्तन क्रम से व्यवस्थित होते हैं तथा एक समुदाय का दूसरे द्वारा स्थानांतरण होता है। यह, बंजर क्षेत्र को पुरोगामी समुदायों द्वारा अतिक्रमित करता है, जोकि दूसरे समुदायों के लिए जगह बनाता है। एक समुदाय का कई वर्षों के बाद ज्यादा उपयुक्त समुदाय द्वारा प्रतिस्थापन से चरम् समुदाय का निर्माण होता है। चरम समुदाय तब तक अपना स्थायीत्व बनाए रखता है जब तक कि पर्यावरण परिवर्तन विहीन होता है।

अभ्यास

1. जनसंख्या तथा समुदाय के बीच अंतर स्पष्ट कीजिए।
2. एक जनसंख्या के सदस्य दूसरी जनसंख्या के साथ संकरण नहीं करते हैं, क्यों?
3. जनसंख्या वृद्धि की J-आकृति की व्याख्या कीजिए।
4. जनसंख्या वृद्धि की J-आकृति की S-नुमा आकृति के साथ तुलना कीजिए।
5. जैविक समुदाय को परिभाषित करें। मानव जनसंख्या के लिए उपयोग किए जाने वाले शब्द 'समुदाय' से यह किस तरह भिन्न है?
6. रिक्त-स्थानों को भरिए।
   (i) एक जाति के एकाकी के समूह ———— कहलाते हैं।
   (ii) ऐसा संबंध जहां एक जीव को लाभ होता है तथा दूसरे जीव को न तो लाभ होता है न ही नुकसान होता है उसे ———— कहते हैं।
   (iii) प्राणीयों का शिकार करने वाले जीव ———— कहलाते हैं।
   (iv) दो जातियों का संबंध जहां दोनों जातियां लाभान्वित होती हैं ———— कहलाते हैं।
7. एक जैविक समुदाय का किस प्रकार नाम रखा जाता हैं। उदाहरण दें।

8. उस वक्तव्य को चुनिए, जो कि सहभोजिता की व्याख्या करता हो।
   (क) एक जीव लाभांवित होता है।
   (ख) दोनों जीव लाभांवित होते है।
   (ग) एक जीव लाभांवित होता है, दूसरे पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।
   (घ) एक जीव लाभांवित होता है, तथा दूसरे पर प्रभाव पड़ता है।
9. समुदाय की व्याख्या इस तरह की जा सकती है कि यह ——————— का समूह है।
   (क) एक ही तरह के एकाकियों (ख) विभिन्न प्रकार के एकाकियों
   (ग) एक जनसंख्या के एकाकी (घ) विभिन्न जातियों की जनसंख्या
10. परजीवी की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है कि वह जीव, जो कि ——————— पर निर्भर रहता है।
   (क) भोजन के लिए दूसरे (ख) आश्रय के लिए दूसरे
   (ग) भोजन तथा आश्रय, दोनों के लिए दूसरे (घ) प्रजनन् के लिए दूसरे
11. निम्नलिखित के लिए उचित शब्द दीजिए:
   (क) एक क्षेत्र में रहने वाली एक ही जाति के एकाकियों के लिए
   (ख) एक क्षेत्र के विभिन्न जाति के एकाकियों के लिए
   (ग) ऐसे जीव, जो मृत पौधों तथा प्राणियों पर क्रिया करते हैं
   (घ) वह जीव, जो मृत प्राणियों का भोजन करता है
12. निम्नलिखित में आप कैसे अंतर स्पष्ट करेंगे?
   (क) संक्रमिका तथा कोर-प्रभाव
   (ख) कीस्टोन जाति तथा क्रांतिक जाति
   (ग) बाह्य परजीवी तथा अंतः परजीवी
   (घ) सहभोगी तथा सहजीवी
   (ङ.) छद्मावरण तथा अनुहरण
   (च) प्राथमिक अनुक्रमण तथा द्वितीय अनुक्रमण
   (छ) पायोनियर समुदाय तथा चरम समुदाय
13. जीवों में अनुहरण का उदाहरण दीजिए।
14. परजीवी के अन्य विशिष्ट लक्षणों को लिखिए।
15. लंबी अवधि में परभक्षण, किस तरह लाभदायक है? व्याख्या कीजिए।
16. नंगे चट्टानों पर अनुक्रमण की प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।
17. स्थलीय तथा जलीय तंत्रों के अनुक्रमण में किस प्रकार अंतर होता है? मुख्य बिंदु दीजिए।
18. अनुक्रमण के दौरान क्रम की अवस्था तथा चरम समुदाय के बीच के अंतर की व्याख्या कीजिए।

अध्याय 18

पारिस्थितिक तंत्र : संरचना एवं कार्य

हमने अध्याय 16 में सीखा है कि पारिस्थितिक तंत्र प्रकृति का अंग है, जहां जीव आपस में तथा अपने भौतिक वातावरण के साथ पारस्परिक क्रिया करते हैं। **पारिस्थितिक तंत्र** (ecosysem) शब्द सर अर्थर टांसले ने सन् 1835 में प्रतिपादित किया। पारिस्थितिक तंत्र आकार के अनुसार परिवर्तित होता है, जैसे कि एक छोटा तालाब या एक बड़ा वन। इसको दृष्टिभूमि की स्वनियंत्रित तथा स्वपोषित इकाई भी कह सकते हैं। प्रकृति में पारिस्थितिक तंत्र को दो प्रमुख वर्गों, स्थलीय तथा जलीय तंत्रों में विभाजित किया जा सकता है। वन, घासस्थल, मरुस्थल इत्यादि स्थलीय पारिस्थितिक तंत्रों के उदाहरण हैं। जलीय पारिस्थितिक तंत्र या तो अलवण जलीय (जैसे : तालाबों, झीलों तथा झरनों) या लवण जलीय (जैसे : समुद्रीय, ज्वारनदमुख, लवण झील) प्रकार के होते हैं।

मानवीय गतिविधियां, प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र को मानवोद्भवी या मानवकृत पारिस्थितिक तंत्र में रूपांतरित या परिवर्तित कर सकती हैं। उदाहरणार्थ, प्राकृतिक वनों को काट कर उस भूमि को वृक्षारोपण या कृषि कार्य के लिए प्रयोग करना। प्राय: बांध निर्माण से वनों का निमग्नीकरण होकर वह क्षेत्र जलाशय में परिवर्तित हो जाता है। घासस्थल के बहुत बड़े भाग को जोतकर शष्यभूमि में परिवर्तित कर दिया गया है। अंतरिक्षयानों तथा जलजीवशालाओं को मानवीकृत पारिस्थितिक तंत्र माना जा सकता है। इस अध्याय में आप पारिस्थितिक संरचना तथा अभिलक्षण से संबंधित धारणाओं जैसे उत्पादनशीलता, ऊर्जा प्रवाह, अपघटन, पारिस्थितिक दक्षता तथा पोषक चक्रों के बारे में सीखेंगे। प्रमुख स्थलीय जैव मात्रा के सामान्य लक्षणों के बारे में भी वर्णन किया जाएगा।

18.1 पारिस्थितिक तंत्र के घटक (Ecosystem components)

पारिस्थितिक तंत्र के दो मूलघटक अजैव (निर्जीव) तथा जीवीय (सजीव) हैं।

अजैव घटकों में अकार्बनिक पदार्थ (कार्बन, नाइट्रोजन, कार्बन डाइऑक्साइड, जल इत्यादि) तथा मृत कार्बनिक पदार्थ (प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेटस, वसाएं, ह्यूमिक पदार्थ इत्यादि) सम्मिलित हैं। अजैविक पदार्थ तथां वायु में मिट्टी, जल विद्यमान रहते हैं। जलवायु प्रांचलों जैसे सौर विकिरण तथा तापमान के द्वारा अजैविक परिस्थिति का निर्धारण होता है, जिसके अंतर्गत जीव अपनी जीवन क्रिया करता है।

जैविक घटक के अंतर्गत उत्पादक, उपभोक्ता तथा अपघटक आते हैं। उत्पादक स्वपोषित होते हैं, जोकि साधारणतया क्लोरोफिलयुक्त जीव होते हैं, जोकि सामान्य अकार्बनिक अजैविक पदार्थों को सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति में संचित कर अपना भोजन बनाते हैं। स्थलीय तथा जलीय आवासों में विभिन्न प्रकार के प्रकाश संश्लेषी जीवाणु, रसायन संश्लेषी जीवाणु तथा प्रकाश संश्लेषी प्रोटोजोआ भी कार्बनिक पदार्थों का उत्पादन करते हैं, हालांकि, उनकी मात्रा कम होती है। स्थलीय पारिस्थितिक तंत्र में स्वपोषित प्राय: जड़युक्त (शाक, झाड़ी तथा वृक्ष), जबकि गहरे जलीय पारिस्थितिक तंत्र में **पादप्लवक** (phytoplankton) नामक प्लवी पौधे प्रमुख उत्पादक होते हैं। छिछले पानी में जड़युक्त पौधे **वृहत्जीवी** प्राय: प्रबल उत्पादक होते हैं। जब पर्यावरणीय स्थिति अनुकूलतम रहती है तो पादप्लवक इतना भोज्य पदार्थ उत्पादित करते हैं, जितना कि प्रति इकाई क्षेत्रफल (भूमि या जलीय सतह) में बड़ी झाड़ियों या बड़े वृक्षों द्वारा तैयार होता है।

उपभोक्ता या **भक्षपोषी** परपोषी जीव होते हैं, अधिकतर प्राणी परपोषी एवं पूर्वभोजी हैं। उपभेक्ताओं का भोजन जोकि कार्बनिक पदार्थ होता है, वह सजीव या मृत कार्बनिक पदार्थों द्वारा निर्मित होता है। वह उपभोक्ता जो अपने भोजन के लिए पौधों पर निर्भर रहता है, प्राथमिक उपभोक्ता या **शाकभक्षी** कहलाता है (जैसेकि, चरने वाला पशु)। द्वितीयक उपभोक्ता या **मांसभक्षी** वह प्राणी हैं, जो पोषण के लिए शाकभक्षी या अन्य प्राणियों पर निर्भर रहता है।

अपघटक या **मृतजीवी**, अन्य परपोषी जीव हैं, जिनमें प्रमुख रूप से बैक्टीरिया तथा कवक होते हैं, पोषण के लिए मृत कार्बनिक पदार्थ या अपरद पर निर्भर रहते हैं। उपभोक्ता की तरह अपघटक अपना भोजन निगलते नहीं हैं। बल्कि वे अपने शरीर से मृत या मृतप्राय पौधों तथा पशुओं के अवशेषों पर विभिन्न प्रकार के एंजाइम उत्सर्जित करते हैं। मृदा में अवस्थित मृत अवशेषों के बाह्य श्वसनीय पाचन से सामान्य अकार्बनिक पदार्थों का उत्सर्जन होता है, जिनका अपघटकों के द्वारा उपभोग किया जाता है।

सामान्यतया पारिस्थितिक तंत्र को भौतिक रूप से निरूपित किया जा सकता है। लेकिन कभी-कभी पारिस्थितिक तंत्र आपस में एक दूसरे से समाकलित होते हैं। वृहत् स्थानिक पैमाने, पर सभी पारिस्थितिक तंत्र ऊर्जा के प्रवाह तथा पदार्थ के स्थानांतरण द्वारा दूसरे पारिस्थितिक तंत्र, यहाँ तक कि दूर स्थित पारिस्थितिक तंत्र से जुड़े रहते हैं। उदाहरणार्थ, नदी किनारे स्थित वृक्षों की पत्तियों का नदी में गिरना, स्थलीय पारिस्थितिक तंत्र से जलीय पारिस्थितिक तंत्र में ऊर्जा तथा पदार्थ का स्थानांतरण प्रदर्शित करता है। उसी प्रकार स्थलीय पक्षियों द्वारा गोता लगा कर जलीय निकायों से मछलियों को पकड़ना, जलीय परिस्थितिक तंत्र से स्थलीय पारिस्थितिक तंत्र में परिवर्तन है। वन पारिस्थितिक तंत्र से मृदा का अपरदित होकर नजदीकी झरने में बहना या मरुस्थलीय पारिस्थितिक तंत्र से धूल उड़कर मीलों दूर स्थित दूसरे पारिस्थितिक तंत्र में जमा होना उदाहरण हैं।

18.2 पारिस्थितिक तंत्र : संरचना एवं कार्य (Ecosystem : Structure and Function)

जीवीय एवं अजैव घटकों का भौतिक रूप पारिस्थितिक तंत्र की प्राकृतिक संरचना को आयोजित करता है। पारिस्थितिक तंत्र का मुख्य संरचनात्मक लक्षण **जाति रचना** तथा **स्तरविन्यास** हैं। कुछ पारिस्थितिक तंत्र (जैसे उष्णकटिबंधीय वर्षा प्रचुर वनों) लंबे वितानी पौधे तथा बहुसंख्यक जैविक जातियों को दर्शाता है। दूसरी ओर, मरुस्थलीय पारिस्थितिक तंत्र निम्न असंतत शाक स्तर, जोकि अल्प जातियों तथा बृहत् खुले मृदा खंडों में प्रदर्शित होता है।

पारिस्थितिकी तंत्र की संरचना को उत्पादक तथा उपभोक्ता के भोज्य संबंधों के द्वारा भी दर्शाया जा सकता है। पारिस्थितिक तंत्र की (पोषी) संरचना, पारिस्थितिक तंत्र में पाए जाने वाली अनेक पोषी रीतियों के अस्तित्व पर आधारित होती है। उत्पादक प्रथम, शाकभक्षी द्वितीय तथा मांसाहारी तृतीय पोषी सार बनाते हैं। पोषी संरचना को सजीव पदार्थों की मात्रा के रूप में वर्णित किया जा सकता है, जिसे **खड़ी फसल** कहते हैं, जो नियत समय में विभिन्न पोषी रीतियों में उपस्थित रहती है। खड़ी फसल को साधारणत: एक इकाई क्षेत्र में उपस्थित जीवों की संख्या या उसके जैविकभार के द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। जातियों के **जीवभार** को, या तो ताजा या सूखा भार के रूप में व्यक्त किया जाता है। सूखा भार ज्यादा उपयुक्त होता है क्योंकि जैवभार में ऋतुनिष्ठ नमी अंतरों से परिवर्तित नहीं होता है।

सजीवों की वृद्धि के लिए आवश्यक **पोषक तत्त्व** (nutrients) जैवभार तथा मृदा जैसे अजैविक अवयवों में संचित रहता है। नियत समय में उपस्थित नाइट्रोजन, फॉस्फोरस तथा कैल्शियम जैसे पोषक पदार्थों की मात्रा, अप्रवाही अवस्था कहलाती है। पोषक तत्त्वों की **अप्रवाही अवस्था** एक पारिस्थितिकी तंत्र से दूसरे में या उसी पारिस्थितिक तंत्र में ऋतुओं के साथ बदलती है।

पारिस्थितिक तंत्र का लगातार बने रहना एक प्राकृतिक गुण है। यह संरचनात्मक अवयवों के विभिन्न **अभिलक्षणों** (दीर्घस्थायित्व के लिए किए गए क्रियाकलापों) द्वारा संभव है। उदाहरण के तौर पर, हरी पत्तियां भोजन का उत्पादन करती हैं तथा जड़ें मृदा से पोषक तत्त्वों का अवशोषण करती हैं। शाकाहारी प्राणी, पौधों द्वारा उत्पादित पदार्थों का उपयोग करता है तथा बदले में मांसाहारी प्राणी के लिए भोजन के रूप में प्रयुक्त होता है। अपघटक जटिल कार्बनिक पदार्थों को सामान्य सरल उत्पादों में परिवर्तित करते हैं, जिन्हें उत्पादक प्रयोग में लाते हैं। पारिस्थितिक तंत्र में बहुत सारी क्रियाएं सूक्ष्म स्तरीय संतुलित तथा नियंत्रित **प्रक्रमों** द्वारा प्रतिपादित होती हैं। उदाहरणार्थ, भोजन निर्माण के लिए प्रकाश संश्लेषण की क्रिया, तथा कार्बनिक पदार्थों के टूटकर अपघटित होने की प्रक्रिया।

परिस्थितिक तंत्र में विभिन्न प्रक्रियाओं को समझने के लिए *पारिस्थितिक तंत्र की संरचना एवं क्रिया संबंध* को जानना जरूरी है। पारिस्थितिक तंत्र के प्रमुख प्राकार्यात्मक पहलू हैं:

(i) उत्पादकता एवं ऊर्जाप्रवाह
(ii) पोषण चक्र
(iii) विकास एवं स्थायित्व।

18.3 उत्पादकता (Productivity)

जैवभार उत्पादन की दर उत्पादकता कहलाती है। पारिस्थिति तंत्रों में उत्पादकता दो प्रकार की होती है – प्राथमिक तथा द्वितीयक। उत्पादक जिस दर से सूर्य का प्रकाश अवशोषित कर प्रकाश *संश्लेषण द्वारा कार्बनिक पदार्थों का निर्माण करते हैं, वह* ***प्राथमिक उत्पादकता*** कहलाती है। उत्पादकता, क्रिया की दर है, तथा यह उत्पादित जीवभार के रूप में या प्रति इकाई समय में प्रति इकाई क्षेत्र में संचित ऊर्जा के रूप में व्यक्त की जाती है। इसे साधारणतया

ग्रा. मी.$^{-2}$ वर्ष$^{-1}$ या कि. कैलोरी मी.$^{-2}$ वर्ष$^{-1}$ के रूप में दर्शाया जाता है। इस तरह विभिन्न पारिस्थितिक तंत्रों की उत्पादकता की तुलना आसानी से की जा सकती है। प्राथमिक उत्पादकता के दो प्रकार होते हैं-सकल उत्पाद तथा वास्तविक उत्पाद। ऊर्जा के पूर्ण अवशोषण की दर को या कार्बनिक पदार्थ (जीवभार) के कुल उत्पादन की दर को **सकल प्राथमिक उत्पादकता** कहते हैं। हरे उत्तकों (क्लोरोप्लास्ट) में ऊर्जा संचय की प्रक्रिया जारी रहती है, जबकि दूसरे ऊतकों द्वारा श्वसन क्रिया में ऊर्जा का उपयोग होता रहता है। उत्पादकों के श्वसनीय क्रिया के उपरांत बची हुई ऊर्जा या जैवभार, **वास्तविक प्राथमिक उत्पादकता** कहलाती है, जैसा कि नीचे दिया गया है।

वास्तविक उत्पादकता = सकल उत्पादकता - श्वसन दर

वास्तविक प्राथमिक उत्पादकता पौधों में जीवभार के रूप में संचित होती है, जोकि शाकाहारियों तथा अपघटकों के लिए भोजन के काम आती है। उपभोक्ताओं की पोषी रीति पर जिस दर से भोज्य ऊर्जा का उपापचय या स्वांगीकरण होता है, **द्वितीयक उत्पादकता** कहलाती है। यह माना जा सकता है कि उपभोक्ताओं का भोजन अन्य जगहों पर उत्पादित हुआ है, तथा द्वितीयक उत्पादकता यह दर्शाती है कि इस भोजन का उपयोग उपभोक्ता जीवभार के लिए हुआ है।

प्राथमिक उत्पादकता का परिमाण उत्पादक की प्रकाश संश्लेषण क्षमता पर तथा सनातन पर्यावरणीय स्थिति, खास कर सौर विकिरण, तापमान तथा मृदा नमी पर निर्भर करता है। उष्णकटिबंधीय प्रदेशों में अगर मृदा नमी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो तो प्राथमिक उत्पादकता पूरे वर्ष जारी रह सकती है। जबकि, शीतोष्ण प्रदेशों में, प्राथमिक उत्पादकता ठंडी जलवायु तथा वर्ष में अल्पकालीन बर्फरहित वृद्धि समय के कारण सीमित रह जाती है। सारणी 18.1 में विश्व के प्रमुख पारिस्थितिक तंत्रों में पौध जीवभार एवं वास्तविक उत्पादकता को दर्शाया गया हैं। परिपक्व उष्णकटिबंधीय वर्षा प्रचुर वनों में उच्च स्तरीय वास्तविक प्राथमिक उत्पादकता (>20 ट हे.$^{-1}$ वर्ष$^{-1}$) पाई गई है। मरुस्थल सामान्यता निम्न उत्पादकता (>1 ट हे.$^{-1}$ वर्ष$^{-1}$) वाली श्रेणी में आते हैं।

जलीय पारिस्थितिक तंत्र में उत्पादकता प्रकाश के कारण सीमित रहती है, जोकि जल की गहराई के साथ चरघातांकी क्रम में घटती जाती है। गहरे महासागरों में प्राय: महत्त्वपूर्ण पोषक तत्त्व की कमी उत्पादकता को सीमित कर देती है। समुद्री पारिस्थितिक तंत्र में नाइट्रोजन महत्त्वपूर्ण पोषक तत्त्व माना जाता है, जिसके अभाव में उत्पादकता सीमित हो जाती है।

18.4 अपघटन (Decomposition)

जिस प्रकार उत्पादकता के लिए संश्लेषण तथा निर्माण प्रक्रिया होती है, उसी प्रकार अपघटन भी महत्त्वपूर्ण क्रिया है, जिसमें अपघटकों द्वारा जटिल कार्बनिक पदार्थों को कार्बन डाइऑक्साइड, जल तथा अकार्बनिक पोषक तत्त्वों में टूट जाता है। ये आकार्बनिक पदार्थ, जोकि उत्पादन प्रक्रिया को जारी रहने के लिए आवश्यक है, जटिल कार्बनिक पदार्थों से अपघटन प्रक्रिया द्वारा पुनरुद्भवित होते हैं। पारिस्थितिक तंत्र में मृदा की उपरी सतह अपघटन प्रक्रिया के लिए प्रमुख स्थान है।

मृत पौधे के भाग एवं जंतुओं के अवशेषों को **अपरद** कहते हैं, सतही तथा आंतरिक आकृति श्रेणी में रख सकते हैं। सूखे पौधे के प्ररोह के भागों, जैसे की पत्तियां, छाल, पुष्प इत्यादि, तथा मृत प्राणियों के सभी अवशेषों, जिसमें मृदा पर गिरने वाले मल-मूत्र इत्यादि, **सतही अपरद** कहलाते हैं (जिसे **करकट का गिरना** भी कहते हैं)। **आंतरिक अपरद** मुख्यत: मृत जड़ों तथा उससे जुड़े रोगाणुओं से बनता है (जिसे जड़ अपरद भी कहते हैं)। समय के साथ-साथ अपघटनकारी अपरद

सारणी 18.1 : भौगोलिक क्षेत्र, माध्य पौधा जीवभार एवं विश्व के प्रमुख पारिस्थितिक तंत्रों में वास्तविक उत्पादकता

पारिस्थितिक तंत्र	क्षेत्रफल (10^6 कि. मी.$^{-1}$)	माध्य पौधा जीवभार (ट हे.$^{-1}$)	माध्य कुल प्राथमिक उत्पादकता (ट प्रति हे. प्रति वर्ष$^{-1}$)
उष्णकटिबंधीय वर्षा प्रचुर वन	17	440	20
उष्णकटिबंधीय पर्णपाती वन	8	360	15
शीतोष्ण पर्णपाती वन	7	300	12
शीतोष्ण शंकुवृक्षी वन	12	200	8
सवाना	15	40	9
शीतोष्ण घासस्थल	9	20	5
मरुस्थल झाड़ी	18	10	0.7
ट = टन = 1000 कि. ग्रा. हे. = 10,000 मी^{2}			

के भार में कमी होती रहती है जब तक वह पूर्णतया खत्म न हो जाए। अगर अपघटन मंद हो जाए या रुक जाए तो पारिस्थितिक तंत्र में बहुत मात्रा में आंशिक रूप से अपघटित कार्बनिक पदार्थों का जमाव हो जाता है।

अपघटन प्रक्रिया (Decomposition Processes)

अपघटन में बहुत सारी प्रक्रियाएं होती हैं (चित्र 18.1)। इन प्रक्रियाओं को अपरद का टूटना, निक्षालन तथा अपपाचन के रूप में विभाजित किया जा सकता है।

(i) **अपरद का विखंडन** मुख्य रूप से अपरद पोषी अकशेरुकी (**अपरदाहारी**) जीवों की क्रिया से भौतिक विखंडन द्वारा छोटे-छोटे करने से होता है। अपरद जब प्राणियों की पाचन नली में से गुजरते हैं तो वह पिस जाते हैं। विखंडन के कारण अपरद कण का बाह्य भाग संघटक की क्रिया के लिए मुख्य रूप से बढ़ जाता है। जिसके अपधारण की क्रिया और तेज हो जाती है।

(ii) मृदा सतह पर रिसते हुए जल द्वारा विखंडित अपरद से घुलनशील पदार्थ (जैसे : शर्करा, पोषक तत्त्व) **निच्छालन** क्रिया द्वारा अलग हो जाता है।

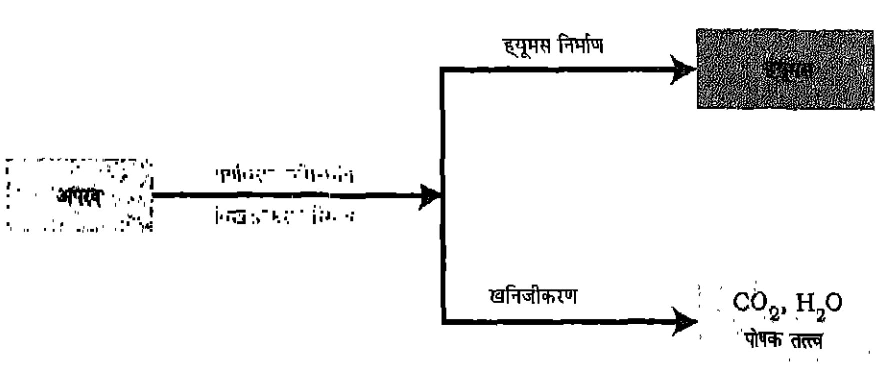
(iii) जीवाणुओं एवं कवकों द्वारा उत्सर्जित बाह्यकोशिकीय एंजाइमों द्वारा **अपपाचन** क्रिया होती है, जैसे कि *अपघटनकारी अपरदों का एंजाइमी रूपांतरण सामान्य अवयवों* तक अकार्बनिक पदार्थों में होना। यह तीनों अपघटन की प्रक्रियाएं अपरद पर साथ-साथ चलती रहती हैं।

अपरद के अपघटन से मिट्टी में **ह्यूमस का निर्माण** (Humification) तथा **खनिजीकरण** (mineralisation) होता है (चित्र 18.1)। **ह्यूमस निर्माण** से सूक्ष्म जीवों के जैवभार में वृद्धि होती है तथा एक गहरे रंग का रवाहीन पदार्थ जमा होता है जिसे ह्यूमस कहते हैं। ह्यूमस सूक्ष्मजीवी क्रियाओं के लिए अत्यधिक प्रतिरोधी होता है तथा इसका विघटन बहुत धीमी गति से होता है। यह पोषक तत्त्वों का भंडार होता है। साधारणतया ह्यूमस की मात्रा बढ़ने से मृदा की उर्वराशक्ति बढ़ जाती है। खनिजीकरण के फलस्वरूप अकार्बनिक तत्त्वों (उदा. : CO_2, H_2O) का उत्सर्जन होता है और मृदा में पोषक तत्त्वों की अधिकता हो जाती है। उपलब्ध पोषक तत्त्व (NH_4^+, Ca^{++}, Mg^{++}, K^+ इत्यादि) विनिमय स्थानों या मृदा घोल में रहते हैं और पौधों तथा सूक्ष्म जीवों द्वारा अवशोषित किए जा सकते हैं।

खास परिस्थिति में मृदा पोषक तत्त्व सूक्ष्म जीवों के **जैवभार** के साथ बंधे रहते हैं तथा दूसरे जीवों के लिए अस्थाई रूप में अप्राप्य होते हैं। इस प्रकार के पोषक तत्त्वों का समावेशन सूक्ष्म जीवों में **पोषक निश्चलता** कहलाता है। पोषक तत्त्व अनिश्चित समय सीमा तक निश्चल रहते हैं और सूक्ष्म जीवों की मृत्यु के पश्चात् इनका खनिजीकरण होता है। पोषक तत्त्वों की निश्चलता पारिस्थितिकी तंत्र के विशेष भाग में पोषक तत्त्वों के संरक्षण में सहायक होती है, और यह पारिस्थितिकी तंत्र से इनके बहाव को अवरुद्ध कर देती है।

अपघटन को प्रभावित करने वाले कारक (Factors Affecting Decompostion)

अपरद के विघटन की दर प्राथमिक रूप से जलवायु के कारकों तथा अपरद के रासायनिक गुणों द्वारा नियंत्रित होती है। जलवायु कारकों में मुख्य रूप से तापमान तथा मृदा में नमी की मात्रा, मृदा में उपस्थित सूक्ष्म जीवों की गतिविधियों को नियंत्रित करने में प्रमुख भूमिका निभाती है। अधिक तापमान (>25°C) तथा आर्द्र जलवायु वाली स्थितियों (उदा. : नम उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों) में अपरद का अपघटन बहुत तेजी से कुछ सप्ताहों या



चित्र 18.1 अपरद के अपघटन में संलग्न प्रक्रियाएं

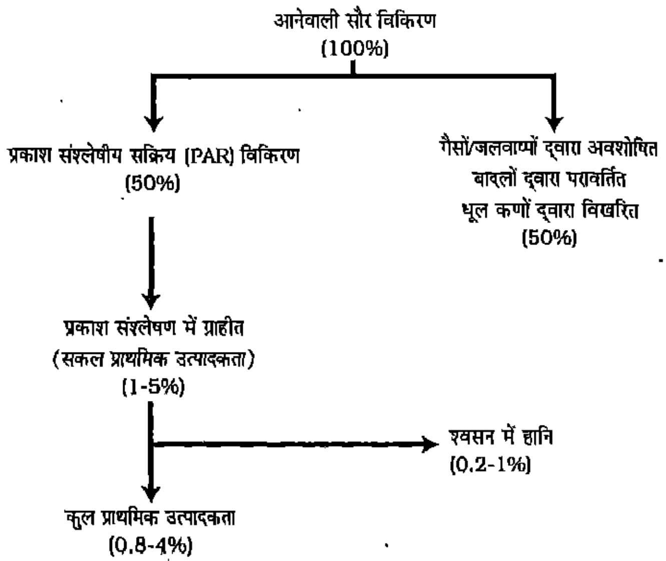
महीनों में ही होता है। निम्न तापमान (<10^0C) में अपघटन की क्रिया, नमी की प्रचुरता के बावजूद बहुत क्षीण हो जाती है। उदाहरण के तौर पर, उच्च अक्षांश या ऊँचाई वाले प्रदेशों में, अपरद के अपघटन की क्रिया में कई वर्ष या दशक लग सकते हैं। उच्च तापमान के बावजूद मृदा के लंबे समय तक सूखे रहने से अपघटन की दर कम हो जाती है (जैसे: उष्णकटिबंधीय मरुस्थल)।

अपरद की रासायनिक गुणवत्ता जल में घुलनशील पदार्थो (शर्करा सहित), पॉलीफिनोल, लिग्नीन तथा नाइट्रोजन के अनुपातिक मात्रा के द्वारा निर्धारित होती है। अपरद में खास पदार्थों का संचयन होने से अपघटन की दर तेज या मंद हो जाती है। समान जलवायु की परिस्थितियों में यदि अपरद में लिग्नीन, काइटीन जैसे पदार्थों की प्रचुरता अपघटन की दर में कमी हो जाती है। अपरद, जिसमें नाइट्रोजन की प्रचुरता तथा लिग्नीन की कमी होती है वह अपेक्षाकृत बहुत तेजी से विघटित होता है। प्राकृतिक अवस्था में विघटन की वास्तविक दर पर्यावरणीय अवस्था तथा अपरद की गुणवत्ता के समाकलित प्रभाव पर निर्भर करती है।

18.5 ऊर्जा प्रवाह (Energy Flow)

पारिस्थितिक तंत्र में ऊर्जा प्रवाह मुख्य प्रकार्य है। इसमें ऊर्जा का संचयन तथा खर्च उष्मागतिकी के दो मूल नियमों पर आधारित है। **उष्मागतिकी के प्रथम नियम** (First law of thermo-dynamics) के अनुसार (जोकि प्रतिपादित करता है कि ऊर्जा न तो निर्मित होती है न ही नष्ट होती है; बल्कि यह एक अवयव से दूसरे अवयव में स्थानांतरित होती है, या एक अवस्था से दूसरी अवस्था में परिवर्तित होती है।) सौरऊर्जा, भोजन ऊर्जा तथा उष्मा के रूप में परिवर्तित हो सकती है। ऊर्जा का स्वत: स्थानांतरण तब तक नहीं होता जब तक कि ऊर्जा का पतन या क्षय किसी ऊर्जा के केंद्र से विखंडित न हो (**उष्मागतिकी का द्वितीय नियम**)। इस तरह, पारिस्थितिक तंत्र में भोज्य ऊर्जा का स्थानांतरण एक जीव से दूसरे जीव में ऊर्जा के प्रमुख घटकों का उपापचयी गतिविधियों द्वारा ऊष्मा के रूप में क्षय होते हुए केवल अल्प मात्रा में सजीव उत्तकों या जैवभार के रूप में संचित होती है। भोजन में निहित ऊर्जा सांद्रित अवस्था में रहती है, जबकि उष्मा बहुत ही बिखरी हुई होती है। यह समझा जा सकता है कि ऊर्जा की अवस्थाओं में परिवर्तन को किसी भी व्यवस्था के तहत निरूपित किया जा सकता है।

सामान्यतया, सौर विकिरण का लगभग आधा या प्राय: दो तिहाई भाग बादल रहित वाले दिन पृथ्वी पर पहुँचता है। पृथ्वी पर पड़ने वाली सीधी विकिरण ऊर्जा तथा उत्पादकों द्वारा बनाए गए भोजन में संचित ऊर्जा के संबंधों के बारे में जानना लाभप्रद है (चित्र 18.2)। उत्पादक, केवल दिखने वाली ऊर्जा या **प्रकाश**



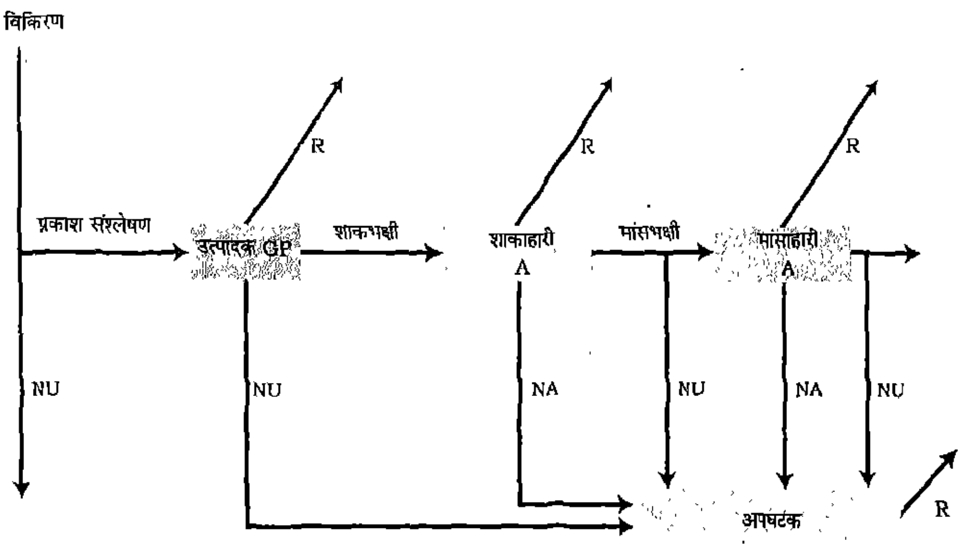
चित्र 18.2 वनस्पति आवरण पर पड़ने वाले सौर विकिरण का भविष्य

संश्लेषी सक्रिय विकिरण (PAR) को अवशोषित करने में सक्षम हैं, जोकि सीधी पड़ने वाली संपूर्ण सौर विकिरण ऊर्जा का लगभग 50 प्रतिशत होती है। अनुमानित उत्पादकता को जैवभार की **कैलोरी मात्रा** (जोकि प्रति इकाई भार में निहित ऊर्जा) से गुणा करने पर अवशोषित ऊर्जा की गणना की जा सकती है। कैलोरी मात्रा की गणना ऑक्सीजन की उपस्थिति में ज्ञात सूखे जैवभार को जलाकर, बम कैलोरीमीटर द्वारा उत्सर्जित ऊष्मा की मात्रा मापकर की जाती है।

अनुकूल वातावरणीय परिस्थितियों में सीधी विकिरण ऊर्जा का केवल 1-5 प्रतिशत ही प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया में वास्तविक प्रयोग होता है (सकल उत्पादकता) और बाकी हिस्से का क्षय हो जाता है (चित्र 18.2)। चूंकि श्वसन क्रिया, जोकि ऊर्जा इस्तेमाल करने वाली प्रक्रिया है, साथ-साथ चलती रहती है और प्रकाश संश्लेषण से अर्जित ऊर्जा का उपयोग करती है, जिससे वास्तविक अर्जित ऊर्जा (वास्तविक उत्पादकता) घटकर केवल सीधी पूर्ण विकिरण का 0.8-4 प्रतिशत रह जाती है। सामान्यतया संचित ऊर्जा, अवशोषित ऊर्जा के प्रतिशत के रूप में दर्शाई जाती है, न कि कुल ऊर्जा के रूप में। इसलिए संचित ऊर्जा की मात्रा दुगुनी हो जाएगी। सकल व वास्तविक उत्पादकताओं का अस्तित्व संश्लेषी सक्रिय विकिरण (PAR) का क्रमशः 2-10 प्रतिशत तथा ~8 प्रतिशत वास्तविक उत्पादकता में उत्पादकों की संचित ऊर्जा का अन्य पोषण रीतियों द्वारा उपभोग किया जाता है।

आहार शृंखला तथा आहार-जाल (Food Chain and Food Web)

पारिस्थितिक तंत्र में जीवों द्वारा पोषण रीति बनाने के लिए ऊर्जा एक सार्वजनिक स्रोत से ली जाती है। एक पोषण रीति के कारण ऊर्जा का स्थानांतरण, दूसरी पोषण रीति के भोजन के रूप में उपयोग होना **आहार शृंखला** कहलाता है। सभी पारिस्थितिकी तंत्रों में दो प्रकार की भिन्न आहार शृंखलाएं हो सकती है, **चारण आहार शृंखला** तथा **अपरद आहार शृंखला**। चारण आहार शृंखला उत्पादक से प्रारंभ होकर शाक भक्षी होते हुए मांसाहारी तक जाती है। मवेशियों का घास स्थल में चरना, वनों में हिरण का चारण करना, कीटों का फसलों तथा वृक्षों से भोजन लेना चारण आहार शृंखला का बहुत ही सामान्य जीवीय अंग है। अपरद आहार शृंखला मृत कार्बनिक पदार्थों से प्रारंभ होती है तथा मृदा में स्थित अपरद भक्षी जीवों से होकर उस जीव तक जाती है, जो अपरद भक्षी जीवों का भक्षण करते हैं। पारिस्थितिक तंत्रों की दोनों आहार शृंखलाओं में सापेक्षिक समानुपातिक ऊर्जा का प्रवाह भिन्न होता है, लेकिन अपरद आहार शृंखला ऊर्जा में प्रवाह काफी भिन्न होता है। विभिन्न आहार शृंखलाएं आपस में प्रायः जुड़ी रहती हैं, जैसे एक आहार शृंखला का एक विशेष शाक भक्षी कई आहार शृंखलाओं के मांसाहारियों का भोजन हो सकता है। आहार शृंखलाओं के



चित्र 18.3 पारिस्थितिक तंत्र का एक सामान्य ऊर्जा प्रवाह प्रारूप : संकेत : SR, सौर विकिरण ; GP, की कुल उत्पादकता ; A, *स्वांगीकरण* ; NU, *उपयोग नहीं की गई* ; NA, *स्वांगीकरण योग्य नहीं*

इस तरह एक-दूसरे से जुड़े हुए आव्यूह को **आहार-जाल** कहते हैं।

ऊर्जा प्रवाह प्रतिरूप (Energy Flow Model)

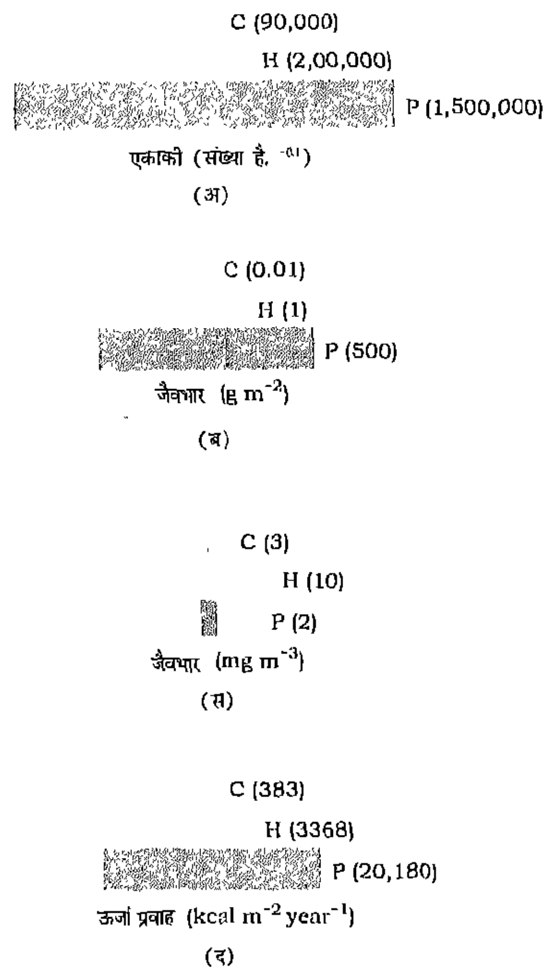
चित्र 18.3 में पारिस्थितिक तंत्र द्वारा ऊर्जा प्रवाह को सरलीकृत चित्रित किया गया है। पारिस्थितिक तंत्र में ऊर्जा प्रवाह के दो आयामों पर ध्यान देना आवश्यक है। पहला एक दिशा में ऊर्जा का प्रवाह, जैसे कि उत्पादकों से प्रारंभ होकर शाकभक्षियों से होते हुए मांसभक्षियों तक इसे विपरीत दिशा में स्थानांतरित नहीं किया जा सकता। दूसरा, उत्तरोत्तर पोषक रीतियों के साथ ऊर्जा प्रवाह की मात्रा घटती जाती है। उत्पादक, सौर ऊर्जा का केवल आंशिक भाग ही अवशोषित करते हैं (कुल सौर विकिरण का 1-5 प्रतिशत) तथा बहुत सारी अनुपयोगी ऊर्जा का ऊष्मा के रूप में क्षय हो जाता है। उत्पादकों की सकल उत्पादकता में निहित ऊर्जा का कुछ भाग इसकी खड़ी, फसल की उपापचय क्रियाओं (श्वसन) में तथा **शाकभक्षियों** का भोजन प्रदान करने में इस्तेमाल हो जाता है। अनुपयोगी प्राथमिक उत्पादन, अंततः अपरद् में परिवर्तित हो जाता है, जो कि अपघटकों के लिए ऊर्जा स्रोत का काम करता है। इसलिए शाकभक्षी पोषण रीति द्वारा उपयोग की गई ऊर्जा तो वास्तव में उत्पादक स्तर पर अवशोषित ऊर्जा का मात्र थोड़ा-सा भाग ही होता है। औसतन, विभिन्न पारिस्थितिक तंत्रों में उत्पादकों की सकल उत्पादकता का लगभग 10 प्रतिशत भाग ही शाकभक्षियों द्वारा स्वांगीकृत या उत्पादित किया जाता है।

शाकभक्षियों द्वारा स्वांगीकृत ऊर्जा का श्वसन में उपयोग हो जाता है तथा कुछ अस्वांगीकृत भाग अपघटकों तक स्थानांतरित हो जाता है (उदा.: मलमूत्र पदार्थ)। शाकभक्षी स्तर की बाकी ऊर्जा का या तो मांसाहारियों द्वारा उपयोग किया जाता है या अपघटकों को स्थानांतरित हो जाता है। पुनः केवल शाकभक्षी उत्पादकता का केवल अल्प भाग (लगभग 10 प्रतिशत) मांसाहारी की उत्पादकता को बढ़ाने में सहायक होता है। इसी तरह, मांसाहारी पोषण रीति पर उपलब्ध ऊर्जा, पुनः बढ़ कर अगली पोषण रीति के लिए बहुत ही अल्प मात्रा में रह जाती है (शीर्ष मांसाहारी)।

उत्तरोत्तर ऊँची पोषण रीतियों के साथ श्वसन दर में तेजी से वृद्धि होती रहती है। औसतन, सकल उत्पादकता का करीब 20 प्रतिशत भाग उत्पादकों के श्वसन में ही खर्च हो जाता है। स्वांगीकृत ऊर्जा का लगभग 30 प्रतिशत भाग शाकभक्षियों के श्वसन में खर्च हो जाता है। मांसाहारियों के श्वसन में स्वांगीकृत ऊर्जा का करीब 60 प्रतिशत भाग खर्च हो जाता है। उत्तरोत्तर, उच्च पोषण रीतियों पर भारी मात्रा में ऊर्जा बर्बाद होने के कारण जिससे वांछित ऊर्जा इस स्तर तक कम हो जाती है कि अगली पोषण रीति को इससे मदद नहीं की जा सकती है। इसलिए आहार शृंखला की लंबाई 3-4 पोषण रीतियों तक ही सीमित रह जाती है।

18.6 पारिस्थितिक पिरामिड (Ecological Pyramids)

पारिस्थितिक तंत्र में पोषण संरचना को खड़ी फसल से तुलना कर या एक इकाई क्षेत्र में विभिन्न पोषक रीतियों में ऊर्जा का तैयार होना दर्शाया जा सकता है (या तो एकाकी संख्या द्वारा या जैवभार द्वारा)। पोषण संरचना का आलेखी निरूपण



चित्र 18.4 पारिस्थितिक पिरामिड : (अ) संख्या का पिरामिड, (ब) जैवभार का पिरामिड, (स) जैवभार का उल्टा पिरामिड, (द) ऊर्जा पिरामिड; P-उत्पादक, H-शाक भक्षी, C-मांसाहारी

पारिस्थितिक पिरामिड के रूप में आरेखित कर दर्शाया जा सकता है, जहां पारिस्थितिक तंत्र में निचला, मध्य तथा उच्च सोपान उत्पादकों, शाकभक्षियों तथा मांसाहारियों के प्राचलमान को दर्शाता है (चित्र 18.4)। पारिस्थितिक पिरामिडों के निर्माण के लिए उत्तरोत्तर पोषण रीतियों पर एकाकियों की संख्या **(संख्याओं का पिरामिड)** सूखा भार **(जैवभार का पिरामिड)** या उर्जा प्रवाह की दर **(ऊर्जा का पिरामिड)** का सामान्य प्राचलों के रूप में उपयोग किया जाता है।

अधिकतर पारिस्थितिक तंत्रों में संख्या तथा जैवभार के पिरामिड ऊर्ध्वाधर होते हैं, जैसे उत्पादकों की संख्या तथा वजन शाकभक्षियों से अधिक होता है, तथा इसी तरह का संबंध शाकभक्षियों तथा मांसभक्षियों के बीच होता है। जबकि, कुछ पारिस्थितिक तंत्रों में संख्या का पिरामिड (जैसे: वृक्ष बाहुल्य पारिस्थितिक तंत्रों में) तथा जैवभार का पिरामिड (जैसे: गहरे जल तंत्र) लगभग प्रतिलोमित होता है जैसे कि, शाकभक्षियों की संख्या उत्पादकों से ज्यादा होती है। उदाहरणार्थ एक ही वृक्ष पर अनेक छोटे कीट उपस्थित हो सकते हैं, तथा समुद्र में एक समय में अल्पजीवी पादपप्लवकों की तुलना में बड़ी एवं दीर्घजीवी मछलियों का समग्रभार अधिक हो सकता है। जबकि ऊर्जा का पिरामिड हमेशा ऊर्ध्वाधर होता है। तीनों प्रकार के पारिस्थितिक पिरामिडों में ऊर्जा का पिरामिड, जोकि मुख्यत: भोजन उत्पादन की दर को दर्शाता है, वह अभिलक्षणिक गुणों का प्रमुख निरूपक होता है। यह इस बात पर जोर देता है कि उत्तरोत्तर पोषण रीतियों पर ऊर्जा का प्रवाह पूर्ववर्ती पोषण रीतियों की तुलना में हमेशा घटता जाता है (विश्लेषण ऊर्जा का प्रवाह, उत्पादक पोषण रीति की तुलना में, शाकभक्षी पोषण रीतियों पर कम होता है)।

18.7 पारिस्थितिक दक्षता (Ecological Efficiencies)

उस दक्षता को व्यक्त करने के लिए, जिससे जीव अपना भोजन प्राप्त करते हैं तथा भोजन को जैवभार में परिवर्तित कर दूसरी उच्चस्तरीय पोषण रीति के लिए उपलब्ध कराता है, उनको प्रदर्शित करने के लिए बहुत सारे अनुपातों का इस्तेमाल होता है। साधारणतया, इन अनुपातों का परिकलन, ऊर्जा प्रवाह के पथों में विभिन्न जगहों पर ऊर्जा के निर्गत से निवेश (दोनों को एक ही इकाई में व्यक्त किया जाता है) के बीच संबंध तय कर किया जाता है। दक्षता को प्रतिशत में व्यक्त करने के लिए, इन अनुपातों को 100 से गुणा किया जाता है। उत्पादक स्तर पर, **प्रकाश-संश्लेषी दक्षता** तथा **वास्तविक उत्पादन दक्षता** महत्वपूर्ण है।

प्रकाश-संश्लेषी दक्षता द्वारा सीधी सौर विकिरण को इस्तेमाल करने की क्षमता को मापित किया जाता है। इस दक्षता को पी ए आर (PAR) के संबंध में भी व्यक्त किया जाता है। वास्तविक उत्पादन दक्षता विभिन्न प्रजातियों के बीच अलग-अलग होती है। वह वृक्ष जातियां जिनमें प्रकाश-संश्लेषण रहित जैवभार (उदा. : बड़े स्तंभ तथा टहनियों) होता है, उनकी वास्तविक उत्पादक दक्षता कम होती है। इन दक्षताओं को अभिकलित कर दिया गया है।

शाकभक्षियों तथा मांसभक्षियों में आहार ऊर्जा को अंतर्ग्रहण करने की क्षमता एक जाति से दूसरी जाति में भिन्न होती है। उपभोक्ता के लिए **स्वांगीकरण दक्षता** (एक पोषण रीति पर) तथा **पारिस्थितिक दक्षता या पोषण रीति दक्षता** (दो पोषणरीति के बीच) मुख्य मापक हैं।

$$\text{प्रकाश-संश्लेषी दक्षता} = \frac{\text{सकल प्राथमिकता उत्पादकता} \times 100}{\text{सीधा संपूर्ण सौर विकिरण}}$$

$$\text{वास्तविक उत्पादन क्षमता} = \frac{\text{सकल प्राथमिक उत्पादकता} \times 100}{\text{सकल प्राथमिक उत्पादकता}}$$

$$\text{स्वांगीकरण दक्षता} = \frac{\text{स्वांगीकृत भोज्य ऊर्जा} \times 100}{\text{अंतरग्रहित आहार ऊर्जा}}$$

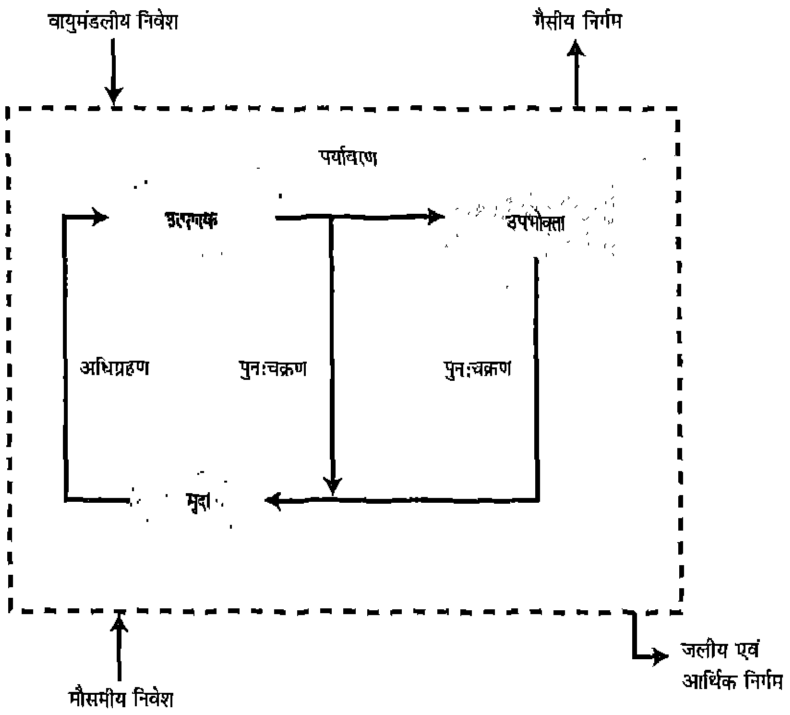
$$\text{पारिस्थितिक दक्षता} = \frac{\text{पोषण स्तर पर जैवभार उत्पादन में ऊर्जा} \times 100}{\text{पूर्व पोषण स्तर पर जैवभार उत्पादन में ऊर्जा}}$$

18.8 पोषण चक्र (Nutrient Cycle)

आपने अध्याय 2 में खनिज पोषण के बारे में सीखा है कि सजीवों को अपने जीवन क्रियाओं के लिए कई रासायनिक तत्त्वों की आवश्यकता होती है। पौधे कार्बन, हाइड्रोजन तथा ऑक्सीजन को कार्बन डाइऑक्साइड तथा जल से प्राप्त कर प्रकाश-संश्लेषण द्वारा सरल कार्बोहाइड्रेट्स का निर्माण कर सकते हैं जबकि, दूसरे जटिल पदार्थों के संश्लेषण (उदा.: प्रोटीन) के लिए उन्हें आवश्यक तत्त्वों या पोषक तत्त्वों की अतिरिक्त आवश्यकता होती है। कुछ पोषक तत्त्वों की जरूरत ज्यादा मात्रा में होती है (उदा.: नाइट्रोजन तथा फॉस्फोरस) लेकिन कई दूसरे तत्त्वों की जरूरत सूक्ष्म मात्रा में होती है (उदा.: जिंक, मोलिब्डेनम, तांबा इत्यादि)। पोषक तत्त्वों का इस्तेमाल संरचनात्मक अवयवों के लिए या एंजाइम्स् के अवयवों के रूप में होता है, जो कि विभिन्न जीवन प्रक्रियाओं के लिए आवश्यक होता है।

ऊर्जा, जिसका प्रवाह एक-दिशीय होता है, इसके विपरीत पोषक तत्त्वों का जीवों तथा उनके भौतिक पर्यावरण के बीच लगातार आदान-प्रदान चलता रहता है। **पोषण चक्रों** में पोषक तत्त्वों का पारिस्थितिक तंत्र के विभिन्न अवयवों द्वारा जमाव तथा स्थानांतरण होता है, जिससे पोषक तत्त्वों का बारंबार इस्तेमाल होता है। दूसरा शब्द, **जीव-भूरासायनिक चक्र** (जैव=सजीव तथा भू=चट्टान, वायु तथा जल) भी पोषक चक्रीयता को दर्शाता है। लेकिन जीव-भूरासायनिक चक्र, साधारणतया, बड़े क्षेत्रीय या भूमंडलीय स्तरों के लिए प्रयोग होता है।

पोषक तत्त्वों का बड़ा हिस्सा, निष्क्रिय अवस्था में अजैविक भंडार के रूप में जमा हो जाता है और इसका एक छोटा सक्रिय हिस्सा, बहुधा, आयन की अवस्था में पाया जाता है, जो कि चक्रण में भाग लेता है। पोषक चक्र दो प्रकार के होते हैं, **गैसीय** तथा **अवसादी**। गैसीय पोषण चक्र का भंडार, साधारणतया वायुमंडल या जलमंडल में स्थित होता है। लेकिन अवसादी प्रकार का भंडार पृथ्वी की बाहरी सतह में पाया जाता है। नाइट्रोजन (वायुमंडल में भंडार) तथा फॉस्फोरस (स्थल मंडल में भंडार) चक्रों को क्रमशः गैसीय तथा अवसादी प्रकार के पोषण चक्रों के लिए जाना जाता है। पोषण चक्रों को सुविधानुसार निम्न तीन रूपों से दिखाया जा सकता है जो कि चित्र 18.5 में दिखाया गया है।



चित्र 18.5 पारिस्थितिक पोषक चक्र का एक सामान्य प्रारूप। पोषक चक्रों का अंदर लाया जाना (निवेश); बाहर निकालना (निर्गम) तथा पारिस्थितिकी में आंतरिक चक्रण



यूजीन पी. ओडम

(1913-2002)



प्रो. यूजीन पी. ओडम को विस्तृत रूप से पारिस्थितिक तंत्र के पारिस्थिति विज्ञान के जनक के रूप में जाना जाता है जो कि जॉर्जिया विश्वविद्यालय में पारिस्थिति विज्ञान के प्रसिद्ध संस्थान के संस्थापक रहे हैं, तथा इसके अनुसंधान स्थल दक्षिणी केरीलीना में ऐकेन के सवाना नदी पारिस्थितिकी प्रयोगशाला तथा यू.एस.ए. के जॉर्जिया में सपेली द्वीप पर समुद्री संस्थान के संस्थापक रहे हैं। इनकी अति महत्त्वपूर्ण पुस्तक "*पारिस्थिति विज्ञान के मौलिक तत्त्व*" (1953 में सर्वप्रथम प्रकाशित) ने दुनिया भर में पारिस्थिति विज्ञान की पढ़ाई को आंदोलित कर दिया, उन्होंने तर्क दिया कि पारिस्थिति विज्ञान एक समाकलित वर्ग है जो कि अन्य भौतिक तथा जैविक विज्ञान को समायोजित करता है, तथा पृथ्वी विभिन्न अंतराबंध तथा स्व-चालित पारिस्थितिकी तंत्रों से बना होता है जो कि विभिन्न प्रकार की संरचनाओं तथा क्रियात्मक अभिलक्षणों को दर्शाता है। ये पारिस्थिति तंत्र सौर ऊर्जा का उपयोग करते हैं, अजैविक पोषक तत्त्वों का चक्रण कराते हैं तथा इस प्रकार मानव के लिए प्रो. ओडम को यू.एस.ए. के राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी के फेलो के रूप में चुना गया। उन्हें बॉयल स्वीडीश अकादमी का गौरवपूर्ण क्रैफूर्ड पुरस्कार अपने भाई प्रो. एच.टी. ओडम के साथ संयुक्त रूप से मिला, जो कि पारिस्थितिकी में नोबेल पुरस्कार के समकक्ष माना जाता है।

पोषकों का निवेश (Input of Nutrients)

पारिस्थितिक तंत्र में पोषकों का आगमन बाहरी स्रोतों से होता है, जिसका जैव क्रिया द्वारा उपयोग किया जाता है। उदाहरण के लिए पोषक तत्त्व, घुली हुए अवस्था में, वर्षा से प्राप्त होते हैं, **(आर्द्र जमाव)** या कणों की अवस्था में धूल से प्राप्त होते हैं **(शुष्क जमाव)**। मृदा में सहजीवी जैविक नाइट्रोजन यौगिकीकरण एक प्रकार का निवेश है। मृदा जनक पदार्थों के अपक्षयण से पोषक तत्त्व का अपनी स्थायी अवस्था से बाहर आना निवेश का अन्य उदाहरण है।

पोषक तत्त्वों का निर्गम (Output of Nutrients)

पारिस्थितिक तंत्र से पोषक तत्त्व बाहर लाए जाते हैं तथा उनमें से बहुत सारे तत्त्व दूसरे पारिस्थितिक तंत्र के निवेश बन जाते हैं। उदाहरण के तौर पर पोषक तत्त्वों जैसे कैल्शियम तथा मैग्नेशियम का पर्याप्त मात्रा में बहते जल द्वारा या मृदा अपरदन द्वारा हो जाती है। मृदा में होने वाली विनाइट्रीकरण प्रक्रिया द्वारा प्रर्याप्त मात्रा में नाइट्रोजन गैसीय अवस्था में हो सकती है। फसलों की कटाई या वनों से लकड़ियों की ढुलाई के काम से इन पारिस्थितिक तंत्रों में पोषक तत्त्वों की क्षति हो जाती है।

छेड़छाड़ रहित पारिस्थितिक तंत्र (जैसे कि वह पारिस्थितिक तंत्र जिसमें मानव गतिविधियां अनुपस्थित रहती हैं या थोड़ी बहुत ही रहती है) में निवेशित पोषक तत्त्व तथा निर्गत पोषक तत्त्व लगभग बराबर होते हैं जिससे कि पोषक चक्र संतुलित रहता है। साधारणतया पारिस्थितिक तंत्र में निश्चित मात्रा में पोषक तत्त्वों को ली जाने वाली (निवेशित) तथा बाहर निकलने वाली (निर्गत) उन पोषक तत्त्वों की मात्रा से बहुत ही कम होता है जो पारिस्थितिक तंत्रों के अंदर ही (विभिन्न अवयवों के साथ) चक्रण में भाग लेते हैं। पारिस्थितिक तंत्र में छेड़छाड़ (उदा.: पेड़ों को गिराना, कीटों का फैलना, आग, मृदा अपरदन, आदि) से पोषक चक्र अनियंत्रित हो जाता है तथा पारिस्थितिक तंत्र अस्थायी हो जाता है। उदाहरण के लिए, प्राकृतिक वनस्पतियों के हटाने से, मृदा का तेजी से अपरदन होता है तथा अगर शीघ्रता से दोबारा वनस्पतियां नहीं लगाई जाती हैं तो यह पतन आगे चलकर पारिस्थितिक तंत्र को नए रूप में जन्म देता है, जिसमें पोषक तत्त्वों की मात्रा कम होती है।

आंतरिक पोषक चक्र (Internal Nutrient Cycle)

पौधे तथा मृदा अलग-अलग मात्रा में पोषक तत्त्वों को अवशोषित करते हैं। मृत कार्बनिक पदार्थों के अपघटन के कारण पोषक तत्त्वों का लगातार पुनरुद्भवन तथा मृदा में भंडारण होता है, जो कि पौधे के लिए उसी अवस्था में उपलब्ध रहता है। मृदा में एक गतिशील अवस्था बनी रहती है, जिससे कि पोषक तत्त्वों का पुनरुद्भवन तथा अवशोषण साथ-साथ जारी रहता है। मृदा से पोषक तत्त्वों का हस्तांतरण अवशोषण प्रक्रिया द्वारा होता है, जिसे **अंतर्ग्रहण** कहते हैं। अवशोषित पोषक तत्त्व उपापचयी क्रियाओं द्वारा पौधों में वृद्धि करते हैं। पोषक तत्त्वों का

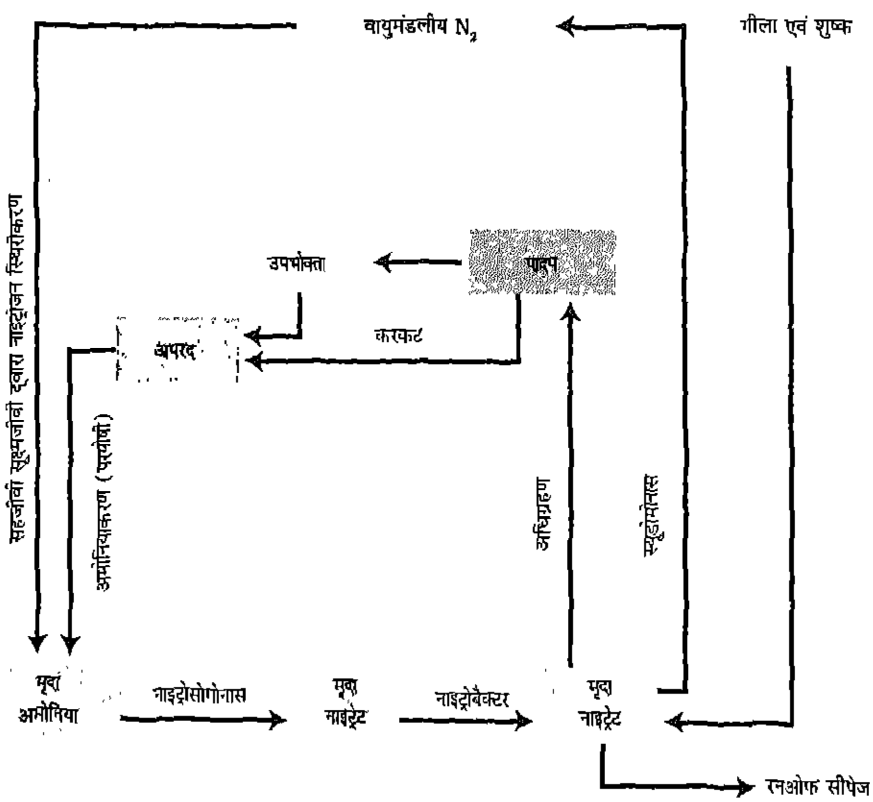
आवर्तीक्रम में पुन:चक्रण होता है, जैसे कि वनस्पतियों, प्राणी अवशेष तथा मलमूत्र इत्यादि का **करकट के रूप में गिरने** (litter fall) से मृदा में पुन: आ जाना। जब पौधों की जड़ें सूख जाती हैं तो वे जड़ें अपरद् में परिवर्तित हो जाती हैं, जिनका अपघटन के पश्चात् पोषक तत्त्वों के रूप में पुनरुदभवन होता है। अंतत: अपरद् में निहित पोषक तत्त्व मृदा सतहों पर जमा हो जाते हैं तथा वहीं पर अपघटन क्रिया द्वारा पुनरुद्भवित होकर पौधों के लिए उपलब्ध अवस्था में आ जाते हैं।

जब पोषक तत्त्वों के अंतर्ग्रहण की मात्रा, पुन:चक्रित मात्रा से *अधिक होती है* (उदा.: नवजात वन के संदर्भ में) तो अंतर्ग्रहित मात्रा का कुछ भाग खड़ी फसल में **प्रतिधारित** (retention) रहता है। खड़ी फसल में इन बचे हुए पोषक तत्त्वों के प्रतिधारित होने से पारिस्थितिक तंत्र में पोषक तत्त्वों की मात्रा में वृद्धि होती है। इस तरह, पोषक चक्र में :
प्रतिधारण = अंतर्ग्रहण-पुन:चक्रण।

पोषक तत्त्वों के अंतर्ग्रहण, चक्रण, तथा प्रतिधारण की दरों में विभिन्न पारिस्थितिक तंत्रों में काफी अंतर होता है। जैवभार या मृदा में प्रति इकाई वजन के अनुसार विभिन्न पोषक तत्त्वों की मात्रा निर्धारण के लिए कई तरह की रासायनिक विधियां उपलब्ध हैं। पोषक तत्त्वों की सांद्रता तथा जैवभार में समय के साथ-साथ परिवर्तन निर्धारित कर, पारिस्थितिक तंत्र के पोषक तत्त्वों का आय-व्यय निर्धारित किया जा सकता है।

18.9 पारिस्थितिक नाइट्रोजन चक्र (Ecosystem Nitrogen Cycle)

पारिस्थितिक तंत्र में नाइट्रोजन का अंतिम स्रोत वायुमंडल में स्थित आणविक नाइट्रोजन है, जिसको पौधों तथा प्राणियों द्वारा सीधा उपापचयीकृत नहीं किया जा सकता है। प्राकृतिक चट्टानों में नाइट्रोजन नहीं पाया जाता है, इसलिए, मृदा निर्माण के समय नाइट्रोजन प्रदान नहीं करते हैं। इस तरह, विभिन्न पारिस्थितिक



चित्र 18.6 स्थलीय पारिस्थितिक तंत्र का एक सामान्य नाइट्रोजन चक्र प्रारूप

तंत्र के जैवभार, अपरद् तथा ह्यूमस में संयोजित संपूर्ण नाइट्रोजन को वायुमंडल से लाखों वर्षों की जैविक क्रियाओं द्वारा प्राप्त किया गया है। आणविक नाइट्रोजन का नाइट्रोजन चक्र में प्रवेश, विभिन्न स्वतंत्र तथा सहजीवी नाइट्रोजन यौगिकीकरण सूक्ष्म जीवाणुओं की गतिविधियों द्वारा होता है (चित्र 18.6)। स्थलीय पारिस्थितिक तंत्र में नाइट्रोजन यौगिकीकरण, सहजीवी सूक्ष्म जीवाणुओं द्वारा होता है, जहां कि, जलीय पारिस्थितिक तंत्र में अधिकतम यौगिकीकरण, स्वतंत्र सूक्ष्म जीवाणुओं द्वारा होता है।

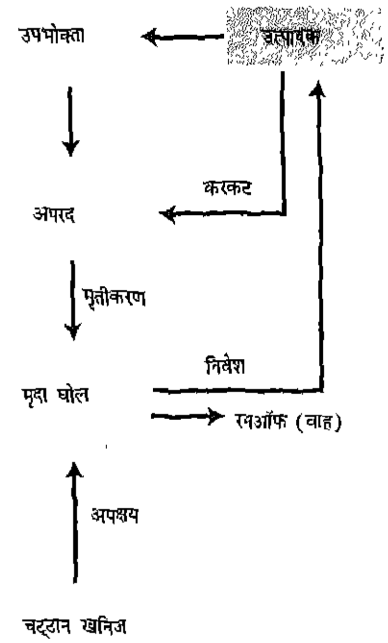
मृदा में वास करने वाले महत्त्वपूर्ण स्वतंत्र नाइट्रोजन यौगिकीकरण करने वाले जीवाणु हैं- *एजेटोबैक्टर* (ऑक्सी) तथा *क्लोस्ट्रीडियम* (अनॉक्सी)। उष्णकटिबंधीय प्रदेशों के बाढ़ग्रस्त धान के खेतों में मुख्य रूप से नाइट्रोजन यौगिकीकरण करने के लिए विभिन्न प्रकार के सायनोबैक्टीरिया उत्तरदायी होते हैं। *एनाबेना*, *औलोसिरा* तथा *नॉस्टोक* का नाइट्रोजन यौगिकीकरण करने वाले जीवाणुओं में प्रमुख स्थान है। दलहन पौधों में *राइजोबियम* जीवाणु उनके जड़ ग्रंथिका में निवास करके बहुत प्रभावकारी सहजीवन को दर्शाता है। फली पौधे, प्राकृतिक स्थलीय के साथ -साथ मानवकृत कृषि पारिस्थितिक तंत्र, नाइट्रोजन व्यवस्था में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। फली पौधों के अतिरिक्त (उदा.: *कैजूराइना* तथा *एल्नस*), कई उच्चतर पौधों की जाति भी ग्रंथिकाशाय प्रक्रिया का निर्माण करती है, जैसे *फ्रेंकिया,* जोकि नाइट्रोजन यौगिकीकरण एक्टिनोमाइसिट है। दूसरा जीवाणु, *एजोस्पाइरिलम* भी नाइट्रोजन यौगिकीकरण करता है, जोकि विभिन्न उष्णकटिबंधीय घासों की जड़ सतहों के ऊपर वृद्धि करता है। यह सहजीवन जहां नाइट्रोजन यौगिकीकरण सूक्ष्म जीवाणु मे जवान उत्तकों की गहराई में नहीं जाता है, **साहचर्य सहजीवी** कहलाता है।

स्वतंत्र तथा सहजीवी नाइट्रोजन यौगिकीकरण सूक्ष्म जीवाणुओं में एक निश्चित समानता होती है। सभी **नाइट्रोजन यौगिकीकरण** सूक्ष्म जीवाणु, नाइट्रोजन एंजाइम की सहायता से यौगिकीकरण प्रक्रिया करते है जो एंजाइम, ऑक्सीजन की अनुपस्थिति में क्रिया करता है, तथा इन प्रत्येक प्रक्रिया में वायुमंडलीय नाइट्रोजन प्रारंभिक तौर पर अमोनिया में परिवर्तित होती है। कार्बनिक नाइट्रोजनयुक्त अवयवों से अमोनिया का निर्माण, तथा सूक्ष्म जीवाणुओं के अनुक्रमण द्वारा इनका ऑक्सीकरण होकर नाइट्रेट में परिवर्तित होना, नाइट्रोजन का मृदा में परिवर्तन होना एक प्रमुख प्रक्रिया माना जाता है। कई परपोषी जीवाणु जैसे एक्टिनोमाइसिटीज तथा कवकों द्वारा, अपरद में अवस्थित एंजाइमी विघटनशील कार्बनिक नाइट्रोजन जैसे प्रोटीन तथा न्यूक्लीक अम्लों का **अमोनियाकरण** (Ammonification) प्रक्रिया द्वारा अमोनिया में परिवर्तित किया जाता है। अपनी उपापचयी आवश्यकताओं की पूर्ति के पश्चात्, ये जीव, अतिरिक्त नाइट्रोजन को मृदा में उत्सर्जित करते हैं। दूसरे चरण में, रासायनिक स्वपोषी बैक्टीरिया समूह द्वारा, दो चरणों की प्रक्रिया से अमोनिया का नाइट्रेट में परिवर्तन होता है, इसे **नाइट्रिकीकरण** कहते हैं। प्रारंभ में, **नाइट्रोसोमोनास** बैक्टिरिया द्वारा अमोनिया का नाइट्रेट में परिवर्तन होता है इसके बाद, **नाइट्रोबैक्टर** द्वारा नाइट्रेट का नाइट्राइट में परिवर्तन होता है। कम नमी तथा मृदा में वायु की कमी द्वारा नाइट्रिकीकरण की दर घट जाती है। अगर जलाक्रांत तथा अनॉक्सीकारी स्थिति हो, तो दूसरे समूह के सूक्ष्म जीवाणु, जैसे कि विनाइट्रीकारक, सक्रिय हो जाते हैं। *स्यूडोमोनास*, जो कि बहुत ही सामान्य विनाइट्रीकीकारक बैक्टीरिया है, कम वातित तथा अपरद् से परिपूर्ण परिस्थिति में अच्छा काम करता है। विनाइट्रिकीकारक बैक्टीरिया, नाइट्रेट नाइट्रोजन का नाईट्रेट्स तथा नाइट्रिक ऑक्साइड में एवं अंततः गैसीय नाइट्रोजन में परिवर्तित कर देता है। इसलिए कि विनाइट्रिकीकरण, नाइट्रिकीकरण के ठीक विपरीत होता है।

बहुत सारे उच्चस्तरीय पौधे, मृदा में अवस्थित नाइट्रेट को अवशोषित करने में सक्षम होते हैं। पौधों की कोशिकाओं में उपापचयी नाइट्रोजन अवकरण प्रक्रिया द्वारा, अवशोषित नाइट्रोजन अंततः कार्बनिक नाइट्रोजन में परिवर्तित् हो जाती है। पौधों के ऊतकों में समाविष्ट नाइट्रोजन का कुछ भाग, उपभोक्ता द्वारा उपयोग किया जाता है तथा सभी मृत अवशेषों का अपरदन द्वारा अपघटकों के लिए चला जाता है। इस तरह, पारिस्थितिक नाइट्रोजन चक्र में जीवाणुओं की भूमिका बहुत ही विस्तृत तथा जटिल है। हाल के दशकों में, पारिस्थितिक तंत्र में नाइट्रोजन के आर्द्र तथा शुष्क निक्षेपण में तेजी आई है। मृदा में अत्यधिक नाइट्रोजन जमाव परिणामस्वरूप पारिस्थितिक तंत्र की प्रजाति संरचना तथा जैविक विविधता में परिवर्तन होता है।

18.10 पारिस्थितिक फॉस्फोरस चक्र (Ecosystem Phosphorus cycle)

फॉस्फोरस की आवश्यकता बहुत ही क्रांतिक होती है क्योंकि, यह न्यूक्लिक अम्ल, कोशिका झिल्ली, कोशिकीय ऊर्जा स्थानांतरण प्रक्रिया, हड्डी तथा दाँतों का प्रमुख अवयव है। शैल तथा प्राकृतिक फॉस्फेट भंडार, फॉस्फोरस के मुख्य स्रोत हैं। अवसादी फॉस्फोरस चक्र (चित्र 18.7), गैसीय नाइट्रोजन चक्र से सरल है, जिसमें कुछ ही चरण होते हैं तथा कुछ ही प्रकार के सूक्ष्म जीवाणुओं की भूमिका होती है। नाइट्रोजन तथा फॉस्फोरस चक्र



चित्र 18.7 स्थलीय पारिस्थितिक तंत्र का एक सामान्य फॉस्फोरस चक्र

में दो प्रकार का अंतर होता है। पहला, वर्षा द्वारा फॉस्फोरस का वायुमंडलीय निवेश, नाइट्रोजन निवेश की तुलना में बहुत ही कम होता है, तथा फॉस्फोरस का जीवाणुओं तथा पर्यावरण के बीच गैसीय विनिमय नहीं के बराबर होता है। दूसरी तरफ, पारिस्थितिक तंत्र में फॉस्फोरस का मुख्य निवेश, मृदा में स्थित फॉस्फोरस युक्त खनिजों के अपरदन से होता है। दूसरा, फॉस्फोरस, अत्यधिक अम्लीय तथा क्षारीय मृदाओं में तीव्र अवशोषण की यौगिकीकरण क्षमता दर्शाता है, जिसके परिणामस्वरूप, पौधों के लिए फॉस्फोरस की उपलब्धता एकाएक घट जाती है। मृदा घोल में फॉस्फोरस, ऑर्थोफॉस्फेट ($PO3_4^-$) के रूप में पाया जाता है। पौधे, मृदा से फॉस्फोरस अवशोषित करते हैं तथा इन्हे कार्बनिक अवयवों में संयोजित करते हैं। फॉस्फेटीकारक बैक्टीरिया अपरद में निहित कार्बनिक फॉस्फेट को परिवर्तित कर, फॉस्फेट आयन की पूर्ति बनाए रखता है। उच्चस्तरीय पौधों के द्वारा फॉस्फोरस का अवशोषण, कवकमूल की उपस्थिति में, तीव्रता से होता है।

18.11 प्रमुख जीवोम (Major Biomes)

क्षेत्रीय जैविक इकाई, जैसेकि विशिष्ट जलवायु द्वारा जाना जाता है जोकि वनस्पति, प्राणी तथा मृदा से पारस्परिक क्रिया करता है, जीवोम कहलाता है। जीवोम, चरम अवस्था की वनस्पति के जीवन रूपों द्वारा आसानी से जाने जाते हैं। लेकिन जीवोम में, चरम अवस्था के समुदाय के अतिरिक्त उसी जलवायु क्षेत्रों में पाए जाने वाले सभी विकासशील तथा परिवर्तित समुदाय आते हैं। उदाहरण के तौर पर, एक वन जीवोम में, युवा अनुक्रमिक वन तथा खुले घास बाहुल्य पट्टी में, जोकि प्रौढ़ वनों के फैलाव के बीच अवस्थित रहते हैं। वन, घास स्थल/सवाना, तथा मरुस्थलीय जीवोम के पर्यावरणीय अभिलक्षणों का वर्णन नीचे किया गया है।

18.12 वन जीवोम (Forest Biome)

वन जीवोम की अभिलक्षणिक वनस्पति, घने वृक्षों से प्रभावी रहती है, जिसका पर्ण आवरण पूरी तरह बंद रहता है। विश्व में, जलवायु पर आधारित विस्तृत तरह के वन पाए जाते हैं। ठंडे शीतोष्ण क्षेत्रों में पाए जाने वाले वन, उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों के वन से, संरचना, उत्पादकता तथा पोषक तत्त्वों के चक्रण के आधार पर अंतर दर्शाते हैं। उत्तरी गोलार्द्ध में, जब कोई आर्कटिक क्षेत्र के दक्षिणी भाग की तरफ से भूमध्यरेखा की तरफ बढ़ता है तो शीतोष्ण शंकुकार, शीतोष्ण पतझड़ तथा उष्णकटिबंधीय वनों की लगातार पट्टिका देखने को मिलती है।

सारणी 18.2 : भारत के प्रमुख वन प्रकारों में प्ररूपी जलवायु परिस्थितियां

वन प्रकार	माध्यवार्षिक तापमान (°C)	माध्यवार्षिक वर्षा (मिली. मी.)	वर्ष में सूखे का महीना*
उष्णकटिबंधीय वर्षा प्रचुर वन	23–27	2000–3000	2–3
उष्णकटिबंधीय पर्णपाती वन	22–32	900–1600	6–8
शीतोष्ण चौड़ा पर्णपाती वन	6–20	1000–2500	3–5
शीतोष्ण शंकुकार पर्णपाती वन	6–15	500–1700	3–5

* वह जिसमें वर्षा <50 मिली मीटर से कम हुई है।

चार प्रमुख वन जीवोम के जलवायु लक्षणों को सारणी 18.2 में दिया गया है। उष्णकटिबंधीय वर्षा प्रचुर वन, गर्म तथा अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में पाए जाते हैं, जिसका वर्ष भर मृदा जल उपलब्ध रहती है। दूसरी तरफ, उष्णकटिबंधीय पतझड़ वन, बाहरी उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों तक फैला रहता है, जिसके ऋतुनिष्ठ वर्षा कम होती है तथा वर्षभर मृदा शुष्कता बनी रहती है। शीतोष्ण वन, जोकि मध्य अक्षांशों (40-60°N अ.) में पाया जाता है, इनके दो विपरीत प्रकार होते है, जोकि, या तो चौड़ी पर्णधारी पतझड़ जातियों या नोकदार सदाबहार पर्ण जातियों की बाहुल्यता वाला होता है। लेकिन, शीतोष्ण शंकुकार वनों की जलवायु, सर्द रहती है तथा जहां 5-6 महीने तक जमीन बर्फ से घिरी रहती है। भारत में शीतोष्ण वन, हिमालय में > 2000 मी. की ऊंचाई पर पाया जाता है।

भारत प्रमुख वन जीवोम हैं:

(i) उष्णकटिबंधीय वर्षा प्रचुर वन जीवोम
(ii) उष्णकटिबंधीय पतझड़ वन जीवोम
(iii) शीतोष्ण चौड़े पत्ते या पतझड़ वन जीवोम
(iv) शीतोष्ण नोकदार पर्ण शंकुकार वन जीवोम।

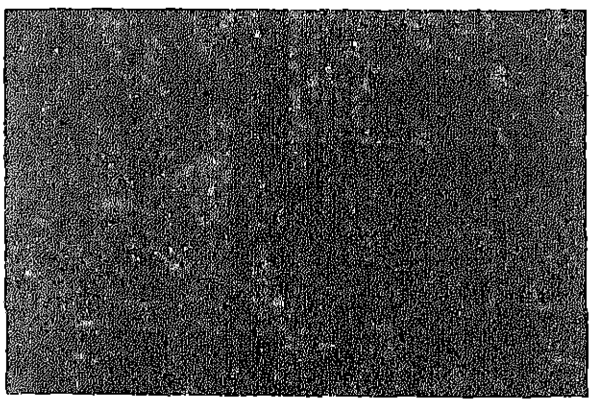
उष्णकटिबंधीय वन (Tropical Rain Forest)

भारत में उष्णकटिबंधीय वर्षा प्रचुर वन मुख्य रूप से पश्चिमी तटों में तथा पूर्वोत्तर हिमालय में असंतत रूप से वितरित रहते हैं। चित्र 18.8 एक प्रारूपिक उष्णकटिबंधीय वर्षा प्रचुर वन को दर्शाता है। सदाबहार उष्णकटिबंधीय वर्षा प्रचुर वन जोकि सभी जीवोम की तुलना में सबसे ज्यादा खड़ी फसल जीवभार निहीत रखता है, जोकि 4-5 स्तर वाली, 30-40 मीटर लंबी आवरण संरचना दर्शाता है, जिसका निर्माण विभिन्न पौधों एवं जातियों द्वारा होता है। कई वृक्ष जातियों, पुस्ताजड़ (शून तना आधार), बड़े आकार के पत्ते जिसमें द्रप्स शीर्ष वर्षभर पतझड़ दर्शाते हैं। वृक्षों की धागेनुमा महीन जड़ों से चटाई जैसा दृश्य, मृदा सतहों पर फैलता हुआ बहुधा देखा जाता है। ऊंचे वृक्षों के द्वारा घनी छाया बने रहने के कारण, झाड़ीदार परत नहीं के बराबर पाई जाती है। इन वनों में, उच्च स्तरीय पौधे, निम्नस्तरी पौधे, मृदा जीवाणु, तथा सूक्ष्म जीवाणु की कई हजार प्रजातियां पाई जाती हैं। ये वन, उच्च प्रजाति विविधता दर्शाते हैं।

वर्षभर अनुकूल जलवायु परिस्थिति के कारण, पौधों तथा प्राणियों की वृद्धि तथा प्रजनन प्रक्रिया, आंतरिक तौर से ज्यादा प्रभावित होती है, न कि जलवायु परिस्थिति के कारण। वर्षा प्रचुर वन में करकट के अपघटन की क्रिया तीव्र गति से होती है तथा 6-7 महीनें में पत्ती करकट पूर्णत: अपघटित हो जाती है। इसलिए, इन वनों में उच्च प्राथमिक उत्पादकता दर होने के बावजूद भी, मृदा में, खास मात्रा में कार्बनिक पदार्थो का जमाव होता है। वर्षा प्रचुर वन में अधिक मात्रा में पोषक तत्त्व, लंबी वनस्पतियों में संचित रहता है, जबकि मृदा में पोषक तत्त्वों का जमाव कम होता है। इस तरह, जब वर्षा प्रचुर वन को कृषि के लिए काटा जाता है तो उर्वरा शक्ति का ह्रास होता है तथा लंबे समय तक कृषि को मदद नही दे सकते हैं।

उष्णकटिबंधीय पतझड़ वन (Tropical Deciduous Forest)

उष्णकटिबंधीय पतझड़ वन, हमारे देश के उत्तरी तथा दक्षिणी भागों के समतल एवं निम्न पहाड़ी क्षेत्रों में पाया जाता है।

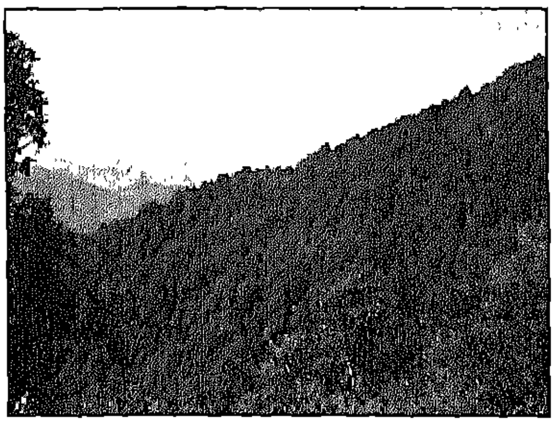


चित्र 18.8 पश्चिमी घाटों पर उष्णकटिबंधीय वर्षा प्रचुर वन (सौजन्य : डा. एस.एन. राय)



चित्र 18.9 विंध्यान प्लेटो पर उष्णकटिबंधीय वन का एक दृश्य (सौजन्य : डा. के.पी. सिंह)

पश्चिमोत्तर दिशा में पतझड़ वन, कांटेदार वनों के रूप में पाए जाते हैं। पतझड़ वन का एक दृश्य चित्र 18.9 में दिखाया गया है। साल (*शोरीया रोबस्टा*) तथा सागवान (*टेक्टोना ग्रांडिस*), पतझड़ वनों की प्रमुख वृक्ष प्रजातियां हैं। दूसरी उपयोगी जातियां हैं:- तेंदू (*डायोस्पायरोस मेलेनोजायलॉन*), चिरौंजी (*बुचानानियां लांजान*), खैर (*एकेसिया केटेचू*), इत्यादि। पतझड़ वन में, खुले आवरण के कारण (जैसे कि, अलग-अलग वृक्षों के आवरण, आपसी दूरी के कारण दूर-दूर रहते हैं), झाड़ीदार पौधों की सतह काफी विकसित रहती है। ये वन, काफी छोटे स्तर के होते हैं (10-20 मी. ऊंचाई) तथा ये ऋतुनिष्ट लक्षणों को दर्शाते हैं। वर्षा ऋतुओं में, ये वन गहरे हरे रंग के, जिसमें घने पर्णसमूह होते हैं तथा मोटे शाकीय परतों से भरा पूरा रहता है, लेकिन ग्रीष्म ऋतु के प्रारंभ होने से पहले ही बहुत से वृक्षों की पत्तियाँ नीचे गिर जाती हैं। जिससे वन पत्ती विहीन हो जाता है, इसकी झाड़ीदार शाकीय परत सूख जाती है। विभिन्न जातियों में पत्ती विहीन अवधि भिन्न-भिन्न होती है, जोकि कुछ प्रजातियों में कुछ दिनों से लेकर दूसरे में लगभग छह महीने तक हो सकती है। मृदा सतह पर जमा हुए पूर्ण करकटों का वर्षा ऋतु में तेजी से अपघटन हो जाता है। पतझड़ वन की मृदा, कम निक्षालन के कारण काफी पोषक तत्त्वों से भरपूर रहती है। गंगा के मैदान तथा अन्य क्षेत्रों के उष्णकटिबंधीय पतझड़ वनों को कृषि भूमि में परिवर्तित किया गया है तथा इन क्षेत्रों की मृदाएं, शताब्दियों से कृषि की उच्च उत्पादकता को दर्शाती रही हैं।



चित्र 18.10 पश्चिम हिमालय में तिलोनाज ओक (क्यूरकस फ्लोरीबुन्डा) वन (पीछे स्तर पर) (सौजन्य : डा. एस.पी. सिंह)

शीतोष्ण चौड़ी पत्ती वन (Temperate Broad-leaf Forests)

शीतोष्ण चौड़ी पत्ती वन पश्चिमी हिमालय में 1500 और 2400 मीटर की ऊंचाई पर पाए जाते हैं चित्र (18.10)। शीतोष्ण चौड़ी पत्ती वन में, बांग (*कर्कस*) की कई जातियां प्रभावी होती हैं। मध्य अक्षांशीय क्षेत्रों में बहुत सारी चौड़ी पत्ती वाली वृक्ष जातियां एवं बांग, पतझड़ी होते हैं, लेकिन, हिमालय क्षेत्र की सभी बांग प्रजातियां सदाबहार हैं। चौड़े पत्ते वाली वृक्ष जातियां, जो शीतोष्ण पतझड़ वनों में प्रभावी होती हैं, शरद् ऋतु में पूर्ण पतझड़ दर्शाती हैं। ये चार स्तरीय वन, 25-30 मीटर की ऊंचाई तक फैले रहते हैं तथा जाड़े के मौसम में पूर्णत: पर्ण विहीन रहते हैं। बसंत के प्रारंभ से ही नयी वृद्धि प्रारंभ होती है। इसके विपरीत, हिमालय के सदाबहार बांग में, गर्मियों में सबसे अधिक पतझड़ होता है लेकिन, कभी भी पर्णविहीन नहीं होता है। शीतोष्ण चौड़ी पत्ती वाला वन, नोकधारी पत्तियों या शंकुधारी वनों से क्रियात्मक भिन्नता दर्शाता है, क्योंकि इसमें पोषक तत्त्वों का ज्यादा चक्रण होता है। चौड़ी पत्ती वाली या पतझड़ वनों में करकटों का अपघटन तेजी से होता है। इसलिए, मृदा सतह पर करकट का जमाव कम होता है।

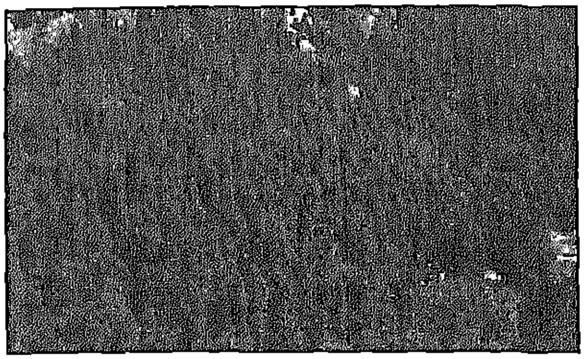
शीतोष्ण नोकदार पत्ती या शंकुधारी वन (Temperate Needle-leaf or Coniferous Forests)

शीतोष्ण नोकदार पत्ती या शंकुधारी वन, हिमालय के 1700-3000 मीटर ऊंचाई क्षेत्र में वितरित होता है। शीतोष्ण नोकदार पत्ती या शंकुधारी वनों में आर्थिक दृष्टि से मूल्यवान अनावृतबीजी वृक्ष पाए जाते हैं, जैसेकि, (*पाइनस वाली चियाना*), देवदार (*सेड्रस देवदारा*), cypress (Cupressustorulosa) स्प्रूस (*पीसिया स्मिथीयाना*) तथा फर (*एबीज पिंड्रो*)। चौड़ी पत्ती वाली जातियों की तुलना में, शंकुधारी पौधे ज्यादा लंबी (30-35 मीटर) होते है। शंकुधारी वन, लंबे नुकीलीदार पत्तियों वाला सदाबहार आवरणदार होता है। विभिन्न जातियों में नोकदार पत्तियां 2-7 वर्ष तक उसके आवरण पर रहती हैं। इस प्रकार, आवरण हमेशा हरा रहता है। कुछ जातियों में आवरण नोंकदार होते हैं (चित्र 18.11)।

18.13 घासस्थल तथा सवाना जीवोम (Grassland and Savanna Biomes)

घासस्थल जीवोम

घासस्थल पारिस्थितिक तंत्र में वृक्षहीन शाकीय पौधों के आवरण रहते हैं जोकि, विस्तृत प्रकार की घास जाति (फैमिली-पोएसी)



चित्र 18.11 पश्चिम हिमालय में साइप्रेस (क्यूप्रेसस टोरूलोसा) वन (सौजन्य : डा. एस.पी. सिंह)

द्वारा प्रभावी रहते हैं। घास के साथ कई तरह के तृणेतर (द्विबीजपत्री जाति) हैं, खासकर फली, जोकि नाइट्रोजन व्यवस्था में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। सबसे अच्छे ज्ञात घासस्थल जीवोम का उदाहरण है, विस्तृत "प्रेयरी" जोकि उत्तरी अमेरिका में है तथा "स्टैप्स" (Stepes) जोकि रूस में है। ज्यादातर घासस्थलीय क्षेत्रों की जलवायु तुलनात्मक तौर पर कम वार्षिक वर्षा वाला क्षेत्र होता है। जोकि, 250 तथा 750 मि. मि. प्रतिवर्ष के बीच रहता है, तथा वाष्पीकरण की दर उच्च होती है एवं जिसमें तुरंत सूखापन भी आता रहता है। घासस्थल में वर्षा इतनी कम होती है कि वन को सहायता नहीं मिल सकती, जबकि यह वर्षा मरुस्थल से बहुत ज्यादा होती है।

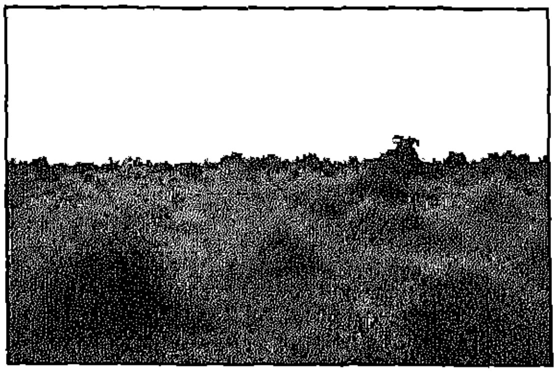
घासों की प्रबलता को बनाए रखने के लिए तथा काष्ठीय प्रजातियों के आक्रमण को रोकने के लिए, बड़े शाकभक्षियों द्वारा चारण तथा आग महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। तनों के आधार से निकली हुई रेखाकार पत्ती, चारण के लिए या कम से कम शरीर क्रियात्मक नुकसान के द्वारा घास काटने के लिए उपयुक्त होती है। अगर घासों का चारण बहुत कम होता है (जैसे कि, प्ररोह का छोटा अंग उपभोग किया जाए), तो वे अपने आधार से नए प्ररोह उत्पादित करते हैं, जोकि ढौजी कहलाते हैं, शीघ्रता से पूर्व अवस्था में वापस लौट कर अपने पूर्व आकार को पुनः प्राप्त कर लेते हैं। लेकिन जब घासों का अतिचारण होता है, जैसेकि, चारण पशुओं द्वारा उनके प्ररोह को लगातार निकाला जाता है, तो वे पूर्व अवस्था को पुनः प्राप्त नहीं कर पाते तथा अंततः मर जाते हैं।

आकृतिक तौर पर, घास या तो सौड निर्माणी होती हैं, जोकि घास आवरण का एक ठोस पट्टी का निर्माण करती है या गुच्छादार घास, अलग-अलग गुच्छों में वृद्धि करती है। घास स्थल आवरण 2-3 परतों को दर्शा सकता है। सबसे निचली परत, शयान या पुंजी पौधा, तथा एक या दो ऊपरी स्तर खड़े प्ररोह द्वारा निर्मित होती है। घास स्थल वनस्पति की ऊँचाई, भिन्नता दर्शाते हैं जोकि, शुष्क क्षेत्रों में कुछ सेंटीमीटर तक होती है तथा नम क्षेत्रों में डेढ़ मीटर से ज्यादा हो सकती है। उपरोक्त ऊँचाई के अनुसार, प्ररोह जीव भार, 50 से 1000 ग्राम मी.$^{-2}$ तक हो सकता है। घास स्थल की प्राथमिक उत्पादकता, वर्षा की मात्रा के अनुसार सीधी संबंधित रहती है।

घास स्थल संरचना का सबसे प्रमुख अभिलक्षण है, उसकी जड़ प्रणाली, जो कि मृदाक्षितिज से बहुत अधिक शाखित रहती है। हालांकि ज्यादातर जड़ें, मृदा क्षितिज के ऊपर 10 से.मी. तक रहती हैं, विशेष उदाहरण के तौर पर, घास जड़, 1.0-1.5 मी. गहराई, तक जा सकती है। घास स्थल में, औसतन, कुल जीव भार का लगभग आधा भाग जमीनी सतह के नीचे अवस्थित रहता है। प्राथमिक उत्पादकता की तुलना में, जड़ों की भागीदारी ज्यादा होती है, जोकि, कुल उत्पादकता की 75-85 प्रतिशत तक होती है, खासकर अचारित घास स्थल में ज्यादा जड़ अपरद के विघटन से मृदा में अधिक मात्रा में कार्बनिक पदार्थों तथा पोषक तत्त्वों का अधिक मात्रा में जमाव मिलता है। मृदा की आंतरिक उर्वरता के कारण, विश्व के ज्यादातर प्राकृतिक घास स्थल, कृषि के लिए परिवर्तित कर दिए गए हैं। उदाहरण के तौर पर, अमरीकी प्रेयरी का बहुत सा क्षेत्र जोता गया है तथा उसे उच्च उत्पादकता वाली फसल भूमि में रूपांतरित कर दिया गया है।

सवाना जीवोम

सामान्यतया, **सवाना** शब्द का तात्पर्य, एक पूर्ण विकसित घास आवरण के लिए होता है, जिसके बिखरे हुए झाड़ी या छोटे वृक्ष



चित्र 18.12 विंध्याचल के पठार पर अवस्थित सवाना का एक प्रारूप (सौजन्य : डा. के.पी. सिंह)

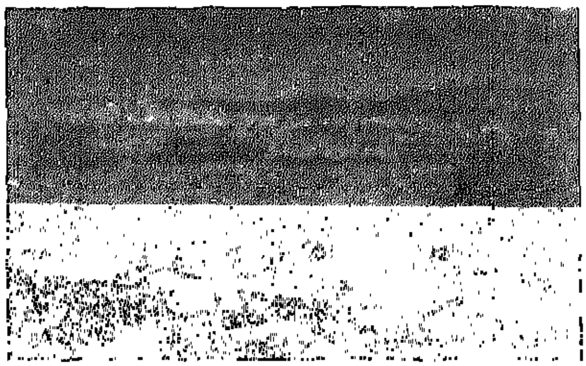
होते हैं। सवाना पारिस्थितिकी तंत्र को चित्र 18.12 में दर्शाया गया है। काष्ठीय प्रजातियों की ऊंचाई 1-8 मीटर तक होती है। सवाना का विस्तृत वितरण इस प्रकार है – मध्य तथा दक्षिणी अफ्रीका, भारत, उत्तरी तथा पूर्व-मध्य अफ्रीका एवं उत्तरी आस्ट्रेलिया के गर्म भागों में भारत में सभी सवाना की उत्पत्ति, मौलिक उष्णकटिबंधीय वनों के अपघटन से हुई है तथा वर्तमान स्थिति में उसका बने रहना, लगातार चारण सदियों से आग के द्वारा संभव हुआ है। वर्तमान दृश्यभूमि, वृहत् खुला आवरण सवाना दर्शाता है, जिसके बंद पतझड़ वन पट्टी के रूप में अंदर पाए जाते हैं।

भारतीय सवाना के प्रमुख घास *डाईकैंथियम, सेहिमा, फ्रेंमाइट्स, सैकेरम, सेंक्रस, इंपैरैटा* तथा *लेसियुरस* हैं। सामान्यतः सवाना की काष्ठीय जाति उन वनों की अवशिष्ट जातियां हैं जिससे सवाना की उत्पत्ति हुई है। सवाना के सामान्य वृक्ष एवं झाड़ियां *प्रोसोपिस, जिजिफस, कैपेरिस, एकेसिया, ब्युटिया* इत्यादि हैं।

सवाना, उष्णकटिबंधीय भागों में पाया जाता है, जहां ज्यादातार श्रतुनिष्ठ जलवायु होती है, जिसमें स्पष्ट आद्र तथा शुष्क अवधि रहती है। मृदा नमी की उपलब्धता द्वारा, सवाना की जाति संरचना एवं उत्पादकता निर्धारित होती है। मृदा नमी विविधता के प्रभाव को, आग, मृदा पोषक तत्त्व तथा शाकभक्षियों द्वारा परिवर्तित किया जा सकता है। चूंकि, वृक्ष तथा घास, दोनों ही सूखा तथा आग के प्रति प्रतिरोधी होते हैं। सवाना वनस्पति में जातियों की संख्या ज्यादा नहीं होती है। उष्णकटिबंधीय सवाना का मुख्य लक्षण है कि उसमें ऐसी घास प्रजातियों की बाहुल्यता रहती है, जिसमें C_4 *प्रकाश संश्लेषी क्षमता होती है।* ये प्रजातियां, निम्न मृदा नमी के बावजूद, उच्च स्तर की उत्पादकता दर्शाती हैं। हालांकि घासों की जड़ प्रणाली, मृदा क्षितिज के ऊपरी 30 से. मी. क्षेत्र में ज्यादा विकसित रहती है, काष्ठीय जाति अपनी जड़ों को अधिक गहराई तक भेजती है।

18.14 मरुभूमि जीवोम (Desert Biome)

मरुभूमि जीवोम में बहुत लंबी अवधि तक नमी की कमी रहती है। मरुभूमि को दो भागों में वर्गीकृत किया गया है, वास्तविक मरुभूमि जहां वार्षिक वर्षा 120 मि.मी. से कम होती है तथा अत्यंत मरुभूमि जहां 70 मि.मी. वर्ष$^{-1}$ वर्षा होती है। तापमान के आधार पर मरुभूमि को **गर्म मरुभूमि** तथा **ठंडी मरुभूमि** में विभाजित किया गया है। इस पर भी मरुभूमि जीवोम में, मृदा से वाष्पोसर्जन के द्वारा 7 से 50 गुना वर्षा बढ़ती है। ज्यादातर मरुभूमि उत्तरी तथा दक्षिणी गोलादर्ध के उष्णकटिबंधीय मकर रेखा पर 15^0 तथा 35^0 अक्षांश पर पाई जाती है। कोष्ण या गर्म दिन तथा ठंडी रात ज्यादातर मरुभूमि की पहचान है। मरुस्थल में जीवभार तथा प्राथमिक उत्पादकता के स्तर कम होते हैं। मरुस्थल दृश्यभूमि के एक प्रारूप को चित्र 18.13 में दर्शाया गया है।



चित्र 18.13 प्रारूपिक मरुस्थलीय जीवोम का एक दृश्य (सौजन्य : डा. के.पी. सिंह)

मरुभूमि वनस्पति में तीन तरह के जीवन शैलियों की प्रचुरता है: (i) इफिमेरल वार्षिक शाकीय झाड़ी- जोकि पर्याप्त जल रहने पर ही उगती है। कैक्टी जोकि संचित जल पर उगती है। (ii) खास गूदेदार मरुस्थलीय पौधे, जैसे कैक्टी जोकि जल संचित रखती है। (iii) झाड़ियां तथा छोटे वृक्ष, जैसे प्रोसोपिस और टैमेरिक्स जिसकी जड़ें जल की सतह तक पहुंच जाती हैं। कुछ मरुभूमियों में लंबे गूदेदार खासकर कैक्टी पौधे ज्यादा दिखाई पड़ते है, जोकि साधारण आवरण से ऊंचे होते हैं।

सारांश

पारिस्थितिक तंत्र, दो मुख्य अवयवों से बना होता है। अजैविक (अकार्बनिक तत्त्वों तथा मृत कार्बनिक तत्त्वों के हवा, जल, मृदा में जमा होने) तथा जैविक (उत्पादक, उपभोक्ता तथा अपघटक)। जैविक तथा अजैविक को भौतिक रूप से इकट्ठा किया जाता है, जिससे पारिस्थितिक तंत्र को एक अनोखा रूप प्रदान किया जा

सके। (उदाहरण के लिए जाति संरचना स्तरण) पारिस्थितिकी बनावट को उत्पादक तथा उपभोक्ता के बीच आहार संबंध के द्वारा भी दर्शाया जा सकता है, जिसे पोषण बनावट भी कहते हैं।

उत्पादकता तथा अपघटन पारिस्थितिक तंत्र की दो प्रमुख क्रियाएं हैं। पहले वाली क्रिया भोजन बनाने में, दूसरी प्रक्रिया कार्बनिक पदार्थों के तोड़ने में लगी रहती है। कुल प्राथमिक उत्पादकता श्वसन क्रिया के उपरोक्त बची हुई कुल ऊर्जा को प्रदर्शित करती है। द्वितीय उत्पादकता वह दर है, जहां पर आहार ऊर्जा उत्पादकों के पोषक स्तरों पर उपापचय या संगठन होता है। अपघटन के दौरान जटिल जैविक यौगिकों का कार्बन डाइऑक्साइड, जल तथा कार्बनिक पोषकों मे विघटन होता है। अपघटन के तीन मुख्य तरीके अपरद पर लगातार कार्य करते रहते हैं जैसे अपरद का टुकड़े-टुकड़े होना, निच्छालन तथा अपचय।

ऊर्जा प्रवाह तथा पोषक चक्र पारिस्थितिकी तंत्र की मुख्य क्रियाएं हैं। ऊर्जा प्रवाह एक दिशा में होता है। इसमें (i) प्रकाश ऊर्जा को आहार में बदलता है तथा (ii) ऊर्जा का एक जीवाणु से दूसरे में स्थानांतरण, पोषक स्तरों की उत्पादकता के लिए ऊर्जा का स्थानांतरण दूसरे पोषक सतहों के लिए भोजन का काम करता है, जिसे आहार शृंखला कहते हैं। परिस्थिति दक्षता उसे कहते हैं, जिस दक्षता के साथ जीवाणु अपना भोजन लेते हैं, तथा भोजन को जैवभार में रूपांतरित कर दूसरे उच्च पोषक स्तरों के लिए उपलब्ध रहते हैं।

पोषक चक्र के अंतर्गत पोषकों का भंडारण तथा स्थानांतरण पारिस्थितिकी के विभिन्न अवयवों के द्वारा होता है। जिससे पोषकों का बार-बार उपयोग होता है। पोषक चक्रण दो प्रकार के हैं: गैसीय तथा अवसादी। गैसीय प्रकार का पोषण चक्र भंडार साधारणतः वायुमंडल या जलमंडल में उपलब्ध रहता है। अवसादी भंडार पृथ्वी के सतह पर पाया जाता है। पारिस्थितिक तंत्र के पोषक चक्रों के तीन आयाम हैं: निवेश, निर्गत तथा पोषण का आंतरिक चक्रण। नाइट्रोजन तथा फॉस्फोरस चक्र गैसीय तथा अवसादी प्रकार के पोषक चक्रों के लिए जाने जाते हैं।

जीवोम को वनस्पति की जीवशैली के द्वारा आसानी से पहचाना जा सकता है। वन, घासस्थल/सवाना तथा मरुभूमि जीवोम में सर्वाधिक भूमि, प्राकृतिक वनस्पति से घिरी रहती है, वन जीवोम में मुख्यतः बंद आवरण वाले पौधों की प्रचुरता रहती है, जबकि घासस्थल, शाकाहारी जातियों से घिरा होता है तथा सवाना को शाकहारी एवं वृक्षों जैसे वनस्पति के लिए जाना जाता है। मरुभूमि निम्न झाड़ी तथा शाक से घिरी होने के साथ-साथ खुली भूमि वाली भी होती है। कार्बन पदार्थों के कुल उत्पादकता की दर या सौर ऊर्जा ग्रहण करने की दर को सकल प्राथमिक उत्पादकता कहते हैं।

अभ्यास

1. खाली जगहों को भरें:
   (क) ———————— का पिरामिड, हमेशा ऊधर्वाधर होता है।
   (ख) प्रतिलोमित पिरामिड सामान्यतया, ———————— में पाया जाता है।
   (ग) समुद्रों में उत्पादकता, सामान्यतया ———————— द्वारा सीमित हो जाती है।
   (घ) ह्यूमस ———————— के स्रोत/भंडार के रूप में कार्य करता है।
   (ङ) मृत पादप भाग तथा प्राणी अवशेषों को ———————— कहते हैं।
2. निम्नलिखित में से कौन-सा पारिस्थितिकी का अजैविक अवयव है?
   (क) बैक्टीरिया (ख) ह्यूमस
   (ग) पादप (घ) कवक
3. निम्न में से कौन-सी प्रक्रिया द्वारा पोषण संरक्षण में सहायता मिलती है?
   (क) खनिजीकरण (ख) निश्चलीभवन
   (ग) निक्षालन (घ) नाइट्रिकीकरण

4. निम्नलिखित में से कौन-सा अवसादी प्रकार के पोषक चक्र को दर्शाता है?
   (क) नाइट्रोजन
   (ख) कार्बन
   (ग) फॉस्फोरस
   (घ) ऑक्सीजन
5. निम्नलिखित में से कौन-सा मृदा में उपस्थित रहने वाला स्वतंत्र नाइट्रोजन यौगिकीकरण करने वाला बैक्टीरिया है?
   (क) *एजोटोबैक्टर*
   (ख) *नाइट्रोसोमोनास*
   (ग) *राइजोबियम*
   (घ) *स्यूडोमोनास*
6. शाकभक्षियों द्वारा स्वांगीकृत ऊर्जा का कितना भाग श्वसन में उपयोग हो जाता है?
   (क) 20 प्रतिशत
   (ख) 30 प्रतिशत
   (ग) 40 प्रतिशत
   (घ) 60 प्रतिशत
7. स्तंभ I को स्तंभ II के साथ जोड़ा लगाइए :

स्तंभ I	स्तंभ II
(क) ऊष्ण कटिबंधीय वर्षा प्रचुर वन	(I) सोरिया रोबस्टा
(ख) ऊष्ण कटिबंधीय पतझड़ वन	(II) कर्कस
(ग) शीतोष्ण चौड़ा-पत्ती वन	(III) सेड्रस देवदारा
(घ) शीतोष्ण नोकदार पत्ती वन	(IV) डिप्टेरोकार्पस
	(V) एबीज पींडो

8. निम्नलिखित के बीच अंतर स्पष्ट कीजिए :
   (क) चारण आहार शृंखला तथा अपरद आहार शृंखला
   (ख) गैसीय तथा अवसादी प्रकार के पोषक चक्रण
   (ग) नम निक्षेपण तथा शुष्क निक्षेपण
9. निम्नलिखित के बीच अंतर स्पष्ट कीजिए:
   (क) अजैविक तथा जैविक अवयव
   (ख) कुल प्राथमिक उत्पादकता तथा सकल प्राथमिक उत्पादकता
   (ग) आहार शृंखला तथा आहार जाल
10. प्राथमिक उत्पादकता क्या है? विश्व के विभिन्न परिस्थितिकी में प्राथमिक उत्पादकता की सीमा बताए।
11. पारिस्थितिक दक्षता क्या है? इसके महत्त्व को बताएं।
12. अपघटन की दर को प्रभावित करने वाले कारकों के बारे में लिखें।
13. संक्षेप में उष्णकटिबंधीय जीवोम की व्याख्या करें।
14. पारिस्थितिकी में ऊर्जा प्रवाह के बारे में लिखें।
15. संक्षेप में अपघटन की प्रक्रिया तथा उत्पाद के बारे में लिखें।
16. पारिस्थितिक नाइट्रोजन चक्रण के संदर्भ में प्रमुख तथ्यों को लिखें।
17. घासस्थल क्या है? सवाना से यह किस प्रकार भिन्न है?
18. मरुस्थल के प्रमुख अभिलक्षणों को बताएं।

प्राकृतिक संसाधन तथा उनका संरक्षण

अब तक आप जान गए हैं कि पृथ्वी का विविध जैवमंडलीय पर्यावरण मानव को अनगिनत प्रकार की सुख-सुविधा प्रदान करता है। प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र का कोई भी अवयव जिसका उपयोग मानव अपने कल्याण के लिए करता है, **प्राकृतिक संसाधन** कहलाता है। प्राकृतिक संसाधन, कोई वस्तु, ऊर्जा की इकाई या एक प्राकृतिक प्रक्रिया या घटना हो सकती है। भूमि, मृदा, जल, वन, घास-स्थल इत्यादि प्राकृतिक संसाधनों के उदाहरण हैं जोकि पृथ्वी पर जीवन क्रिया के लिए महत्त्वपूर्ण होते हैं। भोजन, चारा तथा आवास के अतिरिक्त प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग मनोविनोद के अवसर तथा प्रेरणा स्रोत के रूप में भी किया जाता है। मानव सभ्यता के प्रारंभ से ही आदिमानव में भोजन को जमा करने की प्रवृत्ति विकसित हो गई थी। भोजन, चारा तथा आवासीय संसाधनों को आवश्यकता से अधिक इकट्ठा करने के फलस्वरूप परिवेशीय संसाधनों का शोषण हुआ है। पिछली शताब्दी में मानव जनसंख्या में हुई अपार वृद्धि के द्वारा प्राकृतिक संसाधन का अत्यधिक ह्रास हुआ है। इस प्रकार विश्व के प्रत्येक भाग में प्राकृतिक संसाधनों का दोहन हो रहा है। इस अध्याय में हम प्राकृतिक संसाधनों के प्रमुख प्रकार, उनके विघटन के कारण तथा उनके संरक्षण के बारे में अध्ययन करेंगे।

19.1 प्राकृतिक संसाधनों का वर्गीकरण

(Classification of Natural Resources)

प्राकृतिक संसाधन, अपनी अवस्थिति, मात्रा तथा गुण के अनुसार बहुत ही भिन्नता दर्शाते हैं। उदाहरण के तौर पर, एक विशेष प्रकार का वन कुछ विशेष देशों में ही पाया जा सकता है, तथा उसके भौगोलिक क्षेत्र एवं काष्ठ गुणों में, देशों के अनुसार भिन्नता पाई जा सकती है। कुछ संसाधनों को परिवर्तित नहीं किया जा सकता है जबकि कुछ में आसानी से परिवर्तन संभव है। कुछ संसाधनों का एक बार उपयोग होने के बाद फिर से उपयोग हो सकता है। संसाधनों का आसान वर्गीकरण उनके क्षय या पुन: स्थापन क्षमता के आधार पर किया जा सकता है (चित्र 19.1)।

सामान्यत: संसाधनों को दो वर्गों में बांटा गया है : (i) **अक्षय संसाधन** और (ii) **क्षय संसाधन**।

अक्षय संसाधन (Inexhaustible Resources)

पृथ्वी पर अक्षय संसाधन असीमित मात्रा में उपलब्ध हैं। कुछ अक्षय संसाधन मानव के प्रभाव से हमेशा अप्रभावित रहते हैं, जबकि कुछ की गुणवत्ता पर असर पड़ता है, लेकिन मात्रा में कोई परिवर्तन नहीं होता है। उदाहरणार्थ सौर ऊर्जा, पवन शक्ति, ज्वारीय उर्जा, वृष्टि, तथा परमाणु ऊर्जा संसाधन कभी समाप्त नहीं होते या मानव के क्रिया-कलापों का उन पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता है। इन संसाधनों में मानव के क्रिया-कलापों द्वारा स्थानीय परिवर्तन आ सकता है, जैसे की वायु प्रदूषण से सौर विकिरण तथा वातावरण की गुणवत्ता पर प्रभाव पड़ सकता है।

क्षय संसाधन (Exhaustible Resources)

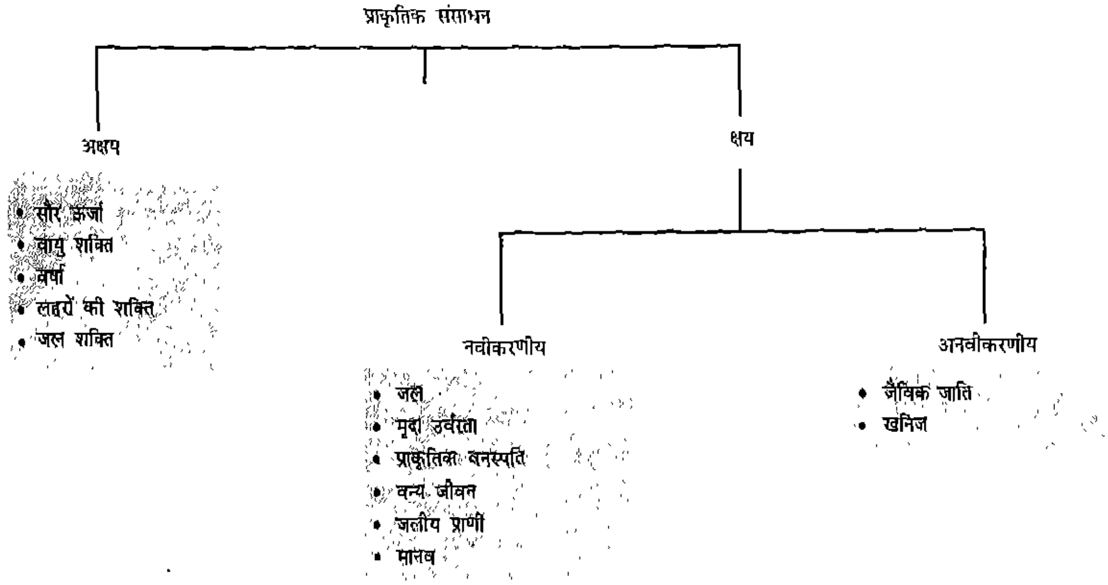
बहुत से प्राकृतिक संसाधन क्षय होने वाले हैं - पृथ्वी पर उनकी आपूर्ति सीमित मात्रा में होती है। यदि उनका बिना सोचे समझे उपयोग किया गया तो, वे समाप्त हो सकते हैं। मुख्यत: क्षय संसाधनों को **नवीकरणीय** तथा **अनवीकरणीय** संसाधन के रूप में बांटा गया है।

नवीकरणीय संसाधन : अधिकतर नवीकरणीय संसाधन जैविक प्रकार के होते हैं। नवीकरणीय संसाधनों की वृद्धि तथा पुनरूत्पादन क्षमता को आसानी से नियंत्रित किया जा सकता है, जिससे इन संसाधनों को लगातार पुनर्योजित किया जा सके। यदि इन संसाधनों का उपभोग पुनरुत्पादन की दर से लगातार बढ़ता रहता है तो, इनकी गुणवत्ता पर असर पड़ने के साथ-साथ ये पूरी तरह समाप्त भी हो सकते हैं।

पारिस्थितिक तंत्र के कुछ चुने हुए उदाहरण तथा उनके प्रमुख नवीकरणीय उत्पाद् निम्न प्रकार हैं :

(i) वन- जो कि काष्ठ तथा अन्य पादप उत्पाद प्रदान करते हैं।

(ii) चरागाह- जो घास चरने वाले प्राणियों को आश्रय प्रदान करते हैं, जिससे दूध, मांस तथा ऊन मिलता है।



चित्र 19.1 प्राकृतिक संसाधन के आधारभूत प्रकार। विभिन्न प्रकार के संसाधनों के कुछ उदाहरणों को भी दर्शाया गया है

(iii) जल तंत्र- जो विभिन्न प्रकार के जलीय पौधों व जलीय प्राणियों को भोजन प्रदान करते हैं। मृदा तथा जल भी नवीकरणीय संसाधन हैं।

(iv) कृषि तंत्र- इससे भोजन तथा रेशे मिलते हैं।

(v) वन्य प्राणी- ये आहार शृंखला को संचालित करते हैं। मृदा एवं जल अन्य नवीकरणीय संसाधन हैं।

अनवीकरणीय संसाधन : कुछ जैविक संसाधन अनवीकरणीय होते हैं, अर्थात् यदि उनका उपयोग समाप्त कर दिया जाए तो उन्हें पुन:निर्मित नहीं किया जा सकता। जैविक जातियां, जो प्रकृति में लाखों वर्षों में विकसित हुई है उनको अनवीकरणीय माना गया है। यदि कोई जैविक जाति एक बार पृथ्वी से विलुप्त हो जाती है तो उसे मानव फिर से निर्मित नहीं कर सकता। बहुत से अजैविक संसाधन भी अनवीकरणीय होते हैं। उदाहरण के लिए जीवाश्मी ईंधन (कोयला, पेट्रोलियम, गैस) तथा धातुएं जिनको एक बार पृथ्वी से निकालने के पश्चात उन्हें पुनर्स्थापित नहीं किया जा सकता। असीमित निष्कर्षण तथा उपभोग से जीवाश्मी ईंधन सदैव के लिए समाप्त हो जाता है। यह सत्य है कि कुछ धातुओं को निष्कर्षण के पश्चात् नए उत्पादों में बदला जा सकता है (जैसे सोना तथा चांदी)। जिप्सम जैसे अधातु खनिज भी अनवीकरणीय संसाधन हैं।

19.2 प्रमुख प्राकृतिक संसाधन (Principal Natural Resources)

पृथ्वी के संसाधनों में निम्नलिखित संसाधन मानव कल्याण के लिए महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं: (i) मृदा, (ii) जल, (iii) भूमि, (iv) ऊर्जा, (v) खनिज तथा (vi) समुद्रीय उत्पाद।

19.3 मृदा संसाधन (Soil Resources)

अध्याय 16 में आपने पढ़ा है कि मृदा पृथ्वी सतह की सबसे ऊपरी अपक्षीण पर्त है, जोकि पौधे की वृद्धि के लिए माध्यम का कार्य करती है। मृदा अकार्बनिक एवं कार्बनिक तत्त्वों, वायु, जल तथा अनेक सजीवों से मिलकर बनी है। मृदा का निर्माण, मूल शैल, जलवायु, सजीवों, समय तथा स्थलाकृति की परस्पर क्रिया के फलस्वरूप होता है। मृदा के विभिन्न संस्तरों के बनने में कई दशक या शताब्दी तक लग सकते हैं। ये संस्तर भौतिक-रासायनिक गुणों में भिन्न होते हैं। स्थलीय पारिस्थितिक तंत्र में जैविक उत्पादों की मात्रा, भूमि की उर्वरता पर निर्भर करती है। मानव क्रियाएं भूमि का अपरदन तथा उर्वरता ह्रास जैसी विश्व व्यापी समस्याएं उत्पन्न कर रही हैं।

भूमि अपरदन (Soil Erosion)

अनियंत्रित जल तथा वायु का प्रवाह अपरदन की क्रिया द्वारा मृदा की उपरिमृदा को हटा देते हैं। प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र में, पौधों

की बहुतायत के कारण भूमि का अपरदन साधारणत: कम होता है। मानव क्रिया प्राकृतिक क्रिया-कलापों द्वारा प्राकृतिक पादप समुदायों के ह्रास से मृदा अपरदन बढ़ता है। भारत में शस्य भूमि की लाखों टन उपरिमृदा प्रतिवर्ष अपरदित होकर समुद्र में जा मिलती है। आपरदन से मृदा की महत्त्वपूर्ण उर्वरता नष्ट होती है, क्योंकि मृदा की उर्वरता के लिए आवश्यक कार्बनिक पदार्थ तथा पोषक तत्त्व उपरिमृदा के साथ हट जाते हैं। अपरदित मृदा, झरने, नदियों तथा झीलों में तलछटों के रूप में जमा होकर जल की गुणवत्ता तथा जलीय जीवों के आवास को प्रभावित करती है।

मृदा की उर्वरता का ह्रास (Depletion of Soil Fertility)
जब वनोन्मूलन कर पृथ्वी को कृषि योग्य बनाया जाता है, जैसा कि देश के कई हिस्सों में हुआ है, तब वनों के जीवोम में उपस्थित पोषक तत्त्वों का नाश तो होता ही है, साथ ही कार्बनिक पदार्थों तथा मृदा में उपस्थित पोषक तत्त्वों का भी नाश होता है। कृषि तंत्र में पोषक तत्त्वों का फसलों में स्थानांतरण हो जाता है। इसलिए एक समय के बाद कृषि भूमि की उर्वरता नष्ट हो जाती है।

भूमि संरक्षण (Soil Conservation)
मृदा तथा फसल प्रबंधन के तरीके कृषि भूमि के अपरदन को कम करने तथा पोषक तत्वों के ह्रास को रोकने में बहुत उपयोगी पाए गए हैं। इन उपयोग में जुताई, संरक्षण, जैविक खेती, फसल चक्रण (विशेषकर अनाज तथा दालों में), समोच्य रेखीय जुताई तथा पट्टीदार खेती मुख्य हैं। रूढ़िगत जुताई की तुलना में, संरक्षणात्मक जुताई सिद्धांत रूप में पिछले फसलों के अवशेषों को सम्मिलित करती है, जिससे मृदा में नमी तथा पोषक तत्त्वों को बढ़ावा मिलता है, जिसके फलस्वरूप भूमि में आर्द्रता और पोषक तत्त्व बढ़ते हैं। अपरदित भूमि में दो प्रकार से सुधार लाया जा सकता है:-
(i) अपरदन को रोकने के लिए भू-स्थिरीकरण तथा
(ii) भूमि में पहले जैसी उर्वरा शक्ति पुनर्स्थापित कर।

मृदा स्थिरीकरण के लिए वनस्पति रहित मृदा में ऐसे पादप लगाने चाहिए जो कठिन वातावरणीय परिस्थितियों का सामना आसानी से कर सकें, उदाहरणार्थ जलाभावसह घास। इस प्रकार के पादप मृदा के ऊपर वनस्पति आवरण बनाकर, पुन: अपरदन को रोकते हैं। अपरद् मृदा की मात्रा में वृद्धि होने से, मृदा कार्बनिक पदार्थ, पोषक तत्त्वों तथा नमी की मात्रा में सुधार होता है। मृदा उर्वरता को उसके पूर्ववत स्तर पर पुन: स्थापित होने की प्रक्रिया बहुत धीमी होती है। मृदा उर्वरता को बढ़ाने के लिए, जैविक उर्वरक बहुत ही उपयोगी सिद्ध होते हैं।

19.4 जल संसाधन (Water Resources)

सभी सजीवों, सूक्ष्म जीवाणु से लेकर बहुकोशिकीय पौधों व प्राणियों के शरीर में जल उनकी उत्तरजीविता के लिए आवश्यक रूप से उपस्थित होता है। पृथ्वी की सतह का तीन चौथाई हिस्सा समुद्र से घिरा है। यह पृथ्वी के जल का 97.5 प्रतिशत भाग है, जो कि समुद्र में खारे जल के रूप में रहता है। शेष 2.5 प्रतिशत मीठा जल है तथा यह भी पूर्णतया मानव उपयोग के लिए उपलब्ध नहीं होता है। मीठे जल का अधिकतर हिस्सा (1.97 प्रतिशत) ध्रुवीय या हिमखंड के रूप में रहता है। शेष अलवणीय मीठा जल, भूमिगत जल (0.5 प्रतिशत) तथा झरनों एवं नदियों में (0.012 प्रतिशत), मृदा में (0.1 प्रतिशत), और वायुमंडलीय जल 0.001 प्रतिशत के रूप में रहता है। इस प्रकार, अलवण जल का एक अल्प 0.001 प्रतिशत हिस्सा ही मानव उपयोग के लिए उपलब्ध रहता है। मृदा एवं वायुमंडल में अलवण जल अल्पमात्रा में होते हुए भी जैवमंडल के जलीय चक्र में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

कुल भूमंडलीय वाष्पीकरण का करीब 84 प्रतिशत भाग समुद्री सतह से तथा 16 प्रतिशत भाग भूमि सतह से वाष्पीकृत होता है। किसी नियत समय में वायु में उपस्थित नमी पृथ्वी की 10 दिन की वर्षा की आवश्यकता की पूर्ति कर सकती है। कुल वृष्टि का लगभग 77 प्रतिशत भाग समुद्र सतह द्वारा (जबकि इस खंड से लगभग 84 प्रतिशत वाष्पीकरण होता है) एवं 23 प्रतिशत भाग भू-सतह द्वारा (वायुमंडल में कुल वाष्पीकरण का करीब 16 प्रतिशत अंश) प्राप्त किया जाता है। इस तरह भू-सतह पर जल वृष्टि का कुल 7 प्रतिशत भाग ही प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त जल नदियों द्वारा सतही एवं सह-सतही जल प्रवाह द्वारा समुद्र में वापस हो जाता है। भू-मंडलीय आधार पर, जल चक्र पूर्णत: संतुलित रहता है, क्योंकि कुल वार्षिक वाष्पीकरण, वार्षिक वर्षण के बराबर होता है।

जल उपयोग (Water Use)

भूमंडलीय स्तर पर, सन् 1950 से जल के उपयोग में प्रतिवर्ष 4 से 8 प्रतिशत की वृद्धि हुई है तथा विभिन्न देशों के उपभोग दर में भिन्नता आई है। विश्व स्तर पर, कुल जल का लगभग 70 प्रतिशत भाग कृषि कार्य के लिए उपयोग में आता है। घरेलू तथा नगरपालिका उपयोग के लिए केवल 1.1 प्रतिशत, शेष जल, सीमेंट, खनन, औषधि उद्योग अपमार्जक तथा चमड़ा जैसे विभिन्न उद्योगों द्वारा खर्च किया जाता है।

जल संसाधनों से संबंधित समस्याएं (Problems Related with Water Resources)

विश्व जनसंख्या का करीब 40 प्रतिशत भाग, शुष्क तथा अर्द्धशुष्क भू-भागों में निवास करता है। इन क्षेत्रों में रहने वाले लोगों का प्रमुख समय तथा उर्जा अपने घरेलू तथा कृषि कार्य में खर्च होने वाले जल को प्राप्त करने के प्रयास में ही लग जाती है। वृहत् जनसंख्या की

जलीय आवश्यकता की पूर्ति के लिए इन क्षेत्रों के सतही जल का अत्यधिक उपयोग किया जाता है, जिससे कि स्थानीय पारिस्थितिक तंत्र में विनाशी परिणाम होता है। लगभग एक तिहाई जल निकासी से स्थानीय पारिस्थितिक तंत्र पर कोई विशेष हानिकारक प्रभाव नहीं पड़ता है, लेकिन इससे अधिक सतही जल के उपयोग होने पर समीपी नम भू-भागों में शुष्कता आ सकती है।

जब मानव उपयोग के लिए इससे भी अधिक भूमिगत जल का उपयोग होता है, तो जलस्रोतों (aquifers) पर इसका विपरीत प्रभाव पड़ता है, जलस्रोत या तो सूख सकते हैं या उनका स्तर नीचे जा सकता है। शुष्क तथा अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में आवश्यकता से अधिक सिंचाई करने से मृदा में लवणों का जमाव भी हो सकता है, जिससे कि फसल उत्पादकता प्रभावित हो सकती है। तटीय प्रदेशों में भूमिगत जल के लगातार निकालने से लवणयुक्त समुद्री जल का अलवणीय जलस्रोतों में संचालन होने लगता है, जिससे कि इस जल के गुण प्रभावित होते हैं।

ज्वारनदमुख, जहां नदियां समुद्र में मिलती हैं, वह अधिक लवणयुक्त हो जाते हैं। सतही जलों का अत्यधिक उपयोग होने के कारण तथा खारापन बढ़ने से, उत्पादकता में सार्थक ह्रास होता है, जिसके लिए ज्वारनदमुख का विशेष महत्त्व है। आधुनिक काल में बाढ़, जोकि मुख्यरूप से वनों के कटने के कारण आती है, इससे न केवल संपत्ति की वरन् जीवन की भी बर्बादी होती है। पर्वतों में स्थित वन, वर्षण को संरक्षित तथा अवशोषित कर बाढ़ से बचाते हैं, तथा वर्षा के जल को धीरे-धीरे जाने देते हैं। वनोन्मूलन से, भूमि, जल को नहीं रोक सकती है और भारी वृष्टि द्वारा वृष्टि विहीन ऊसर पर्वतों से जल का तीव्र प्रवाह होता रहता है, इससे केवल मृदा अपरदन ही नहीं होता है वरन्, निम्न भूमि क्षेत्रों में बाढ़ का प्रकोप भी बढ़ जाता है।

जल का संरक्षण तथा प्रबंधन (Conservation and Management of Water)

जल संरक्षण के प्रमुख उपाय इस प्रकार हैं:

(i) सिंचाई की दक्षता बढ़ा कर कृषि जल की बर्बादी को रोकना। पारंपरिक पद्धति की सिंचाई में मात्र 50 प्रतिशत जल ही पौधों द्वारा अवशोषित किया जाता है, शेष जल बर्बाद ही होता है।

(ii) उद्योगों में उपयोग में लाए गए जल के, पुन: चक्रण द्वारा जल की बर्बादी को कम किया जा सकता है।

(iii) घरेलू अपशिष्ट जल को, अपशिष्ट जल संयंत्र निर्माण द्वारा, पुन: उपयोग में लाकर तथा उस जल के पुन: चक्रण द्वारा घरेलू जल की बरबादी को कम किया जाता है। इसके अतिरिक्त उपभोक्ता को शिक्षित कर तथा जल संरक्षणकारी घरेलू उपकरणों द्वारा भी जल के घरेलू उपभोग को कम किया जा सकता है।

(iv) वर्षा जल को एकत्र करके तथा भूमिगत जल का पुन: भरन कर जल संरक्षण को बढ़ावा दिया जा सकता है।

(v) वृक्षारोपण तथा जल ग्रहण क्षेत्र को संरक्षित कर, जलीय धन को उन्नत किया जा सकता है।

उच्च कोटि के जल की अनवरत पूर्ति के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण जल प्रबंधन संबंधी उपगमन इस प्रकार हैं:

(i) बांध तथा जलाशयों का निर्माण कर, साल भर जल की पूर्ति निश्चित कर, तथा साथ ही इसके द्वारा बाढ़ नियंत्रण किया जा सकता है एवं बिजली उत्पादित की जा सकती है।

(ii) आसवन विधि द्वारा या विपरीत परासरण द्वारा खारेपन को निकाल कर, समुद्री जल तथा लवणयुक्त भूमिगत जल को, लवणहीन कर, इसे पीने योग्य या अन्य उपयोग के लिए उपयुक्त बनाया जा सकता है। जलाशयों का दिशापरिवर्तन कर (जैसे कि नहरों द्वारा) क्षेत्र विशेष में जल की पूर्ति की जा सकती है।

(iii) जलाशयों के नियमित विगादिकरण द्वारा।

19.5 भू-संसाधन (Land Resources)

पृथ्वी का एक-चौथाई भाग स्थलों से बना है, जोकि प्राकृतिक वनों, घासस्थलों, नम भूमि आर्द्रस्थलों एवं कृषि के साथ-साथ मानवकृत शहरी तथा ग्रामीण बस्तियों से मुख्य रूप से आच्छादित है। वन तथा घासस्थल, पूरक स्थल संसाधनों का निर्माण करते हैं। निचले भागों का क्षेत्र, जोकि छिछले जलों से भरा रहता है, **नम भूमि** कहलाता है। नम भूमि, क्षेत्र स्थलीय तथा जलीय क्षेत्रों के बीच का भाग है।

19.6 वन (Forests)

पृथ्वी के कुल स्थलीय क्षेत्रों का लगभग एक-तिहाई भाग, वनों से भरा है। उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों के आर्द्र या अर्द्ध-आर्द्र भागों में वन तथा वनस्थली एक प्राकृतिक प्रकार का वनस्पति आवरण होता है। वनों द्वारा, मानव जाति के लिए एक महत्त्वपूर्ण सेवा प्रदान की जाती है। ये सेवाएं वनों की निम्न मुख्य क्रियाओं से उत्पन्न होती हैं:

(i) उत्पादक क्रियाएं : वनोत्पादन में निश्चित तौर पर काष्ठ का उत्पादन, फलों तथा कई प्रकार के अवयवों, जैसे कि रेजिन, एल्कोलाइड प्रमुख तेलों, रबड़क्षीर तथा औषधि उत्पादन इत्यादि शामिल हैं।

(ii) सुरक्षात्मक क्रियाएं : इन क्रियाओं में भूमि तथा जल का संरक्षण, सूखा, हवा, ठंड तथा विकिरण से सुरक्षा, शोर एवं दृष्टि से बचाव इत्यादि शामिल हैं।

सारणी 19.1 : भारत में वन का आवरण (1999 आंकलन)

वर्ग	क्षेत्र (घन कि.मी.)	% भौगोलिक क्षेत्र
घने वन [1]	3,77,358	11.5
खुले वन [2]	2,55,064	7.8
मैंग्रोव [3]	4,871	0.1
योग	6,37,293	19.4
गुल्म वन [3]	5,896	1.6
वन रहित (अन्य भूमि)	25,98,074	79
कुल योग	32,87,263	100.00

[1] वितानी आवरण > 40% भूमि का
[2] वितानी आवरण 10-40% भूमि का
[3] वितानी < 10% भूमि का

(iii) नियमनकारी क्रियाएं : इनमें अवशोषण, भंडारण तथा गैसों (CO_2, O_2) जल, खनिज तत्त्वों तथा विकिरण ऊर्जा का निष्कासन होता है। जैविक विविधताओं को बढ़ावा देकर नियमनकारी क्रियाओं द्वारा आर्थिक तथा पर्यावरण मूल्यों के दृश्यभूमि में सुधार लाने के साथ-साथ वातावरण तथा तापमान परिस्थिति में भी सुधार लाया जा सकता है। वन जलीय चक्रों पर प्रभाव डालकर बाढ़ तथा सूखा को भी प्रभावी रूप से नियंत्रित करते हैं और इसका प्रभाव विशेषरूप से कार्बन के भूमंडलीय जैवभूरासायनिक चक्र पर पड़ता है।

भारत में वन क्षेत्र (Forest Area in India)

20वीं सदी की शुरुआत में लगभग 30 प्रतिशत भूमि वनों से घिरी थी, परंतु 20वीं सदी के अंत में यह घटकर 19.4 प्रतिशत रह गई (सारणी 19.1)। नेशनल फॉरेस्ट पॉलिसी (1988) द्वारा निर्देशित मैदानी क्षेत्र में 33 प्रतिशत वन क्षेत्र से यह कम है। पहाड़ी इलाकों में कम से कम 67 प्रतिशत भूमि वन से घिरी होनी चाहिए। उपस्थित वनों में केवल दो तिहाई संरक्षित वन हैं, जबकि बचे हुए सारे वन निम्नीकृत वन हैं। आज प्रति व्यक्ति वनों की उपलब्धता 0.06 हे. है, जो कि विश्व स्तर पर बहुत कम है (0.64 हे. प्रति व्यक्ति)।

वनोन्मूलन (Deforestation)

वनों का आवरण बहुत तेजी से घट रहा है, विशेषकर उन विकासशील देशों में जो उष्णकटीबंधीय क्षेत्र में स्थित हैं। शीतोष्णकटिबंधीय वनों में 1 प्रतिशत की कमी आई है, जबकि उष्णकटिबंधीय वनों का 40 प्रतिशत वन आवरण, वनोन्मूलन के कारण नष्ट हो चुका है। वनोन्मूलन के मुख्य कारण हैं खेती योग्य भूमि का विस्तार, शहरीकरण, औद्योगीकरण, काष्ठीय पादपों का अत्यधिक व्यावसायिक उपयोग, ईंधन लकड़ी, अन्य वन उत्पाद तथा पशुओं द्वारा घास चरना। उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में वनोन्मूलन की वर्तमान दर 10 मिलियन हे. प्रति वर्ष है। यदि इसी दर से वनोन्मूलन होता रहा, तो यह संभावना है कि उष्णकटिबंधीय क्षेत्र का बचा हुआ वन अगली शताब्दी तक समाप्त हो जाएगा।

वनोन्मूलन से मृदा अपरदन बढ़ता है तथा भूमि की उर्वराशक्ति घटती है। सूखे क्षेत्रों में वनोन्मूलन के परिणामस्वरूप मरुस्थल का निर्माण हो सकता है। अनियंत्रित अपरदन से जलाशयों में पर्तयुक्त मृदा का निर्माण होता है, जो कि मछलियों को नुकसान पहुंचा सकते हैं। वनोन्मूलन से नदियों की तरफ बहकर जाने वाले जल की मात्रा तथा इसकी धारा कई गुना बढ़ जाती है, जिससे उस क्षेत्र को प्रत्येक वर्ष बाढ़ तथा सूखे का सामना करना पड़ सकता है।

वनोन्मूलन से पौधे, प्राणियों तथा सूक्ष्मजीवों की जातियां विलुप्त हो जाती हैं। उन मूल निवासियों के लिए भी यह संकट सूचक है, जो सांस्कृतिक तथा भौतिक दृष्टि से वनों पर आश्रित रहते हैं। वनों के अंदर अनेक जातियों में कुछ सीमित प्रकीर्णन सीमाएं होती है, अत: वे आवासीय परिवर्तन व विनाश से विशेषतया प्रभावित होते हैं। प्रवासी प्राणियों तथा पक्षियों की जातियां भी वनोन्मूलन से प्रभावित होती हैं। वनोन्मूलन से क्षेत्रीय तथा भूमंडलीय जलवायु भी प्रभावित होती है। साधारणत: वनोन्मूलित क्षेत्रों में वर्षा कम होती है तथा सूखा होने के आसार बढ़ जाते हैं वनोन्मूलन से भूमंडलीय तापमान में भी वृद्धि होती है (अध्याय 21 देखें)।

वन संरक्षण एवं प्रबंधन (Forest Conservation and Management)

वृक्षारोपण के तहत वृहत् पैमाने पर पौधे लगाकर पृथ्वी पर वनों के आवरण को बचाया जा सकता है, यही समय की मांग भी है। वृक्षारोपण कार्यक्रम से यह सुनिश्चित होना चाहिए कि : (i) पौधों के उत्पादों की निरंतर आपूर्ति, मनुष्यों को रोजगार एंव कारखानों को कच्चा माल मिलता रहना चाहिए। (ii) वन आवरण के संरक्षण तथा पुनर्स्थापन द्वारा लंबी अवधि तक परिस्थितिकी संतुलन बनाना।

इन लक्ष्यों की पूर्ति के लिए निम्नलिखित परंपरागत वन विद्या पद्धति को सावधानीपूर्वक समन्वित करना चाहिए। (i) सुरक्षा या संरक्षण वन विद्या, तथा (ii) उत्पादन या व्यावसायिक वन विद्या।

इनमें अपघटित वन की **सुरक्षा**, जिससे वह वनस्पति एवं जंतुओं के रहने योग्य हो सके तथा वनों का सही तरीके से संरक्षण आता है। जिन वनों को राष्ट्रीय उद्यान तथा अभ्यारण्य क्षेत्र घोषित कर दिया गया है, वह मनुष्य की छेड़-छाड़ से सुरक्षित हैं। अच्छे संग्रहित वनों को वैज्ञानिक तरीके से प्रबंधित किया जाता है जिससे काष्ठ तथा अन्य वन्य उत्पादों को बिना किसी विपरीत पर्यावरण प्रभाव के, वनों से निकाला जा सके (विस्तृत विवरण अध्याय 20 में देखें)।

दूसरी तरफ बिना किसी प्राकृतिक वनों के अनाच्छादन के ही **उत्पादन** या **व्यावसायिक वन विद्या** द्वारा उपलब्ध भूमि पर पौधे लगाकर व्यावसायिक मांगों को पूरा किया जाता है। उदाहरण के लिए, गांव वालों के खेतों, सामुदायिक भूमि, सड़क, तथा रेल पटरियों के किनारे देशी या विदेशी पौधों की जातियां लगाने से प्राकृतिक वनों पर दबाव कम पड़ता है। सामाजिक वन विद्या तथा कृषि वन विद्या इस वर्ग में आते हैं।

सामाजिक वन विद्या का मुख्य उद्देश्य अनोपयोगी जमीन पर चारा एवं ईंधन के लिए पौधे उगाना है, जिससे वनों की रक्षा की जा सके। काम में न आने वाली खेतों की जमीन, सामुदायिक जमीन, सड़क एवं रेल लाइनों के किनारे आदि पर उपयुक्त स्वदेशी एवं परदेशी वृक्ष लगाए जा सकते हैं।

कृषि वन विद्या में जमीन का उपयोग शाकीय फसलों के साथ-साथ काष्ठीय जातियां (वृक्ष) उगाने में किया जाता है। उदाहरण के तौर पर **तोंग्या** पद्धति में कृषि फसलों के साथ साल एवं सागौन के वृक्ष लगाए जाते हैं। देश के उत्तरी-पूर्वी क्षेत्रों में **झूम** विधि से खेती (आदिकालीन कृषि वन विद्या) का उपयोग काफी किया जाता है। इसमे पहले जंगलों को जलाकर या काटकर कुछ वर्षों तक खेती की जाती है इसके बाद फिर से जंगलों को उगने दिया जाता है। उत्पादन वृक्षारोपण के अंतर्गत तेजी से बढ़ने वाले पौधों को आधुनिक तकनीकी का उपयोग करते हुए लगाया जाता है, जिससे वनों पर आधारित उद्योगों की मांग को पूरा किया जा सके।

19.7 घास स्थल (Grassland)

घास स्थल (जिन्हें **प्रक्षेत्र** भी कहा जाता है) पालतु पशुओं तथा वन्य प्राणियों के लिए चारा देते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में घास स्थलों से, घास निकालकर विशेषकर लंबी घास निकालकर, सुखा ली जाती है, जिसका कि ईंधन या तृण सामग्री के रूप में उपयोग होता है। पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से घासों का आवरण बहुत ही असरदार है। यह मृदा कणों को अत्यधिक शाखाओं वाली रेशेदार जड़ों से बांधकर रखता है, जिससे मृदा का अपरदन कम होता है। भारत में विभिन्न प्रकार के घास स्थलों का आवरण, जिसमें अपरद् भूमि, परती भूमि इत्यादि है, कुल भूमि क्षेत्र का अनुमानित 18 प्रतिशत है। अगर कुल वनों के क्षेत्र (19 प्रतिशत कुल भूमि), जो चारा देते हैं, को शामिल किया जाए तो लगभग 37 प्रतिशत भूमि चारे के लिए उपलब्ध होगी। भारत में अनुमानतः प्रति वर्ष लगभग 250 मिलियन टन सूखी घास और भूसे का उत्पादन होता है।

घास स्थल का निम्नीकरण (Degradation of Grassland)

जनसंख्या दबाव के कारण, घास स्थल का निम्नीकरण या ह्रास होता है। खाद्यान्य उत्पादन बढ़ाने के लिए, उर्वरा भूमि वाले घास स्थलों की जुताई कर दी जाती है, तथा उसको कृषि भूमि में परिवर्तित कर दिया जाता है (जैसे कि, अमरीका में स्थित प्रेअरी क्षेत्र)। विकासशील देशों के घासस्थलीय क्षेत्रों में बहुधा अतिचारण होता है। भारत में शुष्क क्षेत्रों के घास स्थल, पौधों की उत्पादकता में बिना स्थायी नुकसान सहते हुए प्रति हेक्टेयर भूमि में लगभग 0.5 वयस्क मवेशी इकाई (Adult Cattle Unit) को भोजन प्रदान कर सकते हैं (1 ACU = 6 भेड़)। इसी प्रकार, अर्द्ध-शुष्क क्षेत्र घासस्थलों में लगभग 1 ACU को सहायता चारा प्रदान किया जा सकता है, जबकि, इन क्षेत्रों में चारण करने वाले पशुओं की संख्या वास्तविक क्षमता से 2–10 गुणा ज्यादा होती है। इस तरह, बहुत से भारतीय घासस्थलों में, अतिचारण आम रूप से पाई जाती है। अतिचारण के द्वारा भूमि, बंजर, अनावरित हो जाती है, जिसका वायु तथा जल द्वारा अपरदन संभावित हो जाता है।

अतिचारण द्वारा, वनस्पति आवरण हटने से मृदा के महीन कणों का जल तथा वायु द्वारा अपरदन आसानी से हो जाता है। जब लंबी जलाभाव अवधि के साथ साथ अतिचारण होता है तो एक समय का उपजाऊ घास स्थल, मरुस्थल में परिवर्तित हो सकता है। यह प्रक्रिया, जिसमें कि घास स्थल मरुस्थल में परिवर्तित हो जाता है, **मरुस्थलीकरण** कहलाती है।

घास स्थल प्रबंधन (Grassland Management)

घास स्थल प्रबंधन में, मृदा स्थिति की वर्तमान अवस्था तथा वनस्पति आवरण एवं इन अभिलक्षणों को सुदृढ़ करने के उपायों के उपयोग का आंकलन किया जाता है। घास स्थल प्रबंधन में बार-बार उपयोग किए जाने वाले उपाय निम्न प्रकार हैं:

(i) क्षतिग्रस्त वनस्पति को पुनः स्थापित करना।

(ii) घूर्णात्मक चारण पद्धति के द्वारा, जबकि कुछ भागों में चारण बंद कर पौधों को पुनर्स्थापित होने दिया जाता है तथा दूसरे चुने हुए भागों में चारण की अनुमति दी जाती है।

(iii) काष्ठीय, झाड़ियों तथा शाकीय खरपतवारों का निष्कासन करके जोकि, प्रायः घास की उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। साथ ही साथ चारा घास उत्पादन करने वाली

झाड़ियां, जो "शुष्क अवधि बीमा" के रूप में कार्य करती हैं, को सुरक्षित रखना।

(iv) मृदा तथा जल का संरक्षण, घास स्थल से मृदा तथा जल के नुकसान को कम करने वाली पद्धति को अपना कर।

(v) सूखे मल्च में संचित पोषक तत्वों के चक्रण को नियंत्रित आग द्वारा बढ़ावा देकर और काष्ठीय जातियों के आगमन को रोककर।

19.8 नम भूमि (Wetlands)

नम भूमि क्षेत्र ऐसे निचले क्षेत्र हैं जो सामान्यत: छिछले जल से घिरे रहते हैं तथा जिनमें अभिलक्षणिक मृदा तथा जल सहनशील वनस्पतियां पाई जाती हैं। नम भूमि में या तो मीठा जल अलवणीय या लवणीय जल हो सकता है। मीठे जलीय नम भूमि के अंतर्गत **कच्छभूमि** (दलदल) आती है, जिसमें घास जैसे पौधे अधिक संख्या में पाए जाते हैं। **अनूप भूमि**, जिसमें वृक्ष या झाड़ियां ज्यादा पाई जाती हैं। **नदी तट** वन, जोकि निचले स्तरीय भूमि में स्रोतों तथा नदियों में पाए जाते हैं।

पूरे विश्व की भूमि सतहों का 6 प्रतिशत भाग नम भूमि क्षेत्र है। नमभूमि को सदैव अशस्य भूमि समझा जाता है तथा उनके जल को निष्कासित करके, ड्रेन, या नम भूमि को अनुपयोगी मृदा द्वारा भरकर घर बनाने के काम में या कारखाने बनाने के लिए या अन्य उपयोग के लिए कार्य में लियां जाता है। इस तरह नम भूमि को कृषि, प्रदूषण या इंजिनियरी निर्माण (जैसे बांध) तथा शहरीकरण से काफी संकट पहुंचा है।

मीठा जल नम भूमि (Freshwater Wetlands)

नम भूमि के पौधे अधिक उत्पादनशील होते हैं तथा विविध प्रकार के जीवों के लिए भोजन एवं आवास प्रदान करते हैं। नम भूमि अत्यधिक जल को संचित कर बाढ़ को भी नियंत्रित करती है तथा इसमें में जमा बाढ़ का जल धीरे-धीरे नदियों को जाता है, जिससे वर्ष भर नदियों को पानी मिलता रहता है। नम भूमि, सतही जल के पुनर्भरण का कार्य भी करती है। नम भूमि की दूसरी मुख्य भूमिका है बहते व दूषित जल को साफ करना । मीठा जल नम भूमि, व्यावसायिक उत्पाद भी देती है, जैसे जंगली चावल, विभिन्न प्रकार के गूदेदार फल (जैसे काले बेर, नीले बेर इत्यादि) तथा पीट मॉस। इसके साथ-साथ नम भूमि, मछली मारने, नौका विहार तथा प्रकृति भ्रमण की सुविधा प्रदान करती है।

लवणीय जल नम भूमि (Saltwater Wetland)

समुद्र तटीय नम भूमि को लवणीय जल नम भूमि भी कहते हैं, जिनमें ज्वारनदमुख आती है, जहाँ भूमि का मीठा जल समुद्र के लवणीय जल से मिश्रित होकर उत्पादकता बढ़ाता है। तटीय ज्वारनदमुख समुद्री जीवों के लिए भोजन तथा आवास प्रदान करते हैं।

मैंनग्रोव, अनूप उष्णकटिबंधीय क्षेत्र की तटीय नम भूमि में लगे वृक्ष तथा झाड़ियों को कहते हैं, जो अंतर ज्वारीय क्षेत्र में अच्छी वृद्धि करते हैं, जो एकांतर क्रम से, उच्च ज्वार में स्तंभ तक डूब जाते हैं तथा निम्न ज्वार में केवल जड़ तक जल की सतह पर रहते हैं। मैंनग्रोव, तलछटों व मृदा को समेट कर तटरेखा पर जमा रखते हैं। मैंनग्रोव की जड़ें, सीप, केकड़ा तथा अन्य जलीय जीवों के लिए आवास स्थल होती हैं। अनेक समुद्र किनारे वाले पक्षी मैंनग्रोव की टहनियों पर अपने घोसलें बनाते हैं। मीठेजल नम भूमि के समान समुद्री नम भूमि को भी, तटीय विकास, कृषि भूमि और ईंधन लकड़ी (विशेषकर मैनग्रोव) प्राप्त करने के लिए नुकसान पहुँचाया जा रहा है।

नम भूमि संरक्षण (Wetland Conservation)

नम भूमि संरक्षण कार्यक्रम में साधारणत: आते हैं:

(i) नम भूमि तालिका तैयार करना।

(ii) अति उपयोगी नम भूमि क्षेत्रों की पहचान, जिससे उनका संरक्षण हो सके।

(iii) नम भूमि क्षेत्रों में ठोस अपशिष्ट डालने पर रोक।

(iv) नम भूमि में आसपास की उपरी भूमि से पोषक तत्वों तथा गाद के अत्यधिक बहाव में कमी लाकर।

19.9 ऊर्जा संसाधन (Energy Resources)

तेजी से बढ़ रही मानव जनसंख्या की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए भविष्य में ऊर्जा की माँग की पूर्ति के लिए कई तरह के ऊर्जा संसाधनों के उपयोग करने पर बल देगा। साधारणत: ऊर्जा संसाधन दो प्रकार से जाने जाते हैं, अनवीकरणीय या नवीकरणीय। **अनवीकरणीय ऊर्जा संसाधन** के अंतर्गत कई प्रकार के जीवाश्म ईंधन तथा परमाणु ऊर्जा आते हैं। जीवाश्म ईंधन में पेट्रोलियम उत्पाद, प्राकृतिक गैस तथा कोयला आते हैं। परमाणु ऊर्जा, यूरेनियम के नाभिकीय विखंडन से प्राप्त होती है। विश्व में जीवाश्म ऊर्जा तथा यूरेनियम का भंडार सीमित है, अत: यह धीरे-धीरे समाप्त हो जाएगा। जीवाश्म ऊर्जा के जलने से पर्यावरण पर विपरीत प्रभाव पड़ता है, जैसे भूमंडलीय उष्णता, वायु प्रदूषण अम्लीय वर्षा, तेल अधिप्लाव, इत्यादि। यह आवश्यक हो गया है कि अनवीकरणीय ऊर्जा संसाधन का उपयोग कम किया जाए तथा उसकी जगह नवीकरणीय ऊर्जा संसाधन का उपयोग किया जाए।

नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों को प्राकृतिक विधियों से पुनर्निवेशन द्वारा अनिश्चित काल तक उपयोग किया जा सकता है। नवीकरणीय ऊर्जा का साधारणत: जीवाश्म ऊर्जा तथा नाभिकीय ऊर्जा की तुलना

में, पर्यावरण पर बहुत कम विपरीत प्रभाव पड़ता है। नए तकनीकी ज्ञान के अनुसार नवीकरणीय ऊर्जा प्राप्त करने में, जीवाश्म ऊर्जा या नाभिकीय ऊर्जा की तुलना में अधिक खर्च आता है, जबकि नई तकनीकी के आने से नवीकरणीय ऊर्जा पर पड़ने वाला खर्च कम होने की संभावना है। नवीकरणीय ऊर्जा के अंतर्गत सबसे प्रमुख है सौर ऊर्जा। दूसरी नवीकरणीय ऊर्जा हैं - जलीय ऊर्जा, पवन ऊर्जा, भूताप ऊर्जा, समुद्र तरंग तथा ज्वार ऊर्जा।

सौर ऊर्जा (Solar Energy)

सौर ऊर्जा का उपयोग अपरोक्ष या परोक्ष रूप से मानव कल्याण के लिए होता है। सीधी **सौर ऊर्जा**, विकिरण ऊर्जा होती है, जबकि **परोक्ष सौर ऊर्जा**, वह ऊर्जा है जो तत्त्वों से मिलती है जिसमें सौर विकिरण ऊर्जा पहले निहित होती है। सौर ऊर्जा को सीधे ताप ऊर्जा के रूप में तथा इस ऊर्जा को बिजली में बदलकर (तापीय बिजली उत्पादन) उपयोग किया जाता है। फोटोवोल्ट बैटरियां सीधे सौर ऊर्जा को बिजली में परिवर्तित करती हैं। जब सौर शक्ति, रात में या बादल के कारण उपलब्ध नहीं होती है तो पूर्तिकर पद्धति के द्वारा पैदा की गई बिजली को जमा कर उपयोग में लाया जाता है।

जब कई प्रकार के ऊर्जा स्रोतों में सौर ऊर्जा का उपयोग परोक्ष रूप से किया जाता है, तब **जैवभार ऊर्जा** (biomass) सबसे प्रमुख होती है। जैवभार यहां पर उन सभी पदार्थों के लिए उपयोग किया गया है, जो प्रकाश संश्लेषण क्रिया द्वारा बने हैं। इनमें जीवित पौधे तथा उनके सूखे अवशेष आते हैं, जैसे जलीय पौधे, मीठे जल तथा समुद्री शैवाल, कृषि तथा वन के अवशेष (उदाहरण के लिए तृण, भूसे, मक्का-भुट्टा, छाल, बुरादा, जड़ें तथा पशुओं के उत्सर्ग) इत्यादि। जैवभार के अंतर्गत उपरोक्त के अतिरिक्त चीनी मिलों तथा एल्कोहोलिक पेय पदार्थों की निर्माण शालाओं से निकलने वाले अपशिष्ट भी आते हैं। विश्व की कम से कम आधी आबादी ऊर्जा के लिए जैवभार के ऊपर निर्भर रहती है। भारत में काष्ठ ईंधन का आज भी, ऊर्जा के मुख्य स्रोत के रूप में गांवों में घरेलू उपयोग होता है।

जैवभार ऊर्जा जोकि ठोस द्रव्य या गैस हो सकती है, जलने पर ऊर्जा देती है। ठोस जैवभार के अंतर्गत लकड़ी, कोयला, पशुओं के गोबर तथा पीट (आंशिक रूप मे सड़े हुए पौधे तत्त्व, जोकि दलदल या अनूपों में रहते हैं) आते हैं। जैवभार को तरल ऊर्जा में परिवर्तित किया जा सकता है, विशेषकर मिथानोल तथा इथानोल, में जोकि, अंत: दहन में उपयोग किए जा सकते हैं। जैवभार, विशेषकर पशुओं के उत्सर्ज को भी सूक्ष्म जीवी अपघटन द्वारा जैव गैस पाचक संयंत्र के अंदर, **जैव गैस** में परिवर्तित किया जा सकता है। जैव गैस एक शुद्ध ऊर्जा स्रोत हैं जिसके दहन में अन्य ज्वलनशील ऊर्जा स्रोतों की तुलना में कम प्रदूषण उत्पन्न होता है। यह कई गैसों के मिश्रण (60 प्रतिशत मीथेन और 40 प्रतिशत CO_2)से बनी होती है, जिसका आसानी से भंडारण एवं परिवहन किया जा सकता है।

जैवभार से ऊर्जा उत्पन्न करने के लिए पर्याप्त भूमि सतह और जल की आवश्यकता होती है। उच्च कैलोरी मूल्यों तथा उच्च वृद्धि दर दर्शाने वाली **ऊर्जा वृक्षारोपण** जातियों को जैवभार उत्पन्न करने हेतु चयनित क्षेत्रों में उगाया जाता है।

अन्य नवीकरणीय ऊर्जा संसाधन (Other Renewable Energy Resources)

अन्य नवीकरणीय ऊर्जा संसाधनों में निम्नलिखित मुख्य हैं, परंतु उनकी उपलब्धता भिन्न-भिन्न जगहों पर भिन्न होती है।

जलशक्ति : जल की स्थितिज ऊर्जा को ऊंचाई से गिराकर गतिज ऊर्जा में परिवर्तित कर, टरबाइन द्वारा उससे बिजली का उत्पादन किया जाता है। विश्व की कुल बिजली उत्पादन का एक चौथाई भाग जलशक्ति से प्राप्त होता है और यह ऊर्जा तापीय ताप विद्युत संयंत्र से तैयार ऊर्जा की अपेक्षा सस्ती होती है। पानी को रोकने के लिए बांध बनाने से कई पर्यावरणीय समस्याएं उत्पन्न होती हैं। प्रथम तो भूमि का एक बहुत बड़ा उर्ध्वप्रवाह क्षेत्र जलमग्न हो जाता है, जिससे पौधे तथा जानवरों के आवास नष्ट हो जाते हैं तथा उन जगहों पर रह रहे लोगों को स्थानांतरित करना पड़ता है। दूसरी ओर पोषक तत्त्वों से युक्त गाद जल, धारा के नीचे ढलानों में जमा नहीं हो पाती है, जिससे कृषि की उत्पादकता प्रभावित होती है। समय के साथ जलाशय में गाद भरती जाती है और इसमें बिजली उत्पादन के लिए पर्याप्त जल भरने की क्षमता नहीं रह पाती।

पवन ऊर्जा : वायु की क्रिया द्वारा पंखा घुमाकर उत्पन्न ऊर्जा को बिजली उत्पादन में उपयोग किया जा सकता है। यद्यपि पवन ऊर्जा को प्राप्त करना उन्हीं क्षेत्रों में संभव है जहां लगातार वायु बहती रहती है, जैसे, द्वीप, तटीय क्षेत्र तथा पर्वतीय दर्रे।

ज्वार ऊर्जा : उच्च ज्वार तथा निम्न ज्वार के बीच पानी की लहरों से उत्पन्न ऊर्जा का उपयोग बिजली उत्पादन में किया जा सकता है।

भूतापीय ऊर्जा : गर्म जल के रूप में बह रहे तापीय सतही जल या धाराओं या गर्म झरनों से टरबाइन को चलाकर भूतापीय संयंत्र द्वारा बिजली उत्पादन किया जा सकता है।

समुद्री तरंगों की ऊर्जा : पवन द्वारा उत्पादित समुद्री तरंगों में भी टरबाइन को चला कर विद्युत उत्पादन की क्षमता होती है।

19.10 समुद्री संसाधन (Marine Resources)

पृथ्वी का तीन चौथाई भाग समुद्रों से घिरा है। समुद्री संसाधन को साधारणत: दो मुख्य वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। जीवित संसाधन, जिसमें शैवाल तथा अजीवित संसाधन, जिसमें विभिन्न प्रकार के खनिज आते हैं।

शैवाल संसाधन (Algal Resources)

समुद्री शैवाल भिन्न प्रकार तथा श्रेणी के होते हैं। इनमें एक कोशीय सूक्ष्मदर्शी कशाभियों से लेकर विशाल केल्प (बड़े आकार की समुद्री शैवाल) जिनकी लंबाई 100 से 150 मी. तक होती है। हरे, नीले, लाल, तथा भूरे शैवाल समुद्र में ज्यादा मिलते हैं। आदि काल से ही मनुष्यों ने शैवाल को भोजन के रूप में उपयोग किया है। कई देशों में अभी भी समुद्री शैवाल को ताजा अथवा संसाधित रूप में भोजन के लिए उपयोग किया जा रहा है। पालतु पशुओं के ऊपर किए गए भोजन प्रयोगों द्वारा यह स्पष्ट हो गया है कि **लेमिनेरिया** तथा **फ्यूकस** जैसे दो महत्त्वपूर्ण समुद्री शैवाल उपयोगी चारा शैवाल हैं। कई देशों में आजकल समुद्री खरपतवार से जानवरों के भोजन तैयार किए जाने लगे हैं, समुद्री शैवालों को, उनके उच्च पोषक तत्त्वों के कारण कई देशों में खाद के रूप में भी उपयोग किया जाता है। भेड़ के उत्सर्जन से कई देशों में पोषक तत्त्वों की प्रचुर मात्रा के कारण ही कुछ शैवालों को मृदा की उर्वरता बढ़ाने के लिए भी उपयोग किया जाता है। मछली, घोंघे, समुद्री खरपतवार के मिश्रण द्वारा संतुलित उर्वरक तैयार किया जा सकता है।

मुख्यत: समुद्री खरपतवार शैवाल (*ग्रासीलेरिया* तथा *जेलीडियम*) द्वारा व्यावसायिक महत्त्व का ''ऐगार'' निष्कार्षित किया जाता है। प्रमुख शैवाल कोलाइड को एगार कहते हैं। ऐगार का उत्पन्न आहार उद्योग, दवाई उद्योग, फोटोग्राफी, धातुलेपन, धातुनिष्कर्षण विस्फोट, अपमार्जक, कीटनाशक, डेयरी उत्पादों आदि अश्म मुद्रण (चटानों पर मुद्रण) किया जाता है। ऐगार का उपयोग प्रयोगशालाओं में जीवाण्विक संवर्धन के लिए क्रियाधार के रूप में होता है।

प्राणी संसाधन (Animal Resources)

मानव उपयोग की दृष्टि से समुद्र में पाए जाने वाले प्राणियों में से प्रमुख इस प्रकार हैं- (i) मछलियां (ii) सीप व घोंघे तथा शीर्षपाद युक्त मॉलस्क (iii) झींगा, महाचिंगट तथा केकड़ा जैसे क्रस्टेशियाई प्राणी (iv) समुद्री स्तनधारी।

मछलियां **:** समुद्री मछलियां विश्व भर में, विशेषकर विकासशील देशों में, *एक निश्चित मात्रा में भोजन उपलब्ध कराती हैं।* इसके अतिरिक्त, मछलियों का उपयोग कई अन्य खाद्य उत्पादों, जैसे, मत्स्य सरेस, मत्स्य भोजन, मत्स्य तेल, मत्स्य प्रोटीन तथा विटामिन बनाने के लिए होता है। आर्थिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण मत्स्यों को दो वर्गों में बांटा जा सकता है जैसे कि, समुद्र के निचले भागों में पाई जाने वाली तलमज्जी मत्स्य तथा जल स्तंभों में स्वतंत्र रूप से तैरने *वाली वेलापवर्ती मछलियां।*

मॉलस्क : समुद्र में मछलियों और क्रस्टेशियाई के बाद, मॉलस्क का ही महत्त्व है। व्यवसायिक दृष्टि से, मसल, सीप, घोंघे इत्यादि प्रमुख मॉलस्क हैं। समूचे विश्व में कई प्रकार के मॉलस्क का उपयोग भोजन के रूप में होता है। इसके अतिरिक्त, मोती सीपी (द्विकपाटी) का, प्राकृतिक मोती उत्पादन क्षमता के कारण, एक विशेष व्यवसायिक महत्त्व है। जापान में संवर्धन तकनीकी तथा मोती निर्माण की कृत्रिम विधि के कारण मोती मात्स्यकी बहुत ही विकसित है।

क्रस्टेशियाई : क्रस्टेशियाइयों से अच्छे प्रकार के भोजन प्राप्त किए जाते हैं, जैसे कि झींगा, महाचिंगट, केकड़ा इत्यादि। यह अनुमान लगाया गया है कि विश्व के कुल झींगा उत्पादन का आधा हिस्सा, भारत, बंगलादेश तथा श्रीलंका जैसे एशियन देशों में ही होता है। विश्व के झींगा उत्पादक देशों में भारत का स्थान सर्वप्रथम है। वृहद् पैमाने पर, महाचिंगट मत्स्यकी, यूरोप, अमेरिका, दक्षिण अफ्रीका तथा ऑस्ट्रेलिया के कुछ ही देशों तक सीमित है।

स्तनधारी : स्तनधारियों के तीन प्रमुख वर्ग, जो कि समुद्री जीवन के लिए स्वतंत्र रूप से अनुकूलित हैं, उनका विशेष आर्थिक महत्त्व है। जैसे कि व्हेल, डॉलफिन तथा शिशुक। व्हेल से कई महत्त्वपूर्ण प्राथमिक उत्पाद, जैसे कि मांस, चमड़ा तथा वसा तथा कई द्वितीय उत्पाद जैसे कि, तेल प्राप्त होता है। सभी सीटेशियनों का ताजा मांस, मानव उपयोग के लिए कार्य आता रहा है।

समुद्री खनिज (Minerals in Sea)

पौधों तथा प्राणियों को आश्रय देने के अतिरिक्त, समुद्र बहुत प्रकार के मूल्यवान खनिजों का भंडारण करता है। समुद्री जल में सभी प्राकृतिक तत्त्व घुले रहते हैं। प्रचुर मात्रा में पाए जाने वाले तत्त्व हैं- सोडियम, क्लोरीन, मैग्नेशियम तथा ब्रोमीन। यह समुद्र से व्यावसायिक स्तर पर निष्कार्षित किए जाते हैं। समुद्री अवसादों में कई खनिज पाए जाते हैं। *फॉस्फोराइट गाँठों का जमाव प्रचुर मात्रा में होता है।* जहां गहरे समुद्रों में उफाडा उगता रहता है। वहां इन भंडारों के खनन से बहुत से देशों के फॉस्फेट उर्वरकों की कमी को पूरा किया जा सकता है।

19.11 खनिज संसाधन (Mineral Resources)

हमारे औद्योगीकृत समाज तथा दैनिक जीवन में उपयोग होने वाले आवश्यक खनिज, अनवीकरणीय खनिज होते हैं। औद्योगिकीकरण के बढ़ने के कारण, विश्व भर में खनिज का उपयोग कई गुणा बढ़ा है। अब जिन खनिजों की पूर्ति कम है (जैसे, चांदी, तांबा, पारा, टंगस्टन इत्यादि) उनके अगले 20 से 100 वर्षों में समाप्त होने की संभावनाएं हैं। उपरोक्त खनिजों के बनिस्पत वह खनिज जो कि प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं जैसे कि लोहा तथा एल्युमिनियम, आसानी से प्राप्त किए जाने के कारण अत्यधिक महंगे हो जाएंगे। खनिज धातुनिष्ठ हो सकते हैं जैसे, लोहा, तांबा, सोना इत्यादि या अधातुनिष्ठ जैसे कि, बालू, पत्थर, लवण, फॉस्फेट इत्यादि। कुछ महत्त्वपूर्ण खनिज तत्त्व तथा उनके उपयोग को सारणी 19.2 में दर्शाया गया

सारणी 19.2 : कुछ महत्त्वपूर्ण खनिज तत्त्व तथा उनके उपयोग

खनिज	चयनित उपयोग
धातु	
एल्युमिनियम	संरचनात्मक पदार्थ, पैकिंग हेतु
क्रोमियम	क्रोम पट्टी, इस्पात
तांबा	स्वर्ण आभूषण, चांदी, पीतल कांस्य में मिश्र पदार्थ
सोना	आभूषण, दंत विज्ञान, मिश्रधातु
लोहा	इस्पात का प्राथमिक अवयव
सीसा	घरेलु नल, बैट्री इलेक्ट्रोड, रंग
मैंगनीज	इस्पात, संक्रमणहारी
नीकेल	सिक्का, मिश्रधातु, धातु पट्टी
प्लैटिनम	आभूषण, संयंत्र, औद्योगिक उत्प्रेरक
पोटाश	उर्वरक, शीशा, छायांकन
चांदी	आभूषण, बर्तन, फोटोग्राफी, मिश्रधातु
यूरेनियम	आणविक बम, बिजली
टिन डिब्बा	पात्र, मिश्रधातु
जस्ता	पीतल, इलेक्ट्रोड, दवाईयां
अधातु	*दवाईयां*
फॉस्फोरस	उर्वरक, अपमार्जक
गंधक	कीटनाशी, दवाईयां, रबड़
द्रवीय धातु	
पारा	थर्मामीटर, दंत-जड़त, विद्युत स्विच

है। भू-पर्पटी में खनिज प्राकृतिक रूप से पाए जाते हैं, परंतु उनका वितरण समान रूप से नहीं होता है।

भू-पर्पटियों में स्थित खनिज भंडारों का सीधा उपयोग नहीं हो सकता है। और उन्हें विशेष रूप में परिवर्तित कर उपयोग किया जा सकता है। इनका रूपांतरण इस प्रकार होता है- (i) पृथ्वी से खनन द्वारा खनिजों को परिष्कृत कर, (ii) खनिज संवर्धन या उनमें उत्कृष्टता लाकर (इन्हें सांद्रित कर तथा इनकी अशुद्धियों को निकालकर) तथा (iii) शुद्ध खनिजों से उपयोगी उत्पादों का उत्पादन कर। खनिजों के निष्कर्षण जैसे कि खनन, परिक्षरण तथा खनिजों के व्यवस्थित करने से पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। खनन प्रक्रिया से न केवल धरातल ही अस्त-व्यस्त होता है वरन् नष्ट भी होता है, तथा इससे मृदा जल तथा वायु भी प्रदूषित होती हैं। खनन द्वारा जिस भूमि का क्षय होता है, उसे **त्याज्य भूमि** या खदान विकृति कहते हैं। ऐसी त्याज्य भूमि में पौधे लगाकर उसे अर्द्धप्राकृतिक दशा में लाया जा सकता है और भूमि को फिर से दूसरे उद्देश्यों के लिए उत्पादन योग्य बनाया जा सकता है।

खनिजों का संरक्षण (Conservation of Minerals)

खनिजों का संरक्षण, उनके पुनः चक्रण या पुनः उपयोग द्वारा हो सकता है। पुनः चक्रण प्रक्रिया में उपयोग की गई तथा अनुपयोगी वस्तुओं को इकट्ठा कर, पुनः पिघलाकर तथा उन्हें पुनः परिष्कृत कर नए उत्पाद बनाए जाते हैं, जैसे लोहे के अनुपयोगी टुकड़े, एल्युमिनियम पात्र आदि। धातुओं से बने पदार्थों में से कुछ खनिजों का पुनः चक्रण किया जा सकता है, जैसे, सोना, सीसा, निकेल, इस्पात, तांबा, एल्युमिनियम, चांदी, जस्ता, इत्यादि, जबकि अन्य उत्पादों में निहित खनिज सामान्य उपयोग होने से ही नष्ट हो जाते है। जैसे कि प्रलोपों (पेंट्स) में अवस्थित सीसा, जस्ता या क्रोमियम। पुनः उपयोग के समय उपयोग किए गए उत्पादों को इकट्ठा किया जाता है, तथा उनका बार-बार उपयोग किया जा सकता है, जैसे कि शीशे की बोतलों का पुनः उपयोग। पुनः चक्रण की तुलना में पुनः उपयोग करना अधिक लाभप्रद है। यद्यपि सभी उत्पादों का दुबारा उपयोग संभव नहीं है। पुनःचक्रण तथा दोबारा उपयोग से खनिज संसाधनों का न केवल नवीकरण होता है बल्कि अविकृत भूमि को खनन द्वारा विकृत होने से बचाया जा सकता है, तथा निष्कासित करने वाले अपशिष्ट ठोस की मात्रा भी कम हो सकती है जिससे, ऊर्जा की खपत तथा प्रदूषण भी कम होता है।

पर्यावरणीय अनुसंगिकता को ध्यान में रखते हुए दुर्लभ खनिजों की जगह प्रचुर मात्रा में उपलब्ध खनिजों का उपयोग अधिक लाभदायक हो सकता है। वर्तमान में, बहुत सारे उद्योगों में प्लास्टिक मृतिका (सेरामिक), उच्च शक्ति के कांच रेशे, तथा मिश्र धातु को

इस्पात, टिन तथा तांबे जैसे दुर्लभ पदार्थों की जगह उपयोग किया जाता है। यद्यपि, प्रतिस्थापना द्वारा खनिज पूर्ति को बढ़ाया जा सकता है, परंतु यह समस्या का निदान नहीं है। कुछ खनिजों का कोई ज्ञात प्रतिस्थापन नहीं है जैसे कि, प्लेटिनम। एक लंबे समय तक खनिज पूर्ति के लिए उपभोगकर्ता को खनिजों के उपयोग में कमी लाकर निम्न अपशिष्ट करने वाले समाज का निर्माण करना चाहिए। वह उत्पाद जो टिकाऊ तथा सुधारने योग्य हो, उनके उपयोग को बढ़ावा देना चाहिए न कि उन्हें अनुपयोगी समझकर फेंक देना चाहिए। उत्पादन करने वाले उद्योगों को दूसरे उद्योगों से उत्पन्न अनुपयोगी पदार्थों को कच्चे माल के रूप में उपयोग करना चाहिए।

19.12 वन्य एवं वन्यजीव नियम (Forests and Wildlife Laws)

हमारे देश में अनेक कानूनी प्रावधान हैं जो वन एवं वन्य जीव से संबंधित राष्ट्रीय कल्याण को संरक्षण प्रदान करते हैं। इसमें से प्रमुख हैं :

वन कानून 1927 : यह कानून वन से संबंधित नियमों को पुष्ट करता है। इसके मूल उद्देश्य हैं (i) आरक्षित वन, संरक्षित वन एवं ग्राम वनों की स्थापना एवं प्रबंधन; (ii) गैर सरकारी वन एवं वन भूमि की सुरक्षा ; (iii) वन उत्पादों के व्यापार का नियंत्रण; एवं (iv) दुधारू पशुओं के चारण नियंत्रण।

वन्य जीव (सुरक्षा) कानून 1972 (संशोधन 1991): यह कानून वन्य प्राणियों, पक्षियों एवं पौधों को संरक्षण प्रदान करता है, इसके अंतर्गत विभिन्न लक्ष्य हैं: (i) प्राणियों के शिकार पर प्रतिबंध तथा रोक (ii) विशिष्ट पौधों का संरक्षण (iii) सैंक्चुरी तथा राष्ट्रीय उद्यानों की स्थापना तथा नियंत्रण (iv) चिड़ियाघर के अधिकारियों को चिड़ियाघर के नियंत्रण तथा बंदी प्रजनन को नियंत्रण करने के लिए मजबूत और अधिक अधिकार प्रदान करना। तथा (v) वन्य प्राणियों एवं उनके उत्पादों तथा ट्राफियों के व्यापार एवं व्यवसाय पर नियंत्रण।

राष्ट्रीय वन्य अधिनियम (1988) : इस वन्य अधिनियम का प्रमुख उद्देश्य है पर्यावरण की स्थिरता तथा पारिस्थितिकी संतुलन को बनाए रखना जिसके अंतर्गत वायुमंडलीय संतुलन भी शामिल है, यह किसी भी जीवन पद्धति के लिए आवश्यक है मनुष्य प्राणी या पौधे। प्रमुख उद्देश्य के आगे सीधा आशिंक लाभ उठाना (जैसे लकड़ी का उत्पादन तथा अन्य लकड़ी के उत्पादों का निर्माण) कम महत्त्वपूर्ण है।

19.13 पर्यावरणीय नैतिकता तथा संसाधनों के उपयोग (Environmental Ethics and Resource Use)

अर्थिक रूप से विकसित देशों तथा विकासशील देशों में संसाधनों के उपयोग में अंतर होता है। विकसित देशों में लोगों की इच्छा उच्च श्रेणी के जीवन यापन की होती है जिसके कारण संसाधनों की मांग एक साधारण जीवन यापन करने वाले से कहीं ज्यादा होती है। फलस्वरूप वे संसाधनों को तेजी से समाप्त कर रहे हैं तथा भूमंडलीय पर्यावरण को गंभीर नुकसान पहुंचा रहे हैं। दूसरी ओर विकासशील देशों के लोगों को उनके साधारण जीवन यापन तरीके के कारण संसाधनों की जरूरत कम होती है। लेकिन उनकी विस्फोटक जनसंख्या तथा पर्यावरण की अज्ञानता एवं जीवन स्तर को बढ़ाने की चाह के कारण संसाधनों का तेजी से दुरुपयोग होता है। पश्चिमी देशों के संसाधन उपयोग के तरीके जो कि उपभोक्तावाद पर आधारित हैं अब विकासशील देशों में भी तेजी से फैल रहे हैं।

महान सांस्कृतिक विभिन्नता वाला भारत एक भिन्न देश है जो कई प्रकार की जलवायु तथा वनस्पतियों एवं जीव-जंतुओं से भरा हुआ है। हमारे देश का मानव समाज इस आश्चर्यजनक पर्यावरण के साथ-साथ विकसित हुआ है एवं प्रकृति का उत्क्रमण हमारी संस्कृति से जुड़ा हुआ है। हमारे प्राचीन वैदिक साहित्यों, उपनिषदों एवं पारिस्थितिक एवं पर्यावरण मूल्यों की जड़ें काफी गहरी हैं। *अथर्व वेद* में मानव जाति का धरती मां के प्रति अपार स्नेह पूरी तरह से दर्शाया गया है। *ईश उपनिषद* का एक वाक्य कहता है: "यह पूरा ब्रह्मांड अपने पूरे जीव-जंतुओं के साथ ईश्वर का है (प्रकृति) इसलिए किसी एक प्रजाति को दूसरे के अधिकार एवं सुविधाओं का अतिक्रमण नहीं करने देना चाहिए। लालच का त्याग करने के पश्चात् ही कोई भी व्यक्ति प्रकृति का आनंद ले सकता है।

प्रकृति के साथ समन्वय बनाकर रहने पर बल दिया गया है इस बात पर बल दिया गया है कि प्रकृति से उतना ही लो जितने की आवश्यकता है उससे ज्यादा नही। '*क्षितिज*' (मृदा), '*जल*' (जल), '*पवन*' (ऊर्जा), '*गगन*' (आकाश) तथा '*समीर*' (हवा) को पृथ्वी की आधारभूत संपदा माना जाता है। मानव सहित सभी जीव, प्रकृति के अभिन्न अंग हैं, जो कि पृथ्वी माता से लिए गए सभी पोषणों को लौटा देते हैं।

हमारे चिरप्रतिष्ठित साहित्य इस प्रकार के संदेशों से भरे पूरे हैं कि संसाधनों का दूर उपयोग नहीं होना चाहिए, परंतु उसे संरक्षित करना चाहिए। उदाहरण के लिए, कौटिल्य का विख्यात *संधि अर्थशास्त्र* जो कि विश्व के प्रथम वन संरक्षण तथा वन्यजीव प्रबंध कार्यक्रम के बारे में व्याख्या करता है। समकालीन मौर्य सम्राटों ने भी वनों को अलग उद्देश्यों के लिए रखा जैसे कि, हाथी को पालतू बनाने, शिकार तथा वनों को आरक्षित करने के लिए। ऐतिहासिक काल से ही भारतीय लोग प्रकृति का सही प्रकार से उपयोग करते रहें है न कि उनका दोहन करते रहे हैं। हमारे देश में लगभग 10,000 वर्षों से मानव कृषि से प्रभावित रहा है। सौभाग्यवश हमारे लिए, संसाधनों का ह्रास, हमारे बहुत लंबे इतिहास के समानुपातिक नहीं रहा है। यह मुख्य रूप से सजीव एवं निर्जीव के प्रति सद्भाव

एवं *अहिंसा परमो धर्मः* जैसे सिद्धांतों को पालन करने के कारण संभव हुआ है जो कि, हमारी संस्कृति में समाहित है। संसाधनों के उपयोग को नियंत्रित करने के लिए इन सिद्धांतों को अपनाने की आवश्यकता है। हमारी सांस्कृतिक धरोहर एवं परंपराओं पर आधारित होकर, हमें अपने संसाधनों के उपयोग को इष्टतम रूप से उपयोग में लाना चाहिए। हमें पृथ्वी के संसाधनों को भविष्य की संतति के लिए संरक्षित करने के उत्तरदायित्व को निश्चित रूप से समझना चाहिए।

सारांश

मानव द्वारा उपयोग की जाने वाली प्राकृतिक पारिस्थितिकी का कोई भी अवयव, प्राकृतिक संसाधन कहलाता है। एक वस्तु, ऊर्जा की एक इकाई, प्राकृतिक प्रक्रिया या घटना, प्राकृतिक संसाधन हो सकती है। मूलरूप से संसाधनों का वर्गीकरण इस तरह हो सकता है– समाप्त नहीं होने योग्य तथा समाप्त होने योग्य संसाधन। अक्षय संसाधन असीमित मात्रा में उपलब्ध हैं (जैसे कि, सौर ऊर्जा, वायु ऊर्जा)। क्षय संसाधन भी पृथ्वी पर निश्चित मात्रा में उपलब्ध होते हैं तथा उनका नवीकरण हो सकता है या नवीकरण नहीं भी हो सकता है। नवीकरण योग्य संसाधनों की वृद्धि तथा प्रजनन को सफलतापूर्वक प्रबंधित किया जा सकता है जिससे कि इन संसाधनों को लगातार पुनर्योजित किया जा सके। जैसे वनों तथा घासस्थलों के उत्पाद अनवीकरण योग्य संसाधनों (जैसे कि जैविक जातियों) का एक बार उपयोग कर लेने के बाद, उनको दुबारा प्राप्त या उनका पुन: निर्माण नही किया जा सकता हैं। पृथ्वी के संसाधनों में जैसे कि मृदा, जल, भूमि, ऊर्जा तथा खनिज संसाधनों का मानव कल्याण के लिए अहम् योगदान होता है।

स्थलीय पारिस्थितिक तंत्र में जैव उत्पादों का उत्पादन, मृदा संसाधनों द्वारा नियंत्रित होता है। जल तथा वायु द्वारा अपरदन से मृदा की उर्वरकता में महत्त्वपूर्ण हानि होती है। यद्यपि विश्व के कुल जल का 2.5 प्रतिशत भाग ही मीठे जलीय जलाशयों में रहता है (शेष तो लवणयुक्त है)। फिर भी, यह भूमंडलीय जल चक्र में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। विश्व में जल का उपयोग बढ़ता ही जा रहा है, तथा कृषि एवं उद्योगों में ही अधिकतम जल का उपभोग होता है। जल की उपलब्धता को बनाए रखने के लिए जल संरक्षण की आदत डालना आवश्यक है।

भूमि संसाधनों में सबसे प्रमुख इस प्रकार हैं – वन, घासस्थल तथा नम भूमि क्षेत्र। बचाव, नियंत्रण तथा उत्पादक क्रियाओं द्वारा, वन, मानव जाति के लिए महत्त्वपूर्ण पर्यावरणीय सेवाएं उपलब्ध कराता है। विश्व का वन आवरण, विशेषकर, विकासशील देशों में जो कि उष्णकटिबंधीय प्रदेशों में है, वहां बहुत तेजी से घट रहा है। वनोन्मूलन के कारण पेड़ों, प्राणियों तथा सूक्ष्म जीवों की जातियां विलुप्त हो जाती हैं जिससे कि क्षेत्रीय तथा भूमंडलीय जलवायु में परिवर्तन हो सकता है। वृक्षारोपण कार्यक्रम के द्वारा अधिक भूभाग पर व्यापक रूप से वृक्ष लगाना समय की मांग है, जिसके द्वारा पृथ्वी पर वनों के आवरण को बनाए रखा जा सकता है। घास स्थल, घरेलू प्राणियों तथा जंगली जानवरों के लिए चारा तथा आवास उपलब्ध कराता है। घास आवरण, अत्यधिक रेशेदार शाखाओं वाली जड़ों के द्वारा, मृदा स्थिति की वर्तमान अवस्था तथा वनस्पति का अवलोकन किया जाता है तथा इन अभिलक्षणों को सुदृढ़ करने के उपायों का उपयोग किया जाता है। नम भूमि क्षेत्र या तो मीठे जलीय या लवणीय जल (तटीय) हो सकते हैं। ये उच्च उत्पादकता, बाढ़ नियंत्रण जैसी निर्णायक पर्यावरणीय सेवा उपलब्ध कराते हैं, तथा भूमिगत जल को पुनर्भरण क्षेत्र कहते हैं।

ऊर्जा संसाधन, विशेषकर अनवीकरण (जैसे कि जीवाश्मी ईंधन, नाभिकीय ऊर्जा) या नवीकरण योग्य, जैसे कि जल शक्ति, वायु, भूतापीय ऊर्जा, समुद्री तरगें, ज्वारीय ऊर्जा हो सकते हैं। नवीकरण योग्य ऊर्जा का जीवाश्मी ईंधन या नाभिकीय ऊर्जा की तुलना में पर्यावरण पर कम प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। विभिन्न सौर ऊर्जा संसाधनों में, जैवभार ऊर्जा सबसे प्रमुख है। विभिन्न शैवाल तथा प्राणी महत्त्वपूर्ण समुद्री संसाधन हैं। खनिज, अनवीकरणीय संसाधन हैं। संरक्षणात्मक तरीके द्वारा लंबे समय तक खनिजों की पूर्ति संभव हो सकती है, जोकि मुख्यया पुन: प्रकरण तथा पुन: उपयोग द्वारा की जा सकती है।

भारत, महान सांस्कृतिक विविधता वाला विशिष्ट देश है, जो कई प्रकार की जलवायु तथा वनस्पति एवं प्राणियों से भरपूर है। प्रकृति के साथ समन्वयक जीवन व्यतीत करना इस सिद्धांत पर आधारित है कि प्रकृति से उतना ही लेना चाहिए, जितने की आवश्यकता हो, ज्यादा नहीं। संसाधनों के उपयोग को नियंत्रित करने के लिए इन सिद्धांतों को सम्मिलित करने की आवश्यकता है। हम निश्चित रूप से अपनी आने वाली पीढ़ी के लिए संसाधनों को संरक्षित करें।

अभ्यास

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें:
   (क) ज्यादातर जैविक संसाधन हैं ____________।
   (ख) वृक्षोन्मूलन के द्वारा पादप, जंतु एवं सूक्ष्म जीवी प्रजातियों में ____________ उत्पन्न होता है।
   (ग) प्रकीर्ण वृक्षों वाले घास स्थल को ____________ कहते हैं।
   (घ) वर्षा जल एकत्रीकरण के द्वारा ____________ को पुनर्भरण किया जाता है।
   (ङ) नम भूमि या तो ____________ या ____________ हो सकते हैं।
   (च) जैव भार ऊर्जा है ____________।
   (छ) ____________ से एगर प्राप्त किया जाता है।
   (ज) खादान बर्बादी को ____________ के द्वारा पुनः स्थापित किया जा सकता है।
2. सही उत्तर को चिन्हित (✓) करें।
   मृदा अपरदन को ____________ के द्वारा रोका जा सकता है।
   (क) अतिचारण (ख) वनस्पति को हटाने से
   (ग) वृक्षारोपण (घ) वृक्षोन्मूलन
3. घासस्थल में शाकभक्षियों द्वारा मंद चारण से :
   (क) घासों की वृद्धि अवरुद्ध होती है। (ख) घासों की वृद्धि के पूर्णतः रूक जाती है।
   (ग) घासों की वृद्धि को बढ़ावा देता है। (घ) वनस्पति को नष्ट कर देता है।
4. वृक्षोन्मूलन के द्वारा सामान्यतया ____________ में कमी आती है।
   (क) वृष्टि (ख) मृदा अपरदन
   (ग) सूखा (घ) भूमंडलीय उष्णता
5. भारत में लगभग ____________ भाग में वन क्षेत्र है :
   (क) भौगोलिक क्षेत्र का लगभग 9 प्रतिशत (ख) भौगोलिक क्षेत्र का लगभग 19 प्रतिशत
   (ग) भौगोलिक क्षेत्र का लगभग 29 प्रतिशत (घ) भौगोलिक क्षेत्र का लगभग 37 प्रतिशत
6. निम्नलिखित में से कौन सा ऊर्जा के नवीकरणीय स्रोत को दर्शाता है ?
   (क) पैट्रोलियम (ख) कोयला
   (ग) नाभिकीय ईंधन (घ) वृक्ष
7. निम्नलिखित में से कौन सा वन के नियंत्रणकारी कार्य को दर्शाता है ?
   (क) गैसों का संचयन एवं उत्सर्जन (ख) लकड़ी का उत्पादन
   (ग) आवश्यक तेलों का उत्पादन (घ) मृदा एवं जल का संरक्षण
8. भारत में प्रति व्यक्ति वन क्षेत्र है :
   (क) 0.06 हे. (ख) 0.60 हे.
   (ग) 1.0 हे. (घ) 1.6 हे.
9. वन आवरण बढ़ाने के लिए वृक्षों का विस्तीर्ण रोपण ____________ कहलाता है।
   (क) वृक्षारोपण (ख) कृषि-वानिकी
   (ग) वृक्षोन्मूलन (घ) सामाजिक वानिकी
10. नम भूमि ____________ भाग अधिग्रहीत करता है।
   (क) विश्व के भू-भाग का 6 प्रतिशत (ख) विश्व के भू-भाग का 10 प्रतिशत
   (ग) विश्व के भू-भाग का 12 प्रतिशत (घ) विश्व के भू-भाग का 14 प्रतिशत
11. निम्नलिखित के बीच अंतर स्पष्ट करें :
   (क) अक्षयकारी तथा क्षयकारी संसाधन (ख) नवीकरणीय तथा अनवीकरणयी संसाधन
   (ग) वृक्षारोपण तथा कृषि-वानिकी

12. स्तंभ I को स्तंभ II से जोड़ा लगाएं :

स्तंभ I	स्तंभ II
(क) मृदा	(i) पुन: भरण
(ख) भूमिगत जल	(ii) घूर्णात्मक चारण
(ग) वन प्रबंधन	(iii) रेमेराइन वन
(घ) घासस्थल प्रबंधन	(iv) टोंग्या
(ड.) नम भूमि	(v) अपरदन
	(vi) ऊर्जा

13. निम्नलिखित के बीच अंतर स्पष्ट करें :
    (क) मीठा जल नम भूमि तथा समुद्री नम भूमि
    (ख) घासस्थल तथा नम भूमि (ग) वनोन्मूलन तथा मरूस्थलीकरण
14. व्याख्या करें कि किस प्रकार मृदा संसाधन मानव कल्याण के लिए महत्त्वपूर्ण है।
15. जल संसाधनों को संरक्षित करने के लिए कौन से उपाय है ?
16. वन संसाधनों का क्या महत्व है ?
17. हम अपने घासस्थलों को किस प्रकार प्रबंधित करते हैं ?
18. नम भूमि किस प्रकार पर्यावरणीय दृष्टि से महत्वपूर्ण माना जाता है ?
19. जैवभार ऊर्जा के महत्त्व की व्याख्या करें।
20. प्रमुख समुद्री संसाधनों का वर्णन करें।

अध्याय 20

जैव विविधता

यदि आप वन के एक चप्पे का निरीक्षण करें तो आप इसमें विस्तृत पादपों की छोटी घास से एक विशाल वृक्ष तक देख सकते हैं। आप इसमें जंतुओं की भी विस्तृत विविधता एक छोटे कीट से विशालकाय हाथी तक देख सकते हैं। वन के चप्पे-चप्पे में विभिन्न प्रकार के जीवों का पाया जाना जैविक विविधता या, संक्षेप में, **जैव विविधता** को परिलक्षित करता है। इस इकाई के पूर्ववर्ती पाठों से आप जान चुके हैं कि सभी जातियां एक ही स्थान पर नहीं रह सकतीं। एक स्थान पर कोई जाति रह सकती है या नहीं, यह उस स्थान की पर्यावरणीय स्थितियों एवं जाति विशेष की सहन शक्ति की सीमा द्वारा सुनिश्चित किया जाता है। अतः यदि आप किसी अन्य स्थान पर वन के एक भिन्न चप्पे की यात्रा करें और इसकी जैव विविधता की पहले चप्पे से तुलना करें, तो आप पादपों एवं जंतुओं दोनों में भिन्नता पाएंगे। इस प्रकार जैव विविधता एक स्थान से दूसरे स्थान पर भिन्न होती है। पादपों एवं जंतुओं के कुछ आवासों को दृष्टिगत रखते हुए यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि जीव-जगत में बहुत अधिक जैव विविधता होती है।

आप यह भी जानते हैं कि प्रत्येक जाति का एक निश्चित आनुवंशिक संघटन होता है। विभिन्न पारितंत्र भी है। वास्तव में, जैव विविधता का आशय जीनों, जातियों एवं पारितंत्रों की समग्रता है। 'जैविक विविधता' शब्द का प्रयोग ई.ए. नोर्स एवं आर.ई. मैंक मैनस द्वारा सर्वप्रथम 1980 में किया गया प्रतीत होता है। जिसे जीवों के एक समुदाय में जातियों की संख्या एवं जातियों के अंतर्गत आनुवंशिक परिवर्तनशीलता की मात्रा के रूप में व्यक्त किया गया। जैव विविधता शब्द जो जैविक विविधता का परिवर्णीशब्द है, वाल्टर जी. रोजेन द्वारा 1985 में दिया गया, विश्व में जैव विविधता के संरक्षण को प्रमुख स्थान मिलने से एकाएक लोकप्रिय हो गया। विशेषतः इसलिए जैव विविधता का ह्रास विश्व के सबसे गंभीर संकटों में से एक है।

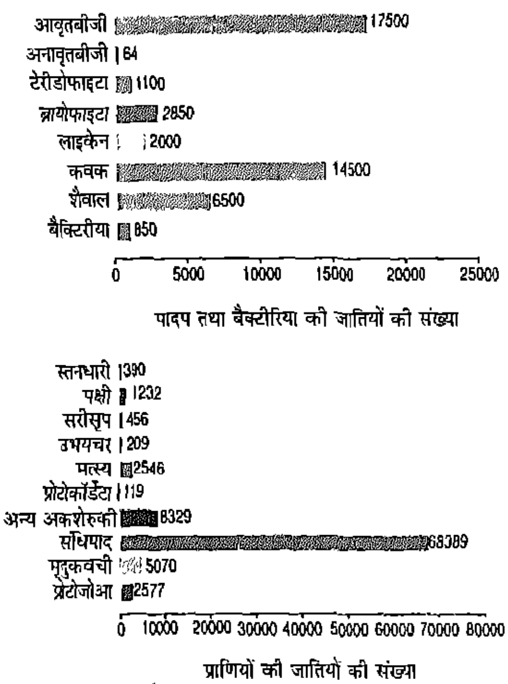
चिंता का वर्तमान प्राथमिक कारण यह अनुभूति है कि विश्व की जैविक विविधता का आमाप जाने बिना ही हम इसे खोते जा रहे हैं। नई फसलें, औषधियां, पेट्रोलियम के स्थानापन्न तथा जैव नाशकों एवं अन्य उत्पादों के रूप में जैव विविधता संपत्ति के शक्तिशाली स्रोत का प्रतिनिधित्व करती है। पृथ्वी के पारितंत्रों के समुचित क्रियाकलापों के लिए जीवधारियों की आवश्यकता होती है। जैव विविधता का ह्रास जीवों के विकास की क्षमता, जो पर्यावरणीय परिवर्तनों का सामना करने के लिए आवश्यक है, को रोकेगा। जातियों एवं जीनकोश के ह्रास को कैसे रोका जाए, यह विज्ञान के समक्ष बड़ी चुनौतियों में से एक है। अतः जैव विविधता का आमाप, जीव जातियों के ह्रास की दर तथा जैव विविधता के संरक्षण की विधियों के बारे में सूचना अत्यंत अपर्याप्त है। हम जो तथ्य भली-भांति जानते हैं वह यह है कि, कुछ क्षेत्रों, विशेष रूप से आर्द्र उष्णकटिबंधों, में जाति विविधता असामान्य रूप से अधिक है, और यह कि जातियों का एक बड़ी संरचना में जो विलोप हो रहा है उसका अधिकांश दोष मानवजाति पर है। इस पाठ में हम पृथ्वी पर जीवन की विविधता, मानव का भोजन एवं अन्य आवश्यकताओं के लिए जनसंख्या की जैव विविधता पर निर्भरता, जैविक विविधता को प्रभावित कर रही मनुष्य की क्रियाशीलता, जातियों के विलोप की दर में वृद्धि के कारणों और जैविक विविधता के संरक्षण के लिए उपायों का अध्ययन करेंगे।

20.1 जैव विविधता का परिमाप (Magnitude of Biodiversity)

वैसे तो जीव जातियों की पहचान एवं इनके नामकरण का क्रमबद्ध कार्य विगत 250 वर्षों से चल रहा है फिर भी हम

सारणी 20.1 : विश्व भर में वर्णित एवं पहचानी गई जातियों की अनुमानित संख्या

समूह	जातियों की संख्या
उच्च वर्गीय पादप	2,70,000
शैवाल	40,000
कवक	72,000
जीवाणु	4,000
विषाणु	1,550
स्तनधारी	4650
पक्षी	9700
सरीसृप	7150
मछली	26,959
उभयचरी	4780
कीट	10,25,000
क्रस्टेशियन	43,000
मॉलस्क	70,000
नीमेटोड्स एवं कृमि	25,000
प्रोटोजोआ	40,000
अन्य	1,10,000



चित्र 20.1 भारत में रिकॉर्ड किए गए विभिन्न समूहों में पादप तथा प्राणी जातियों की संख्या।

अब तक जातियों की एक बड़ी संख्या का वर्णन एवं नामकरण नहीं कर पाए हैं। सारिणी 20.1 में पृथ्वी पर ज्ञात जीवों को संख्या एवं प्रमुख वर्गीकरण समूहों में इनके वितरण का सारांश दिया गया है। पृथ्वी के समस्त जीवधारियों में से ज्ञात एवं वर्णित जातियों की संख्या लगभग 18 लाख है, जो वास्तविक संख्या के 15 प्रतिशत से कम है। पृथ्वी पर विद्यमान कुल जातियों की अनुमानित संख्या 50 लाख से 5 करोड़ के मध्य है और औसत 1.4 करोड़ है। ज्ञात जातियों में से लगभग 61 प्रतिशत कीटों के रूप में वर्णित हैं। स्तनधारियों की मात्र, 4,650 जातियां ज्ञात हैं। पादप जातियों (2,70,000) एवं कशेरुकियों की एक बड़ी संख्या भी ज्ञात है। कहीं अधिक जातियां जो विशेष रूप से उष्ण-कटिबंधीय क्षेत्र में हैं, जो अभी तक वर्णित नहीं हैं। जीवाणुओं, विषाणुओं, प्रोटीस्टों एवं आरकीया प्राणियों (Archaea) के बारे में हमारी जानकारी अभी तक आंशिक है। अभी भी हमें इनकी जातियों एवं आनुवंशिक विविधता की जानकारी नहीं है। फिर भी "वैश्विक जैव विविधता सूचना सुविधा तथा जातियां 2000" जैसी परियोजनाओं के द्वारा किए गए प्रयासों से पूर्व की तुलना में, अब नई जीव जातियों की खोज तीव्र गति से हो रही है। अब तक भारत से जंतुओं की 89,000 जातियों तथा पौधों की 47,000 जातियां वर्गित की जा चुकी हैं। विभिन्न वर्गीकीय समूहों की इन जातियों की संख्या चित्र 20.2 में दी गई है।

20.2 जैव विविधता के स्तर (Levels of Biodiversity)

इनसे अधिक जटिल पारिस्थितिक संबंध जातियों में, आनुवंशिक विविधता एवं पारिस्थितिक प्रणालियों की अधिक विविधता, जैव विविधता के संरक्षण का भोजन विकसित करने के लिए हमें जैव विधि की संरचना के अर्थ स्पष्ट होने चाहिए।

वास्तव में जैव विविधता में तीन सुपान प्रबंधी (hierarchic) जैविक स्तर सम्मिलित हैं:

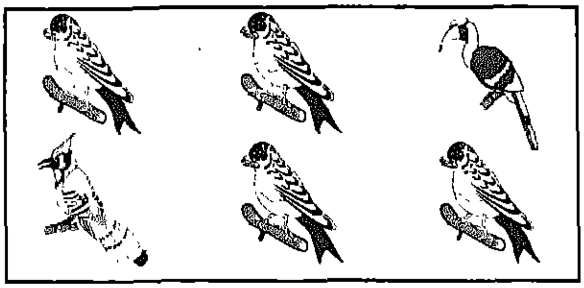
(i) आनुवंशिक विविधता
(ii) जाति विविधता तथा
(iii) समुदाय एवं परितंत्र विविधता।

जैव विविधता के ये स्तर आपस में संबंधित हैं, फिर भी ये इतने अस्पष्ट हैं कि इन अंतर संबंधों को, जो पृथ्वी पर जीवन का आदान-प्रदान करते हैं, को समझने के लिए इनका अलग से अध्ययन आवश्यक है।

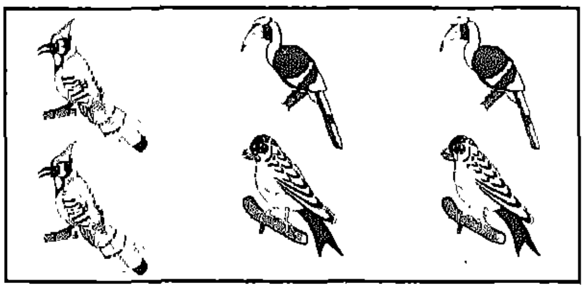
आनुवंशिक विविधता (Genetic Diversity)

आनुवंशिक विविधता का आशय जातियों में जीनों की भिन्नता से है। यह भिन्नता ऐलीलस (alleles), एक ही जीव विभिन्न

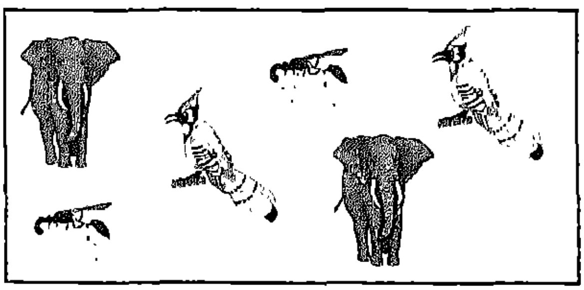
रूप भेद वैनिध्य में या गुण सूत्रों की संरचना में हो सकती है। आनुवंशिक विविधता किसी समष्टि को इसके पर्यावरण के अनुकूल होने और प्राकृतिक चयन के प्रति अनुक्रिया प्रदर्शित करने के योग्य बनाती है। पिछली कक्षा से हमें ज्ञात है कि प्रत्येक जाति, जीवाणुओं से उच्च स्तरीय पौधों एवं जंतुओं तक में अत्यधिक मात्रा में आनुवंशिक सूचना संग्रहित होती है। कुछ पौधों एवं जंतुओं में जीनों की अनुमानित संख्या इनके जीनोम विश्लेषण से ज्ञात हुई है। अब तक अनेक जीवों के जीनोम का संपूर्ण अनुक्रमण किया जा चुका है। उदाहरणार्थ,



प्रारूप क्षेत्र 1



प्रारूप क्षेत्र 2



प्रारूप क्षेत्र 3

चित्र 20.2 विभिन्न प्रारूप क्षेत्र जो कि दर्शाते हैं : जाति प्रचुरता (प्रारूप क्षेत्र 1) जाति समानता (प्रारूप क्षेत्र 2) तथा असमान जाति के कारण विविधता (प्रारूप क्षेत्र 3)

माइकोप्लाज्मा जीनों की संख्या लगभग 450-700; एस्केरिकिया कोलाइ *(Escherichia coli)* में 4,000; ड्रोसोफिला *(Drosophila melanogaster)* में 13,000; धान *(Oryza sativa)* में 32,000-50,000, एवं मानव *(Homo sapiens)* में 35,000-45,000 जीन हैं।

आनुवंशिक भिन्नता की माप जाति उद्‌भवन, नवीन जाति के विकास का आधार है। उच्च स्तर पर विविधता बनाए रखने में इसकी प्रमुख भूमिका है। किसी समुदाय की आनुवंशिक विविधता, मात्र कुछ जातियां होने की तुलना में अधिक जातियां होने पर अधिक होगी। जाति में पर्यावरणीय भिन्नता के साथ आनुवंशिक विविधता प्राय: बढ़ जाती है, इससे विविधता समुदायों में यह जातियों की भिन्नता के साथ बढ़ती है।

जीनीन विश्लेषण, उन आनुवंशिक भिन्नताओं की जानकारी के बहुत अधिक अवरुद्ध प्रदान करता है, जो जीव धानी को विशिष्ट गुण एवं कुशलता प्रदान करते हैं। एक जाति या इसकी एक समष्टि में कुल आनुवंशिक विविधता को जीन कोश (gene pool) कहते हैं। यदि किसी जाति में आनुवंशिक विविधता अधिक है तो यह बदली हुई पर्यावरणीय दशाओं में अपेक्षाकृत सभी प्रकार से अनुकूलन कर सकती है। किसी जाति में अपेक्षाकृत कम विविधता से एक रूपता उत्पन्न होती है। जैसा कि आनुवंशिक रूप से समान फसली पौधों के एकधान्य कृषि की स्थिति में होता है। इसका लाभ तब है, जब फसल उत्पादन में वृद्धि का विचार हो। लेकिन यह एक समस्या बन जाती है। जब कीट अथवा फफूंदी रोग खेत को संक्रमित करता है और इसकी सभी फसल को संकट उत्पन्न करता है (चित्र 20.1)।

जाति विविधता (Species Diversity)

जातियां विविधता की स्पष्ट इकाई हैं, प्रत्येक की एक विशिष्ट भूमिका होती है। अत: जातियों का ह्रास संपूर्ण परितंत्र के लिए होता है। जाति विविधता का आशय एक क्षेत्र में जातियों की किस्म से होता है। जातियों की संख्या में परिवर्तन परितंत्र के स्वास्थ्य का एक अच्छा सूचक हो सकता है। किसी स्थान या समुदाय विशेष में जातियों की संख्या स्थान के क्षेत्रफल के साथ बहुत बढ़ती है। सामान्यत: जातियों की **संख्या अधिक** होने पर जाति विविधता भी अधिक होती है। फिर भी, जातियों के मध्य प्रत्येक की संख्या में भिन्नता हो सकती है, जिसके कारण समरूपता या समतुल्यता में अंतर होता है। कल्पना कीजिए कि हमारे पास तीन क्षेत्र हैं। जिनमें से प्रत्येक की अपने अनुसार विविधता है। प्रारूप क्षेत्र एक में पक्षियों की

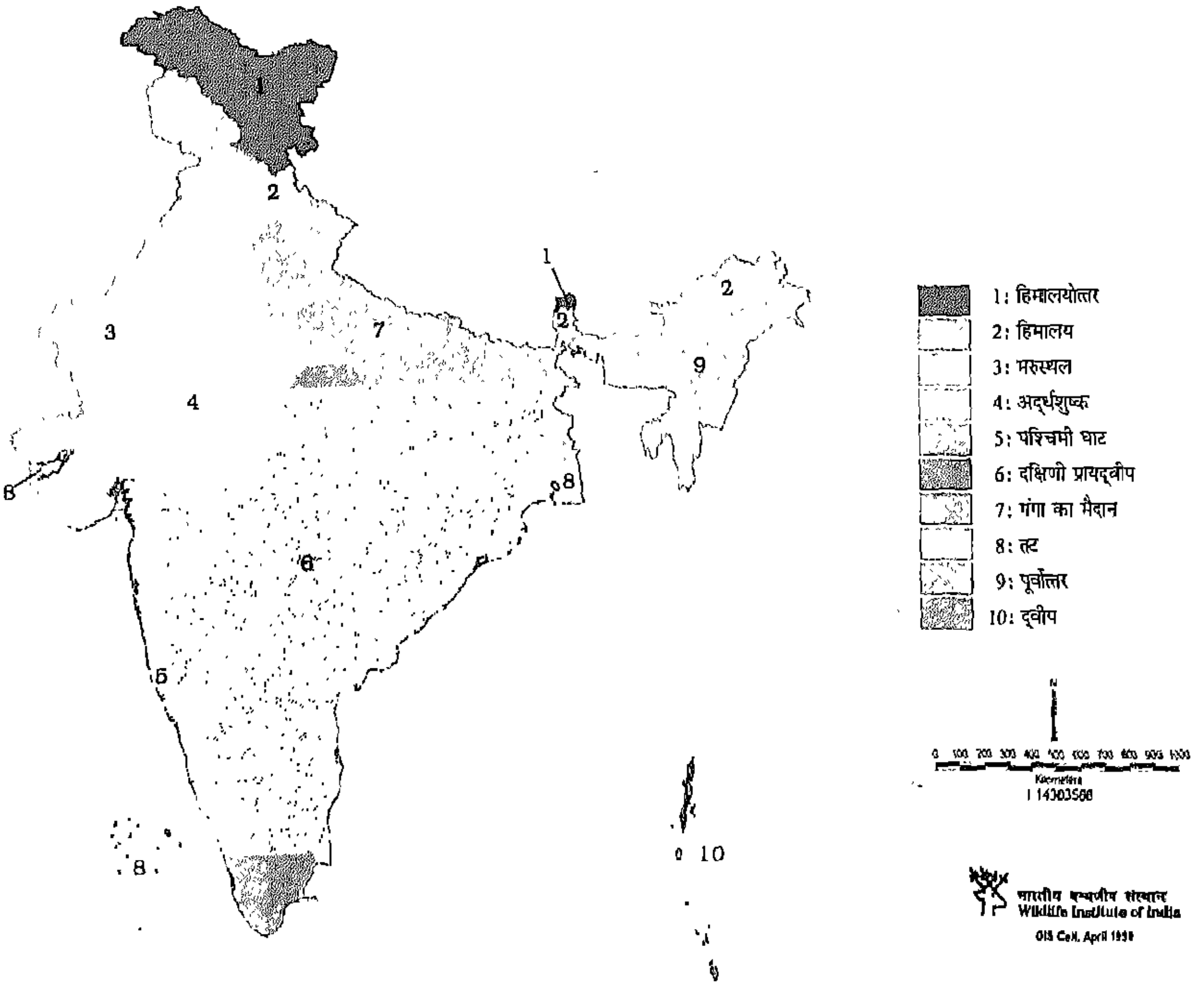


चित्र 20.3 विविधता के तीन आयाम। अल्फा, बीटा तथा गामा विविधता

तीन जातियां हैं। दो जातियों का प्रतिनिधित्व प्रत्येक के एक पृथक जंतु द्वारा है, जब कि तीसरी जाति के चार अलग हैं (चित्र 20.2)। दूसरे प्रारूप क्षेत्र में भी ये ही तीन जातियां हैं, प्रत्येक जाति का प्रतिनिधित्व प्रत्येक के एक पृथक जंतु करते हैं। यह प्रारूप क्षेत्र अपेक्षाकृत अधिक सम या एकरूपता प्रदर्शित करता है। इस प्रारूप क्षेत्र को, पहले की तुलना में, अधिक विविध माना जाएगा। तीसरे प्रारूप क्षेत्र में जातियों का प्रतिनिधित्व एक कीट, एक स्तनधारी एवं एक पक्षी द्वारा किया जा रहा है। यह प्रारूप क्षेत्र सबसे अधिक विविध है। क्योंकि इसमें वर्गों की दृष्टि से असंबंधित जातियां हैं। इस उदाहरण में जातियों की प्रकृति में, जातियों की संख्या एवं प्रति जाति व्यक्ति की संख्या दोनों भिन्न होती हैं जिसमें परिणामस्वरूप अपेक्षाकृत अधिक विविधता होती है।

समुदाय एवं पारितंत्र विविधता (Community and Ecosystem Diversity)

एक समुदाय की जैविक अधिकता इसकी जाति विविधता द्वारा बताई जाती है। जाति अधिकता एवं समरूपता के संयोग का उपयोग समुदाय/आवास में विविधता या **अल्फा विविधता** को समान हिस्सों में करने वाले जीवों की विविधता से है (चित्र 20.3)। जब आवास या समुदाय में परिवर्तन होता है तो जातियां भी बहुधा परिवर्तित हो जाती हैं। आवासों या समुदायों के एक प्रवणता के साथ जातियों के विस्थापित होने की दर **बीटा विविधता** (समुदाय विविधता के बीच) कहलाती है। समुदायों के जाति संघटन में पर्यावरणीय अनुपात के साथ अंतर होते हैं, उदाहरणार्थ तृतीय ढाल, आर्द्रता अनुपात आदि। किसी क्षेत्र में आवासों में विषमांगता अधिक होने या समुदायों के आवासों या



चित्र 20.4 भारत के जैव भौगोलिक क्षेत्र

भौगोलिक क्षेत्र की विविधता को **गामा विविधता** कहते हैं (चित्र 20.3)।

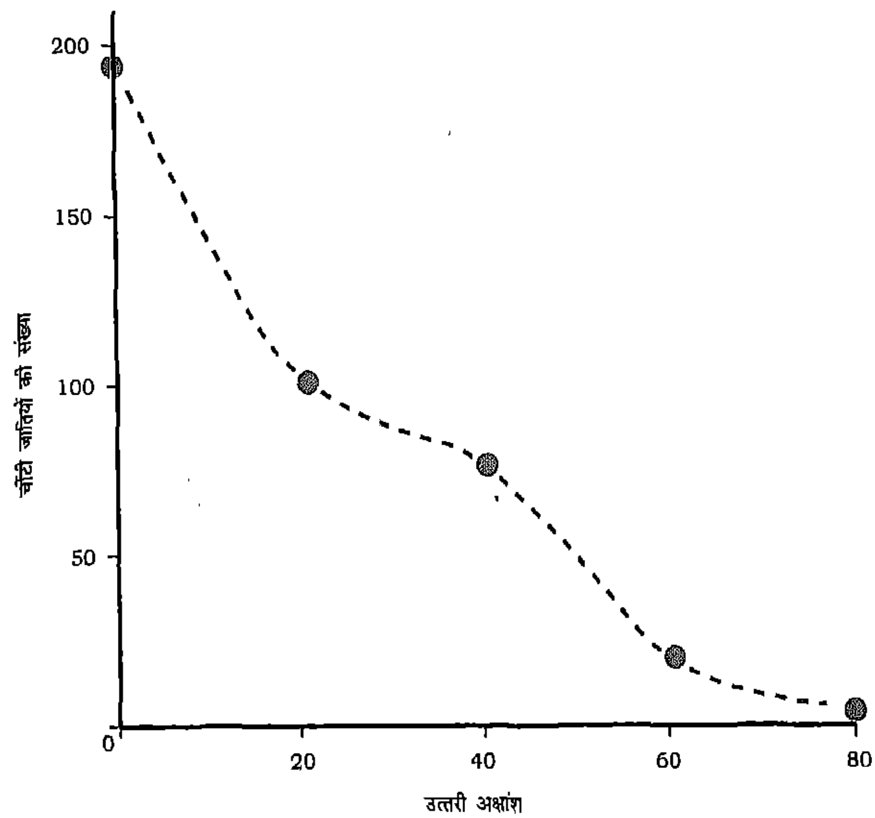
पारितंत्र की विविधता निकेतों, पोषज स्तरों एवं विभिन्न पारिस्थितिकीय प्रक्रियाओं की संख्या बताती है जो ऊर्जा प्रवाह, आहार जाल एवं पोषक तत्त्वों के पुनर्चक्रण को संभालते हैं। इसका केंद्र विभिन्न जीवीय पारस्परिक क्रियाओं तथा कुंजिशिला जातियों की भूमिका एवं अर्थ पर होता है। शीतोष्ण घासस्थलों के अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि, विविध समुदाय, पर्यावरणीय तनाव जैसी दीर्घ शुष्क स्थितियों में भी कार्य की दृष्टि से अधिक उत्पादक एवं स्थिर होते हैं।

जैसे कि पूर्व के अध्यायों में बताया गया है कि एक क्षेत्र में कई आवास या पारिस्थितिक तंत्र हो सकते हैं। सवाना, वर्षा जल, मरुस्थल, गीले एवं नमभूमि और महासागर बड़े पारितंत्र हैं जहां जातियां निवास करती हैं और विकास करती हैं। एक क्षेत्र में उपस्थित आवासों व पारितंत्रों की संख्या भी जैव विविधता का एक भाग है।

भारत में विभिन्न जलवायु परिस्थितियों के विभिन्न जैवभौगोलिक क्षेत्रों को चित्र 20.4 में दर्शाया गया है। भारतीय जैव विविधता की स्थानिकता बहुत अधिक है, हमारे देश में मुख्यतः उत्तर-पूर्व, पश्चिमी घाट, उत्तर-पश्चिम हिमालय एवं अंडमान निकोबार द्वीप समूहों में, स्थानिक है। अत्यधिक संख्या में उभयचर जातियां पश्चिमी घाट में स्थानिक हैं। भारत में अनेक पारितंत्रों की जैविक विविधता अभी भी अल्प आवेशित है इन पारितंत्रों में गहरे महासागर, नमभूमि एवं झीलें तथा उष्ण कटिबंधीय वर्षा वनों के वृक्ष एवं मृदा सम्मिलित हैं। अनुमानित कशेरुकी जंतुओं का 33 प्रतिशत मृदुजल मछली, 60 प्रतिशत उभयचरी, 36 प्रतिशत सरीसृप एवं 10 प्रतिशत स्तनधारी जंतु स्थानिक हैं। इनमें से अधिकतर उत्तर-पूर्व, पश्चिमी घाट, उत्तर पश्चिम हिमालय एवं अंडमान निकोबार द्वीप समूहों में पाए गए हैं।

20.3 जैव विविधता की प्रवणता (Gradients of Biodiversity)

ऊंचे से नीचे अक्षांश (अर्थात् ध्रुवों से भूमध्यरेखा की ओर) चलने पर जैविक विविधता बढ़ती है। ऐसा सहसंबंध अनेक वर्ग समूहों जैसे वृक्षों, चीटियों, पक्षियों, तितलियों, शलभों एवं स्थलीय जातियों में पाया गया है। अर्पटिल में जलवायु अत्यंत कठिन (जिसमें दीर्घ, अत्यधिक ठंडा होता है) होती है। यह विस्तृत रूप में घटती-बढ़ती है और पौधों का वृद्धि काल अत्यंत सीमित होता है। ऐसी स्थिति में जाती अनुकूलन का मुख्य उद्देश्य संक्षिप्त अनुकूल काल में वृद्धि एवं प्रजनन के लिए आवश्यक संसाधनों को प्राप्त करना एवं लंबे प्रतिकूल प्रावस्था में जीवित बने रहना होता है। दूसरी ओर, उष्णकटिबंधीय वर्षा वाले वन में, जहां वृद्धि के लिए पूरे वर्ष स्थितियां अनुकूल (उष्ण एवं आर्द्र) होती हैं, ऐसी दशाएं जाति उद्भवन



चित्र 20.5 अक्षांशीय प्रवणता के साथ चींटी जातियों की संख्या का घटना (कम से उच्च अक्षांश की ओर)

के अनुकूल होती हैं और एक बड़ी संख्या में जातियों का रहना एवं वृद्धि करना संभव बनाती हैं। उदाहरणार्थ, नम उष्णकटिबंधीय वर्षा वाले वनों में संवहनी जातियों की माध्य संख्या प्रत्येक 0.1 हेक्टेयर प्रारूप क्षेत्र में 118-236 होती है जबकि शीतोष्ण कटिबंधों में यह संख्या 21-48 जातियां होती है (चित्र 20.5)।

इसी प्रकार पहाड़ों पर ऊंचे से नीचे तुंग में जीव विविधता में सामान्यत: हम वृद्धि पाते हैं। तुंग में 1000 मीटर की वृद्धि के फलस्वरूप तापमान लगभग 6.5° गिरता है। तापमान में यह कमी तथा ऊंचे तुंगों पर अधिक मौसमी भिन्नता, विविधता में कमी का एक प्रमुख कारक है। अक्षाशीय एवं तुंगीय कारण जातियों की विविधता की दो प्रधान प्रवणताएं हैं। यद्यपि जाति संबंधी अपकार पाए जाते हैं। साथ ही यह संभावना भी होती है कि भौतिक पर्यावरण अधिक जटिल एवं विषकांभी होने पर वनस्पति जगत एवं प्राणि जगत अधिक जटिल एवं विविध होंगे।

20.4 जैव विविधता के उपयोग (Uses of Biodiversity)

मानव जैव जगत से अनेक प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष लाभ प्राप्त करता है। यह भोजन, औषधियों, रेशे, रबर एवं इमारती लकड़ी का स्रोत है जैविक संसाधनों में प्रमुख लाभकारी नवीन संसाधन भी हैं। जीवों की विविधता जैसे अनेक पारिस्थितिक कार्य शुल्क रहित प्रदान करती है, जो परितंत्र के स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए आवश्यक है। जैव विविधता के उपयोगों का वर्णन निम्नवत है।

भोजन एव उन्नत किस्मों का स्रोत (Sources of Food and Improved Varieties)

जैव विविधता आधुनिक कृषि के लिए तीन प्रकार से उपयोगी हैं:

(i) नई फसलों से स्रोत के रूप में।
(ii) उन्नत किस्मों के प्रजनन के लिए सामग्री के रूप में। और
(iii) नए जैवनिम्नकरणीय पीड़को के स्रोत के रूप में।

भोजनीय पादपों की कई हजार जातियों में से 20 प्रतिशत से भी कम जातियां विश्व के भोजन का अधिकांश (85 प्रतिशत) भाग उत्पन्न करने के लिए उगाई जाती हैं। गेहूं, मक्का एवं तीन प्रमुख कार्बोहाइड्रेट फसलें, मानव आबादी को जीवित रखने के लिए लगभग दो तिहाई भोजन प्रदान करती हैं। वसा, तेल, रेशे आदि अन्य उपयोग के लिए और अधिक नई जातियों की खोज और इन्हें उगाने की आवश्यकता है।

व्यापारिक एवं घरेलू खाद्य जातियों के गुणों को सुधारने के लिए इनको वन्य संबंधियों से संरक्षित रखा जाता है। घरेलू खाद्य जातियों को नए गुणों, जैसे रोग प्रतिरोध या उन्नत उपज प्रदान करने के लिए वन जातियों के जीनों का उपयोग किया जाता है। उदाहरणार्थ, एशिया में उगाए जा रहे धान को भारत की वन्य धान की एकमात्र जाति (*Oryza nivara*) से प्राप्त जीनों द्वारा चार प्रमुख रोगों से सुरक्षित रखा गया है।

दवाएं एवं औषधियां (Drugs and Medicines)

जैव विविधता उन पदार्थों का एक अच्छा स्रोत है, जिनमें चिकित्सा संबंधी गुण होते हैं। अनेक महत्त्वपूर्ण औषधियां पादप आधारित पदार्थों से उत्पन्न हुई हैं। पादपों से प्राप्त पदार्थ, जिन्हें बहुमूल्य दवाओं में विकसित किया गया है इसके उदाहरण हैं। मार्फीन (*Papaver somniferum*) का दर्द निवारक के रूप में उपयोग, कुनैन (*Cinchona ladgeriana*), मलेरिया के उपचार के लिए एवं टैक्सोल (*Taxus brevifolia*) कैंसर की दवा है। वर्तमान में औषधि निर्माण में दवाओं का 25 प्रतिशत, पादपों की मात्र 120 जातियों से प्राप्त होता है, लेकिन संपूर्ण विश्व में परंपरागत औषधियों में हजारों पादप जातियों का उपयोग होता है। पौधों का उपयोग असंख्य संश्लेषित उत्पादों, जिन्हें **बोटानोकेमिकल्स** (botanochemicals) कहते हैं, के निर्माण में किया जा सकता है। वन्य पादपों विशेषत: उष्णकटिबंधीय वर्षा वनों के पादपों में उच्च स्तर की औषधियां पाई जाती हैं। ये पादप विषों एवं औषधियों के स्रोत के रूप में प्रयोग किए जा सकते हैं।

सौंदर्यपरक एवं सांस्कृतिक लाभ (Aesthetic and Cultural Benefits)

जैव विविधता का सौंदर्य में योगदान है। उदाहरण के तौर पर पारिस्थितिक पर्यटन, पक्षी निरीक्षण, वन्य जीवन, पालतू जीवन की देखभाल, बागवानी आदि। मानव के संपूर्ण इतिहास में लोगों ने जैव विविधता के महत्त्व को मानव जाति के अस्तित्व से सांस्कृतिक एवं धार्मिक विश्वास के माध्यम से जोड़ा है। अधिकतर गांवों एवं कस्बों में तुलसी (*Ocimum sanctum*), पीपल (*Ficus religiosa*) एवं खेजड़ी (*Prosopis cinereria*) जैसे पादप तथा विभिन्न अन्य वृक्ष लगाए जाते हैं, जिन्हें लोग पवित्र मानकर पूजते हैं। आज भी हम पादपों एवं जंतुओं को राष्ट्रीय गौरव एवं सांस्कृतिक धरोहर का सूचक मान रहे हैं।

पारितंत्र सेवाएं (Ecosystem Services)

पारिस्थितिक तंत्र एवं पृथक् जातियों से प्राप्त सामग्री एवं सेवाओं के निरंतर उपयोग एवं रख-रखाव के लिए जैव विविधता आवश्यक है। प्राकृतिक पारितंत्र के माध्यम से उन्हें सेवाएं प्रदान करने के लिए विविध जातियां, जो इन पारितंत्रों की आधारभूत घटक होती हैं, उत्तरदायी हैं। इन सेवाओं में वायुमंडल के गैसीय संघटन को बनाए रखना, वनों एवं महासागर तंत्रों द्वारा जलवायु नियंत्रण, पीड़कों का प्राकृतिक नियंत्रण, कीटों एवं पक्षियों द्वारा पौधों का परागण, मृदा का निर्माण एवं संरक्षण, जल का संरक्षण, शुद्धिकरण एवं पोषक चक्रण आदि सम्मिलित हैं। इन पारितंत्र सेवाओं का मूल्य 16 से 54 खरब (10^{12}) अमेरिकी डॉलर प्रति वर्ष आंका गया है।

20.5 जैव विविधता को खतरा (Threats to Biodiversity)

आवास का ह्रास एवं विखंडन, विदेशी जातियों का आगमन अतिशोषण, मृदा, जल एवं वायु प्रदूषण, अत्यधिक कृषि एवं वानिकी जैसे महत्त्वपूर्ण कारकों से जातियां विलुप्त हो रही हैं और परिणामस्वरूप जैव विविधता का ह्रास होता है।

आवास ह्रास एवं विखंडन (Habitat Loss and Fragmentation)

आवास जहां जीवधारी रहते हैं, पोषक जल एवं जीवित रहने के लिए स्थान पाते हैं, का विनाश जैव विविधता के ह्रास का प्राथमिक कारण है। जब लोग वन को काटते हैं, नम भूमि को भरते हैं, घास के मैदान की जुताई करते हैं या वन को जला देते हैं तो एक जाति का नैसर्गिक आवास बदल जाता है या नष्ट हो जाता है। ये परिवर्तन अनेक पौधों, जंतुओं और सूक्ष्मजीवियों को मार सकते हैं या आवास छोड़ने को विवश कर सकते हैं। साथ ही जातियों के मध्य होने वाली जटिल अन्योन्य क्रियाओं को तितर-बितर कर सकते हैं। वन का एक टुकड़ा जो शस्यभूमि, फलोद्यान, रोपित पेड़-पौधों या शहरी क्षेत्र से घिरा हो, विखंडित आवासों का एक उदाहरण है। एक विस्तृत वन पट्टी के विखंडन के साथ ही वन के भीतरी भाग में पाई जाने वाली जातियां सबसे पहले विलुप्त होती जाती हैं। अधिशोषण के फलस्वरूप किसी जाति विशेष का माप इतना घट जाता है कि वह जाति विलुप्त हो जाती है।

विक्षोभ एवं प्रदूषण (Disturbance and Pollution)

समुदाय नैसर्गिक बाधाओं जैसे आग, वृक्षापात, तथा कीटों द्वारा प्रभावित होते हैं। मनुष्य जनित बाधाएं नैसर्गिक बाधाओं से, तीव्रता दर एवं स्थानिक विस्तार में भिन्न होती हैं। उदाहरणार्थ, मानव आग का बार-बार प्रयोग करके समुदाय की जाति समृद्धता को बदल सकता है। जैसा कि आप जानते हैं, अनेक मानव समाधान जो नई तकनीकों के आगमन द्वारा जनित है जैसे बड़ी संख्या में संश्लेषित यौगिक, विकिरणों का समूह में उत्सर्जन या समुद्र में तेल का फैलना आदि पूर्व में जीव जाति द्वारा नहीं देखा गया था। ये सब आवास की गुणवत्ता को बदल देते हैं। प्रदूषण संवेदनशील जातियों की समष्टि को कम कर सकता है या हटा सकता है। मछली खाने वाले पक्षियों एवं फाल्कंस की संख्या में कमी पीड़क नाशियों के कारण हैं, इसके पर्याप्त साक्ष्य हैं। कई जातियों जैसे बत्तख, हंस और सारस की मृत्यु का एक प्रमुख कारण शीशाविषाक्त है क्योंकि ये टुकड़ों को जो झीलों और दलदल में गिरती हैं, निगल जाती हैं। जलाशयों को जातियों की विविधता को कम कर देता है।

विदेशी जातियों का पुरःस्थापन (Introduction of Exotic Species)

अन्य भौगोलिक क्षेत्रों से नई जातियों का पुनर्स्थापन, जिन्हें विदेशी (exotic) जातियां भी कहते हैं, के माध्यम से देशी (native) जातियों के लुप्त होने का कारण हो सकता है, विदेशी जातियां विशेष द्वीप पारितंत्र में, जहां विश्व की अधिकांश संकटग्रस्त जैव विविधता पाई जाती है, अधिक प्रभाव रखती हैं। उन विदेशी जातियों जिनका जैव विविधता के ह्रास पर अधिक प्रभाव है, कुछ उदाहरण निम्नवत हैं:

(i) नाइल पर्च, एक विदेशी भक्षक मछली जिसे विक्टोरिया झील (दक्षिण अफ्रीका) में रोपित किया गया, ने छोटी सिकलिड मछली की जातियों, जो इस अलवणीय जलीय प्रणाली के लिए विशेष क्षेत्रिक थी, को नष्ट करके झील में संपूर्ण पारितंत्र को संकटग्रस्त किया है।

(ii) भारत सहित कई उष्णकटिबंधीय देशों की झीलों तथा नदियों में कई जलीय जातियों की जीवंतता को जलकुंभी ने संकटग्रस्त किया है।

(iii) भारत में कई भागों में लेंटेना ने अनेक वन भूमियों को प्रभावित किया है और स्थानीय जातियों की वृद्धि को प्रभावित करती है।

जातियों का विलोपन (Extinction of Species)

विलोपन एक नैसर्गिक प्रक्रिया है। पृथ्वी के दीर्घ भौगोलिक इतिहास में कई जातियां विलुप्त एवं कई नई विकसित हुई हैं विलोपन प्रक्रिया तीन प्रकार से होती है:

नैसर्गिक विलोपन : पर्यावरणीय दशाओं में परिवर्तन के साथ कुछ जातियां अदृश्य हो जाती हैं और अन्य, जो बदली हुई

दशाओं के लिए अधिक अनुकूलित होती हैं, उनका स्थान ले लेती हैं। जातियों का यह ह्रास जो भूगर्भी अतीत में अत्यंत धीमी दर से हुआ, नैसर्गिक या पृष्ठभूमिक विलोपन कहलाता है।

समूह विलोपन : पृथ्वी के भूगर्भीय इतिहास में ऐसे अनेक समय रहे हैं, जब जातियों की एक बड़ी संख्या प्राकृतिक विपदाओं के कारण विलुप्त हो गई। समूह विलोपन करोड़ों वर्षों में होता है।

मानवोद्भवी विलोपन : मानव क्रियाओं के कारण पृथ्वी की सतह से बड़ी संख्या में जातियां अदृश्य हो रही हैं। भूगर्भीय अतीत के समूह विलोपन की तुलना में, मानव जनित विलोपन जैव विविधता के गंभीर अवक्षय को दर्शाती है। विशेष रूप से इसलिए कि यह एक अल्प समय में हो रहा है।

विश्व संरक्षण मॉनीटरिंग केंद्र के अनुसार 533 जंतु जातियों (अधिकांश कशेरुक) एवं 384 पादप जातियों (अधिकांश पुष्पी पादप) का पिछले 400 वर्षों में विलोपन हुआ है। द्वीप समूहों पर विलोपन दर अधिक है। पूर्व विलोपन की दर की तुलना में विलोपन की वर्तमान दर 1,000 से 10,000 गुना अधिक है। उष्णकटिबंध में और संपूर्ण पृथ्वी पर जातियों के वर्तमान ह्रास के बारे में कुछ रोचक प्रेक्षण हैं:

(i) 3,00,000 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैले उष्णकटिबंधीय वनों में दस उच्च विविधता वाले स्थानों से भविष्य में लगभग 17,000 स्थानिक विशेष क्षेत्रिय पादप जातियाँ एवं 3,50,000 स्थानिक जंतु जातियों का ह्रास हो सकता है।

(ii) उष्णकटिबंधीय वनों से 14,000-40,000 जातियां प्रतिवर्ष की दर से अदृश्य हो रही हैं (2-5 जाति प्रति घंटा)।

(iii) यदि विलोपन की वर्तमान दर चलती रहे तो आगामी 100 वर्षों में पृथ्वी से 50 प्रतिशत जातियां कम हो सकती हैं। अर्थात् लगभग 20,000 से 50,000 जातियां प्रति वर्ष।

विलोपन के प्रति सुग्रहिता (Susceptibility to Extinction)

विलोपन के प्रति विशेष रूप से सुग्रह जातियों के लक्षण हैं : विशालकाय शरीर (बंगाल बाघ, सिंह एवं हाथी), छोटा समष्टि अमाप एवं कम प्रजनन दर (नीली व्हेल एवं विशाल पांडा), खाद्य कड़ी में उच्च पोषण स्तर पर भोजन (बंगाल बाघ एवं गंजी चील), स्थिर प्रजनन पथ एवं आवास (नीली व्हेल एवं हूपिंग सारस) एवं वितरण की सानिगत एवं संकीर्ण परिसर (वुडलैंड कैरिवा, अनेक द्विपीय जातियां) भी विलोपन के प्रति संग्रह हैं।

आई.यू.सी.एन. की खतरनाक सूची (The IUCN Red List Categories)

आई.यू.सी.एन. लाल सूची एक ऐसे वर्गों की सूची है। जो विलुप्त होने के कगार पर है। यह जानना महत्वपूर्ण है कि लाल सूची के निम्नलिखित लाभ हैं:

(i) संकटग्रस्त जैव विविधता के महत्त्व के विषय में जागरूकता उत्पन्न करना

(ii) संकटापन्न प्रजातियों की पहचान करना व उनका अभिलिखन करना

(iii) जैव विविधता के ह्रास की लिखित सूची तैयार करना

सारणी 20.2 : आई.यू.सी.एन. की संकटग्रस्त श्रेणियां

संकटग्रस्त श्रेणी	स्पष्टता
विलुप्त (Extinct)	जाति के अंतिम सदस्य की समाप्ति (मृत्यु) पर जब कोई शंका न रहे।
वन्यरूप में विलुप्त (Extinct in the wild)	जाति के सभी सदस्यों का किसी निश्चित आवास से पूर्ण रूप से समाप्ति।
गंभीर रूप से संकटग्रस्ट (Critically endangered)	जब जाति के सभी सदस्य किसी उच्च जोखिम की वजह से एक आवास में शीघ्र ही लुप्त होने की कगार पर।
नष्ट होने योग्य (Endangered)	जाति के सदस्य किसी जोखिम की वजह से भविष्य में लुप्त होने के कगार पर।
नाजुक (Vulnerable)	जाति के आने वाले समय में समाप्त होने की आशा।
कम जोखिम (Lower risk)	जाति जो समाप्त होने जैसी प्रतीत होती हो।
अपूर्ण सामग्री (Deficient data)	जाति लुप्त होने के बारे में अपूर्ण अध्ययन एवं सामग्री।
मूल्यांकित नहीं (Not evaluated)	जाति एवं उसके लुप्त होने के बारे में कोई भी अध्ययन या सामग्री न होना।

(iv) स्थानीय स्तर पर संरक्षण की प्राथमिकताओं को परिभाषित करना तथा संरक्षण कार्यों को निर्देशित करना।

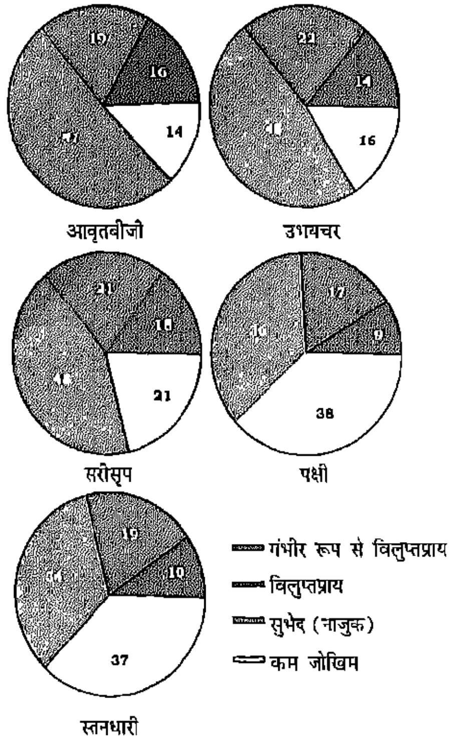
आई.यू.सी.एन. जो अब विश्व संरक्षण संघ के नाम से जाना जाता है, की लाल सूची प्रणाली के अनुसार जातियों की आठ श्रेणियां हैं: विलुप्त, वन्य रूप में विलुप्त, गंभीर रूप से संकटापन, नष्ट होने योग्य, नाजुक, कम जोखिम, अपूर्ण आंकड़े एवं मूल्यांकित नहीं। विलोपन के लिए संकटग्रस्त जातियों की श्रेणियों में सुभेद्य संकटान्नुपादन एवं गंभीर रूप से संकटग्रस्त सम्मिलित हैं। इन श्रेणियों को सारणी 20.2 में दर्शाया गया है।

वर्ग जिनकी विश्व में समष्टि अल्प है और जो वर्तमान में संकटापन्न या संकटग्रस्त नहीं हैं लेकिन उनके ऐसा होने का खतरा है, **विरल** कहलाते हैं। ये स्पीसीज सामान्यत: सीमित भौगोलिक क्षेत्रों या आवासों में स्थापित होते हैं या एक अधिक विस्तृत विस्तार में यहां वहां बिखरे होते हैं।

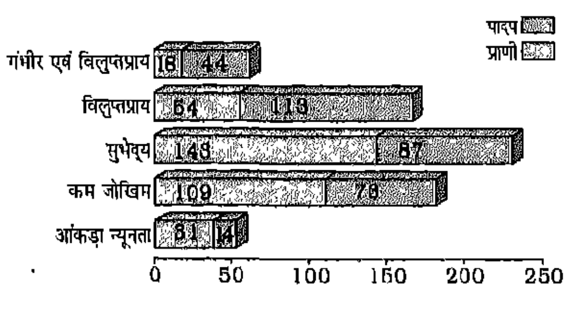
आई.यू.सी.एन. की लाल सूची प्रणाली 1963 में शुरू की गई थी तब से सभी जातियों एवं प्रजातियों का संरक्षण स्तर विश्व स्तर पर जारी है। सन् 2000 की लाल सूची एक बहुत ही अच्छे ढंग से प्रस्तुत की गई है। इसमें 18,000 जातियों का विवरण है उसमें से 11046 जातियां संकटग्रस्त हैं। इस सूची से *अंतर्राष्ट्रीय समझौतों* (*जैव विविधता सम्मेलन एवं संकटग्रस्त* जातियों का अंतर्राष्ट्रीय व्यापार) में भी बहुत सहायता मिलती है।

संकटग्रस्त जातियों का स्थान : वर्ष 2000 की लाल सूची में 11,046 जातियां (5485 जंतु एवं 5611 पादप) संकटग्रस्त के रूप में सूचीबद्ध हैं। उनमें से 1939 क्रांतिक संकटग्रस्त (925 जंतु एवं 1014 पादप) के रूप में सूचीबद्ध है (चित्र 20.6)।

लाल सूची के अनुसार, भारत में 44 पादप जातियां क्रांतिक संकटापन्न हैं, 113 संकटापन्न एवं 87 नाजुक हैं जंतुओं में 18 क्रांतिक संकटापन्न एवं 143 नाजुक है (चित्र 20.7)।



चित्र 20.6 आवृतबीजी, उभयचर, सरीसृप, पक्षी तथा स्तनधारीयों का प्रतिशत जो कि गंभीर रूप से विलुप्तप्राय, विलुप्तप्राय सुभेद्य तथा कम जोखिम वाले वर्गों में वर्गीकृत किया गया है



चित्र 20.7 भारत के विभिन्न वर्गों के पादप तथा प्राणीय जातियों की संकटग्रस्त संख्या

सारणी 20.3 भारत में संकटग्रस्त जातियों के उदाहरण

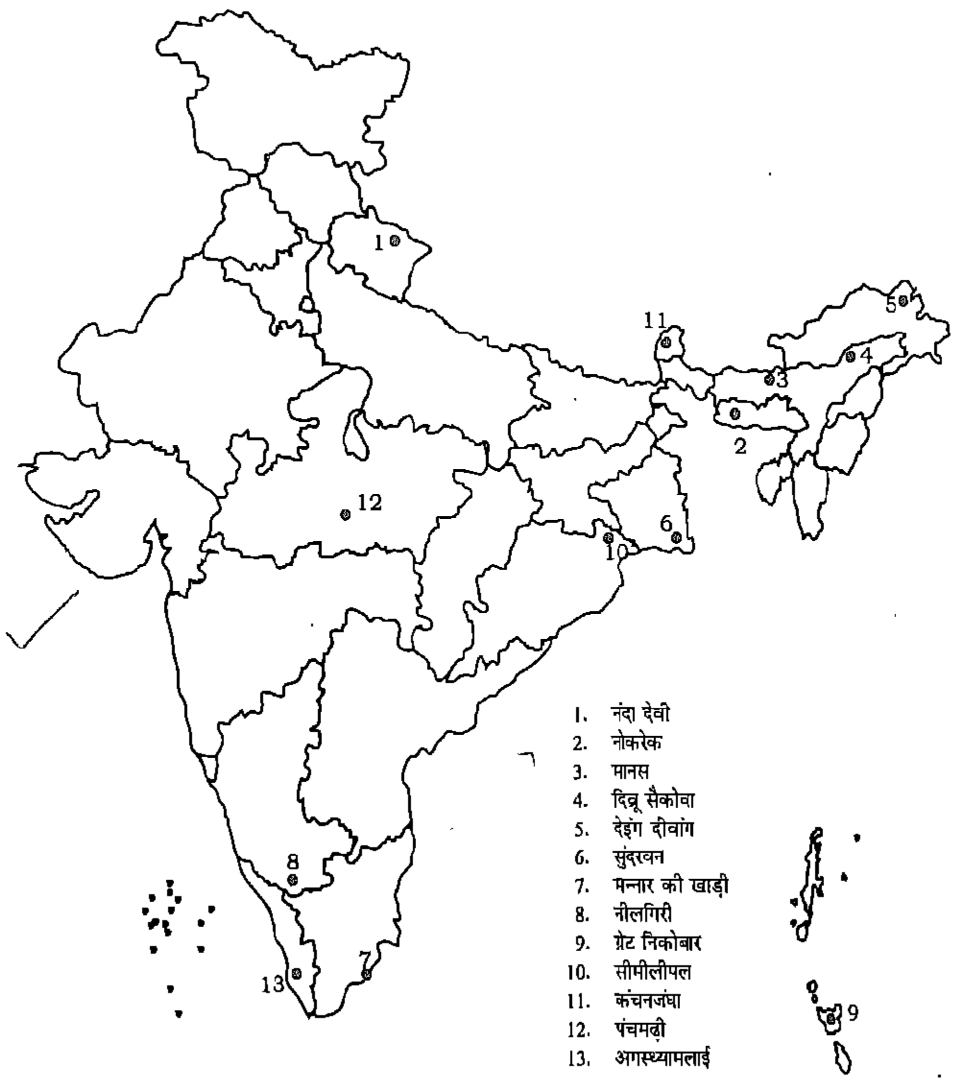
श्रेणी	पादप	जंतु
क्रांतिक संकटग्रस्त	बारबेरिस निलघिरेंसिस (*Barberis nilghiriensis*)	पिग्मी हॉग (*Sus Salvanius*)
संकटग्रस्त	बेंटिंकिया निकोबारिका (*Bentinckia nicobarica*)	लाल पांडा (*Ailurus fulgeus*)
नाजुक	क्यूप्रेसस कासमेरीयाना (*Cupressus Cashmeriana*)	कृष्ण मृग एन्टीलोप सर्वाकापरा (*Antilope cervicapre*)

विश्व स्तर पर संकटापन्न एवं क्रांतिक संकटापन्न जातियाँ, जो वर्ष 2000 की आई. यू. सी. एन. लाल सूची में सम्मिलित हैं, उनके उदाहरण सारणी 20.3 में दिए गए हैं।

20.6 जैव विविधता का संरक्षण (Conservation of Biodiversity)

हम जानते हैं कि प्रदूषण, आक्रमणकारी जातियों, मनुष्य द्वारा अधिशोषण एवं जलवायु परिवर्तन के कारण पारितंत्रों में बदलाव हो रहा है। अधिकांश लोग जानने लगे हैं कि जीन कोश, जाति एवं जैव समुदाय सभी स्तरों पर विविधता महत्त्वपूर्ण है जिसका संरक्षण आवश्यक है।

प्रबंधक होने की एक नैतिक आवश्यकता है कि हम अपने ग्रह की देखभाल करें और अच्छे रूप में इसे भावी पीढ़ियों को सौंपें। हमें भावी पीढ़ियों को आर्थिक एवं सौंदर्य लाभों से वंचित नहीं करना चाहिए जो वे जैव विविधता से प्राप्त कर सकते हैं। व्यक्ति या समाज के रूप में जो निर्णय हम आज लेते हैं वे भविष्य में रहने वाले जीनों, जातियों एवं पारितंत्रों की विविधता संरक्षित करने की सबसे प्रभावी एवं कुशल क्रियाविधि है कि



चित्र 20.8 भारत में जीव मंडल आरक्षित (सौजन्य : डॉ. जी.एस. रावत)

हम आवासों के और विनाश एवं निम्नीकरण को रोकें। घटते हुए स्थान एवं मानव के कार्यकलापों के बढ़ते दबाव में जैव विविधता को संरक्षित करने हेतु हमें अधिक जानकारी की आवश्यकता है।

जैव विविधता के संरक्षण के लिए स्व-स्थान *(in situ)* एवं पर स्थान *(ex situ)* दोनों ही उपायों की आवश्यकता हैं। भारत में जैव विविधता के संरक्षण हेतु जैव विविधता प्रबंधन को चित्र 20.8 में दर्शाया गया है।

संरक्षण के *स्व-स्थाने* उपाय (*In situ* Conservation Strategies)

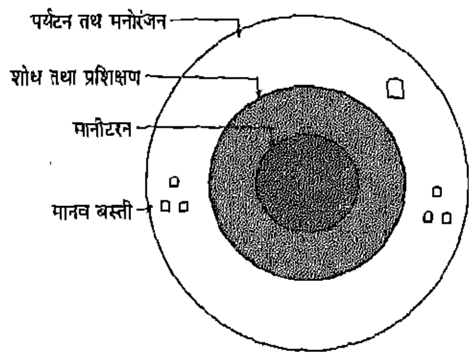
स्थान पर ही उपायों का जोर पारितंत्रों की सुरक्षा है जिसमें जीवों, जातियों, समष्टियों जैविक समुदायों एवं जैव भू-रासायनिक प्रक्रियाएं समाहित होती हैं। इनमें प्रतिनिधि पारितंत्रों के सुरक्षित क्षेत्र के विभिन्न के माध्यमों से सुरक्षा एवं आवासीय विखंडों को बनाए रखना सम्मिलित है।

रक्षित क्षेत्र : ये स्थल एवं समुद्र के ऐसे क्षेत्र हैं जो जैविक विविधता की तथा प्राकृतिक एवं संबद्ध सांस्कृतिक स्रोतों की सुरक्षा एवं निर्वहन के लिए विशेष रूप से समर्पित हैं और जिनका प्रबंधन कानूनी या अन्य प्रभावी माध्यमों से किया जाता है। सुरक्षित क्षेत्रों में उदाहरण राष्ट्रीय उद्यान एवं वन्यजीवाश्रम स्थल *(sanctuaries)* हैं। सबसे पहले राष्ट्रीय उद्यान अमेरिका में यैलोस्टोन एवं सिडनी (ऑस्ट्रेलिया) के समीप रॉयल हैं जिन्हें इनको दृश्य सौंदर्य एवं मनोरंजन मूल्य के लिए चुना गया। संपूर्ण विश्व में ऐसे अनेक क्षेत्र अब दुर्लभ जातियों एवं उजाड़ स्थानों को सुरक्षित रख रहे हैं। विश्व संरक्षण बोधन केंद्र ने पूरे विश्व में 37,000 सुरक्षित क्षेत्रों की पहचान की है। भारत में 581 रक्षित क्षेत्र (89 उद्यान एवं 492 वन्य आश्रम स्थल) हैं, जो अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रस्तावित 10 प्रतिशत के मानक में सापेक्ष देश में 4.7 प्रतिशत स्थल में फैले हैं। उत्तरांचल स्थित जिम कार्बेट राष्ट्रीय उद्यान भारत में स्थापित पहला राष्ट्रीय उद्यान है।

सुरक्षित क्षेत्रों के कुछ मुख्य लाभ हैं :

(i) सभी मूल निवासी जातियों एवं उपजातियों की जीवन क्षय समष्टियों को संभालना,
(ii) समुदायों एवं आवासों की संख्या एवं वितरण को संभालना, एवं सभी वर्तमान जातियों की आनुवंशिक विविधता को रक्षित रखना,
(iii) विदेशी जातियों की मानव जनित पुनःस्थापना को रोकना एवं
(iv) पर्यावरणीय परिवर्तनों की अनुक्रिया में जातियों एवं आवासों के स्थान बदलने को संभव बनाना।

जैवमंडल निंचय : जैवमंडल स्थल एवं समुद्र तटीय पर्यावरणों के ऐसे रक्षित क्षेत्र हैं, जहां लोग प्रणाली में अभिन्न संघटक होते हैं। ये प्राकृतिक जीवोम के प्रतिनिधि उदाहरण हैं, जिनमें अनुपम जैविक समुदाय होते हैं। जैवमंडल रिजर्व की संकल्पना यूनेस्को (UNESCO) की मानव एवं जैवमंडल परियोजना 8 जो पारितंत्रों एवं उनके उपस्थित आनुवंशिक संसाधनों के संरक्षण से संबंधित थी, के एक भाग के रूप में 1975 में चालू की गई। मई 2000 तक 94 देशों में 408 जैवमंडल रिजर्व थे। भारत में 13 जैवमंडल निंचय हैं जो चित्र 20.8 में दर्शाए गए हैं। एक जैवमंडल निंचय में क्रोड, बफर एवं पारगमन क्षेत्र होते हैं (चित्र 20.9)।



चित्र 20.9 एक स्थलीय जीवमंडल आरक्षित में अनुक्षेत्र वर्गीकरण

प्राकृतिक या **क्रोड क्षेत्र** में एक आविक्षब्ध एवं विधिक रूप से रक्षित पारितंत्र होता है। **बफर क्षेत्र** क्रोड क्षेत्र को घेरे रहता है। यह विधिक रूप से रक्षित होता है, लेकिन क्रोड क्षेत्र के सापेक्ष इसका प्रबंधन संसाधन उपयोग की नीतियों (strategies) की वृहत् विभिन्नता को समाहित करने के लिए किया जाता है। इसमें शोध एवं शैक्षणिक गतिविधियों को प्रोत्साहित किया जाता है। **पारगमन क्षेत्र** (transition zone) जैवमंडल रिजर्व का बाह्यतम भाग है। यह रिजर्व के प्रबंधन एवं स्थानीय लोगों के बीच एक निर्वहनीय सामाजिक आर्थिक विकास के उच्चतम के लिए सक्रिय सहयोग का एक क्षेत्र है। इस क्षेत्र में आबादी खेतीबाड़ी वानिकी एवं मनोरंजन और अन्य आर्थिक उपयोग जैसी गतिविधियां, संरक्षण के लक्ष्यों एवं जैवमंडल के उद्देश्यों के ताल-मेल में चलती रहती हैं। जैवमंडल निचय के प्रमुख कार्य हैं।

(i) **संरक्षण** : पारितंत्रों, जातियों एवं आनुवंशिक स्रोतों के संरक्षण को सुनिश्चित करना। यह संसाधनों के पारंपरिक उपयोग को भी प्रोत्साहित करता है।

(ii) **विकास** : आर्थिक विकास जो सांस्कृतिक, सामाजिक एवं पारिस्थितिकीय दृष्टि से निर्वहनीय हो, का उन्नयन करना।

(iii) **वैज्ञानिक शोधक मॉनीटरिंग एवं शिक्षा** : इसका उद्देश्य शोध, बोधन शिक्षा एवं संरक्षण तथा विकास के स्थानीय राष्ट्रीय एवं वैश्विक मुद्दों से संबंधित सूचना का आदान प्रदान है।

पवित्र झीलें व वन : भारत तथा कुछ अन्य एशियाई देशों में जैव विविधता के संरक्षण की सुरक्षा के लिए एक पारंपरिक नीति अपनाई जाती रही है। ये विभिन्न आमापों के वन खंड हैं जो जनजातीय समुदायों द्वारा धार्मिक पवित्रता प्रदान किए जाने से सुरक्षित हैं। **पवित्र वन** सबसे अधिक निर्विघ्न वन हैं जहां मानव का कोई प्रभाव नहीं है। ये दीपों का प्रतिनिधित्व करते हैं और सभी प्रकार के विघ्नों से मुक्त हैं। यद्यपि ये बहुधा अत्यधिक निम्नीकृत भू-दृश्य द्वारा घिरे होते हैं। भारत में पवित्र वन कई भागों में स्थित है, उदाहरणार्थ कर्नाटक, महाराष्ट्र, केरल, मेघालय आदि और कई भाग दुर्लभ, संकटापन्न एवं स्थानिक वर्गकों की शरणस्थली के रूप मे कार्यरत हैं। इसी प्रकार सिक्किम की केचियोपालरी झील पवित्र मानी जाती है एवं उसका संरक्षण जनता द्वारा किया जाता है।

संरक्षण के पर स्थाने उपाय (*Ex situ* Conservation Strategies)

इसमें वनस्पतियों उद्यान, चिड़ियाघर, संरक्षण स्थल एवं जीन, परागकण, बीज, पौधे ऊतक संवर्धन एवं डी.एन.ए. बैंक सम्मिलित हैं। बीज, जीन बैंक, वन्य एवं खैतीय पौधों के जर्मप्लाज्म को कम तापमान तथा शीत प्रकोष्ठों में संग्रहित करने का सरलतम उपाय हैं। आनुवंशिक संसाधनों का संरक्षण सामान्य वृद्धि दशाओं में क्षेत्रीय जीन बैंकों में किया जाता है। आलिंगी प्रजनन से उत्पन्न की गई जातियों एवं वृक्षों के लिए क्षेत्रीय जीन बैंक विशेष रूप से प्रयोग किए जाते हैं।

प्रयोगशाला में संरक्षण, विशेष रूप से द्रवीय नाइट्रोजन में–196°C तापमान पर **हिमांकमितीय संरक्षण कायिक जनन** द्वारा उगाई गई फसलों, जैसे आलू के लिए विशेष रूप से उपयोगी है। हिमांकमितीय संरक्षण पदार्थ का अत्यंत कम तापमान पर या तो अति तीव्र शीतीकरण (बीजों के संग्रह के लिए प्रयुक्त) या शनैः शनैः शीतीकरण एवं साथ ही कम तापमान पर शुष्कन (ऊतक संवर्धन में प्रयुक्त) है। अनेक अलिंगी प्रजनित फसलों जैसे आलू, केसावा, शकरकंद, गन्ना, वनीला एवं केला के प्रयोगशालाओं में जर्मप्लाज्म बैंक हैं। इनकी सामग्री कम निर्वहन शीतकरण इकाईयों में लंबे समय के लिए संग्रहित रखा जा सकता है।

जैविक विविधता का वानस्पतिक उद्यानों में संरक्षण पहले से प्रचलन में है। विश्व में 1500 से अधिक वानस्पतिक उद्यान एवं वृक्ष उद्यान (Arboreta) हैं, जिनमें 80,000 से अधिक जातियां हैं। इनमें से अनेक में अब बीज बैंक, ऊतक संवर्धन सुविधाएं एवं अन्य स्थान से परे तकनीक है। इसी प्रकार पूरे विश्व में 800 से अधिक व्यावसायिक रूप से प्रबंधित चिड़ियाघर हैं जिनमें स्तनधारियों, पक्षियों, सरीसृपों एवं उभयचरों की लगभग 3000 जातियां उपलब्ध हैं। इनमें से अधिकांश चिड़ियाघरों में अति संरक्षित प्रजनन सुविधाएं हैं।

शस्यपादपों के संबंधित वनीय पादप के संरक्षण और शस्य उपजातियों अथवा सूक्ष्मजीवों के संवर्धन, संकरणकर्ताओं एवं आनुवंशिक अवयंत्रकों को आनुवंशिक पदार्थ का त्वरित स्रोत प्रदान करते हैं। स्तनधारियों, पक्षियों, सरीसृपों एवं उभयचरों की 3,000 से अधिक जातियां हैं। इनमें से अनेक के लिए चिड़ियाघरों में सुविकसित प्रजनन कार्यक्रम हैं। फसली पौधों के वन्य संबंधियों के संरक्षण एवं फसल की किस्मों या सूक्ष्मजीवों के संवर्धन का संरक्षण प्रजनकों एवं आनुवंशिक इंजीनियरों को आनुवंशिक पदार्थ का एक सहज प्राप्य स्रोत प्रदान करता है। वानस्पतिक उद्यानों, वृक्षोद्यानों, चिड़ियाघरों एवं जलजीन शालाओं में संरक्षित पादपों एवं जंतुओं का उपयोग निम्नीकृत भूभाग को सुधारने, पूर्व स्थिति में लाने, जाति को वन्य अवस्था में पुनः स्थापित करने एवं कम हो गई समष्टियों को पुनः संचित करने में किया जा सकता है।

20.7 जैव विविधता के तप्तस्थल (Hot Spot of Biodiversity)

पृथ्वी के सभी भौगोलिक क्षेत्रों में जैव विविधता समान रूप से वितरित नहीं है। विश्व के कुछ निश्चित क्षेत्र, महाविविधता के क्षेत्र हैं। उदाहरण के लिए, भारत में, विश्व के कुल भूभाग का मात्र 2.4 प्रतिशत भाग है लेकिन वैश्विक विविधता में इसका अंशदान 8 प्रतिशत जातियों का है। हाल के उष्णकटिबंधीय वनों ने अपनी अधिक जैवविविधा आवासों के द्रुत विनाश के कारण संपूर्ण विश्व का ध्यान आकर्षित किया है। पृथ्वी में मात्र 7 प्रतिशत भू-भाग में फैले इन वनों में विश्व के कुल जीवों की 70 प्रतिशत से अधिक जातियां हैं।

ब्रिटेन के परिस्थिति विज्ञानी नार्मन मायर्स ने 1988 में स्वस्थाने संरक्षण के लिए क्षेत्रों की प्राथमिकता नामित करने हेतु **ताप्त स्थल** की संकल्पना विकसित की। तप्त स्थल की

समृद्धतम एवं सर्वाधिक संकटग्रस्त भंडार है। एक 'तप्त स्थल' का निर्धारण करने के लिए मूल कसौटी है:

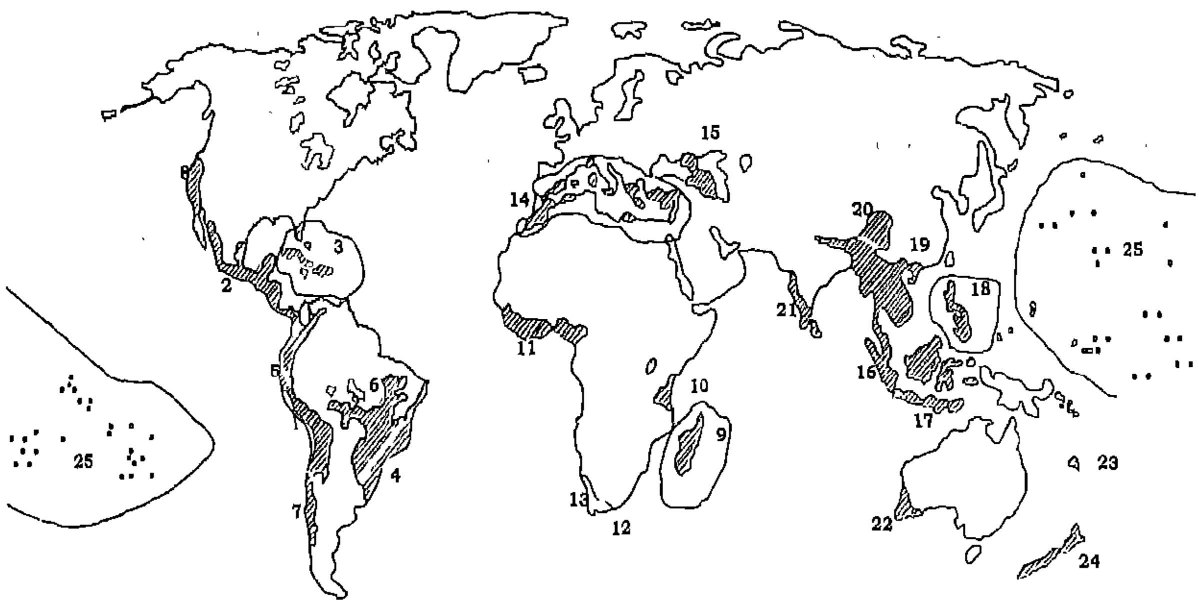
(i) विशेष क्षेत्रिकता/स्थानिकता (अन्यत्र कहीं नहीं पाई जाने वाली जाति की उपस्थिति), पादप स्थानिकता तप्तस्थल की प्राथमिक कसौटी है, क्योंकि पौधे जीवन के अन्य अधिकांश स्वरूपों को संभालते हैं।

(ii) संकट की मात्रा जिसे आवास के ह्रास के परिपेक्ष में मापा जाता है।

विश्वभर में जैव विविधता के संरक्षण के लिए स्थलीय तप्त स्थलों की पहचान की गई है, जिनकी लगभग स्थिति चित्र 20.10 में दर्शाई गई है। अब यह पृथ्वी के 1.4 प्रतिशत भूक्षेत्र को घेरे हुए हैं। इनमें से उष्णकटिबंधी वन 15 तप्त स्थलों में, भूमध्य सागरीय प्रकार के क्षेत्र 5 क्षेत्रों में, और 9 तप्तस्थल मुख्यत: अथवा मात्र प्राय द्वीपों से निर्मित हैं। ध्यातव्य है कि 16 तप्तस्थल उष्ण कटिबंधी क्षेत्रों में हैं और विश्व की लगभग 20 प्रतिशत जनसंख्या इनमें निवास करती है।

विश्व के इन 25 तप्त स्थलों में से दो (पश्चिमी घाट एवं पूर्वी हिमालय) भारत में पाए जाते हैं, और यह पड़ोसी देशों तक फैले हुए हैं। इन क्षेत्रों में पुष्पी पादपों, सरीसृपों, उभयचरों, अबाबील-पुच्छ तितलियों और कुछ स्तनपोषियों की बहुलता होती है तथा वे उच्च सीमा तक स्थानिक (endemism) की स्थिति भी दर्शाते हैं।

पूर्वी हिमालयी तप्त स्थल का विस्तार उत्तरी-पूर्वी भारत से भूटान तक है। शीतोष्ण वन 1,780 से 3,500 मी. तक की ऊंचाइयों में पाए जाते हैं। कई गहरी (घनी) एवं अर्द्ध-वियोजित घाटियां भी इस क्षेत्र में पाई जाती हैं। जोकि स्थानिक पादप जातियों में अपवादात्मक रूप से घनी होती हैं। विकास के सक्रिय रूप और पुष्पी पादपों की *मेग्नोलिएसी* (*Magnoliaceae*) एवं *विंटेरेसी* (*Winteraceae*) और अब आदिम पौधे जैसे *मेग्नोलिया* (*Magnolia*) एवं बेटुला (Betula) पूर्वी हिमालय में पाए जाते हैं।



1. उष्णकटिबंधीय एंडेस, 2. मीजोअमेरिकाना, 3. सेरीबियन, 4. ब्राजील अटलांटिक वन, 5. चोको/डेरीयन/पश्चिमी एकुंआडोर, 6. ब्राजील सिरेडो, 7. मध्य चिली, 8. केलीफोर्निया पुष्पोत्पादक क्षेत्र, 9. मेडागास्कर, 10. तंजानिया/केन्या की पूर्वी आर्क एवं कटिबंधीय वन, 11. पश्चिम अफ्रीकी वन, 12. केप पुष्पोत्पादक क्षेत्र, 13. सरस कारू, 14. भूमध्य कुंड, 15. कोकासस, 16. सौंड क्षेत्र, 17. वालासिया, 18. फिलीपाइंस, 19. इंडोबर्मा, 20. दक्षिण मध्य चीन, 21. पश्चिम घाट/श्रीलंका 22. दक्षिण पश्चिम ऑस्ट्रेलिया, 23. न्यू केलीडोनिया, 24. न्यूजीलैंड, 25. पोलीनेशिया/माइक्रोनेशिया

चित्र 20.10 स्थलीय जैव विविधता तप्त स्थल

पूर्वी घाटों का क्षेत्र भारतीय प्राय: द्वीप के पश्चिमी तट के समानांतर लगभग 1,600 कि. मी., महाराष्ट्र, कर्नाटक, तमिलनाडु एवं केरल में पाया जाता है। निम्न ऊंचाई औसत समुद्री सतह से 500 मी. ऊपर पर वन अधिकांशत: सदाबहार हैं, जबकि 500-1,500 मी. ऊँचाई पर वन अधिकांशत: अद्र्धसदाबहार होते हैं। अगस्तमलाई पर्वत शृंखलाएं एवं शांतघाटी (Silent Valley), कई नवीन अमांबलम निंचय (New Amambalam Reserve), जैव विविधता के दो प्रमुख केंद्र हैं।

20.8 जैव विविधता संरक्षण के अंतर्राष्ट्रीय प्रयास (International Efforts for Conserving Biodiversity)

सन् 1992 में रियो डे जैनेरो में संपन्न हुए पृथ्वी-शिखर सम्मेलन के पश्चात् एक समझौता (Convention) सामने आया था जिसे 29 दिसंबर 1993 से लागू किया गया है। जैव विविधता के समझौते के तीन मुख्य उद्देश्य हैं:

(i) जैव विविधता का संरक्षण

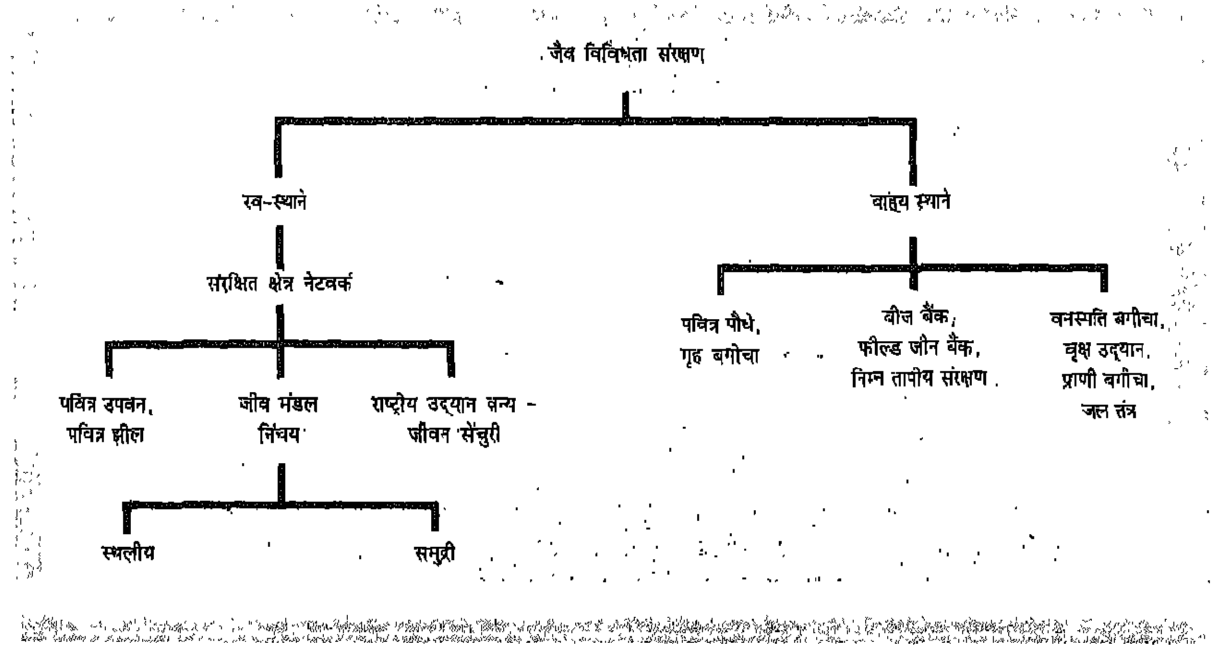
(ii) जैव विविधता का संपोषण शील उपयोग

(iii) आनुवंशिक स्रोतों के उपयोग से उत्पन्न लाभों का न्यायसंगत एवं समान वितरण।

विश्व संरक्षण संघ (The World Conservation Union) एवं प्रकृति का विश्व व्यापी कोष (World Wide Fund for Nature) विश्वभर में ऐसी परियोजनाओं को आश्रय प्रदान करते हैं, जो संरक्षण तथा जैव निचयों के परिवर्धन को अग्रसरित करते हैं।

20.9 भारत में जैव विविधता संरक्षण (Biodiversity Conservation in India)

भारतीय क्षेत्र ने विश्व जैव विविधता में महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। ध्यातव्य है कि भारत 167 कृषित जातियों एवं सस्य पादपों के 320 वन्य संबंधियों का गृह है। साथ ही यह जंतु जातियों (जेबू, मिथुन, मुर्गी, जल अबाबील तथा ऊंट); सस्य पादपों (धान, गन्ना, केला, चाय एवं ज्वार-बाजरा); फल-प्रदायी पादप तथा सब्जियां (आम, कटहल, खीरा-सहवा जातियां), खाद्य डायोस्कोरिया, अरबी और जमीकंद, मसाले (इलायची, कालीमिर्च, अदरक एवं हल्दी) एवं बांस, सरसों एवं सेमल की विविधता का केंद्र है। भारत कुछ जंतुओं (घोड़ा, बकरी, भेड़, दुधारू पशु, याक एवं गधे) और पादपों (तंबाकू, आलू एवं मक्का) के पालतूकरण का द्वितीयक केंद्र भी है।



चित्र 20.11 भारत में जैव विविधता संरक्षण की स्व-स्थाने तथा बाह्य-स्थाने विधि

भारत में जैव विविधता संरक्षण हेतु प्रयोग में लाए जा रहे प्रबंधन तंत्रों को चित्र 20.11 में दिखाया गया है। जैव विविधता का स्व-स्थानें (*in situ*) संरक्षण पर्यावरण एवं वन मंत्रालय द्वारा जैव निचयों, राष्ट्रीय उद्यानों, वन्य जीव अभयारण्यों और अन्य सुरक्षित क्षेत्रों द्वारा किया जाता है (कृपया देखें इस अध्याय का खंड 20.6)। वन प्रबंधन तंत्रों में वन विभाग एवं स्थानीय समुदाय सम्मिलित होते हैं। इसके फलस्वरूप एक ओर तो जन-जातियों के लोग एवं स्थानीय समुदाय, दारु-इतर वन उत्पादों (non-wood forest products) प्राप्त कर सकते हैं।

साथ ही साथ वे वन स्रोतों के राष्ट्रीय ब्यूरो द्वारा पादपों एवं जंतुओं के जर्मप्लाज्म के एकत्रण एवं संरक्षण हेतु बीज जीन बैंकों (seed gene banks) तथा मैदानी जीन बैंकों (field gene banks) में पात्र संरक्षण से संबद्ध कई कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। देश में स्थापित वानस्पतिक एवं जंतु उद्यानों और समस्त भारत के विभिन्न जलवायु क्षेत्रों में पादप एवं जंतु जातियों का एक बृहद् संग्रह धारण करते हैं।

इसके साथ ही साथ जन-जातियों एवं महिलाओं द्वारा अकेली ही अथवा विविध गैर-सरकारी अभिकरणों (non-government agencies) के साथ स्थानीय लोगों (land races) एवं विविध भोजन एवं औषधीय पादपों का सफल संरक्षण किया जा रहा है। भारत में कृषि जैव विविधता के संरक्षण में महिलाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। भारत में ऐसे कार्यक्रम का निर्माण विचाराधीन है जो आनुवंशिक स्रोतों और सामान्य प्राकृतिक प्रबंधन की समुदाय पंजिकाओं के एक तंत्र का परिवर्धन करेगा।

सारांश

जैव विविधता किसी विशेष क्षेत्र की समस्त जीनों, जातियों एवं पारितंत्रों का संग्रह है। इसके कई औषधीय एवं आर्थिक उपयोग हैं। वन्य जातियों की जीनें, पालतू जातियों में रोग-रोधी अथवा उन्नत उपज जैसे नए लक्षणों का समावेश करने के लिए उपयोग में लाई जाती हैं। साथ ही जैव विविधता प्राकृतिक पारितंत्रों के माध्यम से मूल्यवान अप्रत्यक्ष सेवाएं प्रदान करती है। यद्यपि पृथ्वी पर संपूर्ण जातियों की संख्या 50-100 लाख आंकी जाती है, परंतु अभी इनमें से मात्र 18 लाख जातियां ही वर्णित की जा सकी हैं। जैव विविधता के तीन स्तर होते हैं: (i) आनुवंशिक (ii) जातिगत, एवं (iii) सामुदायिक अथवा पारितंत्री।

जातियां जैव विविधता की स्पष्ट इकाईयां हैं और किसी पारितंत्र में प्रत्येक जाति एक महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती है। जैसे-जैसे वातावरण में विविधता बढ़ती जाती है, जाति की अपनी विविधता भी प्राय: अभिसरित होती है। जातीय विविधता से अभिप्राय किसी क्षेत्र में पाई जाने वाली जातियों की किस्मों से है। समुदाय के अंतर्गत पाई जाने वाली विविधता ऐल्फा विविधता कहलाती है, समुदायों के बीच की विविधता बीटा एवं एक क्षेत्र की संपूर्ण विविधता गामा विविधता कहलाती है। जैव विविधता ध्रुवों से भूमध्यरेखा की ओर तथा अधिक ऊंचाई से कम ऊंचाई की ओर वृद्धि दर्शाती है।

आवासों का ह्रास विखंडन तथा विदेशी जातियों की पुन: स्थापना जैव विविधता के लिए सबसे बड़े संकट हैं। जातियों के विलोपन के प्रमुख कारणों में अब आक्रामक जातियों का क्रम आवास-विनाश के पश्चात् आता हैं। द्वीप समूह पारितंत्रों में जो विश्व की अधिकतर संकट ग्रस्त जैव विविधता के आश्रय स्थल हैं, विशेषत: विदेशागत जातियों का भरपूर असर है। हाल के वर्षों में मानव स्वयं भी अनेक जातियों के विलोपन का कारण रहा है और जातियों के ह्रास की दर बढ़ रही है। एक अनुमान के अनुसार अकेले उष्णकटिबंधी वनों से प्रति वर्ष 14,000-40,000 जातियां लुप्त हो रही हैं।

विलोपन के संकट से ग्रस्त जातियों की श्रेणियों में सुभेद्य संकटापन्न एवं गभीर रूप से संकटापन्न सम्मिलित हैं। प्रकृति एवं प्राकृतिक स्रोतों के संरक्षण के अंतर्राष्ट्रीय संगठन की वर्ष 2000 की लाल सूची (Red List) विश्व में संकटग्रस्त पादप एवं जंतु जातियों के वैश्विक संरक्षण की स्थिति की सर्वाधिक विस्तृत सूची है। पारितंत्र, जातियों एवं आनुवंशिक संसाधनों का संरक्षण है। संरक्षण के उपायों में स्व-स्थाने (in situ on site) एवं बाह्य स्थाने (ex-situ, off side) विधियां सम्मिलित हैं। सुरक्षित क्षेत्र जाल में राष्ट्रीय

उद्यान, वन्यजीव आश्रम स्थल एवं जैवमंडल निचय आदि सम्मिलित हैं। यह ऐसे पारंपरिक सुरक्षित क्षेत्र हैं जो असंख्या विरल एवं संकटापन्न वर्गकों के लिए शरणस्थली के रूप में कार्य करते हैं। स्थलीय जैव विविधता के 25 तप्त स्थलों की पहचान की गई है जिनमें से दो भारत में हैं। जैव विविधता पर हुआ समझौता (convention) एक ऐसा अंतर्राष्ट्रीय उपकरण है जो वैश्विक स्तर पर जैव विविधता के संरक्षण को अग्रसरित कर रहा है। जैव विविधता के संरक्षण से संबंधित प्रमुख अंतर्राष्ट्रीय संगठनों में (आई यू सी एन) एवं विश्व वन्य कोश (WWF, World Wild-Life Fund) हैं।

अभ्यास

1. जैव विविधता क्या है? हाल ही में यह इतनी महत्त्वपूर्ण क्यों हो गई हैं?
2. व्याख्या कीजिए कि जाति विविधता से आप क्या अभिप्राय समझते हैं।
3. किस प्रकार के संकटों से जैव विविधता का ह्रास होता है?
4. सामान्यतः सभी स्तरों पर जैव विविधता का संरक्षण किस प्रकार होता है?
5. विलोपन विधियों का व्यापक वर्गीकरण प्रस्तुत कीजिए।
6. निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणियां लिखिए:

   (क) बाह्य-स्थाने (ex-situ) संरक्षण
   (ख) जैव विविधता के तप्त स्थल
   (ग) जैव निंचय
   (घ) आई यू सी एन की लाल आंकड़े पुस्तिका
   (च) सुरक्षित क्षेत्र
7. स्तंभ I में दिए हुए शब्दों का स्तंभ II के शब्दों से सुमेलन कीजिए।

स्तंभ I	स्तंभ II
(क) 13,000 जीनें	(i) लैंटाना कैमारा (*Lantana camara*)
(ख) प्रतिकैंसर औषधि	(ii) मैग्नोलिया (*Magnolia*)
(ग) विदेशगत जातियां	(iii) ड्रोसोफिला मेलानोगेस्टर (*Drosaphila melanogaster*)
(घ) आदि वंश	(iv) मानव
	(v) यू का वृक्ष

8. रियो डे जेनेरो (Rio de Janeiro) में वर्ष 1992 में संपन्न हुई पृथ्वी शिखर सम्मेलन के परिणाम स्वरूप:

   (क) लाल आंकड़े सूची (Red Data List) का संकलन
   (ख) जैव निंचयों की स्थापना
   (ग) जैव विविधता सम्मेलन
   (घ) प्रकृति एवं प्राकृतिक उत्पाद संरक्षण का अंतर्राष्ट्रीय संगठन (आई यू सी एन)
9. निम्न में रिक्त स्थानों की आपूर्ति कीजिए:

   (क) जैव विविधता से अभिप्राय किसी क्षेत्र की संपूर्ण ———— ———— एवं ———— से होता है।
   (ख) समुदाय की आंतरिक विविधता ———— कहलाती है।

(ग) विदेशागत जातियों का बृहत् प्रभाव विशेषत: ———————— पारितंत्रों में है।

(घ) समुदायों के बीच की विविधता ———————— कहलाती है।

10. भारत में विद्यमान पादपों में विशेष क्षेत्री (endemic) पुष्पी पादपों का लगभग प्रतिशत है:

(क) 23 प्रतिशत (ख) 33 प्रतिशत

(ग) 53 प्रतिशत (घ) 63 प्रतिशत

11. निम्न में रिक्त स्थानों की आपूर्ति कीजिए:

(क) जैव विविधता ———————— से विषुवत् रेखा तक बढ़ती जाती है।

(ख) भारत में जंतु एवं ———————— पादप जातियों को लाक्षणिक रूप से गंभीर संकटापन्न लाल सूची में रखा गया है।

(ग) सितंबर 2002 तक भारत में ———————— सुरक्षित क्षेत्र विद्यमान थे।

(घ) किसी जैव निंचय में क्रोड-क्षेत्र ———————— क्षेत्र से घिरा रहता है, और क्रमश: इसके चारों और ———————— क्षेत्र विद्यमान होता है।

12. जातियों की तीन प्रमुख संकट श्रेणियां कौन-कौन सी हैं? उदाहरण सहित वर्णन कीजिए।

13. भारत में जैव विविधता संरक्षण संबंधी प्रयासों पर एक व्याख्यात्मक टिप्पणी लिखिए।

14. प्रमुख वातावरणीय प्रवणताओं के समानांतर जैव विविधता का वितरण कैसे होता है?

अध्याय 21

प्रदूषण एवं भूमंडलीय पर्यावरण परिवर्तन

पहले के अध्यायों में आपने जनसंख्या, जैव समुदाय तथा पारिस्थितिकी तंत्र की नाजुक संतुलित क्रियाओं के बारे में पढ़ा है। आपने अध्याय 19 में मनुष्यों के द्वारा संसाधनों के बढ़ते उपयोग के बारे में भी पढ़ा है। जीवाश्मी ईंधन भंडार के घटने एवं बृहत् पैमाने पर भूमि उपयोग प्रणाली में बदलाव का पर्यावरण पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है। **प्रदूषण**, वायु, हवा, जल के भौतिक, रासायनिक अथवा जैव अभिलक्षणों में अनअपेक्षित परिवर्तन का नतीजा है। यह **प्रदूषकों** (पदार्थ जिससे प्रदूषण फैलता है) के अत्यधिक जमाव के कारण होते हैं। ये परिवर्तन हमारी संसाधनों की कच्ची सामग्री तथा पर्यावरण को बर्बाद कर सकते हैं या उनका ह्रास कर सकते हैं। प्रदूषण का, जैव प्रजातियों सहित मानव पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। यह हमारी औद्योगिक विधियों, रहन-सहन एवं सांस्कृतिक पूंजी को नुकसान पहुंचाता है, मनुष्य की क्रियाओं द्वारा दूसरा महत्त्वपूर्ण परिवर्तन वायुमंडल पर पड़ता है। यह कार्बन डाइऑक्साइड, एवं अन्य ग्रीनहाउस गैसों की सांद्रता में बढ़ोत्तरी तथा समतामंडल के ओजोन परत में ह्रास के कारण होता है। ये पर्यावरण परिवर्तन भूमंडलीय स्तर पर होता है तथा वायु, जल एवं भूमि संसाधनों को प्रभावित करता है। यह जैविक विविधताओं एवं मनुष्य के स्वास्थ्य को भी प्रभावित करता है। इस अध्याय में हम (i) प्रदूषण के कारण, प्रभाव तथा नियंत्रण, (ii) ग्रीनहाउस गैसों की बढ़ती हुई सांद्रता के कारण भूमंडलीय पर्यावरण बदलाव की जटिलताएं, तथा (iii) समतापमंडल में ओजोन ह्रास तथा इसके संभावित प्रभाव के बारें में पढ़ेंगे।

21.1 प्रदूषण के प्रकार (Kinds of Pollution)

प्रदूषण का कई प्रकार से वर्गीकरण किया जा सकता है। पर्यावरण भाग के आधार पर, जहां यह ज्यादा पाया जाता है (वायुमंडल, जलमंडल, स्थलमंडल), इसे इस तरह वर्गीकृत किया गया है: **वायुप्रदूषण**, **जलप्रदूषण** तथा **भूमिप्रदूषण**। उत्पत्ति के अनुसार प्रदूषण **प्राकृतिक** हो सकता है (जैसे ज्वालामुखी का फूटना, जिससे कई टन जहरीली गैसें तथा कणकीय पदार्थ पर्यावरण में आ जाते हैं) या **मानवोद्‌भवी** (मनुष्य द्वारा, जैसे औद्योगिक प्रदूषण, कृषि प्रदूषण, इत्यादि)। प्रदूषकों के भौतिक गुणों के अनुसार वर्गीकरण के अंतर्गत, जैसे कणकीय पदार्थ, तापमान, शोरगुल, रेडियो सक्रियता, इत्यादि आते हैं। इनका वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है: **गैसीय प्रदूषण**, **धूल प्रदूषण**, **ताप प्रदूषण**, **ध्वनि प्रदूषण**, **रेडियो सक्रिय प्रदूषण** इत्यादि।

पारिस्थितिक तंत्र के अनुसार प्रदूषण को वर्गीकृत किया जा सकता है: **जैवनिम्नीकरणीय रहित** तथा **जैवनिम्नीकरणीय प्रदूषक**। जैव अनिम्नीकरणीय पदार्थ जैसे क्लोरीनित हाइड्रोकार्बन कीटनाशक (डाइक्लोरो-डाइफिनायल ट्राईक्लोरो इथेन या DDT, बेंजीन हेक्साक्लोराइड या BHC, इत्यादि), बेकार प्लास्टिक की बोतलें, पोलीथीन बैग, उपयोग किए हुए पेय पदार्थ के डिब्बे इत्यादि का या तो अपघटन नहीं होता है या प्रकृति के अपघटकों के द्वारा अपघटन बहुत ही धीरे-धीरे होता है। इसलिए जैव अनिम्नीकरणीय प्रदूषक को नियंत्रण करना बहुत कठिन है, ज्यादातर यह देखा गया है कि इन पदार्थों के पारिस्थितिक तंत्र में मानवोद्‌भवी कारणों से जमा हो जाने के बाद उसे किसी उपचार द्वारा नियंत्रित नहीं किया जा सकता।

जैवनिम्नीकरणीय प्रदूषक, जैसे कि घर का कूड़ा, पशुओं के मल-मूत्र, सीवेज इत्यादि तथा दूसरी ओर अपघटकों द्वारा इनका पूरी तरह अपघटन हो जाता है। इसलिए जैवनिम्नीकरणीय प्रदूषकों को आसानी से प्राकृतिक तरीके

से नियंत्रित किया जा सकता है या इंजीनियरी तरीके से, जैसे कूड़ा उपचार संयंत्र के द्वारा। अगर यह सही तरीके से नियंत्रित कर लिया गया तो यह एक उपयोगी संसाधन साबित हो सकता है।

21.2 वायु प्रदूषण: स्रोत, प्रकार एवं प्रभाव (Air Pollution : Sources, Types and Effects)

वायु गुणवत्ता का अपघटन एवं प्राकृतिक वायुमंडलीय परिस्थिति से मिलकर वायु प्रदूषण होता है। वायु प्रदूषक गैस या कणकीय पदार्थ हो सकते हैं (जैसे, हवा में तैरता हुआ एरोसोल जोकि ठोस तथा तरल से बना होता है)। वायुमंडलीय प्रदूषकों की सांद्रता वायुमंडल में उत्सर्जित कुल द्रव्यमान पर निर्भर करती है, तथा वायुमंडलीय परिस्थिति जो उनके भविष्य तथा यातायात। को प्रभावित करती है। ज्यादातर हवा जिसमें हम सांस लेते हैं, वे O_2 तथा N_2 है। लगभग 1 प्रतिशत अन्य अवयवों जैसे CO_2 तथा जल वाष्प से बना है। 1 प्रतिशत एक छोटा हिस्सा कणकीय पदार्थ एवं गैसों सहित वायु प्रदूषक हो सकता है।

वायु प्रदूषण के प्राकृतिक स्रोतों में पराग कण, धूल तथा धुआं (वन अग्नि तथा ज्वालामुखी राख से) शामिल हैं, जोकि वायुमंडल में उत्सर्जित होते हैं। मानवोद्भवी वायु प्रदूषक वायुमंडल में अचल तथा सक्रिय स्रोतों से प्रवेश करता है। **अचल स्रोतों** में बड़ी फैक्ट्रियां, विद्युत शक्ति संयंत्र, खनिज प्रगालक तथा अलग प्रकार के लघु उद्योग, जबकि **सक्रिय स्रोतों** में शामिल हैं – यातायात वाहनों का सड़क पर घूमना, रेल या हवा।

वायु प्रदूषकों को दो वर्गों में बांटा गया है, जैसे **प्राथमिक** तथा **द्वितीय** वायु प्रदूषक। प्राथमिक प्रदूषक वायुमंडल में अनेक स्रोतों के द्वारा सीधे प्रवेश करते हैं। द्वितीय प्रदूषक प्राथमिक वायु प्रदूषकों तथा अन्य वायुमंडलीय अवयवों, जैसे जलवाष्प के आपस में रासायनिक प्रतिक्रिया होने के उपरांत उत्पन्न होते हैं। साधारणत: ये प्रतिक्रियाएं सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति में होती हैं।

प्राथमिक वायु प्रदूषक तथा उनके प्रभाव (Primary Air Pollutants and their Effects)

प्राथमिक वायु प्रदूषकों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कणकीय पदार्थ, कार्बन मोनोऑक्साइड (CO), हाइड्रोकार्बन (HCs), सल्फर डाइऑक्साइड (SO_2), तथा नाइट्रोजन ऑक्साइड (NO_x) शामिल हैं।

कणकीय पदार्थ ठोस कणों या तरल बूंदों (एरोसोल) के बने होते हैं इनके छोटे होने के कारण ये वायु में हमेशा तैरते रहते हैं, उदाहरण के लिए कालिख, धुआं, धूल, ऐसबेस्टस तंतु, कीटनाशक, कुछ धातु (जैसे Hg, Pb, Cu, तथा Fe) तथा जैविक कारकों, जैसे सूक्ष्म धूल बरूथी तथा पराग। वायुमंडल के कण जिनका $\geq 10\ \mu m$ व्यास है, वे एक दिन से कम समय में सतह पर बैठ जाते हैं, जबकि कण जिनका व्यास $1\ \mu m$ या उससे कम हैं, वे एक सप्ताह तक हवा में तैरते रहते हैं। तैरने वाले कणकीय पदार्थ निम्न वायुमंडल में (क्षोभमंडल) मनुष्य के श्वसन तंत्र को उत्तेजित करते हैं, जिससे कई प्रकार की बीमारियां जैसे दमा, दीर्घकालिक श्वसनी शोथ इत्यादि हो जाती हैं। जब ऊपरी वायुमंडल में (समतापमंडल) जमा हुआ कणकीय पदार्थ विकिरण तथा ताप बजट में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन लाता है जिससे धरती की सतह का तापमान कम हो जाता है।

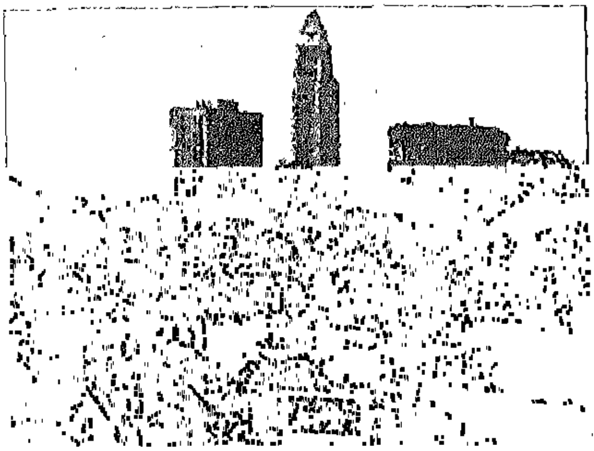
कार्बन मोनोक्साइड (CO) जीवाश्मी ईंधन के पूर्ण रूप से नहीं जलने पर बनता है। CO उत्सर्जन का 50 प्रतिशत ऑटोमोबाइल से निकलता है। यह सिगरेट के धुएं में भी उपस्थित रहता है। CO वायुमंडल में कम समय के लिए रहता है तथा इसका ऑक्सीकरण CO_2 में हो जाता है। कार्बन मोनोक्साइड सभी जंतुओं के लिए हानिकारक है। श्वसन के साथ अंदर जाने पर यह रक्त की ऑक्सीजन ढोने की क्षमता को घटाता है।

हाइड्रोकार्बन (HCs) या **वाष्पशील जैविक कार्बन** (VOCs) संयुक्त हाइड्रोजन तथा कार्बन के बने हुए हैं। HCs प्राकृतिक रूप से कार्बनिक पदार्थों के अपघटन के समय एवं खास प्रकार के पौधे से उत्पन्न होते हैं (जैसे चीड़ के वृक्ष)। मिथेन (CH_4), वायुमंडल में प्रचुर मात्रा में भूमि से निकला हाइड्रोकार्बन है। यह बाढ़ वाले धान के खेतों तथा दलदल से उत्पन्न होता है। बेंजीन तथा इसके व्युत्पन्न, जैसे फारमल्डीहाइड इत्यादि, कारसिनोजनिक हैं (वह पदार्थ, जिससे कैंसर होता है)। फारमल्डीहाइड घरेलू स्रोतों से उत्पन्न होता है, जैसे नया बना हुआ कारपेट, आंतरिक प्रदूषण फैलाता है। कुछ आंशिक रूप से प्रतिक्रियात्मक HC द्वितीय प्रदूषक में भी योगदान देते हैं। HC जीवाश्मी ईंधन के जलने (कोयला तथा पेट्रोलियम) से भी उत्पन्न होता है।

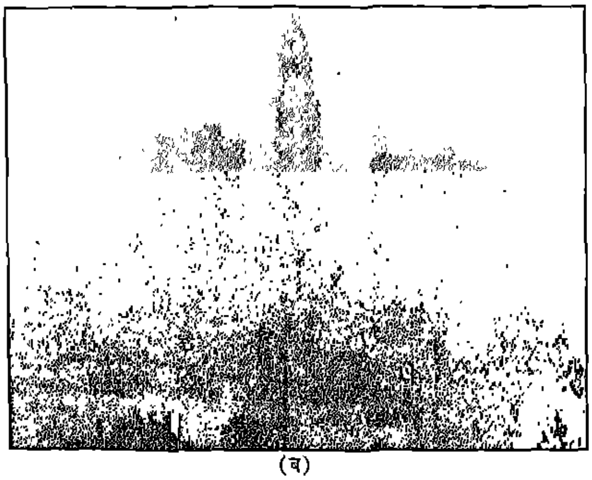
सल्फर डाइऑक्साइड (SO_2) सल्फर युक्त कोयला जलाने पर प्रमुख उत्सर्जक का काम करता है। अयस्क प्रगालक तथा तेल शोधकों से भी SO_2 की महत्त्वपूर्ण मात्रा

का उत्सर्जन होता है। वायु में SO_2 की उच्च सांद्रता गंभीर श्वसन समस्या को जन्म देती है। पौधों के लिए भी SO_2 की उच्च सांद्रता खतरनाक है।

नाइट्रोजन ऑक्साइड्स (NO_X) मुख्यतः जीवाश्मी ईंधन के उच्च ताप पर ऑटोमोबाइल इंजन में जलने पर, N_2 तथा O_2 से बनता है। NO तथा NO_2 के अनिश्चित मिश्रण की नाम NO_X है। नाइट्रोजन ऑक्साइड लाल-भूरे रंग की धुंध (**भूरी हवा**) संकीर्ण शहर के यातायात की वायु में रहती है जो हृदय तथा फेफड़े की समस्याओं को बढ़ाती है। यह कारसिनोजनिक भी हो सकती है। नाइट्रोजन ऑक्साइड अम्ल वर्षा को बढ़ाता है, क्योंकि वे जल की बूंद के साथ मिलकर नाइट्रिक अम्ल (NO_3) तथा अन्य अम्ल बनाता है।



(अ)



(ब)

चित्र 21.1 प्रकाशरासायनिक धूम कुहरा शहर में गंभीर धुंध उत्पन्न कर सकते हैं (अ) साफ स्थिति, (ब) धूम कुहरा वाली स्थिति

द्वितीय वायु प्रदूषक तथा उनके प्रभाव

(Secondary Air Pollutants and their Effects)

प्रकाशरासायनिक धूम कुहरा : द्वितीय प्रदूषक का सबसे अच्छा उदाहरण फोटोरासायनिक धूम कुहरा है। जहां अधिक यातायात रहता है वहां गर्म परिस्थितियों तथा तेज सूर्य विकिरण से प्रकाशरासायनिक धूम कुहरा का निर्माण होता है (चित्र 21.1अ तथा ब)। प्रकाशरासायनिक धूम कुहरा खास तौर से ओजोन (O_3), पेरोक्सिएसिटाइल नाइट्रेट (PAN) तथा NO_X से बनता है। यह हमेशा भूरी हवा कहलाता है जहां सूर्य विकिरण तेज होता है। कम सूर्य विकिरण वाले क्षेत्रों में या खास मौसम में धूम कुहरा अपूर्ण रूप से बनता है। ऐसी वायु को **भूरी वायु** कहते हैं। ऑटोमोबाइल निर्वातक में HC तथा NO रहता है एवं ये शहरी पर्यावरण में O_3 तथा PAN के निर्माण में प्रमुख भूमिका निभाते हैं। धूम कुहरा के निर्माण को निम्नसरलीकृत प्रकाशरासायनिक प्रतिक्रियाओं द्वारा दर्शाया जाता है :

इंजन के भीतर की प्रतिक्रियाएं

$N_2 + O_2 \rightarrow 2NO$

वायुमंडल में होने वाली प्रतिक्रियाएं

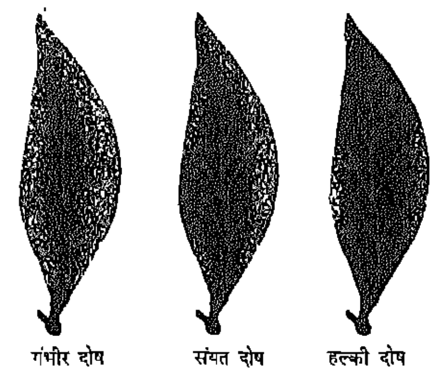
$2NO + O_2 \rightarrow 2NO_2$

$NO_2 \xrightarrow{\text{UV विकिरण}} NO + O$

$O + O_2 \rightarrow O_3$

$NO + O_3 \rightarrow NO_2 + O_2$

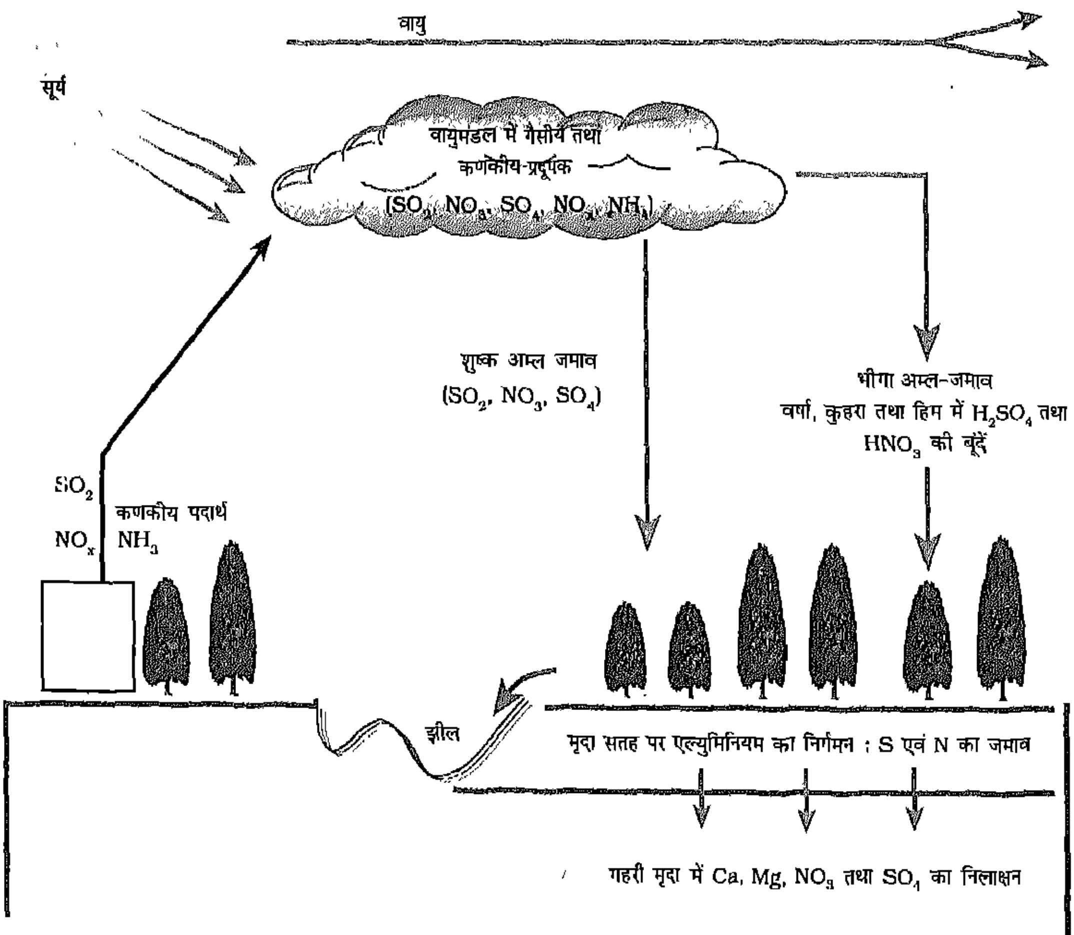
$HC + NO + O_2 \rightarrow NO_2 + PAN$



चित्र 21.2 PAN-क्षतिग्रस्त मिल्कवीड पत्तियां

धूम कुहरा ओजोन पौधे एवं जंतु जीवन को नुकसान पहुंचा सकता है, पौधों में, मुख्यत: पत्तों को नुकसान पहुंचता है। ओजोन मनुष्यों में फेफड़े की बीमारी को बढ़ाता है। ओजोन एक प्रभावकारी ऑक्सीकारक के रूप में भी काम करता है। यह पुरानी इमारतों की सतह को भी संक्षारित कर देता है। संगमरमर की मूर्तियों का नुकसान करता है एवं सांस्कृतिक धरोहर का नुकसान करता है। कई पौधों की प्रजातियां धूम कुहरा में PAN से बहुत प्रभावित होती हैं। PAN क्लोरोप्लास्ट का नुकसान करता है (चित्र 21.2) जिससे प्रकाश-संश्लेषण की क्षमता एवं पौधे का विकास कम हो जाता है। यह इलेक्ट्रॉन यातायात प्रणाली को बाधित करने के साथ-साथ एंजाइम प्रणाली को भी प्रभावित करता है जोकि कोशिकाओं के उपापचय में अह भूमिका निभाते हैं। मनुष्यों की आंखों में PAN बहुत ज्या उत्तेजना पैदा करता है।

अम्ल वर्षा: वृहत् रूप में अम्ल वर्षा उन अनेक तरीव को कहा जाता है, जिसमें वायुमंडल से अम्ल धरती प जमा होता है। अम्ल का जमाव आर्द्र या शुष्क हो सक है (चित्र 21.3)। **आर्द्र जमाव** उन अम्लीय जल जमा को कहते हैं जो वर्षा, कुहरा या बर्फ के द्वारा जमा हे हैं। **शुष्क जमाव** वायु द्वारा बहाकर लाए गए कणों त अम्लीय गैसों को कहते हैं, जो धरती की सतहों पर बै



चित्र 21.3 शुष्क या गीला अम्ल जमाव या अम्ल वर्षा

जाती है। अम्लीयता का लगभग आधा हिस्सा वायुमंडल से पृथ्वी पर स्थानांतरित होकर शुष्क रूप में जमा होता है। पेड़ तथा अन्य सतहों पर शुष्क रूप में जमा गैस एवं धूल कण वर्षा के द्वारा धुल कर बह जाते हैं।

नाइट्रोजन ऑक्साइड (NO_X), VOC_S तथा SO_2 का उत्पादन कोयला (उद्योगों में) तथा पेट्रोलियम (ऑटोमोबाइल में) के जलने से होता है। आसमान में प्रकाश होने से NO_X का प्राकृतिक रूप से उत्पादन होता है। ये गैसें हवा में अति प्रतिक्रियात्मक होती हैं। ये शीघ्र ही अम्ल में ऑक्सीकृत हो जाती हैं (सल्फ्यूरिक अम्ल या नाइट्रोजन)। ये आसानी से जल में घुलनशील होते हैं तथा घुलकर धरती पर **अम्ल वर्षा** के रूप में आ जाते हैं। साधारणत: वर्षा का जल थोड़ा अम्लीय होता है (pH 5.6-6.5), क्योंकि जल तथा CO_2 वायु में मिलकर कमजोर अम्ल का निर्माण करते हैं। अम्ल वर्षा का pH 5.6 से भी कम हो सकता है।

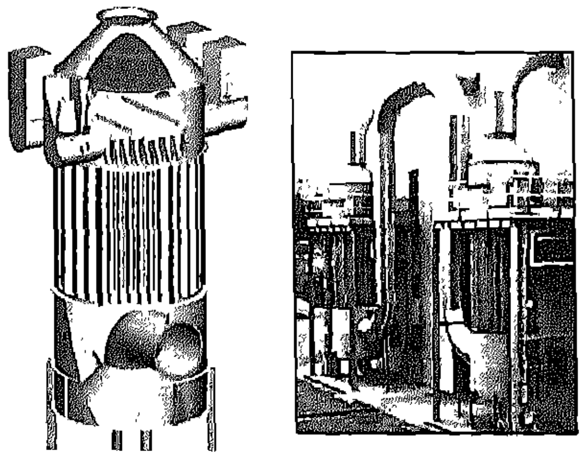
अम्ल वर्षा इमारतों तथा सज्जा वस्त्र को भी नुकसान पहुंचाती है। हमारे धरोहर स्मारकों (जैसे आगरा का ताजमहल) को भी अम्ल जमाव के संक्षारण क्रिया से खतरा है। अम्ल वर्षा का ऊष्णकटिबंधीय तथा जलीय वनस्पतियों पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। ज्यादातर मोलस्का तथा मछलियां 5.0 pH से कम वाले जल को सहन नहीं कर सकती। कम pH मृदा की जीवाणु समुदाय को नष्ट कर देती है।

21.3 वायु प्रदूषण का नियंत्रण (Control of Air Pollution)

वायु प्रदूषण को नियंत्रित करने के उपाय इस प्रकार हैं (i) सही ईंधन का चुनाव (जैसे कम सल्फर की मात्रा वाले तथा इसकी सक्षम उपयोगिता, जिससे उत्सर्जन के समय प्रदूषकों का स्तर कम हो। (ii) औद्योगिक तरीकों में परिवर्तन या यंत्र, जिससे उत्सर्जन कम हो। (iii) उत्पादन स्थल का सही चुनाव एवं उद्योगों का क्षेत्रीकरण, जिससे प्रदूषण स्रोतों का वितरण हो जाए। प्रदूषकों को कम करने या पूरी तरह समाप्त करने का सबसे प्रचलित तरीका है। प्रदूषकों का ताप या उत्प्रेरक दहन। इससे प्रदूषक कम जहरीले हो जाते हैं। यंत्र के द्वारा प्रदूषकों को जमा कर दिया जाए, जिससे प्रदूषकों को वातावरण में जाने से रोका जा सके।

कणकीय पदार्थ का नियंत्रण (Control of Particulate Matter)

सिद्धांतत: दो तरीकों से कणकीय वायु प्रदूषकों को हटाया जा सकता है, उदाहरण, **प्रग्राही** (इसका उपयोग कणकीय पदार्थों को प्रदूषित वायु से अलग किया जाना) तथा **मार्जक** (इसका उपयोग वायु तथा गैस को साफ करने के लिए किया जाता है, इसे शुष्क तथा आर्द्र पैकिंग पदार्थ से होकर पास कराया जाता है)। कणकीय पदार्थ के प्रग्राही अनेक प्रकार के हो सकते हैं। **चक्रवाती पृथक्करण** तथा **प्रक्षेप पथ पृथक्करण** का ज्यादातर उपयोग कणकीय पदार्थों को औद्योगिक उत्सर्जन से कम से कम नमी के साथ अलग करना है। ये पृथक्करण धूल पृथक्करण के नियम पर अपकेंद्रीय बल के द्वारा अलग किए जाते हैं। यह स्थूलतर धूल कणों के लिए ज्यादा उपयोगी हैं। **छन्ना** का उपयोग अत्यधिक सूक्ष्म कणों को जमा करने में होता है। अनेक प्रकार के छन्ना पदार्थ उपलब्ध हैं जो कणकीय पदार्थ की विभिन्नता के अनुसार उसके गुण एवं आकार के लिए सही हों। यद्यपि, **इलेक्ट्रोस्टेटिक प्रसीपीटेटर** (ESP) सर्वाधिक असरदार यंत्र है जो कणकीय प्रदूषकों को अलग करता है (चित्र 21.4)। ESP धूल कणों के विद्युत आवेश नियम के आधार पर काम करता है तथा इसे विभिन्न आवेशित प्लेटफार्म से एकत्र करता है। शुष्क तथा आर्द्र दोनों प्रकार के मार्जक का उपयोग धूल पृथक्करण में होता है। यद्यपि मार्जक पृथक करने में कम होता



चित्र 21.4 स्थिर विद्युत ब्वक्षेपित्र एक दक्ष उपकरण है जिससे औद्योगिक उत्सर्ज से कणकीय पदार्थों का विलोयन किया जाता है।

है क्योंकि यह गैसीय प्रदूषकों को हटाने में सर्वाधिक उपयोगी है।

गैसीय प्रदूषकों का नियंत्रण (Control of Gaseous Pollutants)

दहन, अवशोषण तथा अधिशोषण तकनीकी का उपयोग गैसीय प्रदूषकों को नियंत्रित करने में होता है। **दहन प्रक्रिया** में ऑक्सीकरण योग्य गैसीय प्रदूषक उच्च ताप पर पूरी तरह जल जाते हैं। पेट्रो-रासायनिक, उर्वरक, पेंट, वार्निश उद्योग, दहन के द्वारा गैसीय प्रदूषकों का नियंत्रण करते हैं। **अवशोषण** तकनीकी में गैसीय प्रदूषकों का उपयोगी अवशोषक पदार्थों में अवशोषण हो जाता है। **अधिशोषण** तकनीकी का उपयोग जहरीली गैसों, वाष्प तथा ज्वलनशील मिश्रण को नियंत्रित करने में होता है, जिसे सक्षमता से हटाया या स्थानांतरित किया जा सकता है। इस तरह के वायु प्रदूषक बड़ी ठोस सतहों पर अवशोषित हो जाते हैं।

ऑटोमोबाइल निर्वातक नियंत्रण (Control of Automobile Exhaust)

सक्षम इंजन (उदाहरण के लिए बहु-पाइंट ईधन इन्जेक्शन वाले इंजन) अदहनशील HC को कम कर ऑटो उत्सर्जक में परिवर्तन कर सकते हैं। दहन में उत्प्रेरक परिवर्तक छने हुए No_X को, नाइट्रोजन में परिवर्तित कर NO_X की हानिकारक क्षमता को कम कर सकते हैं। उच्च गुणवत्ता वाले ऑटो मोबाइल ईधन बहुत हद तक निर्वातक से जहरीले संक्रमण को कम कर सकते है। सीसा रहित पेट्रोल निर्वातक में सीसा की मात्रा को कम कर सकता है। ऑटोमोबाइल इंजन में कंमप्रेस्ड नेचुरल गैस (CNG) से संक्रमण की कमी हो गई है।

21.4 जल प्रदूषण : स्रोत, प्रकार तथा प्रभाव (Water Pollution : Sources, Types and Effects)

जलीय प्रदूषण के स्रोत (Sources of Water Pollution)

उत्पत्ति के आधार पर, जल प्रदूषकों के स्रोत का बृहत् रूप से वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है : (i) **बिंदु स्रोत**, जहां बहि:स्राव को खास जगह पर जमा किया जाता है। उदाहरण के लिए नगरपालिका क्षेत्र का सीवेज स्थल या फैक्ट्रियों का बहि:स्राव स्थल। (ii) **अबिंदु स्रोत**, जहां प्रदूषकों का आना एक बड़े भाग में होता है उदाहरण के लिए शहर के झंझावाती जल का बहाव, कृषि क्षेत्र का बहाव, इत्यादि। बिंदु स्रोत प्रदूषण को सही तकनीकी के उपयोग से अच्छी तरह से रोका जा सकता है। अबिंदु स्रोत प्रदूषण को नियंत्रित करना कठिन है। इसको नियंत्रित करने के उपाय को बड़े पैमाने पर लागू करना पड़ेगा।

जल प्रदूषक हो सकते हैं : (i) **जैविक** (रोगाणु, जैसे वायरस, बैक्टीरिया, प्रोटोजोआ, शैवाल, हैलमिथ्स), (ii) **रासायनिक** (कार्बनिक रासायनिक, जैसे जैवनाशक, पॉलीक्लोरीनेटेड बाईफिनायल या PCB, अकार्बनिक रासायनिक, जैसे फॉस्फेट, नाइट्रेट, फ्लाइड, इत्यादि तथा भारी तत्त्व जैसे As, Pb, Cd, Hg, इत्यादि) एवं (iii) **भौतिक** (उद्योगों से निकले गर्म जल, तेल वाहक से गिरा हुआ तेल)प्रदूषक विभिन्न स्रोतों तथा क्रियाओं से पैदा होते हैं, जिसकी संक्षिप्त में निम्नलिखित व्याख्या दी गई है।

नगरीय गंदे जल : घरेलू क्रियाओं, रसोई, पैखाने एवं अन्य घरेलू जल तरल गंदे जल के रूप में बाहर आते हैं। ज्यादातर ये नदियों में सीधे गिरा दिए जाते हैं या किसी नजदीक के जल तंत्र में डाल दिए जाते हैं। भारत में गंगा नदी सहित बहुत सारी नदियां अप्रत्याशित ढंग से गंदे जल को नदियों में गिराने से प्रदूषित हो गई हैं। कश्मीर की प्रसिद्ध डल झील भी घरेलू सीवेज के डालने से पूरी तरह प्रदूषित हो चुकी है। घरेलू उत्सर्जक ज्यादातर कार्बनिक मल-मूत्र ढोती है जिसका जैव अपघटन संभव है। ज्यादातर पोषक धुलाई के अवशेष से आते हैं, (जैसे फॉस्फेट) तथा कार्बनिक अवशेष (जैसे नाइट्रेट)।

औद्योगिक गंदा जल : लघु तथा बड़ी औद्योगिक क्रियाओं द्वारा गंदेजल का उत्पादन होता है, जो विविध प्रकार के कार्बनिक तथा अकार्बनिक प्रदूषकों द्वारा संक्रमित होते हैं। भारत की लगभग सभी नदियां कम से कम 4 खास जगहों पर औद्योगिक गंदे जल के द्वारा अधिक प्रदूषित हैं। यहां तक की समुद्री पर्यावरण भी अछूता नहीं है, ज्यादातर तटीय जल को तटीय उत्सर्जन झीगा संवर्धन फॉर्म तथा मछली, प्रसंस्करण उद्योग से खतरा है। औद्योगिक उत्सर्जन के ज्यादातर अवयव कम सांद्रता होने पर भी पारितंत्र के लिए जहरीले हैं तथा बहुत से अवयवों का जैविक अपघटन संभव नहीं है।

गर्म जल दूसरा प्रमुख औद्योगिक प्रदूषक है। बहुत से उद्योगों, जैसे ऊर्जा संयंत्र तथा तेल संशोधकों में जल का उपयोग मशीन को ठंडा करने के लिए होता है। गर्म गंदे जल का उत्सर्जन, जिसका तापमान लिए गए जल से

8-10°C अधिक होता है। अत: इससे जल तंत्र में ताप प्रदूषण हो जाता है।

भूमि की सतह से बहकर गया हुआ जल : सतह से बहकर गए हुए प्रदूषक (चक्रवाती जल) भूमि की प्रकृति पर निर्भर करते हैं जिससे बहकर यह आया है। कृषि भूमि से बहकर आए जल कीटनाशक अवशेषों तथा अकार्बनिक उर्वरक अवशेषों से संक्रमित हो जाते हैं। शहरी क्षेत्र से बहकर आए जल का जैविक अपघटन हो जाता है क्योंकि ये कार्बनिक प्रदूषक को उत्पन्न करते हैं। औद्योगिक स्थलों से विभिन्न प्रकार के प्रदूषक, जैसे भारी धातु, होता है। ये सभी प्रदूषक बहकर हमारे सतही जल तथा जल स्रोत को भारी मात्रा में संक्रमित करते हैं।

तेल अधिप्लाव : तेल अधिप्लाव सागर में पेट्रोलियम के दुर्घटना से गिरने के कारण होता है। तेल टैंकर के उलटने, तटीय इलाके में तेल का खनन, तेल खोज ऑपरेशन तथा तेल शोधकों के द्वारा जलीय पारिस्थितिक तंत्र तेल आवरण से तटीय क्षेत्र की सुंदरता पर बुरा प्रभाव पड़ता है, प्लावक, मछलियों तथा समुद्रीय चिड़ियों की मृत्यु हो जाती है (चित्र 21.5)। इससे पारिस्थितिक तंत्र पर तेल अधिप्लाव का महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। तेल अधिप्लाव का प्रवाल भित्ति पर भी बुरा असर पड़ता है तथा ये



चित्र 21.5 तेल अधिप्लावन के द्वारा समुद्री जैव विविधता को नुकसान पहुँचता है; तेल से आलेपित पक्षी, उड़ने की क्षमता खो देते हैं।

स्थानीय जलीय जैव विविधताओं को बहुत हद तक नुकसान पहुंचा सकते हैं।

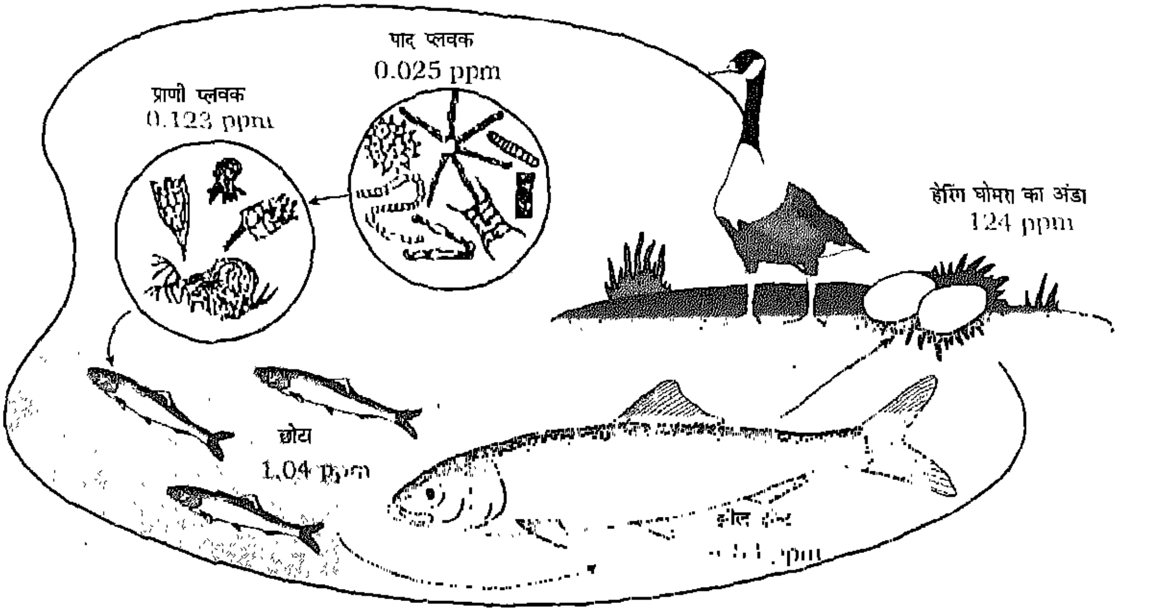
जलीय प्रदूषण के प्रभाव (Effects of Water Pollution)

जलीय प्रदूषक जलीय पारिस्थितिकी तंत्र के भौतिक, रासायनिक, तथा जैविक अभिलक्षणों को बुरी तरह प्रभावित करते हैं तथा भूमिगत जल की गुणवत्ता पर भी बुरा असर डालते हैं।

जलीय पारिस्थितिक तंत्र पर प्रभाव : अनोपयोगी कार्बनिक तथा अकार्बनिक पदार्थ घुली हुई O_2 (DO) की मात्रा को घटा देते हैं। 8.0 mg L^{-1} से नीचे DO मात्रा वाला जल संक्रमित माना जाता है। जिसकी DO की मात्रा 4.0 mg L^{-1} से कम होती है। वह ज्यादा प्रदूषित जल कहलाता है। DO की मात्रा जलीय जीवों के जीवन के लिए आवश्यक है। सतह का प्रक्षोभ प्रकाश-संश्लेषण की क्रिया, जीवों के द्वारा O_2 का उपयोग तथा कार्बनिक पदार्थों का अपघटन जल में DO की मात्रा का निर्धारण करते हैं।

कार्बनिक अवशिष्ट की मात्रा बढ़ने से अपघटन की दर बढ़ती है तथा O_2 का उपयोग भी बढ़ता है। इससे जल में DO की मात्रा घटती है। O_2 की मांग का बढ़ते अवशिष्ट की मात्रा से सीधा संबंध है। इसकी जल के **जैव रासायनिक ऑक्सीजन मांग** (BOD) के रूप में व्याख्या करते हैं। BOD ऑक्सीजन मापक है। इससे जल में कार्बनिक पदार्थों का जैव रासायनिक अपघटन होता है (जैसे जैव निम्नीकरणीय पदार्थ), जहां उच्च BOD है वहां निम्न DO होगा। **रासायनिक ऑक्सीजन मांग** (COD) जल में प्रदूषण का भार मापक है। COD प्रदूषण का एक अन्य मापक है तथा जल में कुल कार्बनिक पदार्थों का ऑक्सीकरण होने के लिए पड़ने वाली ऑक्सीजन की जरूरत के बराबर है। (जैव निम्नीकरणीय + जैवअनिम्नीकरणीय)।

प्रदूषकों के द्वारा जलाशय का संक्रमण जल में DO की मात्रा तथा संवेदी जीवों, जैसे प्लावक, मोलस्का, तथा मछलियों को पूरी तरह समाप्त कर सकता है। मात्र कुछ ही सहनशील प्रजातियां, जैसे ऐनेलीड, तथा कुछ कीटों के डिंब बहुत अधिक प्रदूषित तथा कम DO वाले जल में जीवित रह सकते हैं। इन्हें प्रदूषित जल की **सूचक** प्रजातियों के रूप में पहचाना जाता है। जैव नाशक अवशेष, PCB तथा भारी धातु, जैसे Hg, Pb, Cd, Cu, As इत्यादि,



चित्र 21.6 जैविक आवर्धन की प्रक्रिया एवं जीवों की आहार शृंखला के बढ़ते क्रम में DDT की सांद्रता में वृद्धि।

जीवों की विभिन्न प्रजातियों को सीधे ही नष्ट कर सकती है।

उच्च तापमान पर जल में O_2 का विलयन कम होता है। अत: उद्योगों से निकले अवशिष्ट गर्मजल को जब जलाशयों में डाला जाता है तो वह उनकी DO की मात्रा को भी कम कर देता है।

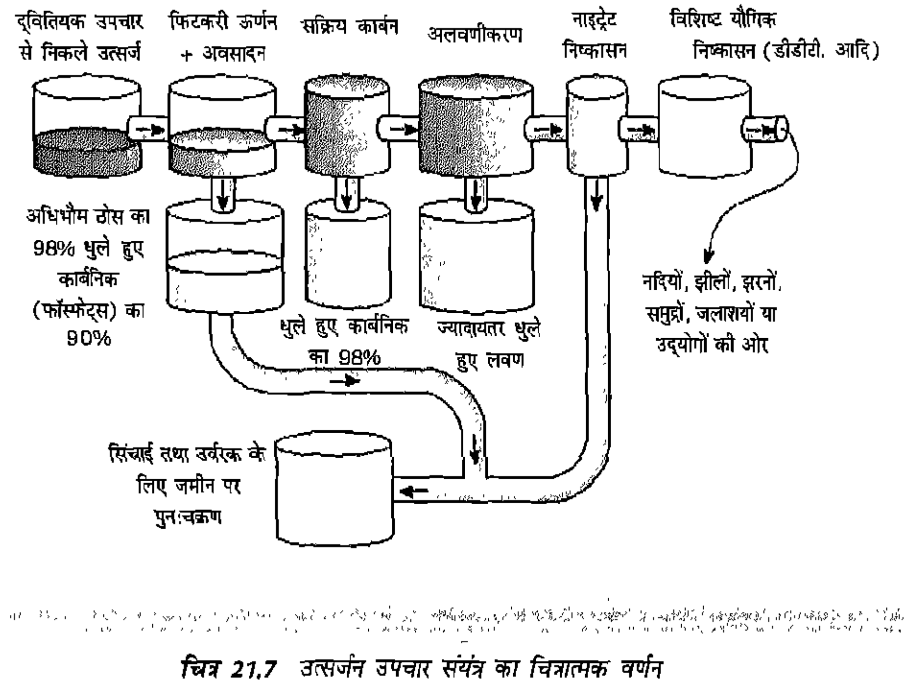
जैविक आवर्धन : परिघटना, जिसके अंतर्गत कुछ विशेष प्रदूषक आहार शृंखला के साथ सांद्रता में बढ़ते हुए ऊत्तकों में जमा हो जाते हैं, उसे **जैविक आवर्धन** कहते हैं (चित्र 21.6)। कुछ प्रदूषक जैव अनिम्नीकरणीय होते हैं, उदाहारण के लिए एक बार अवशोषित होने पर उनका जीवों के द्वारा विघटन होना या मल मूत्र के द्वारा बाहर निकलना असंभव हो जाता है। ये प्रदूषक साधारणत: जीवों के वसा वाले ऊत्तकों में जमा होते हैं। इनका सबसे अच्छा उदाहरण DDT है। यह एक कीटनाशक, जो कि जलाशयों के ऊपर छिड़का जाता है जिससे मच्छर के विकास को रोका जा सके। USA के प्रायद्वीप में DDT के कुछ वर्षों तक नियमित उपयोग से, मछलियों को खाने वाली चिड़ियों की आबादी घटने लगी। बाद में यह पाया गया कि DDT की सांद्रता जल की सांद्रता के तुलना में पादप्लवकों में 800 गुना ज्यादा हो गई है। प्राणिप्लवक में पादप्लवकों की तुलना में 5 गुना ज्यादा DDT मात्रा ही पाई गई। विभिन्न मछलियों में प्राणिप्लवकों की तुलना में DDT की सांद्रता 9-40 गुना ज्यादा बढ़ गई। चिड़ियों में मछलियों की तुलना में DDT की सांद्रता 25 गुना ज्यादा बढ़ गई। कई अन्य दीर्घप्लाई कीटनाशक तथा रेडियो न्यूक्लियाईड भी जैविक आवर्धन को दर्शाते हैं।

सुपोषण : अपशिष्ट जलों के बहाव के साथ अकार्बनिक पोषक तत्त्वों के आने के अलावा, कार्बनिक अवशिष्टों का जमाव भी जलाशयों की पोषक मात्रा को बढ़ा देता है। अत्यधिक पोषकों की उपलब्धता शैवालों के विकास को तेजी से बढ़ाती है (**शैवाल ब्लूम**), खासकर ब्लू ग्रीन शैवाल की। इस तरह का शैवाल ब्लूम पूरी जल सतह पर आच्छादित हो जाता है, जिससे जल में जहर का निष्कासन होता है तथा इससे कभी-कभी जल में ऑक्सीजन की कमी हो जाती है। अत: इस शैवाल ब्लूम से जलाशयों में अन्य शैवालों का विकास जहरीलेपन के कारण अवरुद्ध

हो जाता है तथा जलीय प्राणी (जैसे मछलियां) जहरीले होने तथा ऑक्सीजन की कमी से मर सकते हैं। जल में पोषण की वृद्धि की प्रक्रिया से प्रजातियों की विविधताओं का नष्ट होना **सुपोषण** कहलाता है।

मनुष्य के स्वास्थ्य पर प्रभाव : घरेलू मल जल वायरस, बैक्टीरिया, परजीवी प्रोटोजोआ, तथा अन्य कृमियों जैसे, जीवाणुओं को ढोता है। इसलिए संक्रमित जल से होने वाली बीमारियां जैसे पीलिया, हैजा, टाइफाइड, अमीबी अतिसार के जीवाणु होते हैं। इस तरह का संक्रमित जल पीने, नहाने, तैरने एवं खेती योग्य नही होता है। भारी धातु संक्रमित जल से गंभीर स्वास्थ्य समस्या हो सकती है। पारा द्वारा जहरीले पन का शिकार (***मिनामाटा बीमारी***) जापान की मिनामाटा खाड़ी से Hg-संक्रमित मछलियां खाने के कारण हुआ। इसकी जांच 1952 में हुई। पारा मिश्रण में अवशिष्ट जल बैक्टिरिया क्रियाओं द्वारा अत्यधिक जहरीले मिथाइल पारा में बदल जाते हैं, जिससे अंग, होंठ तथा जीभ काम करना बंद कर देते हैं, इसके अलावा बहरापन, आंखों का धुंधलापन, तथा मानसिक असंतुलन हो जाता है। कैडमियम प्रदूषण से **इटाई-इटाई** बीमारी (आउच-आउच बीमारी हड्डियों तथा जोड़ों की दर्दनाक बीमारी) एवं लीवर तथा फेफड़े का कैंसर हो जाता है।

भूमिगत जल प्रदूषण : भारत में कई जगहों पर भूमिगत जल को औद्योगिक तथा नगरीय अपशिष्टों, उत्सर्जन, सीवेज चैनलों तथा कृषि से बहकर आए जलों से होने वाले क्षरण के कारण संक्रमण का खतरा है। उदाहरण के लिए पेयजल में नाइट्रेट की अत्यधिक मात्रा मानव स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है तथा नवजात शिशुओं की मृत्यु भी हो सकती है। यह हीमोग्लोबिन के साथ प्रतिक्रिया कर असक्रिय **मिथेमोग्लोबीन** बनाता है जो कि ऑक्सीजन यातायात को विकृत बना देता है। इसे **मिथेमोग्लोबीनेमिया** या **ब्लू बेबी सिंड्रोम** कहते हैं। पेयजल में फ्लूराइड की अत्यधिक मात्रा दांतों की विषमताओं को जन्म देती है, हड्डी में कड़ापन तथा अकड़न आ जाती है तथा जोड़ों का दर्द होता है (**कंकाल फ्लूरोसिस**)। भारत में कई जगहों पर भूमिगत जल आर्सेनिक से संक्रमित होते हैं खासकर प्रकृति में पाए जाने वाले बेडरॉक के आर्सेनिक से। भूमिगत जल के अत्यधिक उपयोग से भूमि तथा चट्टानों के स्रोतों से आर्सेनिक का निक्षालन शुरू हो सकता है तथा भूमिगत जल संक्रमित हो सकता है। आर्सेनिक के लगातार संपर्क से **ब्लैक फुट** बीमारी हो जाती है। आर्सेनिक से डायरिया, पेरिफेरल न्यूरीटिस तथा हाइपरकेराटोसिस तथा फेफड़े एवं त्वचा का कैंसर हो सकता है।



चित्र 21.7 उत्सर्जन उपचार संयंत्र का चित्रात्मक वर्णन

21.5 जल गुणवत्ता को सुधारना (Improving Water Quality)

औद्योगिक तथा नगरीय अपशिष्ट जल को **उत्सर्जन उपचार संयंत्र** (ETP) में शुद्ध किया जाता है तब इसे जलाशयों में डाला जाता है। साधारणतः निम्नलिखित उपचार किए जाते हैं:

(i) ***प्राथमिक उपचार*** : इस भौतिक प्रक्रिया में जल को गलबों से अलग कर उसे टैंक में छोड़ दिया जाता है, जिससे तलछटों में गंदगी जम जाए।

(ii) ***द्वितीय उपचार*** : यह एक जैविक प्रक्रिया है तथा यह सूक्ष्म जीवों के द्वारा कराया जाता है। इस उपचार में, अवशिष्ट जल को उथले टैंक में **स्थायीकरण** के लिए डाला जाता है। जहां कार्बनिक पदार्थों का ऑक्सीकरण जीवाणुओं द्वारा होता है। इस प्रक्रिया में CO_2 का निष्कासन होता है तथा **आपंक** या **जैव ठोस** का निर्माण होता है। आपंक लगातार वातित होकर ऑक्सीकरण करता है। शैवालों का अपशिष्ट जल के ऊपरी प्रकाशित भाग में विकास होने से O_2 का उत्पादन होता है, जिससे वातन होता है।

(iii) ***तृतीय उपचार*** : इस भौतिक रासायनिक प्रक्रिया में पोषण की उपस्थिति के कारण (नाइट्रोजन, फॉस्फोरस इत्यादि) घुले हुए कार्बनिक पदार्थ, धातु या रोगाणु (चित्र 21.7) को हटाया जाता है। इस चरण में अपशिष्ट जलों का मजबूत ऑक्सीकारकों, जैसे क्लोरीन गैस, परक्लोरेट नमक, ओजोन गैस तथा UV विकिरण द्वारा रासायनिक ऑक्सीकरण हो जाता है। तीसरे उपचार के बाद अपशिष्ट जल को प्राकृतिक जलाशयों में छोड़ा जा सकता है या कृषि के लिए उपयोग किया जा सकता है।

21.6 मृदा प्रदूषण (Soil Pollution)

भूमि प्रदूषण मनुष्यों की विभिन्न क्रियाओं जैसे अपशिष्टों का जमाव, कृषि रसायनों का उपयोग, खनन ऑपरेशन तथा शहरीकरण का नतीजा है।

अपशिष्ट (Waste Dumps)

औद्योगिक अपशिष्ट जल, नगरीय अपशिष्ट तथा मेडिकल एवं अस्पतालों के अपशिष्ट को फेंकने से भूमि प्रदूषित हो जाती है। औद्योगिक ठोस अपशिष्ट तथा आपंक जहरीले कार्बनिक, अकार्बनिक रासायनिक मिश्रण एवं भारी धातु के द्वारा मृदा को प्रदूषित करते हैं। औद्योगिक उत्सर्जन के गिरने से तथा ताप ऊर्जा संयत्र से निकलने वाला फ्लाई ऐश आस-पास के पर्यावरण को दूषित कर सकता है। हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए। औद्योगिक उत्सर्जन के लिए लगाए गए ऊंची चिमनी से निकले कणकीय पदार्थ जल्दी से पृथ्वी की सतह पर आकर बैठ जाते हैं। नाभिकीय परीक्षण प्रयोगशालाओं, नाभिकीय ऊर्जा संयत्र तथा नाभिकीय विस्फोट से निकले अपशिष्ट विकिरण मृदा को संक्रमित करते हैं। रेडियो विकिरण पदार्थ भूमि में लंबे अंतराल तक रह सकते हैं, क्योंकि उनका आधा जीवन साधारणतः लंबा होता है। उदाहरण के लिए स्ट्रॉनटियम-90 का आधा जीवन 28 वर्षों का तथा केसियम (Cacsium)-137 का 30 वर्षों का होता है।

नगरीय अपशिष्ट (Municipal Wastes)

इसके अंतर्गत घरेलू तथा रसोई के अपशिष्ट, बाजार के अपशिष्ट, अस्पताल के अपशिष्ट, पशुओं एवं पोल्ट्री के अपशिष्ट, कसाईखानों के अपशिष्ट आते हैं, जिनका जैविक अपघटन नहीं होता है। वे हैं- पोलिथिन बैग, अपशिष्ट प्लास्टिक शीट, बोतलें, इत्यादि। अस्पताल के अपशिष्टों में कार्बनिक पदार्थ, रासायनिक पदार्थ, धातु सुईयां, प्लास्टिक तथा शीशें की बोतलें, कपिक इत्यादि। घरेलू सीवेज, तथा अस्पताल के कार्बनिक अपशिष्टों के गिराने से पर्यावरण संक्रमित हो जाता है तथा रोगाणु मनुष्य के स्वास्थ्य पर गंभीर असर डाल सकते हैं।

कृषि रसायन (Agrochemicals)

कीटनाशक तथा खरपतवार नाशक का उपयोग कृषि प्रणाली में कीट एवं खरपतवार पर नियंत्रण पाने के लिए अत्यधिक किया जाता है। अत्यधिक अकार्बनिक उर्वरकों तथा जैव नाशकों के अवशेष, भूमि एवं भूमिगत जल संसाधनों को संक्रमित कर देते हैं। अकार्बनिक पोषकों, जैसे फॉस्फेट, तथा नाइट्रेट घुलकर जलीय पारिस्थितिकी तंत्र में आ जाते हैं तथा सुपोषण को बढ़ाते हैं। नाइट्रेट पेयजल को भी प्रदूषित करता है। अकार्बनिक उर्वरक तथा कीटनाशक अवशेष मृदा के रासायनिक गुणों को बदल देते हैं तथा भूमि के जीवों पर विपरीत प्रभाव डालते हैं।

खनन ऑपरेशन (Mining Operations)

विवृत खनन (एक प्रक्रिया जहां धरती की सतह का खनन कर भूमिगत जमा पदार्थ को निकाला जाता है) से ऊपरी

भूमि का पूरी तरह नुकसान होता है तथा पूरा क्षेत्र जहरीले धातु एवं रसायन से संक्रमित हो जाता है।

मृदा प्रदूषण का नियंत्रण (Control of Soil Pollution)

प्रदूषण एवं भूमि अपघटन को नियंत्रित करने के अंतर्गत सुरक्षित भूमि उपयोग, योजनाबद्ध शहरीकरण, नियंत्रित विकास कार्यक्रम, सुरक्षित डिस्पोजल तथा मानव आवास स्थलों एवं उद्योगों के ठोस अपशिष्टों का प्रबंधन। ठोस अपशिष्टों का प्रबंधन के अंतर्गत निम्नलिखित बातें आती हैं : (i) अपशिष्टों को एकत्र करना तथा उसका वर्गीकरण करना, (ii) खराब धातुओं तथा प्लास्टिकों जैसे संसाधनों को इकट्ठा कर उसे पुनःचक्रण के बाद फिर से उपयोग करना, तथा (iii) पर्यावरण का कम से कम नुकसान करते हुए उसे फेंकना।

मल जल आपंक तथा औद्योगिक ठोस अपशिष्ट का उपयोग भूमिभरण के लिए किया जाता है। जहरीले रसायन तथा हानिकारक धातु जिसमें अपशिष्ट रहते हैं, सड़क बनाने में बिछानेवाली सामग्री के रूप में उपयोग कर लिया जाता है। फ्लाई राख का उपयोग भी इसी उद्देश्य के लिए किया जाता है। फ्लाई राख ईंट का उपयोग भी भवन निर्माण के काम में होता है। ठोस अपशिष्टों से छुटकारा पाने का अन्य महत्त्वपूर्ण तरीका **भस्मीकरण** (ऑक्सीजन की उपस्थिति में दहन) एवं **ताप अपघटन** (ऑक्सीजन की अनुपस्थिति में दहन) है। नगरीय ठोस अपशिष्ट को कृषि के कार्बनिक खाद में परिवर्तित किया जा सकता है।

21.7 ध्वनि प्रदूषण (Noise Pollution)

स्रोत तथा प्रभाव (Sources and Effects)

तेज विक्षोभी ध्वनि को वातावरण में इसके विपरीत प्रभाव का अनुमान लगाए बगैर उत्पन्न करने को ध्वनि प्रदूषण कहते हैं। ध्वनि तरंगों में चलती है तथा हमारे कर्ण पटल को प्रभावित करती है। ध्वनि तरंग की तीव्रता औसत दर प्रति इकाई क्षेत्र, जिस पर ऊर्जा तरंगें स्थानांतरित होकर सतह पर आती हैं, पर निर्भर करती है। जिस प्रकार दर्शाया जाता है Wm^{-2} **ध्वनि स्तर** परिवेश की तीव्रता एवं संदर्भित तीव्रता के लघुगणन का अनुपात होता है जो सामान्यत 10^{-12} Wm^{-2} होता है। ध्वनि की इकाई **डेसीबेल** है (dB), इसे यह नाम एलेक्सेंडर ग्राहम बेल के काम को सराहने की दृष्टि से दिया गया। जब परिवेश की ध्वनि तीव्रता संदर्भित तीव्रता के बराबर हो जाती है तो ध्वनि या शोर का स्तर 0 dB होता है। शोर का स्तर 0 से लेकर 120 dB से ज्यादा हो सकता है जहां शारीरिक परेशानियां शुरू हो जाती हैं। माप की लघुगणकीय प्रकृति के कारण 10 तथा 100 डेसीबेल क्रमशः 10 गुना तथा 100 गुना मापी गई तीव्रता को प्रदर्शित करते हैं।

मनुष्य द्वारा उत्पन्न शोर, औद्योगिक मशीनों, यातायात वाहनों, ध्वनि प्रवर्धक पटाखों को जलाने, औद्योगिक तथा लघु स्थलों पर अधिस्फोटन इत्यादि से होता है। जेट एयरक्राफ्ट के उतरने या उड़ान भरने के समय बहुत अधिक ध्वनि प्रदूषण हवाई अड्डे के आस-पास होता है। शोर के कई दुष्प्रभाव मानव की शरीर क्रिया पर पड़ते हैं। शोर, दिल की धड़कन, पेरीफेरल संवहन तथा श्वसन तरीकों पर गहरा प्रभाव डालता है। चिरकाल तक शोर गुल वाले पर्यावरण से गुस्सा, उत्तेजनशीलता, सिर दर्द, एवं अनिद्रा तथा मनुष्य की कार्य क्षमता पर गंभीर प्रभाव हो सकते हैं। केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड द्वारा क्षेत्र के अनुसार परिवेशीय शोर का स्तर सारणी 21.1 में दिया गया है।

ध्वनि प्रदूषण का नियंत्रण (Control of Noise Pollution)

ध्वनिरोधी इंसुलेटिंग जैकेट या छन्ना का उपयोग मशीन से होने वाली ध्वनि को कम कर सकता है। औद्योगिक कर्मचारियों एवं रनवे ट्रैफिक नियंत्रण कर्मचारियों को कर्णमफ

सारणी 21.1 : क्षेत्र के अनुसार परिवेश शोर स्तर की अनुमति

क्षेत्र	दिन (6.00-21.00 hr)	रात्रि (21.00-6.00 hr)
उद्योग	75 dB	70 dB
व्यापारिक	65 dB	55 dB
आवास स्थल	55 dB	45 dB
शांत क्षेत्र	50 dB	40 dB

का उपयोग अवश्य करना चाहिए जिससे अनचाहे शोर से बचा जा सके। शोर फैलाव से बचने के लिए ध्वनि अवशोषक का उपयोग भी मददगार साबित हो सकता है। अस्पताल तथा विद्यालय के 100 मीटर के आस-पास का क्षेत्र शांत क्षेत्र घोषित कर देने से, बीमार मरीजों को आराम एवं छात्रों को पढ़ाई में ध्यान लगाने में सुविधा होगी। वन तथा घनी झाड़ियां भी शोर अवरोधक के रूप में काम करती हैं। ध्वनि को अपने आस पास के सबसे अधिक प्रदूषक के रूप में माना जाना चाहिए एवं इसे अपने पर्यावरण के दूसरे प्रदूषक से कम नहीं समझना चाहिए। हमें अपने इर्द गिर्द हो रहे शोर से दुष्परिणाम के बारे में लोगों को आगाह करना चाहिए।

21.8 प्रदूषण नियंत्रण के लिए पर्यावरणीय कानून (Environmental Laws for Controlling Pollutions)

भारत में प्रमुख विधान मंडलों द्वारा निर्देशित पर्यावरण सुरक्षा के नियम नीचे दिए गए हैं।

पर्यावरण (सुरक्षा) एक्ट, 1986 : इस एक्ट के अंतर्गत वायु, जल तथा मृदा गुणवत्ता के बारे में एवं पर्यावरणीय प्रदूषकों, जैसे ध्वनि प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए सुरक्षा कानून है।

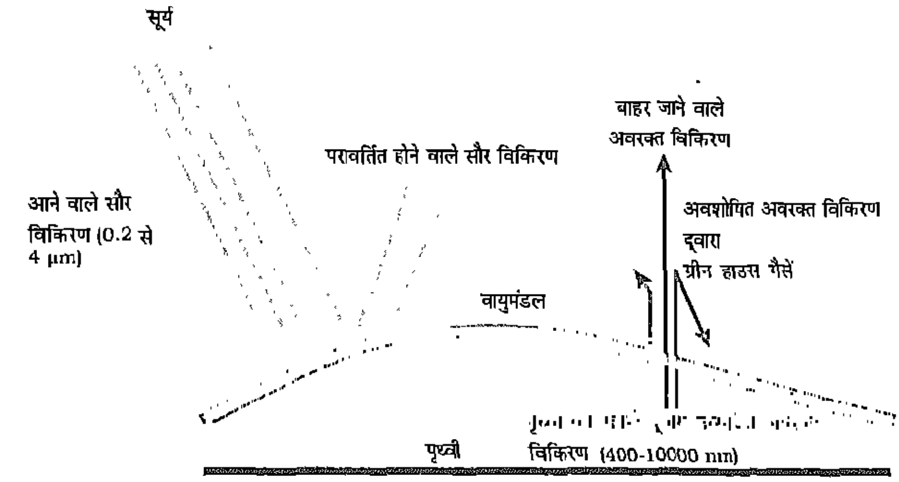
कीटनाशक एक्ट, 1968 : यह एक्ट आयात, निर्यात, बिक्री, यातायात, वितरण एवं कीटनाशक के उपयोग के नियमों को देखता है, जिससे मनुष्य तथा अन्य जीवों पर होने वाले खतरे को रोका जा सके।

जल (प्रदूषण बचाव एवं नियंत्रण) एक्ट, 1974 : यह एक्ट जल की गुणवत्ता का संरक्षण तथा जल प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए है, जिससे जल प्रदूषकों का मानव स्वास्थ्य एवं जैव समुदाय पर पड़ने वाले हानिकारक प्रभाव को नियंत्रित किया जा सके।

वायु (प्रदूषण बचाव एवं नियंत्रण) एक्ट, 1981 : यह एक्ट वायु गुणवत्ता को बनाए रखने एवं वायु प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए है जिससे वायु प्रदूषण का मानव स्वास्थ्य एवं जैव समुदाय पर पड़ने वाले प्रभाव को कम किया जा सके। 1987 में 1981 के प्रमुख वायु एक्ट में सुधार लाया गया तथा ध्वनि को वायु प्रदूषक के रूप में पहचाना गया।

21.9 भूमंडलीय पर्यावरण परिवर्तन (Global Environmental Change)

मानव की बढ़ती हुई आबादी तथा उसके क्रियाकलापों के कारण पिछली शताब्दी से पृथ्वी का पर्यावरण काफी तेजी से बदल रहा है। भूमंडलीय बदलाव के प्रमुख कारण मानव द्वारा संसाधनों का दुरूपयोग, जैव ईंधन भंडार का ह्रास, तथा बड़े पैमाने पर भू उपयोग में बदलाव हैं। मानव क्रियाओं द्वारा वातावरण में कार्बन डाईऑक्साइड की मात्रा एवं ग्रीनहाउस गैसों में बढ़ोत्तरी तथा समताप मंडल की ओजोन परत का ह्रास वे प्रमुख कारण हैं, जो भूमंडलीय पर्यावरण परिवर्तन लाने के जिम्मेदार हो सकते हैं। भूमंडलीय पैमाने पर पर्यावरण में बदलाव जैव विविधता, आहार गुणवता, जल संसाधन, भूमि संसाधन तथा मानव के स्वास्थ्य पर भी गहरा असर डालती है। पृथ्वी की सतह पर गैसों का आवरण शीशे जैसा कार्य करता है, अर्थात् सौर विकिरण को सीधे धरती पर तो जाने देता है, परंतु वापस लौट रही अवरक्त लंबी तंरगदैर्घ्य विकिरण को रोक लेता है वातावरण में प्राकृतिक रूप से उपलब्ध ग्रीनहाउस गैसें लघु तरंगदैर्घ्य को तो जाने देती हैं परंतु लंबी तरंग तरंगदैर्घ्य विकिरण को अवशोषित कर लेती है। स्थलीय ताप तरंग विकिरण, अधिकतर लंबे ताप विकिरण हैं, जो 3.0 से 100 μm श्रेणी में होती है। पूरे भूमंडल में गैसों का प्रावार यद्यपि लंबी तरंग ऊर्जा (8.0 से 11 μm) को अंतरिक्ष में जाने देता है। यह समायोजन ताप तरंगों को नियंत्रित रूप से पृथ्वी की सतह से अंतरिक्ष के बाह्य पटल में भेजती है जिससे पृथ्वी के ऊपर आवरण सा बन जाता है। इससे पृथ्वी गर्म एवं रहने योग्य रहती है। अत: एक प्राकृतिक ग्रीनहाउस पृथ्वी की सतह को गर्म रखती है तथा एक समान तापमान प्रदान करती है। सन् 1896 में स्वांते अरहेनियस ने ग्रीनहाउस प्रभाव शब्दों का मुद्रित किया। यह पृथ्वी के निचले वायुमंडल, क्षोभमंडल में ताप संचय के संदर्भ को बताता है। प्राकृतिक ग्रीनहाउस प्रभाव पृथ्वी को माध्य तापमान $15^{0}C$ पर गर्म रखता है। ग्रीन हाउस गैसों की अनुपस्थिति में पृथ्वी का माध्य ताप -20°C तक गिर सकता है। वातावरण में ग्रीनहाउस गैसों की सांद्रता में बढ़ोत्तरी से अवरक्त विकिरण को ज्यादा अवशोषित करेगा, जिससे ग्रीनहाउस प्रभाव में बढ़ोत्तरी होगी। भूमंडलीय माध्य तापमान के बढ़ने को, **भूमंडलीय तापन** कहते हैं। जलवाष्प तथा CO_2 वायुमंडल में पाई जाने वाली



चित्र 21.8 ग्रीन हाउस प्रभाव; वायुमंडल, आने वाले लघु तरंग विकिरणों के प्रति पारदर्शी है; यह आने वाले दीर्घ तरंग विकिरणों के प्रति परभासी है, जो कि ग्रीन हाउस गैसों द्वारा अवशोषित हो जाता है तथा जिससे पृथ्वी गर्म होती है

गैसों में सबसे प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं तथा क्षेत्र में अवरक्त विकिरणों को ज्यादा से ज्यादा अवशोषित करते हैं, 12 से 20 µm.। दूसरी, मुख्य ग्रीनहाउस गैसें हैं, CH_4, N_2O तथा क्लोरोफ्लूरोकार्बन (CFC)। वायुमंडल में हाल में, विभिन्न ग्रीनहाउस गैसों की सांद्रता (खासकर CO_2) में वृद्धि हुई है, इसका कारण है वनोन्मूलन तथा औद्योगिक क्रियाएं।

निचले वायुमंडल में ग्रीनहाउस गैसों के संयोजन में बहुत स्पष्ट बदलाव आया है। इसका प्रमाण बर्फ कोर नमूनों से CO_2 को मापने पर प्राप्त होता है तथा 1958 से हवाई के मोना लोआ वेधशाला में CO_2 को सीधे मापा जाता है। मोना लोआ ज्वालामुखी, हवाई का एक विलुप्तप्राय ज्वालामुखी है। उच्च ऊंचाई पर अवस्थित होने के कारण यह स्थान वायुमंडल में CO_2 की सही सांद्रता को मापने के लिए उपयुक्त जगह है। पर्यावरण परिवर्तन का अंतर्राष्ट्रीय पेनल (IPCC) समयबद्ध कार्यक्रम के अनुसार ग्रीन हाउस गैसों का आकंलन करता है एवं मौसम पर पड़ने वाले संभावित प्रभावों का अध्ययन करता रहता है। ग्रीन हाउस गैसों की औद्योगिक पूर्व समय से सांद्रता में वृद्धि को सारणी 21.2 में दर्शाया गया है।

सारणी 21.2 मानव क्रियाओं द्वारा ग्रीनहाउस गैसों की सांद्रता में बढ़ोत्तरी

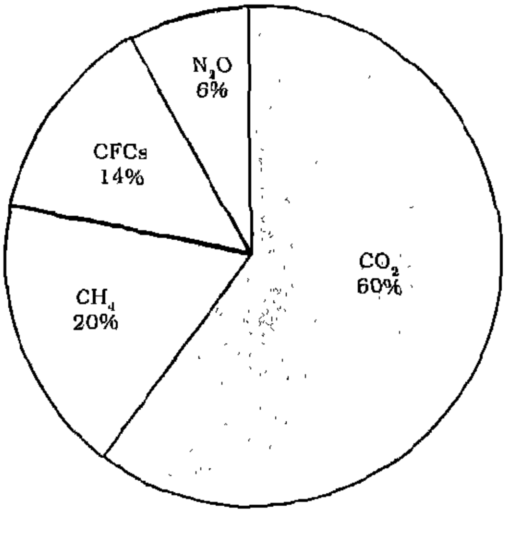
ग्रीनहाउस गैस	स्रोत	औद्यौगिकरण के पूर्व सांद्रता (1750 -AD)	सांद्रता 2000 AD में	AD -1750 से वृद्धि	वायुमंडलीय आयु समय (वर्षों में)
कार्बन डाईऑक्साइड (CO_2)	जैव ईंधन ज्वलन, वनोन्मूलन	280 ppm	368 ppm	31%	5–200 वर्ष
मिथेन (CH_4)	दलदल कृषि भूमि	0.700 ppb	1,750 ppb	151%	12 वर्ष
नाइट्रस ऑक्साइड (N_2O)	कृषि तथा दहन	0.270 ppb	316 ppb	17%	114 वर्ष
क्लोरोफ्लोरो कार्बन (CFC-11)+ हाइड्रो फ्लूरो कार्बनों (HFC–23)	फ्रिज, वातानुकूलन,	0	282 ppt		45–260 वर्ष

कार्बन डाइऑक्साइड : औद्योगिकीकरण के कारण वायुमंडल में CO_2 की सांद्रता में 280 ppm (280 CO_2 का अणु प्रति मिलियन हवा के अणु में) से वर्ष 2000 तक 368 ppm हो गई है (सारणी 21.2)। अगर मानव जैव ईंधन को लगातार जलाते रहेंगे तथा वर्तमान दर से वनों को काटते रहेंगे, तो CO_2 की मात्रा में वृद्धि भविष्य में चिंताजनक स्थिति में पहुँच जाएगी। यह परिस्थिति ज्यादातार जैव ईंधन को जलाने, वनोन्मूलन तथा भूमि के उपयोग में परिवर्तन लाने के कारण हुई है।

मिथेन : भूमंडलीय जलवायु को प्रभावित करने वाली दूसरी प्रमुख ग्रीनहाउस गैस मिथेन है। मिथेन की सांद्रता दोगुनी से ज्यादा हो गई है। इसकी सांद्रता 0.700 ppb औद्योगिकीकरण के पूर्व थी और तत्पश्चात् 1750 ppb हो गई है। मीथेन अपूर्ण अपघटन का उत्पाद है एवं अनॉक्सीय हालातों में मीथेनोजन जीवाणुओं द्वारा उत्पन्न होता है। मीठा जल आर्द्र भूमि, मिथेन (CH_4) का उत्पादन करता है क्योंकि कार्बनिक पदार्थों का ऑक्सीजन के अभाव तथा खराब पर्यावरण में अपघटन होने से, जहाँ दीमक CH_4 का उत्पादन करते हैं वहीं सेल्युलोज का पाचन करते हैं। बाढ़ग्रस्त धान के खेतों में तथा कच्छ क्षेत्रों में मिथेनोर्जन की अनॉक्सी क्रिया द्वारा मिथेन का निष्कासन होता है।

क्लोरोफ्लूरो कार्बन *(CFC)* : क्लोरोफ्लूरोकार्बन *अज्वलनशील, अविषाक्त, अत्यधिक स्थाई है तथा कृत्रिम* गैसों के अवयवों, जैसे कार्बन तथा हैलोजेन से बना है। इससे ग्रह के स्थायित्व को सबसे अधिक खतरा है। CFC के मुख्य स्रोतों मे रिसावयुक्त वातानुकूलन संयंत्र फ्रिज, तथा औद्योगिक विलायकों का वाष्पीकरण, प्लास्टिक फोम का उत्पादन, एरोसोल स्प्रे डिब्बे के नोदक, इत्यादि हैं। CFCs का वायुमंडल में लंबी अवधि तक आवास होता है जो कि 45 से 260 वर्ष तक हो सकता है (सारणी 21.2)।

नाइट्रस ऑक्साइड *(N_2O)* : वायुमंडल में नाइट्रस ऑक्साइड की मात्रा बढ़ रही है, जिससे 6 % तक मानवकृत ग्रीनहाउस प्रभाव पड़ रहा है। N_2O की वार्षिक वृद्धि दर 0.2 से 0.3 % प्रति वर्ष है। N_2O का मुख्य स्रोत, कृषि, जैव भार का जलना तथा औद्योगिक क्रियाएं हैं। N_2O का उत्पादन नायलॉन उत्पादन से, नाइट्रोजन युक्त ईंधन से, मवेशियों के उत्सर्ग तथा भूमि में नाइट्रोजन धनी उर्वरकों के टूटने से तथा नाइट्रेट संक्रमित सतही जल से होता है।



चित्र 21.9 विभिन्न ग्रीन हाउस गैसों की भूमंडलीय कोष्ठता में समानुपातिक परिस्थिति।

विभिन्न स्रोतों का, ग्रीनहाउस गैसों में आंशिक योगदान, चित्र 21.9 में दर्शाया गया है। कोष्णता में कार्बन डाइऑक्साइड का योगदान लगभग 60% है। मिथेन तथा CFC का क्रमशः 20 और 14 प्रतिशत है।

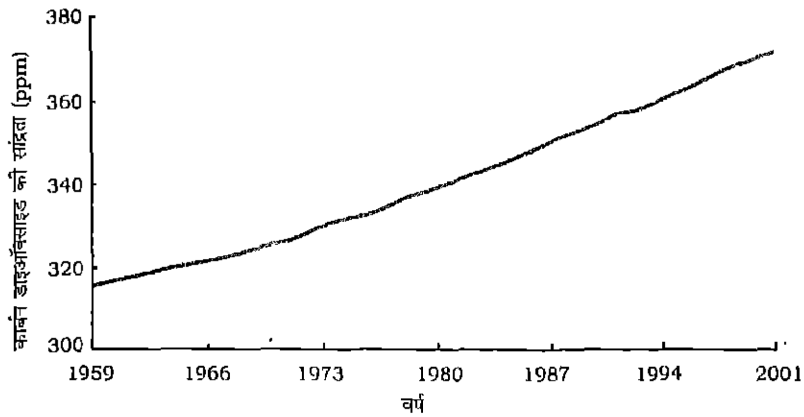
वायुमंडल में ग्रीन हाउस गैसो की बढ़ती मात्रा के संभावित प्रभाव निम्न हैं :

(i) CO_2 उर्वरण प्रभाव
(ii) भूमंडलीय तापन (कोष्णता)
(iii) समताप मंडल में ओजोन परत क्षीणता

पौधों पर CO_2 उर्वरण प्रभाव (CO_2 Fertilisation *Effect on Plants)*

संयुक्त राज्य अमेरिका की मोना लोआ वेधशाला के अध्ययन से साबित हुआ है कि वायुमंडल में CO_2 सांद्रता 1959 से बड़ी तेज गति से बढ़ रही है (चित्र 21.10)। अगर यही ढंग चलता रहा तो इक्कीसवी शताब्दी के अंत तक वायुमंडल में CO_2 सांद्रता 540 एवं 970 ppm के मध्य हो जाएगी।

इसकी वजह से अधिकतर पौधों (C_3 पौधे) में कुछ वर्षो के लिए वृद्धि की दर करीब 30 प्रतिशत तक बढ़ जाएगी। बढ़ी हुई CO_2 की सांद्रता के प्रति पौधों की



चित्र 21.10 वातावरण में 1959 से 2001 (मोना लोआ वेधशाला, USA से प्राप्त आंकड़े) तक माध्य कार्बन डाइऑक्साइड की सांद्रता में बढ़ोत्तरी

अनुक्रिया **कार्बन डाइऑक्साइड उर्वरण प्रभाव** कहलाता है। बढ़ी हुई CO_2 सांद्रता से प्रकाश-संश्लेषण की दर में वृद्धि होगी एवं रंध्रों के थोड़े बंद होने से रंध्रीय संचरण घट जाएगा। इस प्रकार वाष्पोतसर्जन की दर भी घट जाएगी तथा जल उपयोग कार्यक्षमता बढ़ जाएगी। इसकी वजह से पौधों की कई जातियां कम पानी वाले स्थानों में आसानी से उगाई जा सकती हैं। इसी तरह वायुमंडल में उच्च CO_2 सांद्रता होने से ज्यादा भोज्य पदार्थ बनेगा एवं जड़ों में भी पहुंचेगा। ज्यादा भोज्य पदार्थ होने से ज्यादा जड़ें होंगी, माइकोराइजल तंतुओं का अधिक विकास एवं जड़ ग्रंथियों में अधिक N_2 स्थरीकरण होगा। इस प्रकार पौधे कम पोषक तत्वों वाली भूमि में भी आसानी से उगाए जा सकते हैं। प्राकृतिक हालातों में CO_2 सांद्रता के लाभदायक प्रभाव भूमंडलीय तापन के नकारात्मक प्रभावों की वजह से महसूस नहीं होंगे।

भूमंडलीय तापन का संभावित प्रभाव (Possible Effects of Global Warming)

हाल कि कोष्णता प्रवृतियों में वायुमंडलीय CO_2 का बढ़ना तथा अनुमानित भूमंडलीय तापन का मौसम तथा जलवायु पर प्रभाव, समुद्री सतह में वृद्धि तथा जीवों के घटना विज्ञान, फैलाव दूरी में बदलाव इत्यादि हैं। इन प्रभावों की संक्षिप्त व्याख्या इस प्रकार है :

मौसम तथा जलवायु पर प्रभाव : कार्बन डाइऑक्साइड तथा अन्य ग्रीन हाउस गैसें पृथ्वी के औसत तापमान को बढ़ाती हैं। बीसवीं शताब्दी में भूमंडलीय माध्य तापमान में लगभग 0.6°c तक की वृद्धि हुई है। ज्यादातर उत्तरी गोलार्द्ध में सन् 1960 के उत्तरार्द्ध से, जलवायु परिवर्तन के द्वारा शरद् तथा जाड़े में, वर्षा में वृद्धि हुई है (0.5 से 1%)।

उपोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में, वर्षा 0.3 % प्रतिदशक की दर से कम हुई है। जलवायु परिवर्तन पर अंतर्सरकारी पैनल के तीसरे निर्धारण प्रतिवेदन के अनुसार, यह अनुमानित किया जाता है कि, सन् 2100 तक पृथ्वी के औसत तापमान में 1.4°C से 5.8°C तक की वृद्धि होगी (कल्पना करें कि उत्सर्जन दर, 1990 के स्तर पर रहे तो)। समूचे ग्रह पर यह औसत तापमान में वृद्धि होगी। हालांकि, अलग-अलग जगहों पर इसमें अंतर हो सकता हैं उदाहरण के तौर पर, टूंड्रा जीवोम में, उष्णकटिबंधीय वर्षा प्रचुर वन की तुलना में ज्यादा तापमान हो सकता है। इसके अतिरिक्त, अतिवादी घटनाओं (जैसे कि, सूखा, बाढ़, इत्यादि,) की पर्याप्त वृद्धि हो सकती है। जलवायु बदलाव से उष्णकटिबंधीय एवं सम उष्णकटिबंधीय भागों में मानव स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा। खासकर रोगवाहक एवं जलीय रोगाणु के बदलाव से।

समुद्र तल में परिवर्तन : 20 वीं सदी में समुद्रतल में प्रतिवर्ष 1.5 ± 0.5 mm की वृद्धि हुई है। भूमंडलीय तापन के परिणामस्वरूप, आने वाले वर्षों में इसके 1990 के स्तर से 0.88 mm बढ़ने की उम्मीद है। समुद्रतल में परिवर्तन के लिए कई कारकों का योगदान रहता है। समुद्र तल में वृद्धि के लिए, सागर के उष्मीय फैलाव का सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान होता है तब वह गर्म होता है। अन्य योगदानकारी कारक हैं - हिमनदों का पिघलना, अंटार्कटिका तथा ग्रीन लैंड की बर्फ पट्टियों का पिघलना तथा स्थलीय जल भंडार में परिवर्तन। हाल ही में यह अनुमानित किया गया है कि, विश्व की लगभग आधी जनसंख्या तटीय भागों के 60 कि.मी. के दायरे में निवास करती है। समुद्र तल में वृद्धि होने से, मानव बस्तियों, पर्यटन, मीठे जल की पूर्ति, मात्स्यकी, खुले ढांचा, कृषि तथा शुष्क भूमि एवं आर्द्र भूमि पर बुरा प्रभाव पड़ सकता है।

जातियों के वितरण परिसर पर प्रभाव : आप जानते है कि प्रत्येक जाति एक विशेष तापक्रम परिसर में पाई जाती है। अनुमानित भूमंडलीय तापन से, जीवों का भैगोलिक वितरण प्रभावित हो सकता है। यह प्रत्याशा व्यक्त की जाती है कि कई जातियां, धीरे-धीरे ध्रुवीय दिशा या उच्च पर्वतों की ओर विस्थापित हो जाएंगी। अगर जलवायु 2°C से 5°C तक गर्म होगी तो वनस्पतिक जातियों का वितरण 250-600 km तक स्थानांतरित हो जाएगा। जातियों के वितरण में इन परिवर्तनों का जाति विविधता तथा पारिस्थितिकी अभिक्रियाओं पर चिह्नित प्रभाव पड़ेगा।

खाद्य उत्पादन : तापक्रम में वृद्धि से पौधों में कई रोग एवं पीड़क जंतु, खरपतवार एवं श्वसन क्रिया की दर में वृद्धि हो जाती है। इन सभी कारकों के कारण फसल उत्पादन कम हो जाता है। तापक्रम में कम वृद्धि शीतोष्ण जलवायु में फसल की उत्पादकता बढ़ा सकती है परंतु अधिक वृद्धि से उत्पादकता घट जाती है। सभी उष्णकटिबंधीय एवं समउष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में तापक्रम में थोड़ी सी वृद्धि से भी फसल उत्पादकता पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है। करीब 1°C तापक्रम बढ़ने से केवल दक्षिण-पूर्व एशिया में चावल उत्पादन करीब 5 प्रतिशत गिर जाता हैं। कार्बन डाइआक्साइड उर्वरक लाभकारी प्रभाव के वावजूद भूमंडलीय तापन से खाद्य उत्पादन गिर जाएगा एवं एक पूरे विश्व में खाद्य समस्या उत्पन्न हो जाएगी।

भूमंडलीय तापन से संबंध रखने की अभिगम (Approaches to Deal with Global Warming)

ग्रीन हाउस गैसों से उत्पन्न तापन को कम करने के लिए निम्न विधियां साकार सिद्ध हो सकती हैं।

(i) ग्रीन हाउस गैसों का स्राव, जीवाश्म ईंधन का कम उपयोग करके तथा उर्जा के अन्य स्रोतों (सूर्य उर्जा, वायु उर्जा आदि) का उपयोग कर किया जा सकता है।

(ii) पृथ्वी पर वनस्पतिक क्षेत्र खासकर वनों को बढ़ाएं जिससे CO_2 का उपयोग प्रकाश-संश्लेषण में हो जाएगा।

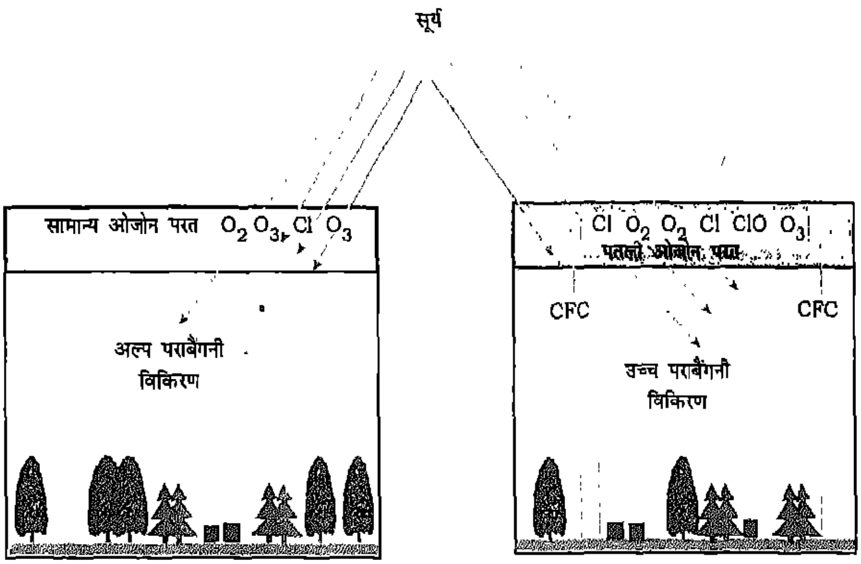
(iii) खेती में नाइट्रोजन खादों का उपयोग कम करें जिससे N_2O का स्राव कम होगा।

(iv) क्लोरोफ्लूरोकार्बस का प्रतिस्थापित पदार्थों का विकास करना।

उपरोक्त न्यूनीकरण विधियों के अलावा स्थानीय जलवायु परिवर्तन के साथ सामंजस्य होना जरूरी है।

समतापमंडलीय ओजोन ह्रास (Stratospheric Ozone Depletion)

दूसरी गंभीर समस्या समतापमंडलीय ओजोन का ह्रास है। मनुष्यों द्वारा बनाया गया CFC जैसे रासायनिक ने ओजोन ह्रास जैसी समस्या को बढ़ाया है। जो अवयव क्लोरीन, फ्लोरीन तथा कार्बनयुक्त होता है उसे क्लोरोफ्लूरोकार्बन कहते हैं। CFC जहरीला तथा ज्वलनशील नहीं है तथा रासायनिक रूप से अक्रियाशील है। एकबार CFC वायुमंडल के ऊपरी भाग में पहुँच जाता है तो यह समतापमंडलीय ओजोन अणुओं को तेजी से नष्ट करता है। समतापमंडल में पराबैंगनी विकरण ओजोन का प्रकाश विच्छेदन कर O_2 एवं O बना देता है जो शीघ्र ही फिर से जुड़कर O_3 बना देता है। इस क्रिया में पराबैंगनी किरणों से ताप के रूप में उर्जा निकलती है। इस प्रकार ओजोन के निर्माण एवं विघटन में एक संतुलन स्थापित हो जाता है जिससे समुद्र तल से 20 से 26 कि.मी. ऊपर समतापमंडल में ओजोन की सांद्रता स्थिर हो जाती है। मानक ताप एवं दाब में समतापमंडल ओजोन परत भूमध्य रेखा पर 0.29 Cm एवं ध्रुवों के नजदीक 0.40 Cm मोटी हो जाती है यह ओजोन परत पृथ्वी के जीव जगत को तेज पराबैंगनी विकरण के हानिकारक प्रभाव से बचाती है। ओजोन परत की मोटाई मौसम के हिसाब से बदलती है। वसंत ऋतु (फरवरी-अप्रैल) में सबसे ज्यादा एवं वर्षा ऋतु (जुलाई-अक्टूबर) में सबसे कम रहती है।



चित्र 21.11 मनुष्य द्वारा बनाए गए रसायन का समतापमंडल की ओजोन परत पर प्रभाव : बायां –सामान्य ओजोन परत के कारण अल्प पराबैंगनी विकिरणों का पृथ्वी पर पहुंचना, दाहिना - ओजोन ह्रासी पदार्थों द्वारा ओजोन परत के पतले होने से (ओजोन छिद्र) उच्च पराबैंगनी विकिरणों का पृथ्वी पर पहुंचना

ओजोन छिद्र : सन् 1956-1970 के दौरान अंटार्कटिका के उपर ओजोन परत की मोटाई 280 से 325 डोवसन इकाई थी (1 डोवसन इकाई (DU)=1ppb)। सन् 1979 में परत की मोटाई अचानक 225 DU तथा 1985 में 136 DU रह गई। सन् 1994 में 94 DU रह गई। इस ह्रास को **ओजोन छिद्र** कहा गया जिसकी खोज 1985 में अंटार्कटिका के उपर की गई थी। ओजोन छिद्र की उपस्थिति आर्टिक के उपर 1990 में भी पाई गई। सन् 1997-2001 में 1980 के हिसाब से करीब 3 प्रतिशत ओजोन कम पाई गई।

CFCs, N_2O तथा CH_4 का बिखरना O_3 को नष्ट करता है। ध्रुवीय समतापमंडल बादल कम तापमान पर क्लोरीन को स्वतंत्र क्रिया करने के लिए सतह प्रदान करते हैं (चित्र 21.11)। ओजोन ह्रास क्रियाएं बहुत तेज होती हैं। सूर्य की रोशनी की उपस्थिति में तथा अंटार्कटिक में बसंत की शुरुआत में बर्फ जमने के समय क्लोरीन ओजोन अणुओं पर आक्रमण करती है। परिणामस्वरूप यह होता है कि अंटार्कटिक में भी ओजोन घटना शुरू हो जाती है। अंटार्कटिक में भी बसंत ऋतु के समय ओजोन का ह्रास होता है। आर्कटिक समतापमंडल बसंत में जल्दी गर्म तथा ठंडा होता है तथा सूर्य की रोशनी के क्रांतिक अतिव्याप्ति का समय कम हो जाता है जोकि ओजोन ह्रास के लिए आवश्यक है। ध्रुवीय भ्रमिल आर्कटिक के उपर वैसी गठीली नहीं है जैसे अंटार्कटिक के ऊपर होती है।

ओजोन ह्रास का प्रभाव : समतापमंडलीय ओजोन परत पैराबैंगनी विकिरणों को अवशोषित कर लेती है जिससे जीव विज्ञान के दृष्टि से हानिकारक पैराबैंगनी विकिरणों की मात्रा पृथ्वी की सतह पर आने से कम हो जाती है। मनुष्यों में पैराबैंगनी के बढ़ने से मोतियाबिंद, त्वचा कैंसर, मेलानोमा इत्यादि की घटना बढ़ जाती है। पैराबैंगनी –B विकिरणों के संपर्क में ज्यादा आने से मनुष्य के भीतर की प्रतिरोधक क्षमता कम हो जाती है। पैराबैंगनी विकिरणों –B की मात्रा बढ़ने से प्रकाश संश्लेषण की क्रिया प्रभावित होती है तथा जीवित प्राणी के न्यूक्लियक अम्ल भी नष्ट हो जाते है। पैराबैंगनी –B विकिरण पादपल्वकों में प्रकाश संश्लेषण की क्रिया अवरोधित करता है क्योंकि

यह साफ खुले सागर के जल को छेद सकता है। फलस्वरूप यह पूरी जैव आहार शृंखला को प्रभावित करता है, जो पादप्लावकों पर आश्रित रहते हैं जैसे कि जूप्लैंकटोन, क्रील, ऐस्क्यीड, मछली, तथा व्हेल इत्यादि। अध्ययन से पता चलता है कि पादप्लावकों की उत्पादकता घटकर 6 से 12 प्रतिशत हो गई है यह 1987 में अंटार्कटिक सागर क्षेत्रों में मापा गया था।

21.10 भूमंडलीय दुष्प्रभावों को कम करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय प्रयास (International Initiative for Mitigating Global Change)

भूमंडलीय उत्सर्जन को वर्तमान स्थिति से नीचे लाना, ग्रीनहाउस गैसों के वायुमंडलीय सांद्रता को संतुलित करना लंबी अवधि की चुनौती है। सन् 1992 में ब्राजील के रीयो डी जेनेरो में "पर्यावरण तथा विकास" पर हुए राष्ट्रसंघ अधिवेशन में यह सिद्धांत प्रतिपादित किया गया कि सन् 2000 तक ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन, 1990 के स्तर तक लाया जाए तथा जलवायु परिवर्तन की प्राधार परिपाटी को अपनाया जाए। इसके बाद "क्योटो घोषणा" हुई, जो कि दिसंबर 1997 के समय स्वीकृत हुई, तथा जिसमें विभिन्न देशों द्वारा जलवायु परिवर्तन को कम करने की वचनबद्धता को रेखांकित किया गया।

प्रतिपालन विकास (Sustainable Development) पर विश्व शिखर सम्मेलन (विशिस 2002) दक्षिण अफ्रीका के जोहान्सबर्ग में हुआ, जिसमें यह सुझाव दिया गया कि भूमंडलीय कोष्णता को कम करने के लिए सही कदम उठाने चाहिए।

"मोनट्रील प्रोटोकाल" अंतर्राष्ट्रीय सहमतियों की एक शृंखला है, जो CFC तथा अन्य ओजोन ह्रास पदार्थ को कम करने तथा समाप्त करने पर कार्य कर रही है। 1987 में 27 औद्योगिक देशों ने मोनट्रील प्रोटोकाल पर हस्ताक्षर किए। समतापमंडलीय ओजोन को बचाने के लिए यह ऐतिहासिक अंतर्राष्ट्रीय सहमति थी जिसने ओजोन ह्रास करने वाले पदार्थों के उत्पादन पर नियंत्रण तथा ओजोन ह्रास करने वाले पदार्थों का समंजन तथा विकासशील देशों को CFC के विकल्प के उपयोग में मदद करना था। अब तक 175 देशों ने **मोनट्रील प्रोटोकोल** पर हस्ताक्षर किए हैं। रियो डी जोनिरियो, ब्राजील में आयोजित पर्यावरण एवं विकास का अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन (Earth Summit - 1992) ने भी ग्रीन हाउस गैसों को कम करने पर जोर दिया था। दिसंबर 1997 में क्योटो, (Kyoto Protocol) जापान में भी 2008-2012 तक 1990 के स्तर से 5 प्रतिशत ग्रीन हाउस गैसों का उत्पादन कम करने को कहा।

सारांश

हवा, पानी एवं जमीन की भौतिक, रासायनिक अथवा जैविक विशेषताओं में अवांछनीय परिवर्तन को प्रदूषण कहते हैं। यह वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण एवं भू प्रदूषण के रूप में होता है। प्राथमिक वायु प्रदूषक मुख्यत: पांच प्रकार के होते हैं- कणकीय पदार्थ, कार्बनमोनोक्साइड, हाइड्रोकार्बंस, सल्फर डाइऑक्साइड एवं नाइट्रोजन ऑक्साइड्स। द्वितीयक वायु प्रदूषक जल वाष्प जैसे पदार्थ से प्राथमिक प्रदूषकों की रासायनिक क्रियाओं से उत्पन्न होते हैं। औद्योगिक स्राव अथवा वाहन निर्गम से उत्पन्न गैसीय एवं कणकीय पदार्थों को रोकने या कम करने के लिए बहुत सी नियंत्रित विधियां अपनायी गई हैं।

जल प्रदूषक जैविक (वायरस, जीवाणु, प्रोटोजोआ, नीली-हरी शैवाल एवं हेलमिंथ्स), रासायनिक (कार्बनिक रसायन जैसे जीवनाशक, पोलीक्लोरीमेटड वाई फिनाइल या PcBs, अकार्बनिक रसायन जैसे फॉस्फेट्स, नाइट्रेट, फ्लोराइड आदि, तथा भारी धातु जैसे As, Pb, Cd, Hg आदि) एवं भौतिक (औद्योगिकों से गर्म जल, तेल टैंकों से तेल क्षरण)। जल प्रदूषक जलीय परितंत्र के भौतिक, रासायनिक

एवं जैविक स्वास्थ्य पर, भू-जल की गुणवत्ता एवं मानव स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव डालते हैं। औद्योगिकों एवं नगर से निकले गंदे जल को संयंत्रों के द्वारा शुद्ध करके सुरक्षित समापन किया जाता है।

मृदा प्रदूषण एवं भू अपघटन अधिकतर मानव के अनुचित क्रियाकलापों जैसे मैला फेंकना, कृषि विधियां, वनों का काटना, खानों की खुदाई एवं शहरीकरण से होता है। मृदा प्रदूषण को रोकने के लिए औद्योगिक एवं मानव आवासों से निकले जल मल का सुरक्षित समापन जरूरी हैं। मानवकृत शोर जो औद्योगिकों, यातायात, ध्वनिप्रसारक यंत्र आदि से उत्पन्न होता है, पर्यावरण को प्रदूषित करता हैं। हमारे देश में वायु, जल मृदा एवं ध्वनि प्रदूषणों को नियंत्रित करने के लिए कई कानून उपलब्ध हैं।

वायुमंडल में ग्रीनहाउस गैसों के बढ़ने से तथा समतापमंडल में ओजोन के अवक्षय होने से भूमंडलीय पर्यावरण में परिवर्तन होता है। वायुमंडल में प्राकृतिक अवस्था में पाई जाने वाली ग्रीनहाउस गैसें जैसे कि, कार्बन डाइऑक्साइड तथा जलवाष्प, सूक्ष्म तरंग विकिरणों के प्रति पारदर्शिता दिखाती हैं तथा लंबे तरंग विकिरणों को अवशोषित करती हैं। ये पृथ्वी का तापमान 15^0C संधारित करती हैं। ग्रीनहाउस गैसों की सांद्रता बढ़ने से ग्रीनहाउस प्रभाव बढ़ जाता है। जिसका असर भूमंडलीय तापमान पर तथा वर्षा प्रणाली, समुद्र तल में चढ़ाव पर पड़ता है।

ओजोन छिद्र से तात्पर्य है कि ओजोन परत का पतला होना तथा ओजोन सांद्रता में अवक्षय होना, जोकि अंटार्कटिक बसंत के दौरान, ओजोन सांद्रता में हमेशा होता रहता है। मानवकृत रसायन, जैसे कि, CFC'S द्वारा ओजोन के अवक्षय की समस्या को बढ़ावा मिला है। जैविक जंतुओं को पराबैंगनी विकिरणों के दुष्प्रभावों से बचाने में, ओजोन एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। ओजोन में पांच प्रतिशत की कमी होने से, पृथ्वी सतह पर आने वाले UV-B विकिरणों में 10 प्रतिशत की वृद्धि होती है।

अभ्यास

1. प्रदूषण को परिभाषित करें। जैव विघटनकारी तथा अजैव विघटनकारी प्रदूषकों की तुलना करें।
2. जैविक आवर्धन की परिघटना की व्याख्या करें।
3. वायु प्रदूषण के स्थिर तथा विचरणकारी स्रोतों से आप क्या समझते हैं?
4. प्राथमिक तथा द्वितीयक वायु प्रदूषकों के बीच अंतर स्पष्ट करें।
5. कणकीय पदार्थ क्या है? कणकीय पदार्थ किस प्रकार मनुष्य के स्वास्थ्य को नुकसान पहुंचाता है?
6. प्रकाश रासायनिक धूम कुहरा क्या है? धूम कुहरा किस प्रकार जैविक सृष्टि को प्रभावित करता है?
7. अम्ल वर्षा क्या है? इसका पौधों पर क्या प्रभाव पड़ता है?
8. वाहन उत्सर्ज से उत्पन्न प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए आप क्या विधि सुझाएंगे?
9. जल प्रदूषण के बिंदु तथा अबिंदु स्रोतों में अंदर स्पष्ट करें।
10. नगरीय सीवेज की तुलना में औद्योगिक उत्सर्ज को प्रबंधित करना क्यों ज्यादा कठिन है? भारी धातु संक्रमण से उत्पन्न होने वाले एक रोग का नाम बताएं।
11. घरेलू सीवेज से उत्पन्न प्रदूषण को किस प्रकार नियंत्रित किया जाता है?
12. मृदा प्रदूषण किस प्रकार होते है? वर्णन करें।
13. मृदा प्रदूषण को रोकने के लिए क्या विधि अपनायी जाती है?

14. शोर क्या है? मनुष्य पर शोर के प्रभाव की व्याख्या संक्षेप में करें।
15. निम्नलिखित में से कौन ग्रीन हाउस गैस नहीं है : CO_2, CH_4, O_2, CFC_s.
16. 'भूमंडलीय तापन' के प्रभाव के कारणों की व्याख्या करें।
17. समतापमंडलीय ओजोन विघटन के परिणामों को बताएं।
18. समतापमंडल में पराबैंगनी विकिरणों को निम्नलिखित के द्वारा अवशोषित किया जाता है:-

    (क) ऑक्सीजन (ख) ओजोन

    (ग) SO_2 (घ) ऑर्गन
19. निम्नलिखित शब्दों की व्याख्या करें:

    (क) ग्रीन हाउस प्रभाव (ख) CO_2 उर्वरक प्रभाव

    (ग) ओजोन छिद्र
20. ओजोन परत का क्या तात्पर्य है? CFC's तथा ओजोन अवक्षय करने वाले पदार्थ किस तरह ओजोन परत को प्रभावित करते है?
21. अंटार्कटिका ओजोन छिद्र के घटने का क्या पर्यावरणीय प्रभाव है?



एकक दस
जनन, वृद्धि एवं परिवर्तन

अध्याय 22

अध्याय 23

अध्याय 24

अध्याय 25

अध्याय 26

मानव समाज आदिवासी शिकारी से आधुनिक समय के प्रौद्योगिकी आश्रित समाज में परिवर्तित हो गया है। पूर्व में मनुष्यों ने अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पौधों एवं प्राणियों को घरेलू बनाया। बाद में उन्होंने इन जीवों को अधिक लाभदायी बनाने के लिए उनमें आनुवंशिक सुधार शुरू किए। हाल ही में सूक्ष्मजीवों, जंतु एवं पादप कोशिकाओं तथा उनके अवयवों का व्यवस्थित दोहन बहुत महत्त्वपूर्ण हो गया है। डी.एन.ए. की पुनर्योगज प्रौद्योगिकी के होने से एक विशेष प्रकार के उत्पादों एवं सेवाओं को जन्म मिला जिनसे समाज को बहुत आशाएं हो गई हैं। इसके साथ ही (जीव युद्ध, जीव पेटेंट एवं जीव डकैती आदि) हानिकारक मार्ग भी खुल गए हैं। प्रौद्योगिकी विकास ने मानव जनसंख्या वृद्धि में भी सहयोग दिया जो पिछले तीन शताब्दियों से लगातार बढ़ रही है। बढ़ती जनसंख्या ने पर्यावरण एवं प्राकृतिक संसाधनों पर काफी दबाव पैदा कर दिया है।

आप जानते हैं कि मानव राष्ट्र के लिए बहुत बड़ा संसाधन है बशर्ते वह शारीरिक एवं मानसिक रूप से स्वस्थ हो। मानव जीवन में किशोरावस्था एक बहुत ही तूफानी प्रावस्था है जिसमें व्यक्ति, कई शारीरिक एवं मानसिक चुनौतियों का सामना करता है। इसी समय वह विभिन्न नशीली वस्तुओं की तरफ आकर्षित हो सकता है। हमारे शैक्षिक एवं अन्य कार्यक्रम ऐसे होने चाहिए जिससे इस देश के किशोर इन चुनौतियों का सामना प्रभावकारी ढंग से कर सके। मानव जीवन में शारीरिक स्वास्थ्य एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। पिछले कुछ दशकों में रोग उपचार के लिए कई नैदानिक तकनीकों एवं शल्य चिकित्सा की विधियां जैसे जीन चिकित्सा विज्ञान में काफी विकास हुआ है। इसी संदर्भ में टीकाकरण (vaccination) एक विशेष विधि है जिसमें स्वयं रोगाणु (मृत या लघु सांद्र) या उससे उत्पन्न प्रतिरोधी पदार्थ का उपयोग रोगाणु का मुकाबला करने में किया जाता है। यह अर्जित प्रतिरक्षा स्मरण का एक विशेष गुण है। इस इकाई में आप मानव कल्याण के लिए जीव विज्ञान की लाभप्रद उपलब्धियों का अध्ययन करेंगे।



नॉरमन अर्नेस्ट बोर्लोग
(1914-)

बोर्लोग का जन्म सन् 1914 में संयुक्त राज्य अमेरिका के आइयोवा में हुआ था। आपने गेहूं की किस्मों में सुधार कार्य मेक्सिको एवं भारत सहित अन्य देशों के वैज्ञानिकों के साथ मिलकर किया एवं हरित क्रांति के एक मुख्य कर्णधार बने। आपने शिक्षा पूर्ण करने के उपरांत औद्योगिक एवं कृषि से संबंधित जीवाणुनाशक, कवकनाशक एवं खाद्य संग्रहित पदार्थों पर अनुसंधान कार्य किया। आपने रॉकफेलर फाउंडेशन एवं मेक्सिकन सरकार के सहयोग से गेहूं पर अनुसंधान कार्य किया एवं अधिक उत्पादन, कम भूसा एवं रोग प्रतिरोधी गेहूं का निर्माण किया।

बोर्लोग जी ने वैज्ञानिक अनुसंधानों के मानवीकरण उद्देश्यों पर प्रकाश डाला। इस कार्य के लिए उन्हें 1978 का शांति के क्षेत्र में नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया। डॉ. बोर्लोग गेहूं सुधार कार्यक्रम के निदेशक एवं युवा वैज्ञानिकों को प्रशिक्षण कार्य के निर्देशक रहे। आजकल आप गेहूं एवं राई से नई किस्म बनाने के अनुसंधान कार्य में व्यस्त हैं।



अध्याय 22

मानव जनसंख्या एवं स्वास्थ्य

आप पहले के अध्यायों में पारितंत्र की अवधारणा तथा हमारे चारों ओर फैले निर्जीव संसारों के बीच नाजुक संतुलन के बारे में पढ़ चुके हैं। अब तक आप हमारे प्राकृतिक संसाधनों तथा मानवीय क्रियाओं द्वारा इनका प्रदूषण एवं क्षरण के बारे में भी जान चुके हैं। लगातार बढ़ रही मानव समष्टि द्वारा प्राकृतिक पारितंत्रों का अतिदोहन किया जा रहा है। यह ऊर्जा के लिए आवश्यक हो गया है। इस अतिदोहन के कारण प्राकृतिक संतुलन बिगड़ रहे हैं।

धरती पर आधुनिक मानव (*होमो सेपियंस सेपियंस*) का उद्भव लगभग पचास हजार वर्ष पूर्व आकार्यक के होमो सेपियंस से हुआ जो 100,000 से 200,000 वर्षों के बीच था। आरंभ में मानव समष्टि छोटी थी। इस कारण मानव द्वारा प्रकृति से न्यूनतम छेड़छाड़ की जाती रही। वर्ष 1850 के आस-पास मानव जनसंख्या बढ़कर एक अरब हुई। लेकिन 1930 में यह बढ़ कर दो अरब हो गई, जबकि 2000 में यह 6.1 अरब तक बढ़ गई। इस अध्याय में हम मानव जनसंख्या में वृद्धि, इसे प्रभावित करने वाले कारकों, तथा पर्यावरण पर इसके प्रभाव का अध्ययन करेंगे।

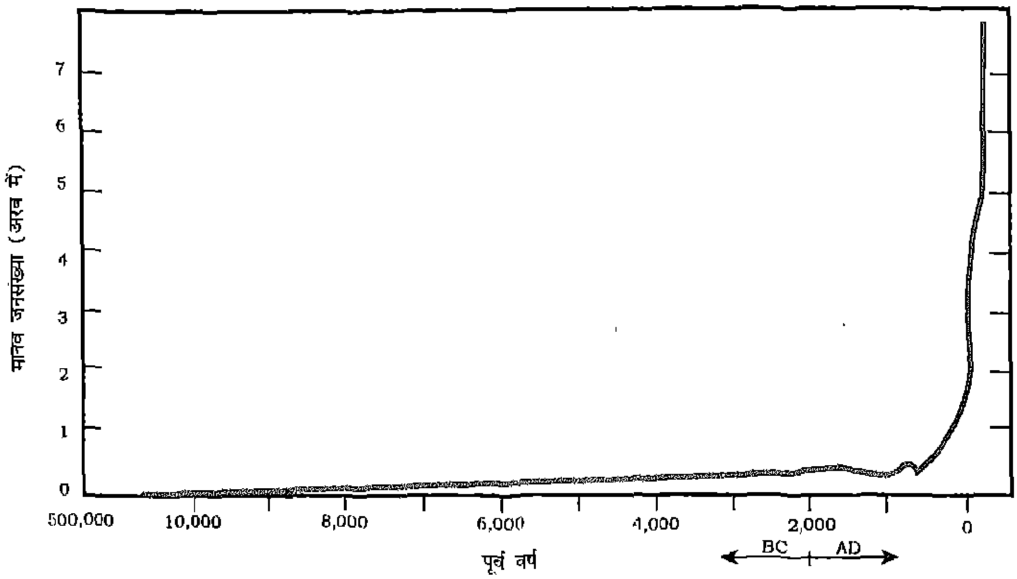
22.1 चरघातांकी वृद्धि एवं मानव जनसंख्या विस्फोट (*Exponential Growth and Human* Population Explosion)

सन् 1700 में मानव जनसंख्या 60 करोड़ मात्र थी। किंतु बीसवीं शताब्दी के आरंभ में यह बढ़कर 1.6 अरब तथा शताब्दी के अंत तक यह 6.1 अरब हो गई। अपेक्षाकृत कम अवधि में जनसंख्या में इस प्रकार होने वाली नाटकीय वृद्धि को **जनसंख्या विस्फोट** कहते हैं। सन् 1700 से अगले 150 वर्षों में मानव जनसंख्या 60 करोड़ से दो गुना हो कर 1.2 अरब हुई। इसके विपरीत अगले 150 वर्षों में जनसंख्या में पांच गुना वृद्धि हुई। संयुक्त राष्ट्र के अनुमान के अनुसार वर्ष 2050 में विश्व जनसंख्या 12.2 अरब तक हो सकती है।

उपलब्ध स्थान एवं संसाधनों में निर्वाह योग्य मानव जनसंख्या की एक अधिकतम सीमा है। जिस अधिकतम जनसंख्या का पर्यावरण में निर्वाह हो सकता है, उसे पर्यावरण की **अधिकतम वहन क्षमता** कहते हैं। इस अध्याय के संदर्भ में हम पर्यावरण के निम्नलिखित तीन कारक मान सकते हैं : पहले घटक में उत्पादन तंत्र आते हैं जैसे कृषि क्षेत्र, उद्यान, आदि। इस घटक से खाद्य, रेशे आदि प्राप्त होते हैं ; दूसरे घटक में सुरक्षा तंत्र शामिल हैं, जैसे चरम वन, महासागर, आदि। ये सभी जल एवं वायु चक्रों की रक्षा करते हैं, तापमान में चरम परिवर्तन रोकते हैं, आदि; पर्यावरण के तीसरे घटक में अपशिष्ट स्वांगीमय तंत्र आते हैं, जैसे जलमार्ग, नमभूमि आदि। ये तंत्र मानव द्वारा उत्पादित अपशिष्टों का स्वांगीकरण करते हैं।

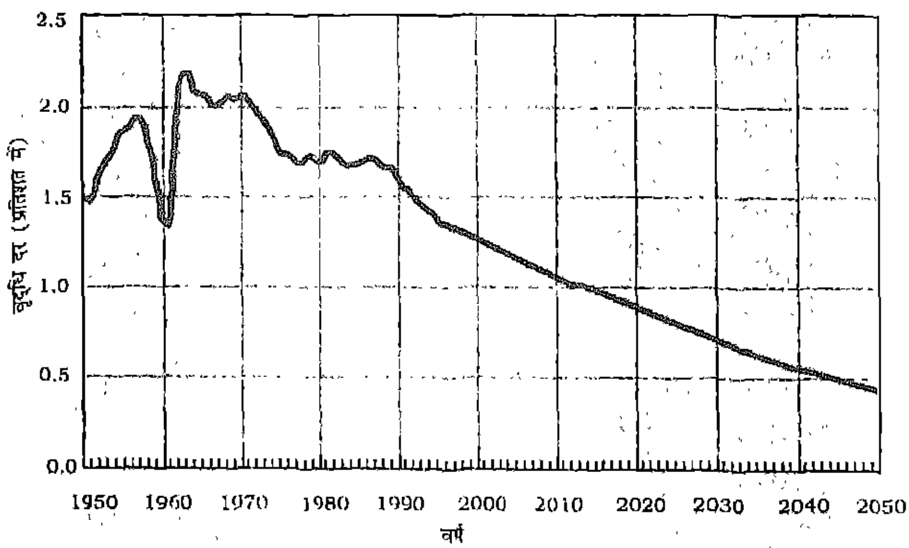
इन घटकों में से प्रथम दो पर्यावरण की जीवन निर्वाहन क्षमता तथा तीसरे से अपशिष्ट वहन क्षमता इसकी उपरोक्त क्षमता पर निर्भर करती है। स्पष्ट जनसंख्या को पर्यावरण की अधिकतम वहन क्षमता से अधिक नहीं होना चाहिए। इसके साथ ही संसाधनों का उपभोग इस प्रकार होना चाहिए जिससे पर्यावरण को दूरगामी नुकसान न हो।

प्रौद्योगिकी के कुशल उपयोग द्वारा मानवीय पर्यावरण की अधिकतम वहन क्षमता में कई गुणा वृद्धि की गई है। यह वृद्धि मुख्य रूप से पर्यावरण के उत्पादन तंत्र में हुई है। इससे पिछले 100 वर्षों में मानव जनसंख्या में चरघातांकी वृद्धि संभव हो सकी है (चित्र 22.1)। जब किसी अवधि में जनसंख्या में वृद्धि की दर इसके एक स्थिर अनुपात में होती है तो इसे **चरघातांकी वृद्धि** (J-आकार की वृद्धि) कहते हैं (देखें अध्याय 17)। जब जनसंख्या में चरघातांकी वृद्धि होती है तो संसाधनों के



चित्र 22.1 मानव जनसंख्या की कालबद्ध एवं वर्तमान एक्सपोनेंशियल वृद्धि

उपयोग एवं अपशिष्टों के उत्पादन भी चरघातांकी दर से बढ़ते हैं। किंतु ये दोनों ही स्थितियां अनंत काल तक नहीं चल सकती हैं। चित्र 22.2 में मानव जनसंख्या में वृद्धि का एक ''मानक'' पूर्वानुमान दर्शाया गया है। यह पूर्वानुमान इस मान्यता पर आधारित है कि पर्यावरणीय विघटन ही अंततः निर्वहनीय जनसंख्या का स्तर निर्धारित करेगा।



चित्र 22.2 सन् 1950 तथा 2050 के बीच अनुमानित विश्व जनसंख्या वृद्धि दर (यूनाइटेड स्टेट्स जनगणना ब्यूरो के आधार पर, अंतर्राष्ट्रीय आंकड़ा)

22.2 पर्यावरण एवं मानव जनसंख्या दाब (Environment and Human Population Pressure)

पर्यावरण में वर्तमान स्तर पर विघटन निम्नलिखित दो कारणों से उत्पन्न होता है। प्रथम, विश्व जनसंख्या में अत्यधिक वृद्धि हुई है, और दूसरे, विश्व के विभिन्न भागों की सघनता में काफी भिन्नता है।

विश्व के 6.1 अरब लोगों में से लगभग आधे लोग गरीबी में रहते हैं। इसके साथ ही कम से कम 20 प्रतिशत लोग अल्पपोषित या कुपोषित हैं। एक अनुमान के अनुसार सं.रा.अ. में एक बच्चे के पालन-पोषण के लिए किसी विकासशील देश की तुलना में 15-20 गुना अधिक संसाधनों का उपयोग किया जाता है। (खंड 22.4)। इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप प्राकृतिक संसाधनों के प्राकृतिक संग्रह एवं उपनिवेश की प्रकृति उत्पन्न हुई है।

विश्व की अधिकांश जनसंख्या भारत जैसे विकासशील देशों में पाई जाती है। इन देशों में अधिकांश जनसंख्या ग्रामीण होती है। लेकिन अब लोग अधिक संपन्नता की खोज में ग्रामीण क्षेत्रों से घनी आबादी वाले शहरों में अभिगमन कर रहे हैं। शहरी क्षेत्रों में ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में नगण्य खाद्य उत्पादन करते हैं। अधिकांश शहरी अपशिष्ट संकटकारी होते हैं, और ये पर्यावरण को ऐसे यौगिकों से संदूषित करते हैं जो प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्रों के लिए विदेशी हैं और जिनका बहुत काल तक प्राकृतिक विघटन होता है। शहरीकरण में वृद्धि के कारण अपेक्षाकृत कम क्षेत्र से अधिक खाद्य उत्पादन आवश्यक हो जाता है। इसके कारण गहन कृषि पद्धतियों का उपयोग करना पड़ता है जिनसे अधिक प्रदूषण होता है। इस प्रकार जनसंख्या दाब के फलस्वरूप पर्यावरण का भौतिक, रासायनिक, जैविक एवं यहां तक कि नैतिक निभीकरण होता है।

22.3 विकास एवं पर्यावरण (Development and Environment)

मानव समाज का विकास आरंभिक आखेटक-संग्राहक शिकारी अवस्था से कृषि-आधारित तथा वर्तमान प्रौद्योगिकी-आधारित समाज तक विकास के कारण जैविक पर्यावरण में परिवर्तन हुए हैं। किसी देश में प्राकृतिक संसाधनों का उपभोग निम्नलिखित पर निर्भर होता है : मानव जनसंख्या, संभव की सामाजिक संरचना एवं प्रौद्योगिक प्रगति का स्तर। प्रौद्योगिक प्रगति के कारण समाज की प्रकृति में अनासक्ति बढ़ती है और पर्यावरण की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक परस्पर क्रिया प्रभावित होती है। इसके साथ ही प्राकृतिक संसाधनों का दोहन बढ़ता है, जो उन्मूलन, गहन कृषि, अंधाधुंध खनन एवं जीवाश्मी ईंधन के अविवेकपूर्ण उपभोग के रूप में होता है। तेजी से बढ़ती जनसंख्या के लिए अधिकाधिक संसाधन आवश्यक होते हैं, जिन्हें जुटाते समय बहुधा इसके परिणामों पर ध्यान नहीं दिया जाता है।

सामाजिक अधिक निम्नकोटिकृत पर्यावरण एवं क्षीण संसाधनों के बल पर, विकास की अवधारणा का बना हुआ है। **प्रतिपालनीय विकास** की सर्वाधिक उद्धृत परिभाषा निम्नलिखित है : वह विकास जिससे वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति इस प्रकार की जाती है जिससे भावी पीढ़ियों की अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने की क्षमता पर प्रभाव नहीं पड़ता है। प्रतिपालनीय विकास ऐसे परिवर्तनों को बढ़ावा देता है जिसमें संसाधनों में सामंजस्य होता है। ऐसे विकास से वर्तमान एवं भावी मानव आवश्यकता एवं महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति की क्षमता में वृद्धि होती है। इस प्रकार प्रतिपालनीय विकास की अवधारणा का उद्देश्य स्थानीय, राष्ट्रीय एवं वैश्विक (global) विकासीय युक्तियों एवं पर्यावरणीय का आपस में ताल-मेल बैठाना होता है। विकास की प्रक्रिया द्वारा उन प्राकृतिक तंत्रों, जो जीवन निर्वाह के लिए जरूरी होते हैं, को क्षति नहीं पहुंचनी चाहिए।

22.4 मानव जनसंख्या वृद्धि (Human Population Growth)

मानव जनसंख्या वृद्धि का मापन औसत वार्षिक वृद्धि दर के रूप में किया जाता है इसे निम्नलिखित सूत्र से ज्ञात करते हैं :

औसत वार्षिक वृद्धि दर (प्रतिशत में)

$$\left(\frac{P_2 - P_1}{P_1 \times N}\right) \times 100$$

जबकि P_1 = पहले की जनगणना में जनसंख्या; P_2 = वर्तमान जनगणना में जनसंख्या; तथा N-दो जनगणनाओं के बीच का अंतराल।

किसी क्षेत्र में समय विशेष में उपस्थित व्यष्टियों की संख्या ज्ञात निर्धारित करने को जनगणना कहते हैं। किसी जनसंख्या के दुगुना होने में लगे समय को जनसंख्या **द्विगुणन काल** कहते हैं। वार्षिक औसत वृद्धि दर एवं द्विगुणन काल जनसंख्या वृद्धि के दो महत्त्वपूर्ण सूचक

होते हैं। भारत की वर्तमान जनसंख्या वृद्धि दर 1.6 प्रतिशत प्रति वर्ष है जो कि 1965-1970 के दौरान की शीर्ष वृद्धि दर 2.1 प्रतिशत से काफी कम है। वृद्धि दर कई कारकों पर निर्भर होती है, जैसे जन्म दर, मृत्यु दर, अभिगम एवं आयु-लिंग अनुपात।

उर्वरता (Fertility)

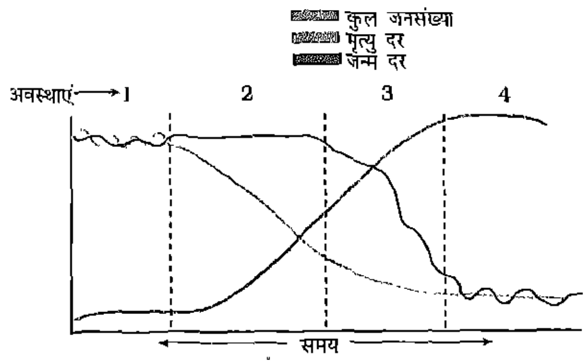
जनसंख्या में वृद्धि का निर्धारक उर्वरता होती है। यह जनन में सक्रिय व्यक्तियों द्वारा शिशु उत्पादन की क्षमता होती है। प्रति एक हजार व्यक्तियों द्वारा उत्पन्न किए गए बच्चों की संख्या को **जन्म दर** कहते हैं। जन्म दर जनसंख्या वृद्धि दर से भिन्न होती है, क्योंकि यह ऋणात्मक नहीं हो सकती है, जबकि जनसंख्या वृद्धि दर ऋणात्मक हो सकती है। लेकिन जन्म दर वर्तमान उर्वरता पैटर्न का सूचक नहीं हो जाता है। **कुल उर्वरता दर** (TFR) जीवन काल में जन्म दिए गए बच्चों की औसत संख्या को कहते हैं। जनसंख्या प्रत्येक स्त्री द्वारा संपूर्ण किए जाने वाले बच्चों की उस संख्या से है, जिससे जनसंख्या में उनका **विस्थापन** (RL) हो सके चूंकि कुछ बच्चे वयस्क होने से पहले ही मर जाते हैं, इसलिए विस्थापन दर सदैव 2.0 से अधिक होती है। विकसित देशों में विस्थापन दर 2.1 होती है, जबकि विकासशील देशों में यह लगभग 2.7 होती है, क्योंकि इन देशों में वयस्कतापूर्व मृत्यु दर अपेक्षाकृत अधिक एवं प्रत्याशित जीवनकाल कम होता है।

कुल उर्वरता दर एक क्षेत्र से दूसरे में मिली होती है। अधिक विकसित देशों में कुल उर्वरता दर अपेक्षाकृत कम (विस्थापन दर के लगभग) होती है, जबकि विकासशील देशों में यह अधिक होती है। उर्वरता को नियंत्रित करने वाले प्रमुख कारक आर्थिक विकास एवं मानव महत्वाकांक्षाएं हैं। विकासशील देशों की उच्च दर का एक कारण यह है कि निम्न प्रौद्योगिकी कार्यों को करने के लिए अधिक व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। प्रौद्योगिकी में उन्नति के साथ लोग यह अनुभव करने लगते हैं कि अधिक बच्चों के कारण जीवन स्तर घटता है। इस कारण कुल उर्वरता दर में कमी आती है।

मृत्यु दर (Mortality)

प्रति एक हजार होने वाली मृत्यु को मृत्यु दर कहते हैं। अधिकांश देशों में औद्योगिक क्रांति के बाद मृत्यु दर में लगातार कमी आई है। इसका प्रमुख कारण व्यक्तिगत स्वास्थ्य, सामान्य स्वच्छता एवं आधुनिक चिकित्सकीय सुविधाएं हैं। मृत्यु दर कम होने से जनसंख्या वृद्धि दर बढ़ती है।

जनसांख्यिकीविद् सामान्यतः **अशोधित जन्म दर** एवं **अशोधित मृत्यु दर** का उपयोग करते हैं। ये क्रमशः किसी वर्ष के मध्य में अर्थात् 7 जुलाई को, होने वाली प्रति एक हजार व्यक्ति जीवन जन्म एवं मृत्यु की संख्याएं हैं। जन्म एवं मृत्यु दरों में अंतर को **प्राकृतिक वृद्धि दर** कहा जाता है। यदि जन्म एवं मृत्यु दरें बराबर हों तो जनसंख्या वृद्धि दर शून्य होगी। इस दशा को **जनसांख्यिकीय संक्रमण** कहते हैं। जैसे-जैसे विभिन्न देश विकसित होते जाएंगे, इन सभी में जनसांख्यिकीय संक्रमण की विभिन्न दशाएं चित्र 22.3 में प्रदर्शित हैं।



चित्र 22.3 *जनसांख्यिकीय संक्रमण की विभिन्न अवस्थाएं:*
1. *उच्च जन्म दर, लेकिन उच्चावचनी मृत्यु दर*
2. *घटती हुई मृत्यु दर, तथा उच्च जन्म दर का बढ़ता क्रम*
3. *घटती हुई जन्म तथा मृत्यु दर*
4. *कम मृत्यु दर लेकिन उच्चावचनी जन्म दर*

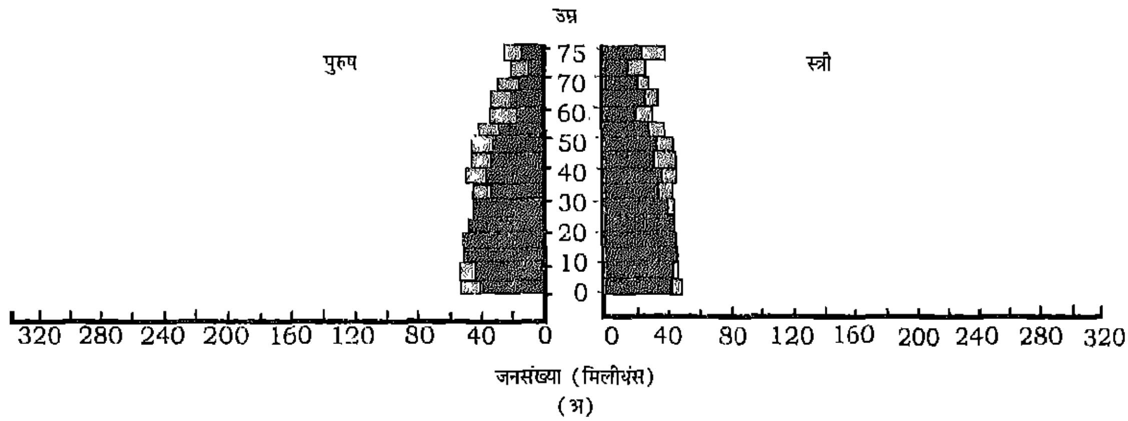
अभिगमन (Migration)

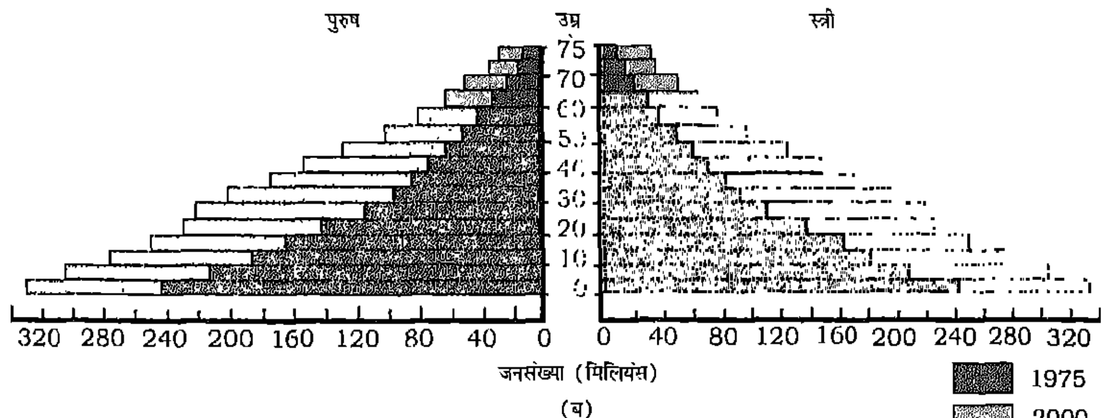
किसी स्थान या देश में आने (**अप्रवास**) या उससे बाहर जाने (**उत्प्रवास**) को अभिगमन कहते हैं। एक ही देश के दो भिन्न क्षेत्रों के बीच अधिगमन हो सकता है। लेकिन दो भिन्न देशों के बीच अभिगमन से ही किसी देश की जनसंख्या प्रभावित होती है। अप्रवासी के मान में से उत्प्रवास का मान घटाने से नेट अप्रवास प्राप्त होता है (इसे जन्म के कारण जनसंख्या वृद्धि दर में जोड़ा जाता है)। **नेट अप्रवास** धनात्मक, शून्य या ऋणात्मक हो सकता है।

आयु एवं लिंग संरचना (Age and Sex Structures)

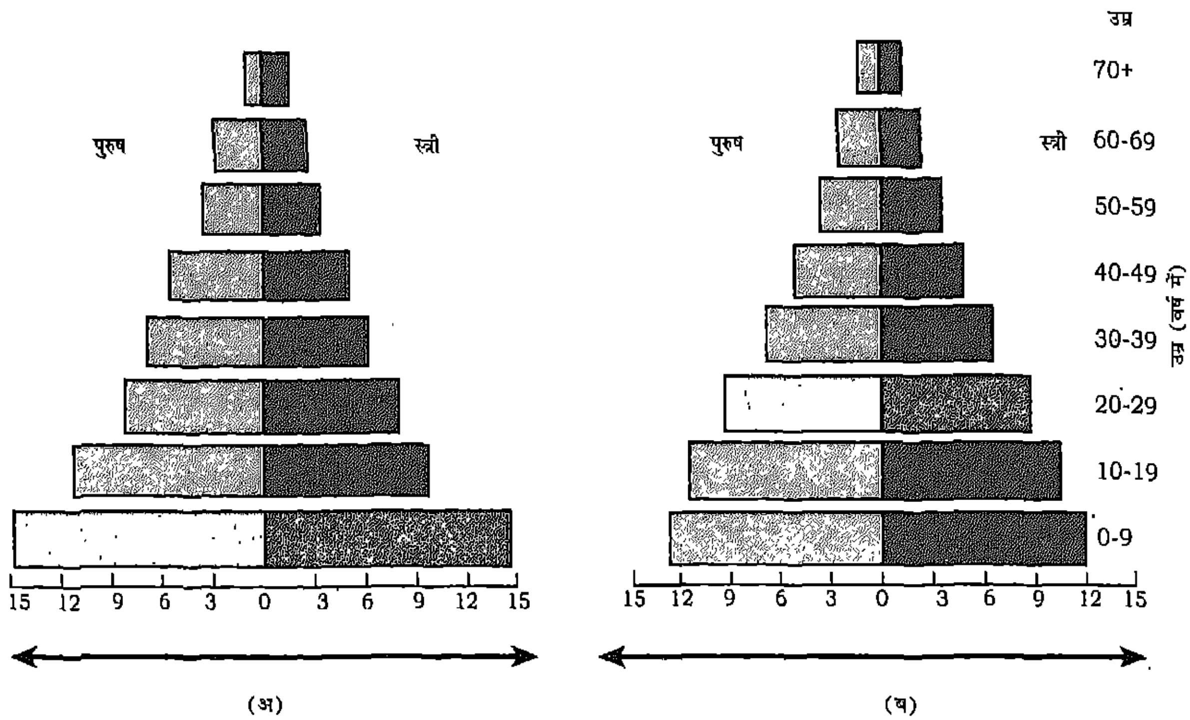
किसी जनसंख्या की आयु संरचना का तात्पर्य उसमें विभिन्न आयु के व्यक्तियों का अनुपात होता है। यह पहलू इसलिए महत्त्वपूर्ण होता है, क्योंकि व्यक्तियों के कई प्रकार्य उनकी आयु से प्रभावित होते हैं। उदाहरणार्थ, एक वर्ष से कम आयु के शिशुओं एवं वृद्ध व्यक्तियों की मृत्यु दर अन्य आयु वर्गों की तुलना में अधिक होती है। इसके अतिरिक्त, जनसंख्या में वृद्धि दर जनसंख्या में जननिक सक्रिय स्त्री एवं पुरुषों के अनुपात पर निर्भर होती है। इसी प्रकार, जनसंख्या में जननिकत: सक्रिय आयु वर्ग सामान्यतया 15 से 44 वर्ष की स्त्रियों की संख्या जनसंख्या की जन्म दर को प्रभावित करती है।

किसी जनसंख्या की आयु-लिंग संरचना को एक पिरामिड के रूप में चित्रित कर सकते हैं। इस में प्रत्येक आयु वर्ग के स्त्री एवं पुरुषों की जनसंख्या में अनुपात अलग-अलग चित्रित किया जाता है। चित्र 22.4 में विकसित एवं विकासशील देशों के वर्ष 1975 एवं 2000 के आयु लिंग पिरामिड दिए गए हैं। विकसित देशों के लिंग आयु पिरामिड अधिक प्रवणता युक्त हैं। यह दशा लगभग स्थिर जनसंख्या प्रदर्शित करती है। इसके विपरीत, तीव्र वृद्धिशील जनसंख्या का आयु-लिंग पिरामिड कम प्रवणतायुक्त होता है, क्योंकि इसमें कम वर्ष के व्यक्तियों की अधिकता होती है। चित्र 22.5 में भारतवर्ष, 1971 एवं 1991 के आयु-लिंग पिरामिड प्रदर्शित है। ये अपेक्षाकृत कम प्रवणतायुक्त है। किसी जनसंख्या की भविष्य वृद्धि के निर्धारण में उसके आयु-लिंग पिरामिड का स्त्री पक्ष अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। भारतवर्ष के दोनों आयु-लिंग पिरामिडों (चित्र 22.5) की तुलना करने पर स्पष्ट होता है कि जनसंख्या उनयोजननीतियों को केवल





चित्र ***22.4*** *सन् 1975 तथा 2000 के बीच का उम्र-लिंग पिरामिड (अ) विकसित देश (ब) विकासशील देश*



चित्र 22.5 भारत के लिए उम्र-लिंग पिरामिड की तुलना : (अ) वर्ष 1971, (ब) वर्ष 1991

सीमित सफलता मिली है। अभी 1991 के आयु लिंग पिरामिड को स्थिर जनसंख्या के पिरामिड के समान होने के लिए चुनौती भरा काम है। इसमें अनवरत अत्यधिक धैर्य की आवश्यकता होती है।

22.5 मानव जननिक स्वास्थ्य (Human Reproductive Health)

विश्व की भविष्य की जनसंख्या का आकार, स्वास्थ्य एवं संपन्नता का निर्धारण युवा व्यक्तियों द्वारा ही होगा। बीसवीं शताब्दी के अंत में 1.7 अरब लोग 10 से 24 वर्ष की आयु के थे। इनमें से अधिकांश कम विकसित देशों के निवासी थे। युवा व्यक्तियों की आवश्यकताएं उनकी जीवन अवस्था, यौवनारंभ, किशोरावस्था तथा आरंभिक यौवनावस्था, एवं उनके परिवेश पर निर्भर होती है। युवा लोगों का स्वास्थ्य एवं शिक्षा तथा विवाह एवं जीवन की अधिक परिपक्व अवस्थाओं में बच्चों को जन्म देना किसी समाज के जननिक स्वास्थ्य के महत्त्वपूर्ण अभिलक्षण है। इनसे संबंधित कुछ महत्वपूर्ण मुद्दे निम्नलिखित हैं:

(i) विश्व के कई भागों में अब भी माध्यमिक विद्यालयों में भर्ती होने वाले छात्रों की संख्या काफी कम है। इसके साथ ही लड़कियों की भर्ती लड़कों की तुलना में काफी कम है।

(ii) 15 से 19 आयु वर्ग की स्त्रियों में गर्भधारण, शिशुजन्म एवं असुरक्षित गर्भस्राव से उत्पन्न परेशानियां मृत्यु का प्रमुख कारण होती हैं।

(iii) युवा व्यक्तियों (15 से 24 वर्ष) में लैंगिकत: संप्रेषित संक्रमणों, जिनमें एड्स शामिल हैं, की दर सर्वाधिक होती है।

अधिक शिक्षित स्त्रियां अपेक्षाकृत अधिक स्वस्थ एवं संपन्न होती हैं, और उनके बच्चे संख्या में कम लेकिन अधिक स्वस्थ होते हैं। जल्दी गर्भधारण एवं शिशुजन्म सामान्यतया युवा माताओं की कम शिक्षा एवं उनकी कम आय से संबंधित है। युवा स्त्रियों (15 से 19 वर्ष) एवं उनके बच्चों के स्वास्थ्य संबंधित गंभीर खतरे होते हैं। चूंकि इन स्त्रियों की वृद्धि, विशेष रूप से जिनकी लंबाई एवं श्रेणी आकार पूर्ण नहीं हुई होती। इन्हें अवरुद्ध प्रसव (जब जन्मतालिका अवरुद्ध होती है) का अधिक खतरा

होता है, जिससे मां एवं नवजात शिशु दोनों को ही स्थायी क्षति या दोनों की मृत्यु तक हो सकती है। युवा माताओं के शिशुओं के पूर्वपरिपक्व एवं उनके जन्म भार के कम होने की अधिक संभावना होती है।

युवाओं के स्वीकार्य लैंगिक व्यवहार के सांस्कृतिक मानक किशोरों के जननिक स्वास्थ्य के मुद्दों को जटिल बनाते हैं। युवा पुरुषों के लिए जननिक स्वास्थ्य कार्यक्रम सामान्यतया जिम्मेदार लैंगिक व्यवहार को बढ़ावा देते हैं। ये कार्यक्रम अन्य धनात्मक व्यवहार एवं अभिवृत्तियों का पुन:मूल्यांकन आदि को बढ़ावा देते हैं। ये कार्यक्रम लड़कों को इस बात के लिए प्रोत्साहित कर सकते हैं। ये कार्यक्रम लड़कियों की जननिक स्वास्थ्य संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति एवं निष्कर्मों में सहायता करें जिससे वह हिंसा से बचें तथा औषधियों एवं एल्कोहल के दुरुपयोग से दूर रहें।

22.6 किशोरावस्था (Adolescence)

किशोरावस्था तीव्र वृद्धि एवं भौतिक तथा आवश्यक परिवर्धन काल होता है जो बाल्यकाल एवं युवावस्था के मध्य होता है। यह अवस्था लड़कियों के लिए 8 से 18 वर्षों तथा लड़कों के लिए 7 से 19 वर्षों के बीच आती है। यह अवस्था यौवनारंभ (लैंगिक परिपक्वता के प्रथम बाह्य लक्षणों के दिखलाई पड़ने का समय) तथा पूर्ण लैंगिक परिपक्वता के बीच की अवस्था है। किशोरावस्था में शारीरिक वृद्धि तेजी से होती है। जननिक अंगों का परिवर्धन होता है एवं स्नायु अंत:स्रावी तंत्र के प्रकार्य में परिवर्तित होते हैं। किशोरों की आकृति में बहुधा परिवर्तन होता रहता है एवं वे हॉर्मोनों, लिंग हॉर्मोनों के अधिक उत्पादन के कारण भावनात्मक विक्षोभ का अनुभव करते हैं। यह सब उस काल में होता है, जब वे स्वाग्रह (अहंकेंद्रिता) से अभिभूत होते हैं, और उनमें स्वपहचान तथा आत्मसम्मान की भावनाओं का विकास हो रहा होता है। किशोरों में सहोदरों, स्कूल में समकक्ष समूहों एवं शेष विश्व के संदर्भ में स्व की विवेकपूर्ण, धनात्मक एवं सही समझ सामाजिक सामंजस्य, विशेष रूप से तनावपूर्ण एवं विकासपूर्ण स्थितियों के लिए महत्वपूर्ण होती है।

किशोरावस्था की सामान्य समस्याएं (Common Problems of Adolescence)

किशोरावस्था के लड़कों एवं लड़कियों की एक समस्या मुहांसे हैं। लिंग हॉर्मोन की अधिकता के कारण त्वचा रंध्रों के अवरुद्ध होने से मुहांसे उत्पन्न होते हैं। इस भद्दे दिखने वाले त्वचा रोग से विशेष रूप से इसके मुंह पर होने से आत्मग्लानि होती है। किशोर, विशेष रूप से विलंबित परिवर्धन किशोर, बहुधा तनाव एवं एक मनोकायिक रोग, जिसे **रोगभ्रम** कहते हैं, से पीड़ित होते हैं। रोगभ्रम में व्यक्ति अपने स्वास्थ्य के प्रति अनावश्यक रूप से चिंतित रहता है।

किशोरों में सामाजिक अनाड़ीपन एवं प्रदर्शनशीलता, तथा आक्रामक स्वाग्रह पाई जाती है। किशोर अपने को समय-समय पर सामाजिक एवं भावनात्मक रूप से एकाकीपन तथा सभ्रहशीलता महसूस करते हैं। एकाकीपन व्यक्ति सामाजिक परिवेश से अलग रहता है, जबकि सभ्रहशीलता में वह सामाजिक परिवेश में घुला-मिला रहता है। कुछ किशोरों में अपना वजन नियंत्रण करने की सनक होती है, जिससे उन्हें भोजन से अरुचि होने लगती है। इसके विपरीत कुछ किशोरों में भोजन के लिए अधिक लालसा होती है, जिससे वह सामान्य से अधिक भोजन करते हैं। कुछ मामलों में शरीर क्रियात्मक असमानताएं, जैसे लड़कियों में मासिक धर्म का न होना, अथवा बोधात्मक विक्षोभ भी पाए जाते हैं। **तंत्रिकावसाद** की दशा में व्यक्ति एकाग्र नहीं रह पाते हैं और वस्तुओं आदि से आनंद नहीं ले पाते हैं। इससे चिड़चिड़ापन, थकान, अनिद्रा, अवसाद एवं सिरदर्द जैसी समस्याएं हो सकती हैं।

डर (phobia) भी किशोरों की सामान्य समस्या है। इस दशा में जीवों जैसे मकड़ी, सर्प, आदि वस्तुओं से या स्थितियों, जैसे भीड़ भरे स्थानों, विशाल खुली जगहों, छोटे बंद कमरों, आदि से अत्यधिक डर लगता है। बलात्कार एवं डकैती जैसे आघातिक अनुभवों के कारण किशोर आघातपश्च विकार से पीड़ित हो सकते हैं। ऐसे हादसों के जीवित भुक्त भोगी एवं दर्शक दोनों ही समान रूप से प्रभावित होते हैं। किशोरों को औषधियों, एल्कोहल, धूम्रपान, खैनी आदि की लत लगाना भी सामान्य बात है। विज्ञापनों, उत्सुकता, समकक्षों का दबाव, कुंठा एवं अवसाद तथा स्वतंत्रता की अनुभूति शारीरिक, मानसिक तथा वैदिक निष्पादन में वृद्धि का झूठा विश्वास इस प्रकार की लत लगने के कुछ मुख्य कारण हो सकते हैं।

सामाजिक एवं नैतिक निहितार्थ (Social and Moral Implications)

किशोरावस्था शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य निर्माण का तथा वयस्क जीवन के लिए तैयारी का काल होता है। इस वय में व्यक्ति अपने पारिवारिक परिवेश से बाहर निकलकर शेष संसार के धर्म में अपनी स्थिति निर्धारित

करने का प्रयास आरंभ करता है। इसके साथ इसका क्रियात्मक एवं मनोवैज्ञानिक रूपांतरण होने लगता है, और नैतिकता के उच्चतर स्तरों के प्रति जागरूक होने लगता है। इस प्रकार स्वस्थ युवावस्था के लिए स्वस्थ किशोरावस्था का होना अत्यावश्यक है।

22.7 मानसिक स्वास्थ्य (Mental Health)

शरीर क्रियात्मक स्वास्थ्य एवं सामाजिक प्रभावशीलता के लिए मानसिक स्वास्थ्य महत्त्वपूर्ण है। इसमें मानसिक महत्त्वाकांक्षाओं, इच्छाओं एवं विचारों को संतुलित रखने तथा जीवन की वास्तविकताओं का सामना करने एवं उन्हें स्वीकार करने की क्षमता शामिल है। इसके विपरीत, मानसिक रोग की दशा में व्यक्ति समाज से सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाता है। उदाहरणार्थ, एकांतप्रियता समाज से स्वस्थ अलगाव है, जबकि अवसाद एक अस्वस्थता है।

मानसिक रोगों में निम्नलिखित लक्षण पाए जाते हैं: (i) अवसाद, (ii) अनिद्रा (नींद न आना) अथवा अतिनिद्रा, (iii) बाध्यकारी क्रियाएं, (iv) अनावश्यक भय, (v) आत्महत्या के गंभीर विचार, (vi) अनावश्यक डर, (vii) स्मृति का आंशिक अथवा पूर्ण लोच, (viii) आत्मविनाशक व्यवहार जैसे, अत्यधिक जुआ खेलना, शराब पीना, औषधि दुरूपयोग, अधिक भोजन करना एवं भोजन नियमन, (viii) भ्रांति (असत्य विश्वास) एवं विभ्रम एवं (x) दिन-प्रतिदिन के रोजगार एवं सामाजिक आचार में अक्रियता। **विभ्रय** एवं **व्यक्ति निष्ठा** संवेदिक बोध संबंधी विकार हैं, जिसमें बाह्य उद्दीपनों की अनुपस्थिति में संवेदिक बोध होता है।

मनोवैज्ञानिक विकृतियां (Psychological Disorders) इनमें मनोविकृति एवं तंत्रिका विकृति शामिल हैं। मनोविकृति में वास्तविकता के विकृत अनुभव के कारण उत्पन्न गंभीर मानसिक असंतुलन होता है। इसके विपरीत, तंत्रिकाविकृति विअनुकूलन की आयत है। महत्त्वपूर्ण मानसिक विकार निम्नलिखित हैं :

(i) ***चिंता विकृतियां*** : इनमें कई भिन्न प्रकार की विकृतियां आती हैं। स्नायवीय तनाव तब उत्पन्न होता है जब तनावपूर्ण स्थितियों में व्यक्ति अति प्रतिक्रिया करता है। इस दशा में कई अप्रिय शारीरिक लक्षण उत्पन्न होते हैं, जैसे अतिधड़कन, पसीना आना, मितली आना, कंपकंपी, अतिसार तथा मांसपेशीय तनाव। शैशवावस्था एवं किशोरावस्था में विलगाव तनाव विकृति एवं विद्यालयभीति सामान्य रूप से पाए जाने वाली तनाव विकृतियां हैं।

(ii) ***सनक-बाध्यकारी विकृतियां*** : इन विकृतियों में व्यक्ति जाग्रत अवस्था में भी पूर्णतः अक्षम हो जाता है। प्रभावित व्यक्तियों में अत्यधिक सम एवं बाध्यकारी मनोवृत्ति परिलक्षित होती है। बाध्यकारी मनोशक्ति की दशा में व्यक्ति न चाहते हुए भी किसी कार्य या विचार के क्रियान्वयन के लिए विवश होता है। हिंसा, जीवाणुओं की धूल से संक्रमण की चिंता एवं अनवरत संदेह सामान्य रूप से पाए जाने वाली **सप्रक** हैं।

(iii) ***ध्यान-न्यूनता विकृति*** : यह मानसिक विकृति बच्चों में पाई जाती है, और यह लड़कियों की अपेक्षा लड़कों मे अधिक पाई जाती है। इस विकृति के फलस्वरूप लड़कों में कम उपलब्धि व्यवहार संबंधी समस्याएं तथा अन्य बच्चों द्वारा नापंसद किए जाने की प्रकृति पाई जाती है।

(iv) ***चित्तवृति विकार*** : इसमें कभी-कभी उच्च एवं निम्न चित्तवृति, अर्थात् प्रसन्नता एवं अवसाद, के दौरे पड़ते हैं। **अवसाद** में उदासी, निराशा, स्वाभिमान में कमी, रुचि ऊर्जा एवं एकाग्रता में कमी तथा निद्रा एवं भूख के पैटर्न में परिवर्तन परिलक्षित होते हैं। अवसाद का कारण परिवार के सदस्य की मृत्यु, परीक्षा या साक्षात्कार में असफलता अथवा नौकरी छूटना हो सकता है। यह विकार द्विध्रुवीय होता है, अर्थात् अवसाद की दशा के बाद अत्यधिक उत्तेजन एवं क्षति क्रिया, जैसे बिना रुके तेजी से बात करना, एक ही समय कई काम हाथ में लेना, आदि की दशा आती है। इसके अंतर्गत अवसाद आंतरिक जैवरासायनिक या आनुवंशिक कारकों से उत्पन्न होता है, इसके लक्षण निम्नलिखित हैं ; आलस्य, आत्मघृणा, थकान, त्रुटिपूर्ण नींद पैटर्न एवं अनियंत्रित रूदन।

(v) ***खंडित मानसिकता*** : इस दशा के लक्षण हैं (क) वैचारिक विकृति, (ख) पूर्णतः अनुपयुक्त समय पर रोना या हंसना, (ग) बहुधा खंडित विक्षुब्ध मानसिकता एवं (घ) असंबद्ध एवं बेतुका व्यवहार जो एक सप्ताह अथवा इससे अधिक समय तक रह सकता है। इससे प्रभावित व्यक्ति भ्रांति एवं श्रव्य विभ्रम से भी पीड़ित हो सकते हैं, और ये साधारणतया कामों को करने में असमर्थ हो सकते हैं।

(vi) ***सीमारेखा व्यक्तित्व विकृति*** : यह एक भावनात्मक अस्थिर व्यक्तित्व का विकार है। इसके लक्षण हैं आवेगशीलता, अननुमेय व्यवहार तथा दूसरों से टकराव। इस विकार को विशिष्ट व्यावहारिक, भावनात्मक एवं संज्ञानात्मक अस्थिरता पैटर्नों तथा विनियमनों के आधार पर पहचाना जा सकता है। ये व्यक्ति अतिप्रतिक्रियाशील होते हैं, और इन्हें अवसाद, तनाव एवं चिड़चिड़ेपन के दौरे पड़ते हैं। इन्हें अन्य व्यक्तियों से संबंध तीव्र किंतु सरलतापूर्वक त्याज्य नहीं होते हैं। ये व्यक्ति बहुधा अपने को क्षति पहुंचाने, विकृत करने या आत्महत्या तक का प्रयास करते हैं। ये एक खालीपन अनुभव करते हैं, और इन्हें अपने प्रति कोई भावना नहीं होती है।

व्यसनिक विकार (Addictive Disorders)

व्यसनिक विकार वह दशा है, जिसमें शरीर में किसी मनोक्रियाशील पदार्थ की लगातार उपस्थिति आवश्यक हो जाती है। **मनोक्रियाशील औषधियों** में स्नायुतंत्र की क्रियाओं को परिवर्तित करने की क्षमता होती है। अफीम जैसे संवेदन मंदक, मनोचालक उद्दीपक जैसे कोकेन, एंफीटामीन (ऐंड्रेनलिन का संश्लिष्ट समरूप), कैफीन एंव निकोटीन, उपशामक एंव प्रतिअवसादक, एल्कोहल, विभ्रमकारी जैसे लाइसर्जिक अम्ल डाइएथिलामाइड (LSD), गांजा-भांग एवं फेनसाइक्लिडीन आदि दुरुपयोग की जाने वाली औषधियों के कुछ उदाहरण हैं। ये औषधियाँ साधारणतया अवसाद, अनिद्रा जैसे रोगों से पीड़ित व्यक्तियों को राहत देने के लिए उपयोग की जाती हैं। लेकिन जब इनका औषधि के रूप में उपयोग न करके ऐसी मात्रा, सांद्रता अथवा बारंबारता में उपयोग किया जाता है, जिससे उपयोगकर्ता के शरीर में शारीरिक क्रियात्मक एवं मनोवैज्ञानिक प्रकार्यों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, तो इसे **औषधि दुरुपयोग** कहा जाता है।

दुरुपयोग की जाने वाली प्रमुख दवाओं एवं उनके प्रभावों को सारणी 22.1 में दिया गया है। इन सभी औषधियों का एक सर्वनिष्ठ गुण है इनकी लत पड़ना। उपशामक एवं प्रशांतक पदार्थ मस्तिष्क की क्रिया को घटाते हैं, जिससे शांति एवं नींद आने की अनुभूति होती है। अधिक मात्रा में लेने पर नींद भी आ जाती है। **अफीम** से दर्द का शमन, तनाव एवं उत्कंठा में कमी, आलस्य एवं कुशलता की अनुभूति होती है। अफीम की लत पड़ने पर वजन एवं काम में रुचि में कमी आती है।

उद्दीपकों द्वारा चैतन्यता एवं क्रियाशीलता में वृद्धि होती है और ये उत्तेजना भी पैदा कर सकते हैं। इन दवाओं पर मनोवैज्ञानिक निर्भरता हो सकती है। **विभ्रमकारी पदार्थ**

सारणी 22.1 मनोक्रियाशील औषधियों के प्रमुख समूह, उनके प्रभाव एवं औषधीय उपयोग

औषधि के प्रकार	उदाहरण	प्रभाव	औषधीय उपयोग
उपशामक एवं प्रशांतक	बेंजोडाएजीपीन (जैसे, वैलियम), बार्बिचुरेट	मस्तिष्क क्रिया में कमी, शांति, शिथिलता एवं उनींदापन, तथा गहन निद्रा (अधिक मात्रा में लेने पर)	निद्राजनक, प्रतिचिंता आदि
ओपियेट नर्कोटिक	अफीम, मॉर्फीन, हेरोइन, पेथिडीन, मेथाडोन	मस्तिष्क प्रकार्य में कमी, तीव्र दर्द (शारीरिक एवं मानसिक) से अस्थायी आराम	पीड़ाहारी
उद्दीपका	कैफीन (अतिमृदु) ऐंफीटामीन (डेक्सैंफी टामीन) कोकेन एवं इनसे व्युत्पन्न नॉवैकेन	स्नायु तंत्र का उद्दीपन व्यक्ति को अधिक जाग्रत, सावधान एवं सक्रिय बनाना तथा उत्तेजना उत्पन्न करना	ध्यान-न्यूनता, नार्कोलेप्सी भार नियंत्रण
हालूसीनोजन	एल.एस.डी., मेस्कैलीन, सिलोसाएबिन, चरस, गांजा भांग, हशीश	विचारों एवं भावनाओं में परिवर्तन	कोई नहीं

व्यक्ति के विचारों, भावों एवं दृष्टिकोणों में परिवर्तन कर सकते हैं। इनके द्वारा उत्पन्न संवेग प्रिय अथवा अधिकार, अप्रिय हो सकते हैं। इनमें LSD जैसी कुछ दवाएं चिरकालिक मनोविकार तथा केंद्रीय स्नायु तंत्र को क्षति पहुंचा सकती हैं। किसी नशीली औषधि के लगातार एवं लंबी अवधि तक दुरुपयोग (drug dependence) करने पर व्यक्ति के दृष्टिकोण तथा चैतन्यता में परिवर्तन हो सकता है।

जब कोई नशों का आदी उस नशीली औषधि को लेना रोक देता है (*परिवर्तन*) तो उसका शरीर सामान्यतः प्रकार्य करना बंद कर देता है (*शारीरिक निर्भरता*)। इससे कई अप्रिय प्रत्याहारीय शारीरिक लक्षण एवं प्रतिक्षेप उत्पन्न होते हैं। ये लक्षण मंद कंपन से लेकर मरोड़ तीव्र आलोड़न, मूर्छा तक हो सकते हैं, यह मुख्य रूप से नशीली दवा पर निर्भर होता है। कुछ मामलों में ये लक्षण काफी तीव्र हो सकते हैं, और इनसे जीवन तक को खतरा हो सकता है। इस दशा में प्रत्याहार के दौरान व्यक्तियों को चिकित्सकीय पर्यवेक्षण की आवश्यकता पड़ सकती है।

जब किसी व्यक्ति को किसी औषधि से संबंधित उद्दीपन, जैसे सिगरेट के धुएं की गंध, की अनुक्रिया में उस औषधि के सेवन की तीव्र इच्छा होती है तो इसे मनोवैज्ञानिक निर्भरता कहते हैं। किसी औषधि के उपयोग को अचानक बंद करने पर भी उसके सेवन की तीव्र इच्छा होती है। कुछ दवाओं के लिए केवल शारीरिक निर्भरता होती है, जबकि अन्य में शारीरिक एवं मनौवैज्ञानिक दोनों ही प्रकार की निर्भरता उत्पन्न होती है। सामान्यतया शारीरिक निर्भरता की तुलना में वे अधिक कठिन होती हैं।

दुरुपयोग की जाने वाली औषधियों को बहुधा एल्कोहल या किसी अन्य औषधि, जैसे इंसुलिन, ऐस्पिरिन आदि के साथ लिया जाता है। ऐसा करने पर बहुधा अधिक उपशामन, कुछ मामलों में औषधि के प्रभाव में कमी, और कभी-कभी उच्च रक्त चाप जैसी जटिलताएं हो सकती हैं (सारणी 22.2)।

साधारणतया सुसमायोजित, संतुष्ट एवं प्रसन्न व्यक्तियों द्वारा दुरुपयोग नहीं किया जाता है। औषधि दुरुपयोग ऐसे लोगों में पाया जाता है जो तनाव में रहते हैं और असुरक्षित महसूस करते हैं। ऐसे लोग अपने से असंतुष्ट होते हैं, और काल्पनिक व्यक्तित्व अपनाना चाहते हैं। आधुनिक जीवन में समस्याएं एवं तनाव अधिकाधिक व्यापक होते जा रहे हैं। अतः लोगों को समस्याओं एवं तनावों का सामना करने का अभ्यस्त होना चाहिए, एवं निराशाओं तथा असफलताओं को जीवन का सामान्य अंग मानना चाहिए। समस्याओं की चर्चा अपने परिवार के सदस्यों तथा मित्रों के साथ करनी चाहिए और उनके समाधान का प्रयास करना चाहिए ना कि उनसे घबरा कर औषधि या एल्कोहल का उपयोग करना चाहिए।

सारणी 22.2 : एल्कोहल तथा अन्य दुरुपयोग की जाने वाली औषधियों की अन्य सामान्य औषधियों से परस्पर क्रिया

औषधि	प्रभाव
एल्कोहल एवं अन्य अवसादक जैसे बार्बिचुरेट	अवसादन प्रभाव में नाटकीय वृद्धि
एल्कोहल + प्रतिहिस्टैमीन (सामान्यतया अत्यल्प अवसादन प्रभाव)	तीव्र उनींदापन
एल्कोहल + वैलियम	अवसादन प्रभाव में तीव्र बहुधा नाटकीय, वृद्धि
एल्कोहल + गांजा-भांग या हशीस	समन्वय में कमी, प्रतिक्रिया-काल में वृद्धि क्षीण निर्णयन
एल्कोहल + ऐस्पिरिन	जठरीय श्लेष्मा को क्षति के खतरे में वृद्धि
बैंजोडाइएजोपीन + बार्बिचुरेट	उपशामन में वृद्धि
एंफीटामीन + इंसुलिन	इंसुलिन के प्रभाव में कमी।
निकोटीन + कोकेन	हृदयसंवहनी प्रभाव में वृद्धि
कोकेन + प्रतिअवसादक	उच्च रक्तचाप

22.8 जनसंख्या एक संसाधन के रूप में (Population as a Resource)

मानव संसाधन का तात्पर्य मानव की उन क्षमताओं से है, जिनसे वह उपयोगी उत्पाद एवं सेवाएं सृजित करता है। ये हमारे सामाजिक एवं भौतिक परिवेश के अद्वितीय घटक होते हैं। मानव संसाधन अत्यंत महत्त्वपूर्ण होते हैं, क्योंकि वे बौद्धिक, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक संसाधनों का सृजन करते हैं। अतः स्वस्थ, सक्षम भावी पीढ़ी किसी राष्ट्र के विकास एवं समृद्धि की प्रथम एवं सबसे महत्त्वपूर्ण पूर्वावश्यकता है। मानव न केवल संसाधनों का सृजन कर सकता है, बल्कि वह वर्तमान संसाधनों के संरक्षण का प्रकार्य भी करता है। संरक्षणात्मक प्रकार्य केवल मनुष्यों द्वारा ही किया जा सकता है, क्योंकि केवल यही प्राणी जाति विवेकपूर्ण चिंतन एवं कार्य कर सकती है। अतः मानव संसाधन ही प्राकृतिक संसाधनों के प्रतिपालनीय अधिकतम उपयोग को सुनिश्चित करता है।

सारांश

पिछली कुछ शताब्दियों के दौरान जनसंख्या में त्वरित चरघातों की वृद्धि होती रही है। जनसंख्या वृद्धि दर किसी देश के विकास के स्तर पर निर्भर होती है। आयु-लिंग पिरामिड से जनसंख्या में आगे होने वाली वृद्धि के बारे में महत्त्वपूर्ण सूचना मिलती है। चिकित्सा विज्ञान में प्रगति एवं सुधरी स्वच्छता से विकसित देशों में मृत्यु दर घटी है। औद्योगीकरण एवं विकास से उर्वरता में कमी आती है। इन दोनों प्रक्रियाओं से विकसित देशों में जनसांख्यिकीय संक्रमण स्थापित हो चुका है।

विकास से घटती दर जीवन में सहायक प्राकृतिक तंत्रों को खतरा नहीं होना चाहिए। मानव जनसंख्या को एक संसाधन के रूप में समझना चाहिए। किशोरावस्था में शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य का विकास होता है। स्वस्थ, धनी एवं संपन्न राष्ट्र का निर्माण केवल सक्रिय, ऊर्जावान युवा वर्ग द्वारा ही किया जा सकता है। किशोरावस्था के दौरान व्यक्तियों को कई शारीरिक एवं मानसिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। जनसंख्या संसाधन तभी बन सकती है, जब इसके सदस्य मानसिक एवं जननीय रूप से स्वस्थ हों।

अभ्यास

1. वार्षिक औसत वृद्धि दर क्या होती है?
2. द्विगुणनकाल क्या होता है?
3. पूर्ण उर्वरता दर जनसंख्या वृद्धि दर को कैसे प्रभावित करती है?
4. प्रत्येक युगल को केवल दो बच्चे पैदा करने के लिए प्रोत्साहित करने का मूल उद्देश्य क्या है?
5. अशोधित जन्म दर एवं अशोधित मृत्यु दर की संक्षिप्त व्याख्या कीजिए।
6. जनसांख्यिकीय संक्रमण क्या है?
7. अप्रवास एवं उत्प्रवास में अंतर बताइए।
8. किसी जनसांख्यकीय आयु-लिंग संरचना को पिरामिड चित्र में कैसे प्रदर्शित कर सकते हैं?
9. मानव जनसंख्या विस्फोट के मूल कारण क्या हैं?

10. प्रतिपालनीय विकास की परिभाषा दीजिए।

11. सही या गलत बताइए।

    (क) किशोर बहुधा उत्सुकता एवं समकक्षों के दबाव के कारण औषधियों का दुरुपयोग करते हैं।

    (ख) निकोटीन उपशामक है।

    (ग) औषधि निर्भर होने के बाद संबंधित औषधि से परहेज करने पर प्रत्याहार लक्षण उत्पन्न होते हैं, लेकिन तीव्र लालसा नहीं होती है।

    (घ) एल.एस.डी. एक विभ्रमकारी पदार्थ है।

    (ङ) युवावस्था किशोरावस्था से पहले आती है।

12. मानसिक रोग के कम से कम पांच लक्षण बताइए।

13. मनोविकार एवं स्नायुविकार में अंतर बताइए।

14. किशोरावस्था की पांच सामान्य समस्याएं बताइए।

15. टिप्पणी लिखिए :

    (क) कुल उर्वरता दर (ख) औषधि दुरुपयोग

    (ग) विस्थापन दर (घ) चिंता विकार

    (ङ) खंडित मनोदशा

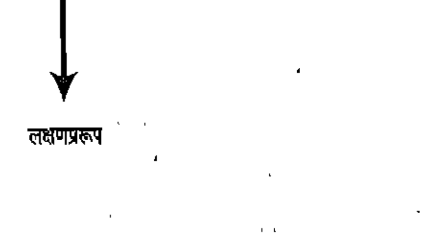
अध्याय 23

आनुवंशिक सुधार एवं रोग नियंत्रण

मानव अपना पोषण पौधों एवं जंतुओं से प्राप्त करते रहे हैं। अब वह सूक्ष्मजीवों को भी भोजन के रूप में उपयोग करने लगे हैं। आरंभ में, मानव जंगली जंतुओं का शिकार करते थे और जंगली पौधों के फल एकत्र करते थे। बाद में मानव ने कुछ पौधों की प्रजातियों को अपनी देख-रेख में उगाना शुरू किया। इसके साथ ही, उसने कुछ जंतुओं को अपने संरक्षण में पालना भी आरंभ किया। ऐसा विश्वास किया जाता है कि कृषि का आरंभ 10,000 वर्षों से कुछ पहले हुआ था। किसी स्पीशीज़ को मानव प्रबंध में लाने को **ग्राम्यन** कहा जाता है। खाद्य उत्पादन में वृद्धि के लिए की जाने वाली सभी क्रियाओं में ग्राम्यन सबसे पहला चरण होता है। पिछली कक्षाओं में आप फसल उगाने तथा प्राणियों के जनन के विषय में अध्ययन कर चुके हैं। इस अध्याय में आप आनुवंशिक सुधार के साथ फसलों एवं प्राणियों में प्रमुख रोगों के नियंत्रण के विषय में अध्ययन करेंगे जो कि अन्न उत्पादकता की वृद्धि एवं इसके गुणवत्ता में सुधार के लिए उपयोगी है।

23.1 लक्षणप्ररूप (Phenotype)

किसी फसल अथवा जंतु का लक्षणप्ररूप मुख्य रूप से उसके अपने जीनप्ररूप तथा उस वातावरण, जिसमें उसे रखा गया है, पर निर्भर होता है (चित्र 23.1)। किसी व्यष्टि या किस्म के आनुवंशिक संघटन, अर्थात् उसमें उपस्थित सभी जीनों के समूह, को उसका **जीनप्ररूप** कहा जाता है। इसके विपरीत, **वातावरण** उन सभी जैविक एवं अजैविक कारकों के समूह को कहते हैं, जो संबंधित व्यष्टि या किस्म के अतिरिक्त होते हैं, और उसे प्रभावित करते हैं। किसी किस्म की उत्कृष्ट उत्पादन क्षमता उसके जीनप्ररूप द्वारा निर्धारित होती है। लेकिन वातावरण में इस क्षमता का अभिव्यक्त हो पाना अथवा न हो पाना उस वातावरण विशेष पर निर्भर होता है, जिसमें यह किस्म उगाई गई होती है। इसे हम एक सरल उदाहरण के द्वारा स्पष्ट कर सकते हैं। आपकी कक्षा के छात्रों की त्वचा के रंग में भिन्नता उपस्थित होगी। यह भिन्नता उनके जीनप्ररूपों में अंतर के कारण हो सकती है। लेकिन किसी छात्र विशेष की त्वचा रंग में भी भिन्नता होती रहती है। जब कोई व्यक्ति अधिक समय तक धूप में रहता है तो उसकी त्वचा का रंग अपेक्षाकृत गहरा हो जाता है। इसके विपरीत, जब वह धूप में अपेक्षाकृत कम समय तक रहता है तो उसकी त्वचा का रंग अपेक्षाकृत हल्का हो जाता है। त्वचा के रंग में यह परिवर्तन वातावरणीय प्रभावों के कारण होता है (इस उदाहरण में सूर्य के कारण)। इस प्रकार लक्षणप्ररूप के परिवर्धन में वातावरण तथा जीनप्ररूप दोनों की महत्त्वपूर्ण



चित्र 23.1 जीनप्ररूप, वातावरण, एवं निष्पादन के संबंधों का एक सरलीकृत निरूपण। निष्पादन को उपज अथवा सामान्य अर्थ में किसी लक्षणप्ररूप को समझा जा सकता है

भूमिका रहती है। खाद्य उत्पादन में वृद्धि के लिए स्पष्टतः फसलों एवं जंतुओं के जीनप्ररूपों तथा उनके वातावरणों दोनों में ही उपयुक्त सुधार करना अनिवार्य होगा।

उन्नत प्रबंधन विधियां (Improved management Practices)

फसल उत्पादन एवं पशुपालन के बारे में आप पहले पढ़ चुके हैं। पौधे कार्बन एवं ऑक्सीजन वायु से, हाइड्रोजन जल से, एवं नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटैशियम, कैल्शियम, मैग्नीशियम, सल्फर, मैंगनीज, लोहा, बोरॉन, जस्ता, तांबा, मॉलीब्डेनम एवं क्लोरीन मृदा से प्राप्त करते हैं। पौधों को उपयुक्त मात्रा में विभिन्न खनिज पोषक उपलब्ध कराने के लिए खादों एवं उर्वरकों का समुचित मात्रा में उपयोग करना जरूरी होता है। इसके अलावा उपयुक्त मात्रा में जल की आपूर्ति के लिए सिंचाई की जाती है। अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए फसलों में रोगों एवं खर-पतवारों का समुचित नियंत्रण भी जरूरी होता है।

आप पशुओं के कुछ महत्त्वपूर्ण रोगों एवं उनके नियंत्रण की विधियों का अध्ययन कर चुके हैं। आपको यह स्पष्ट होगा कि फसल एवं पशु उत्पादन अपने वातावरण को रूपांतरित करते हैं। इस अध्याय में भी हम वातावरण के एक प्रमुख कारक, फसल एवं जंतु रोगों के नियंत्रण, की चर्चा कुछ अधिक विस्तार से करेंगे।

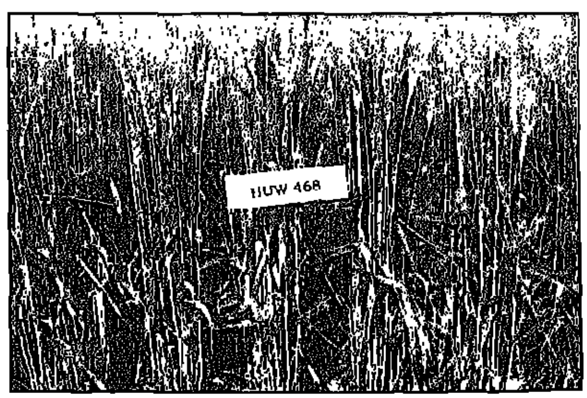
जीनप्ररूप में सुधार (Improvement in Genotype)

किसी स्पीशीज़ के ग्राम्यन के बाद मनुष्य ने उसके उन लक्षणों के लिए वरण किया होगा, जो उसके स्वयं के लिए उपयोगी थे। उदाहरण के लिए, जंगली स्पीशीजों के पौधे अधिक संख्या में किंतु छोटे आकार के बीज उत्पादित करते हैं। लेकिन मनुष्य अपेक्षाकृत बड़े फलों एवं बीजों को पसंद करते हैं। जंगली पौधों के फल परिपक्व होने पर विशीर्ण हो जाते हैं, लेकिन यह लक्षण मानव के लिए उपयोगी नहीं है। अतः ग्राम्यित स्पीशीज़ों में मानव ने बड़े फलों एवं बीजों, तथा अविशरणीय फलों के लिए वरण किया होगा। इस प्रकार मानव द्वारा वरण किए गए लक्षण प्रकृति द्वारा वरण किए जाने वाले लक्षणों से भिन्न होते हैं। किसी जीव की आकारकीय, संरचनात्मक अथवा व्यवहारीय विशेषता को उसका **लक्षण** कहते हैं। उदाहरणार्थ, दानों की उपज आदि फसलों के महत्त्वपूर्ण लक्षण होते हैं। किसी समष्टि में उपस्थित विभिन्न जीनप्ररूपों की जनन दर में भिन्नता को **वरण** कहते हैं।

लगातार वरण के कारण हमारी फसलें अपनी जंगली स्पीशीज़ों की तुलना में काफी भिन्न हो गई हैं। इन्हीं परिवर्तनों के कारण फसलें मानव के लिए काफी उपयोगी भी हो गई हैं। इसके विपरीत, फसलों से संबंधित जंगली जातियां खर-पतवार हैं, और ये कृषि में बाधक होती हैं। जब किसी जीव के जीनप्ररूप में इस प्रकार के परिवर्तन किए जाते हैं, जिनसे वह जीव मानव के लिए अधिक उपयोगी हो जाता है, तो इसे **प्रजनन** कहा जाता है। **पादप प्रजनन** द्वारा फसलों के जीनप्ररूप में सुधार किया जाता है, जबकि जंतु प्रजनन में पालतू जंतु स्पीशीज़ों के जीनप्ररूप में सुधार किया जाता है।

23.2 उन्नत किस्में (Improved varieties)

किसी किस्म के सभी पौधों का जीनप्ररूप एक समान अथवा आपस में काफी मिलता-जुलता होता है। इसके साथ ही, कोई किस्म दी गई फसल की अन्य किस्मों से एक अथवा एक से अधिक लक्षणों में स्पष्ट रुप से भिन्न होती है, जिससे वह सरलतापूर्वक पहचानी जा सकती है। लेकिन इसे किस्म तभी कहा जाता है जब यह किसी सक्षम समिति द्वारा किस्म के रूप में विमोचित की गई होती है। कोई भी **उन्नत किस्म** उसी फसल के पहले की किस्मों की तुलना में एक अथवा अधिक लक्षणों में उत्कृष्ट होती है। जैसा आप पहले पढ़ चुके हैं, किसी सुधरी किस्म के महत्त्वपूर्ण लक्षण कई होते हैं, जैसे उपज, गुणवत्ता, जल्दी पकना, रोग एवं कीटरोधिता आदि। प्रत्येक सुधरी किस्म एक सक्षम समिति द्वारा मान्यता प्राप्त

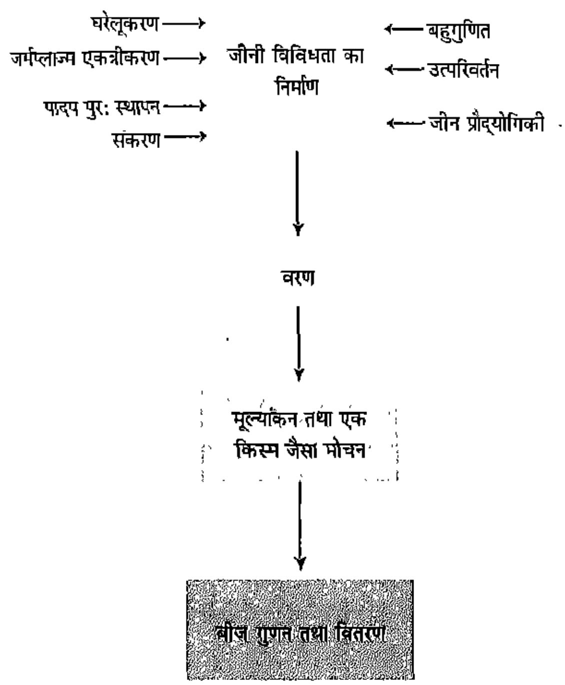


चित्र 23.2 *गेहूं की एक उन्नत किस्म (HUW 486) का छायाचित्र (डॉ. अरूण कुमार जोशी, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी के सौजन्य से)*

होती है। यह मान्यता इसके उपज आदि लक्षणों के विस्तृत परीक्षणों के परिणामों के आधार पर दी जाती है। लेकिन परीक्षण के पहले नई सुधरी किस्मों का विकास योजनाबद्ध प्रजनन द्वारा किया जाता है।

23.3 नई किस्मों का विकास (Development of new Varieties)

नई किस्मों का विकास एक लंबी एवं कठिन प्रक्रिया होती है। उदाहरणार्थ, गेहूं की HUW 468 किस्म के विकास में बारह वर्ष लगे थे। इसके निम्नलिखित प्रमुख चरण होते हैं: (i) आनुवंशिक विविधता का उत्पादन, (ii) वरण, (iii) मूल्यांकन एवं किस्म के रूप में विमोचन तथा (iv) बीज गुणन एवं किसानों में वितरण (चित्र 23.3)। इन चरणों का संक्षिप्त वर्णन आगे के उपखंडों में किया गया है।



चित्र 23.3 पादप प्रजनन की विभिन्न क्रियाएं

आनुवंशिक विविधता का उत्पादन (Creation of Genetic Variation)

प्रजनन के निम्नलिखित दो सबसे महत्त्वपूर्ण चरण होते हैं: (i) आनुवंशिक विविधता का उत्पादन एवं (ii) वरण।

वरण सफलता के लिए आनुवंशिक विविधता का उपस्थित होना अनिवार्य है। वरण के द्वारा ही फसलों के लक्षणों में सुधार होता है। किसी फसल की दी गई समष्टि के विभिन्न व्यष्टियों में किसी लक्षण के लिए भिन्नता ही उस लक्षण की विविधता होती है। उदाहरण के लिए, अपनी कक्षा के प्रत्येक छात्र की लंबाई पर ध्यान दीजिए । छात्रों की लंबाई में भिन्नता ही इस कक्षा के छात्रों की लंबाई में **विविधता** है। इस (वस्तुत: किसी भी) विविधता का एक भाग आनुवंशिक कारणों से उत्पन्न होता है। अर्थात् यह विविधता विभिन्न व्यष्टियों के जीनप्ररूपों में भिन्नता के कारण उत्पन्न होती है। विविधता के इस अंश को **आनुवंशिक विविधता** कहते हैं। आनुवंशिक विविधता वंशागत होती है, और यह वरण में उपयोगी होती है। वंशागत विविधता एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में संप्रेषित होती है, और यह सदैव ही जीनप्ररूप के कारण होती है। विविधता का शेष भाग जीनप्ररूप के अलावा अन्य कारकों के कारण होता है। विविधता का यह भाग वातावरण के कारण होता है, वंशागत नहीं होता तथा वरण में उपयोगी नहीं होता है।

मान लीजिए कि हम चावल के दाने की लंबाई बढ़ाना चाहते हैं। यदि संसार के सभी धान के पौधे एक समान लंबाई के दाने उत्पादित करते हैं, तो हम लंबे दानों के लिए वरण कैसे कर सकेंगे? अत: किसी भी प्रजनन कार्यक्रम की सफलता मुख्य रूप से वांछित आनुवंशिक विविधता के उत्पादन पर निर्भर होती है। आनुवंशिक विविधता का उत्पादन निम्नलिखित कई विधियों से किया जा सकता है: (i) ग्राम्यन, (ii) जनन द्रव्य संग्रह, (iii) पादप पुर:स्थापन, (iv) संकरण, (v) बहुगुणिता, (vi) उत्परिवर्तन एवं (vii) आनुवंशिक इंजीनियरी।

ग्राम्यन से हमें नई फसलें प्राप्त होती हैं। मनुष्य ने पहले ही लगभग सभी उपयोगी पादप जातियों का ग्राम्यन कर लिया है। किंतु बहुत सी उपयोगी पादप जातियों का ग्राम्यन अभी भी हो रहा है। आनुवंशिक इंजीनियरी का विवरण अगले अध्याय में किया गया है। जननद्रव्य संरक्षण, पादप पुर:स्थापन, बहुगुणिता एवं उत्परिवर्तन का वर्णन आगे के उपखंडों में किया गया है।

संकरण आनुवंशिक विविधता उत्पादन की सबसे अधिक उपयोग में आने वाली विधि है। भिन्न जीनप्ररूप वाली व्यष्टियों अथवा क्रमों के बीच संगम को **संकरण** कहते हैं। किसी **क्रम** के सभी व्यष्टि या पौधे एक ही जीनप्ररूप या वंशावली वाले होते हैं। संकरण में उपयोग किए जाने वाले पौधे या क्रमों को **जनक** कहा जाता है। जनकों का चयन बहुत ही सावधानी से किया जाता है, क्योंकि यह प्रजनन कार्यक्रम की

सफलता का आधार होता है। दो जनकों में से एक को मादा तथा दूसरे को नर जनक के रूप में उपयोग करते हैं। मादा जनक के फूलों के खुलने तथा उनके परागकोषों के फटने के एक दिन पहले ही उनके परागकोषों को सावधानीपूर्वक निकाल दिया जाता है। ऐसा करने से फूलों में स्वपरागण नहीं हो पाता। इसके बाद, नर जनक के फूलों से पराग एकत्रित करके मादा जनक के इन फूलों के वर्तिकाग्र पर डाल देते हैं। इन फूलों में बनने वाले बीज ही ***F1*** या **संकर बीज** होंगे। इन *F1* बीजों से प्राप्त अगली पीढ़ी, यानि *F2* पीढ़ी, तथा बाद की पीढ़ियों में विसंयोजन, स्वतंत्र अपव्यूहन तथा पुनर्योजन के कारण आनुवंशिक विविधता उत्पन्न होगी। इस आनुवंशिक विविधता का परिमाण एवं प्रकार संबंधित *F1* संकर के जनकों के बीच आनुवंशिक भिन्नता पर निर्भर होगा।

पादप प्रजनन में सबसे अधिक संकरणों में एक ही फसल की विभिन्न किस्मों को जनकों के रूप में उपयोग करते हैं। ऐसे संकरणों को **अंतराकिस्म संकरण** कहते हैं। कई बार फसलों का उनकी अन्य संबंधी स्पेसीज़ों से संकरण किया जाता है ऐसे संकरण **अंतराजातीय संकरण** कहे जाते हैं। अंतराजातीय संकरों का उत्पादन तथा उपयोग दोनों ही सामान्यतया काफी कठिन होता है। लेकिन संकरण पादप प्रजनन, विशेष रूप से रोग रोधिता प्रजनन, में महत्त्वपूर्ण होते हैं। कुछ अंतराजातीय संकरों का उपयोग किस्मों के रूप में भी किया जाता है। उदाहरणार्थ, गन्ने की सभी वर्तमान किस्में अंतरजातीय संकर हैं।

वरण (Selection)

पादप प्रजनन के दौरान केवल वरण किए गए पौधों के बीजों से ही अगली पीढ़ी उगाई जाती है। शेष पौधों को सामान्यतया छांट दिया जाता है। इस प्रकार, वरण के कारण ही किसी भी फसल के लक्षणों में सुधार होता है। अत: कोई सफलता मुख्य रूप से वरण की प्रभावशीलता पर निर्भर होती है। लेकिन वरण केवल तभी प्रभावशाली होता है, जब फसल में संबंधित लक्षण के लिए आनुवंशिक विविधता उपस्थित होती है।

हम चावल के दानों की लंबाई के उदाहरण पर पुन: विचार करेंगे। हम यह मान लेते हैं कि हमने संकरण द्वारा एक ऐसी समष्टि प्राप्त की है जिसमें दानों की लंबाई के लिए आनुवंशिक विविधता उपस्थित है। इस समष्टि में कुछ पौधों के दाने लंबे, कुछ के मध्यम लंबाई के तथा अन्य के दाने छोटे होंगे। अत: इस समष्टि के दानों की औसत लंबाई इस लक्षण के लिए उत्कृष्ट पौधों के दानों की लंबाई से काफी कम होगी। अब हम इस समष्टि से लंबे दानों वाले पौधों का वरण करते हैं, और इनके बीजों से एक नई उन्नत समष्टि बनाते हैं। इस समष्टि के दानों की औसत लंबाई मूल समष्टि की अपेक्षा काफी अधिक होगी। इस प्रकार, समष्टि में उपस्थित आनुवंशिक विविधता का उपयोग करके वरण एक नई एवं उन्नत समष्टि प्रदान करता है।

स्वपरागित फसलों में वरण : फसलों को मुख्यत: दो प्रमुख वर्गों में विभाजित किया जाता है: (i) स्वपरागित एवं (ii) परपरागित फसलें। जब किसी फूल द्वारा उत्पादित परागकण उसी फूल के वर्तिकाग्र पर पहुंचते हैं तो इसे **स्वपरागण** कहते हैं। लेकिन **परपरागण** में एक फूल द्वारा उत्पादित परागकण किसी अन्य फूल के वर्तिकाग्र पर पहुंचते हैं। स्वपरागित फसलों में परपरागण का परिमाण 5 प्रतिशत से कम होता है। स्वपरागण के कारण समयुग्मजता में तेजी से वृद्धि होती है। अत: स्वपरागित फसलों की समष्टियां अत्यधिक समयुग्मज होती हैं। ऐसी फसलों में वरण द्वारा अंतत: सर्वोत्तम समयुग्मज जीनप्ररूप या पौधे की प्राप्ति होती है, जिसे नई किस्म के रूप में उपयोग करते हैं। उदाहरण के लिए, चित्र 23.2 में दी गई गेहूं की किस्म HUW 468 एक शुद्धवंशक्रम है। ऐसी किस्मों को स्वपरागण द्वारा अनुरक्षित किया जाता है। किसान इन किस्मों के बीजों का स्वयं उत्पादन करके उन्हें कई सालों तक उगा सकते हैं। किसी स्वपरागित फसल के किसी समयुग्मज पौधे के स्वपरागण से प्राप्त संततियों को **शुद्धवंशक्रम** कहा जाता है। किसी भी शुद्धवंशक्रम के सभी पौधों का जीनप्ररूप एकसमान होता है। अत: किसी भी शुद्धवंश क्रम में उपस्थित विविधता सामान्यतया केवल वातावरण के कारण होती है। स्वपरागित फसलों की किस्में सामान्यतया शुद्धवंश क्रम होती हैं।

परपरागित फसलों में वरण : परपरागित फसलों की समष्टियां अत्यंत विषमयुग्मजी होती हैं। विषमयुग्मजता में कमी होने पर उनके निष्पादन में कमी आती है। अत: इन फसलों में समयुग्मज क्रमों का किस्मों के रूप में उपयोग नहीं किया जा सकता है। किसी परपरागित फसल की किसी भी समष्टि में कई भिन्न जीनप्ररूप उपस्थित होते हैं। इनमें से कुछ जीनप्ररूप उत्कृष्ट तथा शेष अपेक्षाकृत निकृष्ट होते हैं। इन फसलों में वरण का मुख्य उद्देश्य विषमयुग्मजता में कमी लाए बिना उत्कृष्ट जीनप्ररूपों की आवृत्ति में वृद्धि करना होता है। अत: वरण से प्राप्त नई समष्टि भी अत्यंत विषमयुग्मज होती है, और इसमें भी कई भिन्न जीनप्ररूप उपस्थित होते हैं। अत: परपरागित फसलों की समष्टियों में पीढ़ी-दर-पीढ़ी वरण जारी रख सकते हैं।

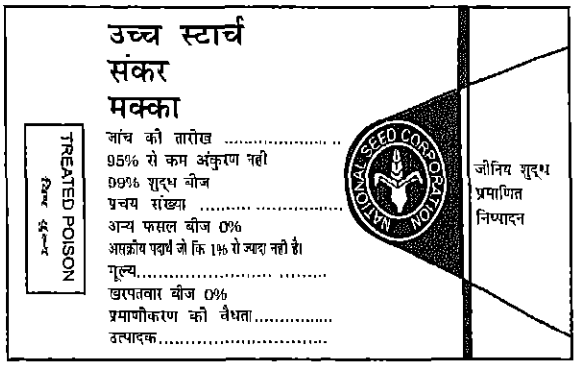
मूल्यांकन एवं किस्मों का विमोचन (Evaluation and Release of Varieties)

नए विकसित शुद्धवंश क्रमों, उन्नत समष्टियों एवं संकरों का उपज, गुणवत्ता, रोग एवं कीट रोधिता आदि के लिए विस्तृत मूल्यांकन किया जाता है। इसके बाद ही उनका नई किस्मों के रूप में विमोचन किया जाता है। कई प्रजनकों द्वारा विकसित शुद्धवंश क्रमों आदि का एक साथ कई स्थानों पर मूल्यांकन किया जाता है। इन मूल्यांकनों के लिए संपूर्ण देश को मृदा एवं जलवायु के आधार पर दो या दो से अधिक कृषि-जलवायु क्षेत्रों में बांटा गया है। इन क्षेत्रों की संख्या संबंधित फसल पर निर्भर होती है। प्रत्येक नए शुद्ध वंशक्रमों आदि का मूल्यांकन किसी एक कृषि-जलवायु क्षेत्र में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली के तत्त्वाधान में किया जाता है। प्रत्येक नए क्रम का मूल्यांकन कम से कम तीन वर्षों तक किया जाता है, और इनकी उपज, गुणवत्ता, रोग एवं कीट रोधिता के लिए निष्पादन की तुलना वर्तमान किस्मों तथा अन्य नए क्रमों आदि के निष्पादन से की जाती है। जब कोई नया क्रम वर्तमान किस्मों तथा अन्य नए शुद्धवंश क्रमों, सुधरी समष्टियों या संकरों से उत्कृष्ट होता है, तो उसे एक नई किस्म के रूप में विमोचित कर सकते हैं। इस शुद्ध वंशक्रम, सुधरी समष्टि या संकर का प्रजनक उसके विमोचन के लिए प्रस्ताव करता है। एक सक्षम समिति इस प्रस्ताव पर विचार करती है। यदि यह प्रस्ताव स्वीकार किया जाता है, तो इस नए शुद्ध वंश क्रम, सुधरी समष्टि या संकर को एक नाम दिया जाता है, और इसे एक नई किस्म के रूप में विमोचित कर दिया है। प्रत्येक नई किस्म की अधिसूचना सरकार द्वारा जारी की जाती है।

उन्नत बीज का गुणन (Multiplication of Improved Seed)

किसी नई किस्म का लाभ तभी प्राप्त होता है, जब उसे किसानों द्वारा उगाया जाता है। अत: प्रत्येक नई किस्म के बीज का गुणन जरूरी होता है, जिससे वह किसानों को उपलब्ध हो सके। पादप प्रजनन में, **बीज** का तात्पर्य पौधे के उस अंग से होता है, जिसका उपयोग फसल उगाने के लिए किया जाता है। अत: गेहूं, धान आदि के दाने, आलू के कंद, गन्ने के तने आदि बीज तभी कहे जाएंगे जब इनका उपयोग फसल उगाने के लिए किया जाएगा। किंतु जब इनका उपयोग भोजन या किसी अन्य रूप में किया जाता है, तो ये बीज नहीं कहे जाते हैं। किसी उन्नत किस्म के बीज को **उन्नत बीज** कहा जाता है। उन्नत बीज की शुद्धता एवं अंकुरण क्षमता उच्च होनी चाहिए। इसके साथ ही, इस बीज को खरपतवारों के बीजों तथा रोगों से मुक्त होना चाहिए।

किसी भी बीज विक्रेता के द्वारा अपने बीज का समुचित चिह्न करना जरूरी होता है। इस चिह्नक (चित्र 23.4) में बीजों के उपरोक्त (शुद्धता, अंकुरण क्षमता आदि) अभिलक्षणों से संबंधित तथा अन्य जरूरी जानकारी होनी चाहिए। इनके साथ ही, बीज की गुणवत्ता उसके चिह्नक में दी गई सूचना के अनुरूप होनी चहिए। बीज की गुणवत्ता को सक्षम एजेंसी द्वारा प्रमाणित कराया जा सकता है। ऐसे बीज को **प्रमाणित बीज** कहा जाता है। भारतवर्ष में बीज उत्पादन की प्रक्रिया को चुस्त एवं सक्षम बनाने के लिए राष्ट्रीय बीज निगम का गठन किया गया था। भारत में उन्नत बीजों के उत्पादन में रा.बी.नि. की केंद्रीय भूमिका बनी हुई है।



चित्र 23.4 राष्ट्रीय बीज निगम (NSC) द्वारा हाई-स्टार्च संकर मक्के के बीज के चिह्न के लिए उपयोग किया जाने वाला लेबल

23.4 जननद्रव्य संग्रह एवं संरक्षण (Germplasm Collection and Conservation)

किसी फसल और उससे संबंधित जातियों में उपस्थित सभी जीनों की सभी विकल्पियों को उस फसल का **जननद्रव्य** कहते हैं। किसी भी फसल के जननद्रव्य में निम्नलिखित पांच प्रकार के क्रम होते हैं:

(i) खेती की सुधरी किस्में,
(ii) वे सुधरी किस्में जिनका अब खेती के लिए उपयोग नहीं किया जाता,
(iii) पुरानी स्थानीय अथवा 'देशी' किस्में,
(iv) पादप प्रजनकों द्वारा उत्पादित क्रम, एवं
(v) फसलों की संबंधी जंगली स्पीशीजें।

उपरोक्त सभी प्रकार के क्रमों में प्रजनन में उपयोगी जीनों के वांछनीय विकल्पी उपस्थित होते हैं। वास्तव में, जननद्रव्य ही वह सामग्री होता है, जिससे उन्नत किस्मों का निर्माण किया जाता है। अत: किसी भी सफल प्रजनन के लिए एक उपयोगी जननद्रव्यों के संग्रह की सर्वप्रथम आवश्यकता होती है।

आदिम कृषि में उपयोग की जाने वाली प्रत्येक किस्म काफी विविधतापूर्ण होती थी। ये किस्में वास्तव में आनुवंशिक विविधता का भंडार होती थीं। लेकिन आधुनिक कृषि में सुधरी किस्मों का उपयोग किया जाता है। सुधरी किस्में पूरी तरह या लगभग समरूप होती हैं। इन समरूप किस्मों ने पुरानी विविधतापूर्ण किस्मों को लगभग विस्थापित कर दिया है। इसके साथ ही, कृषि क्षेत्र में विस्तार, उद्योगों तथा अन्य मानवीय क्रियाओं के कारण फसलों की जंगली स्पीशीजों का नाश हो रहा है। इन सभी के कारण आनुवांशिक विविधता, अर्थात् जननद्रव्य, का लोप हो रहा है। इस समस्या का सबसे प्रभावशाली समाधान जननद्रव्य संग्रह है।

जननद्रव्यों का संग्रह देश के विभिन्न क्षेत्रों और अन्य देशों से भी किया जाता है। जननद्रव्यों का अनुरक्षण सामान्यतया बीजों के रूप में कम तापमान पर भंडारित करते हैं। इन बीजों को समय-समय पर उगाते रहते हैं, और इस प्रकार प्राप्त नए बीजों का पुन: भंडारण करते हैं। बीजों को समय-समय पर इसलिए उगाते हैं, क्योंकि भंडारण समय के साथ बीजों की अंकुरण क्षमता में कमी आती जाती है। बीजों के रूप में जननद्रव्यों का अनुरक्षण सर्वाधिक लोकप्रिय एवं सुविधाजनक होता है। लेकिन फलवृक्षों के जननद्रव्य को प्रक्षेत्र में उगाए गए वृक्षों के रूप में अनुरक्षित करते हैं। ऐसे मामलों में, पादप ऊतक संर्वधन के उपयोग से जननद्रव्य को प्ररोह संवर्धन के रूप में परख नलिकाओं में भी अनुरक्षित कर सकते हैं।

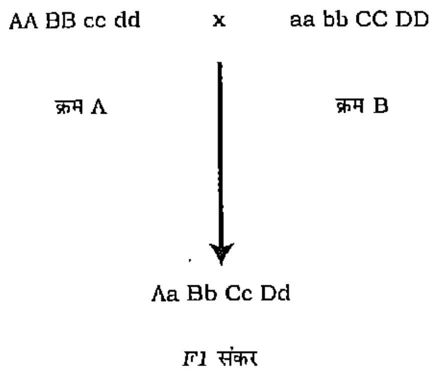
जब किसी स्पेसीज़ की किस्म, क्रम या समष्टि को एक क्षेत्र से किसी दूसरे ऐसे क्षेत्र में ले जाया जाता है, जहां इसके पहले उसे उगाया नहीं जाता रहा हो, तो इसे **पादप पुर:स्थापन** अथवा केवल **पुर:स्थापन** कहा जाता है। अन्य देशों से किए गए पुर:स्थापनों से महत्त्वपूर्ण जननद्रव्य प्राप्त होते हैं। इस प्रकार के पुर:स्थापनों से ही हमारी कई महत्त्वपूर्ण फसलें, जैसे आलू, टमाटर, फूलगोभी, अंगूर, अमरूद आदि, प्राप्त हुई हैं। पुर:स्थापनों से कई उन्नत किस्में भी प्राप्त हुई हैं। गेहूं की 'सोनोरा 64' एवं धान की 'ताइचुंग नेटिव 1' किस्में पुर:स्थापित किस्में हैं। भारत में हरित क्रांति का आरंभ इन्हीं बौनी किस्मों के द्वारा हुआ था। लेकिन अधिकांश पुर:स्थापनों का उपयोग प्रजनन कार्यक्रमों में किया जाता है, जैसे संकरण में जनकों के रूप में।

ध्यान देने योग्य है कि पुर:स्थापित जननद्रव्यों के साथ किसी क्षेत्र में नए खरपतवार, नाशी कीट एवं रोग भी आ सकते हैं। भारतवर्ष में पुर:स्थापन के साथ आने वाले खरपतवारों का एक उदाहरण *आर्जिमोन मेक्सिकाना* है। अत: खरपतवारों, नाशी कीटों एवं रोगजनकों की उपस्थिति ज्ञात करने के लिए सभी पुर:स्थापनों का सावधानीपूर्वक निरीक्षण किया जाता है। इस क्रिया को **संगरोध** कहते हैं। केवल उपरोक्त से मुक्त पुर:स्थानों के उपयोग की अनुमति दी जाती है, जबकि शेष को नष्ट कर दिया जाता है। देश में नए रोग जनकों का प्रवेश रोकने के लिए जंतुओं एवं मनुष्यों का भी संगरोध किया जाता है।

23.5 संकरओज एवं अंत:प्रजनन ह्रास (Heterosis and Inbreeding Depression)

दो ऐसी व्यष्टियों, जिनकी वंशावली में कोई उभयनिष्ठ पूर्वज हो, के बीच संगम को **अंत:प्रजनन** कहते हैं। अंत:प्रजनन का सबसे चरम रूप स्वनिषेचन या स्वपरागण होता है। अधिकांश परपरागित फसलों एवं जंतु स्पीशीजों में अंत:प्रजनन ह्रास पाया जाता है। लेकिन कई परपरागित फसलों एवं सभी स्वपरागित फसलों में अंत:प्रजनन ह्रास नहीं पाया जाता है। अंत:प्रजनन के कारण ओज में होने वाली कमी को **अंत:प्रजनन ह्रास** कहते हैं।

अंत:प्रजनन की सबसे उपयुक्त व्याख्या निम्नलिखित है: सभी जीनों की प्रभावी विकल्पियों का प्रभाव लाभकारी होता है। किंतु अधिकांश (शायद सभी) जीनों की अप्रभावी विकल्पियों का प्रभाव भिन्न-भिन्न कोटि में हानिकारक होता है। परपरागित फसलों के पौधे अत्यधिक विषमयुग्मज होते हैं। अत: इन पौधों में अधिकांश जीनों के अप्रभावी विकल्पी उपस्थित होते हैं। चूंकि ये अप्रभावी विकल्पी विषमयुग्मज अवस्था में होते हैं, अत: इनके हानिकारक प्रभाव अभिव्यक्त नहीं हो पाते हैं। लेकिन जब ऐसी समष्टि में अंत:प्रजनन होता है, तो समष्टि की समयुग्मजता में वृद्धि होती है। इसके कारण कई अप्रभावी विकल्पी समयुग्मज हो जाते हैं। अब इन समयुग्मज अप्रभावी विकल्पियों के हानिकारक प्रभाव अभिव्यक्त होंगे, और इससे ओज में कमी आएगी जिससे अंत:प्रजनन ह्रास होगा। चित्र 23.5 में प्रदर्शित क्रम A एवं B के ओज में अप्रभावी विकल्पियों c,d (क्रम A में), एवं b (क्रम B में) के समयुग्मज होने के कारण कमी होगी। इसके विपरीत, स्वपरागित फसलों में सभी विकल्पी जल्दी ही समयुग्मज हो जाते हैं। अत: वरण के कारण हानिकारक का समष्टि से लोप हो जाता है। परिणामस्वरूप, स्वपरागित समष्टियों



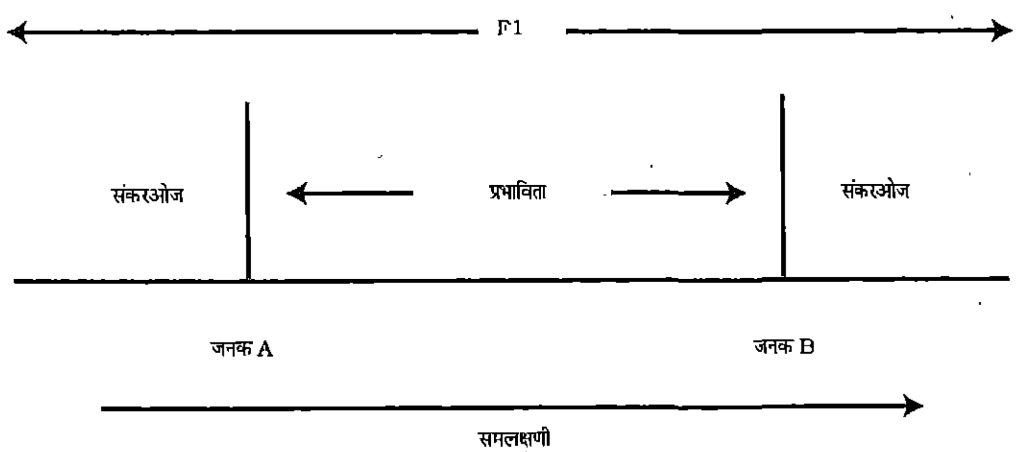
चित्र 23.5 *अंत:प्रजनन ह्रास एवं संकरओज की व्याख्या : क्रम A तथा B अप्रभावी एलील के हानिकारक प्रभाव के कारण घटते हुए जीवन क्षमता को दर्शाते हैं जो c, d, (A क्रम में) एवं a तथा b, (B क्रम में) के कारण होता है। इन दोनों लाइनों का संकर उत्कृष्ट होगा, क्योंकि a, b, c तथा d के हानिकारक प्रभाव को उनके प्रभावी एलील के द्वारा ढक दिया गया है*

में हानिकारक विकल्पी लगभग अनुपस्थित होते हैं। अत: इन समष्टियों में अंत:प्रजनन ह्रास नहीं पाया जाता।

संकर ओज वस्तुत: अंत:प्रजनन ह्रास की विपरीत अवस्था है। जब दो असंबंधित व्यष्टि या क्रमों में संकरण किया जाता है, तो इस प्रकार प्राप्त *F1* संकर का निष्पादन बहुधा उसके दोनों जनकों के निष्पादनों की तुलना में उत्कृष्ट होता है। उदाहरणार्थ, चित्र 23.5 में क्रमों A एवं B के संकरण से प्राप्त F1 अपने दोनों जनकों से उत्कृष्ट होगा, क्योंकि इनमें हानिकारक विकल्पियों (*a,b,c* एवं *d*) की अभिव्यक्ति नहीं हो पाएगी। इस दशा को **संकरओज** कहते हैं (चित्र 23.6)। लगभग सभी स्पीशीजों में संकर ओज पाया जाता है। जब *F1* का लक्षणप्ररूप दोनों जनकों के लक्षणप्ररूपी परिसर के भीतर होता है, तो इस दशा को **प्रभाविता** कहते हैं। लेकिन संकर ओज की दशा में *F1* का लक्षणप्ररूप दोनों जनकों के परिसर के बाहर होता है।

23.6 उत्परिवर्तन प्रजनन (Mutation Breeding)

किसी जीव के किसी लक्षण में आकस्मिक एवं वंशागत परिवर्तन को **उत्परिवर्तन** कहते हैं। उत्परिवर्तन निम्नलिखित में से किसी एक में परिवर्तन के कारण उत्पन्न हो सकता है; (i) क्रोमोसोम संरचना (ii) क्रोमोसोम संख्या, एवं (iii) संबंधित जीन के क्षार का क्रम। प्रकृति में उत्परिवर्तन



चित्र 23.6 *संकर ओज का अर्थ। जब F1 का लक्षणप्ररूप जनक के मान के अंदर आता है तो यह प्रभाव को प्रदर्शित करता है केवल F1 लक्षणप्ररूप के जनक के मान की सीमा के बाहर चला जाता है तब यह संकर ओज को बनाता है*

अत्यंत कम दर पर होते हैं; इन्हें **स्वत: उत्परिवर्तन** कहते हैं। जैविक संसार में उपस्थित संपूर्ण विविधता का मूल स्रोत स्वत: उत्परिवर्तन ही है। उत्परिवर्ती विकल्पी सामान्यतया अप्रभावी होते हैं, और इनका प्रभाव हानिकारक होता है। उत्परिवर्ती विकल्पियों में से केवल 0.1 प्रतिशत ही लाभकारी प्रभाव उत्पन्न करते हैं। वांछनीय उत्परिवर्तनों की अत्यंत कम आवृत्ति के कारण स्वत: उत्परिवर्तनों पर आधारित प्रजनन कार्यक्रम अव्यावहारिक होंगे।

कुछ कारकों द्वारा उच्च दर से उत्परिवर्तन प्रेरण के कारण उत्परिवर्तनों का पादप प्रजनन में उपयोग संभव हो सका है। इन कारकों को **उत्परिवर्तजन** कहते हैं। उत्परिवर्तजन दो प्रकार के होते हैं (i) रासायनिक एवं (ii) भौतिक उत्परिवर्तजन। **रासायनिक उत्परिवर्तजन** वे सभी विविध प्रकार के रसायन, जैसे एथिलमिथेन सल्फोनेट (EMS) और सोडियम एजाइड आदि हैं, जो उत्परिवर्तन प्रेरण करते हैं। इसी प्रकार, **भौतिक उत्परिवर्तजन** कई भिन्न विकिरण, जैसे एक्स-किरणें, गामा-किरणें, पराबैंगनी-किरणें आदि, होते हैं, जो उत्परिवर्तन प्रेरित करते हैं। ये सभी कारक डीएनए के क्षारकों एवं क्रोमोसोमों में परिवर्तन प्रेरित करते हैं, जिनसे अंतत: उत्परिवर्तन उत्पन्न होते हैं। किसी उत्परिवर्तजन से उपचार के बाद जो उत्परिवर्तन उत्पन्न होते हैं, उन्हें **प्रेरित उत्परिवर्तन** कहते हैं। प्रेरित उत्परिवर्तनों का उपयोग करके नई उन्नत किस्मों के विकास की प्रक्रिया को **उत्परिवर्तन प्रजनन** कहते हैं।

प्रेरित उत्परिवर्तन से केवल वे ही विकल्पी प्राप्त होते हैं, जो स्वत: उत्परिवर्तन द्वारा उत्पन्न होते हैं। अत: प्रेरित उत्परिवर्तनों का मुख्य लाभ उनकी अति उच्च आवृत्ति होती है। उत्परिवर्तन प्रजनन में साधारणतया बीजों को किसी उपयुक्त उत्परिवर्तजन से उपचारित करते हैं। उपचारित बीजों को खेत में उगाया जाता है, और पौधों में स्वपरागण सुनिश्चित किया जाता है। अगले फसल मौसम में इन पौधों की संततियों को उगाते हैं। इन पौधों का सावधानीपूर्वक प्रेक्षण किया जाता है, और वांछित उत्परिवर्तियों का वरण किया जाता है। अंत में एक कोई वांछनीय उत्परिवर्ती क्रम प्राप्त हो सकता है, जिसका निष्पादन इतना उत्कृष्ट हो कि उसे एक नई किस्म के रूप में विमोचित किया जा सके। भारतवर्ष में अब तक उत्परिवर्तन प्रजनन द्वारा 200 से अधिक किस्में विकसित की गई हैं। कुछ विशिष्ट परिस्थितियों, जैसे जननद्रव्य में वांछित विकल्पी की अनुपस्थिति आदि, में प्रेरित उत्परिवर्तन बहुत उपयोगी होते हैं।

23.7 फसल सुधार में बहुगुणिता (Polyploidy in Crop Improvement)

यूकैरियोटी स्पीशीजें या तो द्विगुणित होती हैं, अथवा बहुगुणित। किसी **द्विगुणित स्पीशीज़** की कायिक कोशिकाओं में एक ही जीनोम की दो प्रतियां उपस्थित होती हैं। किसी **जीनोम**





मोनकोंबू संबाशिवन स्वामीनाथन
(1925-)

तमिलनाडू के कांबाकोनम में अगस्त 1925 में जन्मे श्री स्वामीनाथन ने मद्रास विश्वविद्यालय से वनस्पति विज्ञान में स्नातक तथा स्नातकोत्तर की पढ़ाई की। वे भारत तथा विदेशों के कई संस्थानों में विभिन्न दायित्वों में रहे तथा आनुवंशिकी तथा पादप प्रजनन विज्ञान में अपनी क्षमता बढ़ाई।

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान में कोशिका आनुवंशिकी तथा विकिरण अनुसंधान शाखा के द्वारा श्री स्वामीनाथन एवं उनकी टीम को अल्पावधि उच्च उत्पादकता वाली धान की विशेष किस्में, साथ ही सुगंधित बासमती को विकसित करने में सफलता प्राप्त हुई। फसल कैफेटेरिया, फसल अनुसूचन के सिद्धांत को विकसित करने का तथा आनुवंशिक विधि द्वारा उत्पाद तथा गुण को सुदृढ़ करने का श्रेय भी उन्हीं को जाता है।

स्वामीनाथन ने डा. बरलॉग के साथ सहयोग प्रारंभ किया, जिस क्रम में भारत में गेहूं की मैक्सीकन किस्में प्रारंभ की गई तथा हरित क्रांति के रूप में परिणत हुआ। इसे डा. बरलॉग द्वारा काफी सराहा गया। उन्हें प्रयोगशाला से खेत का प्रारंभकर्ता माना गया। आहार सुरक्षा तथा कई अन्य पर्यावरणीय कार्यक्रमों में उन्हें उत्कृष्ट संस्थानों द्वारा कई प्रकार के पुरस्कार, पदकों तथा फेलोशिप से सम्मानित किया जा चुका है।

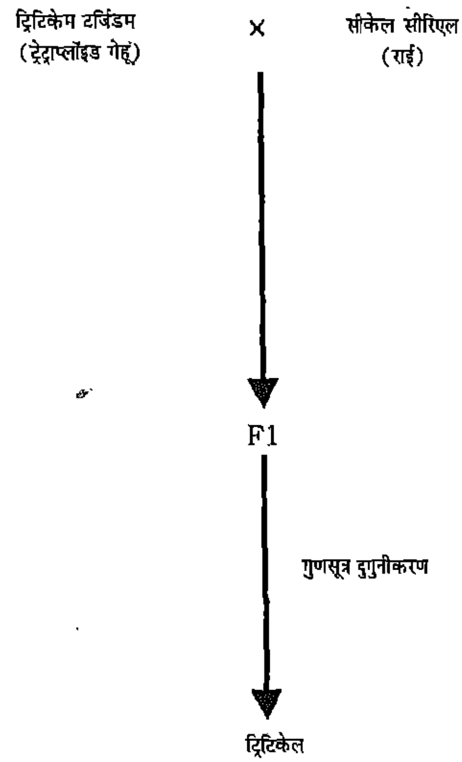
के सभी क्रोमोसोम जीन अंश एवं बहुधा आकारिकी में एक दूसरे से भिन्न होते हैं। बहुगुणित स्पीशीजें दो प्रकार की होती हैं: (क) स्वबहुगुणित एवं (ख) परबहुगुणित। **स्वबहुगुणित स्पीशीज़ या व्यष्टि** में एक ही जीनोम की दो से अधिक प्रतियां उपस्थित होती हैं। इसके विपरीत, **परबहुगुणित स्पीशीज़ों/व्यष्टियों** में दो या अधिक जीनोम होते हैं, और प्रत्येक जीनोम की सामान्यतया दो प्रतियां पाई जाती हैं।

स्वबहुगुणिता (Autopolyploidy)

प्रकृति में स्वबहुगुणिता का निम्न आवृत्ति में स्वत: उत्पादन होता रहता है। काल्चिसीन द्वारा इसका उच्च आवृत्ति में प्रेरण किया जा सकता है। काल्चीसीन एक ऐल्केलॉयड है, जो समसूत्री विभाजन के दौरान तर्कु उपकरण का बनना रोक देता है। इसके परिणामस्वरूप, पश्चावस्था अनुपस्थित होती है, और विभाजित हो रही कोशिका में उपस्थित सभी क्रोमैटिड एक ही केंद्रक में शामिल हो जाते हैं। अत: इस कोशिका की क्रोमोसोम संख्या पहले ही दो गुना हो जाती है। बहुत-सी फसलों के स्वबहुगुणित उत्पादित किए गए हैं। ये बहुगुणित सामान्यतया बड़े आमाप एवं अधिक ओज वाले होते हैं, और ये अधिक बड़ी पत्तियां, फूल एवं फल उत्पादित करते हैं। किंतु इनकी कई कमजोरियां भी होती हैं। केवल कुछ ही फसलों के स्वबहुगुणित किस्मों के रूप में उपयोग किए जा सके हैं। उदाहरणार्थ, भारत में चाय की एक स्वत्रिगुणित किस्म विकसित की गई है। स्वत्रिगुणित में एक ही जीनोम की तीन प्रतियां होती हैं।

परबहुगुणिता (Allopolyploidy)

परबहुगुणितों की उत्पत्ति दो चरणों में होती है। सबसे पहले दो भिन्न स्पीशीज़ों में संकरण से *F1* संकर की उत्पत्ति होती है। यह *F1* संकर सामान्यतया बंध्य होता है। इसके बाद, दूसरे चरण में, इस *F1* संकर में गुण सूत्र की संख्या दो गुनी कर दी जाती है। इस प्रकार, जो परबहुगुणित प्राप्त होता है, वह साधारणतया कम से कम आंशिकत: उर्वर होता है, और यह एक नई स्पीशीज़ होती है। प्रकृति में बहुत-से परबहुगुणितों की उत्पत्ति हुई है। हमारी कई फसलें, जैसे गेहूं, तंबाकू, जई आदि, परबहुगुणित हैं। मानव ने एक नई परबहुगुणित फसल ट्रिटिकेल का उत्पादन किया है। इसके लिए परचतुर्गुणित गेहूं (*ट्रिटिकेम टर्जिडम*) का संकरण राई (*सीकेल सीरिएल*, एक द्विगुणित स्पीसीज़) से किया गया। इस संकरण से प्राप्त *F1* का क्रोमोसोम दो गुना करने पर ट्रिटिकेल की प्राप्ति हुई (चित्र 23.7)। पंजाब के कुछ क्षेत्रों तथा भारतवर्ष के कुछ पहाड़ी क्षेत्रों में ट्रिटिकेल की खेती की जाती है।



***चित्र 23.7** ट्रिटिकेम टर्जिडम (परचतुर्गुणित गेहूं) एवं सीकेल सीरिएल (राई) से ट्रिटिकेल का उत्पादन*

अगुणिता (Haploidy)

किसी स्पीशीज़ के युग्मकों में पाई जाने वाली गुणसूत्र संख्या वाली व्यष्टि/कोशिका को **अगुणित** कहा जाता है। अत: किसी अगुणित व्यष्टि में प्रत्येक गुणसूत्र इसके फलस्वरूप प्रत्येक जीन, की केवल एक प्रति उपस्थित होती है। जब किसी अगुणित पौधे की गुणसूत्र संख्या दुगुनी की जाती है, तो इस प्रकार प्राप्त पौधे की गुणसूत्र संख्या संबंधित स्पीशीज़ की सामान्य गुणसूत्र संख्या के बराबर होती है। इसके साथ ही, इस प्रकार प्राप्त पौधे अपनी सभी जीनों के लिए समयुग्मज होते हैं। अगुणित पौधे प्रकृति में स्वत: ही कम आवृति में उत्पन्न होते रहते हैं। कई स्पीशीजों के परागकोशों अंडाशयों को उपयुक्त पोषक पदार्थों पर कल्चर करके उनके अगुणित पौधों का उच्च आवृति में उत्पादन किया जा सकता है (अध्याय 24 देखें)।

23.8 पोषण गुणवत्ता के लिए प्रजनन (Breeding for Nutritional Quality)

किसी फसल के उत्पाद की गुणवत्ता में वे सभी लक्षण शामिल होते हैं, जो विभिन्न उपयोगों के लिए इसकी उपयुक्तता को प्रभावित करते हैं। उदाहरणार्थ, फलों का रंग, माप, आकार, सुगंध स्वाद इत्यादि टमाटर, सेब एवं अन्य फलों के महत्त्वपूर्ण गुणवत्ता लक्षण हैं। किसी फसल की **पोषण गुणवत्ता** का तात्पर्य उस फसल के उत्पाद की मानव/जंतु पोषण के लिए उपयुक्तता से है। किसी फसल उत्पाद से मानव/जंतुओं को अनुकूलतम पोषण मिलना चाहिए और उसमें कोई प्रतिपोषण कारक उपस्थित नहीं होना चाहिए। **प्रतिपोषण कारक** वे यौगिक होते हैं, जिनका मानव/जंतु वृद्धि एवं परिवर्धन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। सरसों के तेल में पाए जाने वाले ग्लुकोसिनोलेट और खेसारी के बीजों में पाया जाने वाला एक स्नायुतंत्र आविष इनके उदाहरण हैं। फसल उत्पादों को प्रतिपोषण कारकों से मुक्त होना चाहिए। इसके साथ ही, इन उत्पादों में प्रोटीन एवं तेल की उपयुक्त गुणवत्ता एवं मात्रा होनी चाहिए।

जैसा आपने अध्याय 5 में पढ़ा है, मानव आठ एमीनो अम्लों का संश्लेषण नहीं कर पाता है। इन्हें **अनिवार्य एमीनो अम्ल** कहा जाता है। अतः भोजन में इन एमीनो अम्लों की उपयुक्त मात्रा अवश्य उपस्थित रहनी चाहिए। धान्यों एवं मिलेटों के प्रोटीनों में लाइसीन एवं ट्रिप्टोफैन की कमी होती है। इसके विपरीत, दलहनों के प्रोटीनों में सल्फर-युक्त एमीनो अम्लों, जैसे मेथियोनीन एवं सिस्टीन की कमी होती है। जब भोजन में धान्यों एवं दलहनों का उपयुक्त अनुपात रहता है, तो सभी अनिवार्य एमीनो अम्लों की उपयुक्त मात्रा प्राप्त होती है। लेकिन जब भोजन में मुख्य रूप से धान्य होते हैं, और दलहनों की मात्रा अत्यंत कम होती है, तब समस्या उत्पन्न हो जाती है। अतः धान्यों एवं मिलेटों की लाइसीन-समृद्ध किस्मों के विकास के प्रयास किए जा रहे हैं। भारतवर्ष में मक्के की तीन ऐसी किस्मों ('शक्ति', 'रतन', एवं 'प्रोटिना') का विकास किया गया है।

मानव शरीर को वसीय अम्लों की आवश्यकता होती है। इसके साथ ही, हमारे भोजन का अधिकांश भाग तेलों की सहायता से पकाया जाता है। तेलों में पाए जाने वाले विभिन्न वसीय अम्ल दो प्रकार के होते हैं: (i) संतृप्त एवं (ii) असंतृप्त वसीय अम्ल। दीर्घ शृंखला वाले संतृप्त वसीय अम्ल, जैसे एरूसिक अम्ल, मानव स्वास्थ्य के लिए वांछनीय नहीं होते हैं। इसके विपरीत, बहुअसंतृप्त वसीय अम्ल मानव स्वास्थ्य के लिए लाभदायक होते हैं। अतः तिलहनों की ऐसी किस्मों के विकास के प्रयास किए जा रहे हैं, जिनके तेलों में बहुअसंतृप्त अम्लों की अपेक्षाकृत उच्च मात्रा हो।

23.9 रोग रोधिता के लिए प्रजनन (Breeding for Disease Resistance)

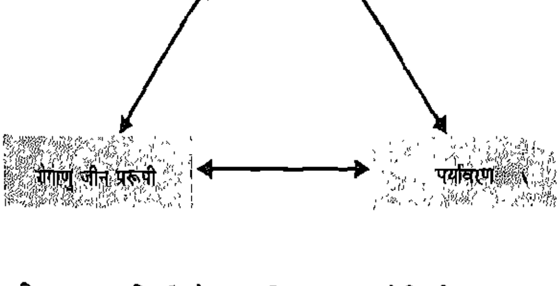
पौधों में बहुत से रोग लगते हैं। ये रोग बैक्टीरिया, वाइरस, कवक एवं सूत्रकृमि के कारण उत्पन्न होते हैं (सारणी 23.1)। जो जीव अन्य जीवों में रोग उत्पन्न करते हैं उन्हें **रोगजनक**

सारणी 23.1 फसलों के कुछ महत्त्वपूर्ण रोग

फसल	रोग	रोगजनक
	कवकों द्वारा उत्पन्न रोग	
अरहर आलू	फ्युजेरियम ग्लानि विलंबित शीर्णता	फ्युजेरियम ऊडम फाइटोक्थोस इंफेस्टेंस
	बैक्टीरिया द्वारा उत्पन्न रोग	
गन्ना सिट्रस	लाल धारी / मृदविगलन	स्यूडोमोनास द्यूब्रिलीनिएंस जैंथोमानास सिट्री
	वाइरस द्वारा उत्पन्न रोग	
तंबाकू टमाटर	मोज़ेक मोज़ेक	तंबाकू मोज़ेक वाइरस *(TMV)* टमाटर मोज़ेक वाइरस *(TMV)*
	सूत्रकृमि द्वारा उत्पन्न रोग	
टमाटर, बैंगन गेहूं	मूल गांठ बाल काकल / बीज पिटिका	मेला एंडोगाइन इंकाग्नीटा ऐंगीना ट्रिटिसी

कहते हैं। जिन जीवों में रोग उत्पन्न होते हैं, उन्हें **पोषी** कहा जाता है। जैसा कि चित्र 23.8 में दर्शाया गया है किसी पौधे में रोग का विकास निम्नलिखित कारकों पर निर्भर होता है: (i) पोषी का जीनप्ररूप, (ii) रोग जनक का जीनप्ररूप एवं (iii) वातावरण। वास्तव में रोगजनकों का जीनप्ररूप समय के साथ बदलता रहता है, जिससे प्रजनकों को काफी समस्याएं होती हैं।

कुछ पोषी जीनप्ररूप दिए गए रोगजनक विभेद को रोग उत्पन्न करने से रोकने में समर्थ होते हैं। पोषी के ऐसे जीनप्ररूपों या क्रमों को **रोधी** कहा जाता है, और इस क्षमता को रोधिता या **रोग रोधिता** कहते हैं। रोगजनक के लिए **विभेद** का अर्थ वही होता है, जो पोषी के संदर्भ में क्रम का होता हैं। पोषी के वे क्रम जो रोगजनक से रोधी नहीं होते हैं, उन्हें **ग्राही** कहा जाता है। रोग रोधिता प्रजनन की सफलता मुख्य रूप से निम्नलिखित दो कारकों पर निर्भर होती है: (i) रोधिता का उत्तम स्रोत एवं (ii) विश्वसनीय रोग परीक्षण। रोग परीक्षण में पौधों को उन दशाओं में उगाया जाता है, जिनमें प्रत्येक ग्राही पौधों में रोग के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। इन परीक्षणों के कारण रोग रोधी पौधों की सुस्पष्ट पहचान संभव होती है, और पहचाने गए रोधी पौधों का वरण कर लिया जाता है। रोग रोधी किस्में रोग नियंत्रण की सबसे सस्ती एवं सुरक्षित विधि हैं। ये कई रोगों, जैसे गेहूं के किट्ट, वाइरसी रोगों आदि के सफल एवं विश्वसनीग नियंत्रण के एकमात्र उपाय हैं। रोग रोधी किस्में रोगों के नियंत्रण के लिए डिजाइन किए गए सभी पैकेजों का एक महत्त्वपूर्ण घटक होती हैं। अत: वर्तमान किस्में बहुधा संबंधित फसल के अधिकांश रोगों के लिए रोधी होती है।



*चित्र **23.8** किसी रोग का विकास (1) पोषी जीन प्ररूप, (2) रोग जनक जीन प्ररूप एवं (3) पर्यावरण के बीच परस्पर क्रिया पर निर्भर होता है*

23.10 जंतु प्रजनन (Animal Breeding)

जंतु प्रजनन का उद्देश्य पालतू जानवरों के जीनप्ररूप में ऐसे सुधार करना होता है, जिससे वे मानव के लिए अधिक उपयोगी हो जाएं। जंतु प्रजनन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित होते हैं: (i) वृद्धि दर में सुधार, (ii) अधिक दूध, मांस, अंडे, ऊन आदि का उत्पादन (iii) दूध, मांस, अंडों, आदि की गुणवत्ता में सुधार, (iv) विभिन्न रोगों के लिए रोधिता में सुधार, (v) उत्पादक जीवनकाल में वृद्धि, (vi) अपेक्षाकृत उच्च या कम से कम संतोषजनक जनन दर आदि।

जंतुओं के प्रजनन के लिए बहुत-सी युक्तियों का उपयोग किया जाता है। जंतु प्रजनन की निम्नलिखित प्रमुख विधियां हैं: (i) अंत:प्रजनन, (ii) बाह्य प्रजनन एवं (iii) अंतरास्पीशीज़ संकरण। इन विधियों का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया गया है, जो मूल रूप से गाय के प्रजनन पर आधारित हैं।

अंत:प्रजनन (Inbreeding)

सभी पालतू जंतुओं में नर एवं मादा व्यष्टि होते हैं। अत: ये सभी जंतु स्पीशीज़ पर-निषेचित एवं अत्यंत विषमयुग्मजी होते हैं। प्रत्येक स्पीसीज़ की कई नस्लें होती हैं, जो एक-दूसरे से आकारिकीय एवं अन्य लक्षणों में भिन्न होती हैं। गाय, भैंस, कुक्कुट आदि की महत्त्वपूर्ण नस्लों का संक्षिप्त विवरण आप पहले पढ़ चुके हैं। किसी एक नस्ल के विभिन्न जंतुओं के जीनप्ररूप एक-दूसरे से भिन्न होते हैं। अत: एक ही नस्ल के विभिन्न जंतुओं में संगमों द्वारा भी आनुवंशिक सुधार की अच्छी संभावनाएं होती हैं।

अंत:प्रजनन पर आधारित प्रजनन की विधि निम्नलिखित होती हैं। किसी नस्ल की उत्कृष्ट मादाओं का उसी नस्ल के उत्कृष्ट नरों से जोड़ों में संगम कराया जाता है। इन संगमों से प्राप्त संततियों का मूल्यांकन किया जाता है, और उनमें से उत्कृष्ट नर एवं मादा जंतुओं की पहचान की जाती है। गायों के संदर्भ में, उत्कृष्ट मादा वह गाय होती है, जो अन्य गायों की तुलना में प्रति दूधस्रवण काल अधिक दूध देती है। इसी तरह उत्कृष्ट नर वह सांड़ होता है, जिसकी संततियां अन्य नरों की संततियों की तुलना में उत्कृष्ट होती हैं। सिद्धांतत:, अंत:प्रजनन के कारण समयुग्मजता में वृद्धि होती है। अत: अंत:प्रजनन से प्राप्त समष्टि के विभिन्न जंतुओं में मूल नस्ल की तुलना में कम विविधता उपस्थित होती है।

अंत:प्रजनन के कारण हानिकारक अप्रभावी विकल्पियों की अभिव्यक्ति होती है। अत: वरण द्वारा इन विकल्पियों को समष्टि से निकाल दिया जाता है। अंत:प्रजनन द्वारा प्राप्त समष्टि की उत्पादकता में वृद्धि होती है। सभी पालतू पशुओं की सभी नस्लों

का विकास किसी न किसी अंत:प्रजनन प्रणाली द्वारा हुआ है। लेकिन लगातार अंत:प्रजनन, विशेषकर निकट अंत:प्रजनन, के कारण जनन दर एवं उत्पादकता में भी कमी आती है। जब भी ऐसी समस्या उत्पन्न होती है, वरण किए गए जंतुओं का संगम उसी नस्ल के ऐसे उत्कृष्ट जंतुओं, जो इनसे संबंधित नहीं होते हैं, से किया जाता है।

बाह्य संकरण (Cross-breeding)

इस विधि में, किसी नस्ल के उत्कृष्ट नरों का संगम किसी अन्य नस्ल की उत्कृष्ट मादाओं से किया जाता है। बाह्य संकरण द्वारा दो या दो से अधिक भिन्न नस्लों के गुणों को एक ही नस्ल में शामिल किया जा सकता है। इस प्रकार प्राप्त संततियों को व्यापारिक उत्पादन के लिए उपयोग किया जा सकता है। अथवा, इन संततियों से अंत:प्रजनन द्वारा नई अपेक्षाकृत उत्कृष्ट नस्लों का विकास किया जा सकता है। इस विधि से कई नई नस्लों का विकास किया गया है।

विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए बाह्य-संकरण संततियों का संगम विभिन्न योजनाओं के अनुसार किया जाता है। उदाहरण के लिए, किसी निकृष्ट नस्ल की गायों (मादाओं) का संगम किसी उत्कृष्ट नस्ल के सांड़ों (नरों) से किया जाता है। इस प्रकार प्राप्त पीढ़ी तथा बाद की प्रत्येक पीढ़ी की गायों का संगम उसी उत्कृष्ट नस्ल के सांड़ों से किया जाता है। इस प्रकार 6-7 पीढ़ियों बाद प्राप्त संततियां उस उत्कृष्ट नस्ल के लगभग एक समान होंगी, जिस नस्ल के सांड़ों का उपयोग किया गया था। लेकिन इन संततियों में उस निकृष्ट नस्ल, जिसकी मादाओं का संकरण में उपयोग किया गया था, के भी कुछ उपयोगी लक्षण, जैसे स्थानीय दशाओं के लिए अनुकूलता आदि, भी उपस्थित होंगे।

अंतरास्पीशीज़ संकरण (Interspecific Hybridisation)

इस प्रजनन विधि में किसी स्पीशीज़ के नरों का संगम किसी अन्य स्पीशीज़ की मादाओं से किया जाता है। ऐसे संगमों से प्राप्त संततियां सामान्यतया दोनों ही जनक स्पीशीज़ों से भिन्न लक्षणों वाली होती हैं। ऐसे कुछ संकरों की संततियों में दोनों ही जनक स्पीशीज़ों के वांछनीय लक्षण उपस्थित होते हैं, और यह स्थिति आर्थिक महत्त्व की हो सकती है। इस प्रकार का एक उदाहरण खच्चर है, जो घोड़ी एवं गधे के बीच संगम से प्राप्त होता है। खच्चर अपनी दोनों ही जनक स्पीशीज़ों की तुलना में अधिक प्रतिबल सहिष्णु एवं दमदार होते हैं। अत: ये कठिन मार्गों, जैसे पहाड़ी क्षेत्रों, में ढुलाई आदि के लिए अधिक उपयोगी होते हैं।

23.11 संकर (Hybrids)

संकर ओज के शोषण की सबसे उत्तम विधि *F1* पीढ़ी का व्यापारिक उत्पादन के लिए उपयोग करना होता है। जब किसी संकरण से प्राप्त *F1* बीज को व्यापारिक फसल उगाने के लिए उपयोग करते हैं, तो यह *F1* बीज ही **संकर किस्म** कहा जाता है। संकर किस्मों का विकास सबसे पहले मक्के में किया गया था। मक्का एक परपरागित फसल है। ऐसी फसलों में संकर किस्मों के जनक सामान्यतया अंत:प्रजात क्रम होते हैं। **अंत:प्रजात क्रम** लगभग समयुग्मज क्रम होते हैं, जो परपरागित फसलों में लगातार अंत:प्रजनन द्वारा प्राप्त किए जाते हैं, और इनका अनुरक्षण नियमित अंत:प्रजनन द्वारा किया जाता है। संकर किस्मों के विकास के विभिन्न चरण निम्नलिखित होते हैं।

(i) लगातार अंत:प्रजनन द्वारा अंत:प्रजात क्रमों का विकास।
(ii) क्रमबद्ध परीक्षणों द्वारा अंत:प्रजातों का मूल्यांकन।
(iii) किसानों में वितरण के लिए *F1* बीज (संकर बीज) का बड़े पैमाने पर उत्पादन।

कई परपरागित फसलों, जैसे मक्का, ज्वार, बाजरा, कपास, सूरजमुखी आदि, में संकर किस्मों का व्यापारिक उपयोग हो रहा है। पिछले कुछ वर्षों से चावल आदि कई स्वपरागित फसलों में भी संकर किस्में काफी लोकप्रिय हो रही हैं। स्वपरागित फसलों में संकर किस्मों के जनकों के रूप में शुद्धवंशक्रमों का उपयोग किया जाता है, जैसा कि चित्र 23.9 में दर्शाया गया है। इसके अलावा, अधिकांश स्वपरागित फसलों में संकर बीज उत्पादन अब भी एक समस्या बनी हुई है।



चित्र 23.9 चावल की एक लंबे, सुगंधित दानों वाली संकर किस्म (RH-10) (छाया चित्र डा. अशोक कुमार सिंह, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली के सौजन्य से)

जंतुओं, जैसे गायों, सुअरों, भेड़ों एवं कुक्कुट, में संकरों का व्यापारिक उत्पादन के लिए उपयोग काफी समय से हो रहा है। आरंभ में नस्लों के बीच संकरों का उपयोग होता था। इस दौरान यह पाया गया कि कुछ नस्ल संकर अपनी जनक नस्लों से उत्कृष्ट होते थे, जबकि अन्य नहीं। सामान्यतया, आनुवंशिकत: भिन्न जनकों में संगम कराने से उत्कृष्ट संकर प्राप्त होते हैं। बाद में यह अनुभव किया गया कि अंत:प्रजातों को जनक के रूप में उपयोग करने से पूर्वसूचनीय परिणाम मिलते हैं। अत: आजकल अंत:प्रजात क्रमों में संकरण से ही संकर जंतु सूअर, कुक्कुट आदि में उत्पन्न किए जाते हैं।

23.12 पादप रोग एवं उनका नियंत्रण (Plant Diseases and their Control)

वातावरण के किसी जैविक या अजैविक कारक द्वारा प्रेरित किसी पौधे में असामान्य परिवर्तन को **रोग** कहा जाता है। पोषक न्यूनताओं, खनिज आविषालुताओं, वायु प्रदूषण आदि, एवं अधिक मृदा नमी एवं प्रकाश जैसे **अजैविक वातावरणीय कारक** पौधों में रोग उत्पन्न कर सकते हैं। लेकिन अधिकांश पादप रोग विभिन्न **जैविक वातावरणीय कारकों** जैसे (i) वाइरस, (ii) बैक्टीरिया, (iii) प्रोटोजोआ, (iv) कवक, (v) सूत्रकृमि एवं (vi) उच्चतर पौधों, जैसे *कस्कुटा* (एक प्ररोह परजीवी) एवं *स्ट्राइगा* (एक मूल परजीवी) द्वारा उत्पन्न किए जाते हैं। कवकों, बैक्टीरिया, वाइरसों एवं सूत्रकृमियों द्वारा उत्पादित रोगों का संक्षिप्त विवरण इस खंड में आगे दिया गया है। विभिन्न फसलों में विभिन्न रोगजनकों द्वारा विविध परिणाम में रोग उत्पादन किया जाता है।

रोगों के कारण फसलों द्वारा उत्पादित जैवभार में कमी आती है। जैवभार में यह कमी निम्नलिखित में से किसी एक या एक से अधिक कारणों से हो सकती है: (i) पौधों की मृत्यु, (ii) शाखाओं की मृत्यु, (iii) पत्तियों के ऊतकों को क्षति, (iv) पौधों की लंबाई में कमी, एवं (v) जनन अंगों, फलों एवं बीजों आदि को क्षति। पादप (i) रोग फसल के उत्पाद की मात्रा एवं उसकी गुणतत्ता में कमी करते हैं, (ii) ये फसल के उत्पाद को मानव तथा जंतुओं के लिए आविषालु बना सकते हैं, एवं (iii) उत्पादन लागत में वृद्धि करते हैं।

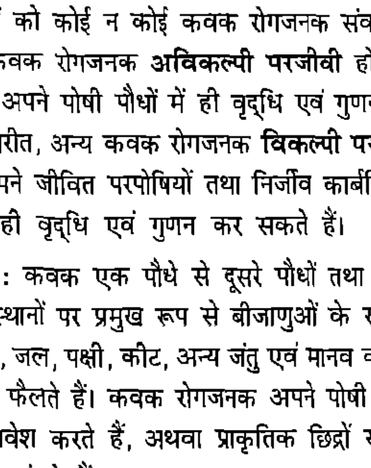
रोगों का विकास एवं रोगजनक की निरंतरता निम्नलिखित क्रमबद्ध घटनाओं के कारण होती है। (i) सबसे पहले रोगजनक पोषी पौधों के संपर्क में आता है। (ii) इसके बाद रोगजनक पोषी के ऊतकों में घावों से, प्राकृतिक छिद्रों से अथवा सीधे प्रवेश करता है। (iii) अब रोगजनक का गुणन होता है, और वह पोषी ऊतकों में फैल जाता है। (iv) इसके बाद, रोगजनक में जनन होता है, और इस प्रकार उत्पन्न नए व्यष्टि पोषी के नए पौधों पर पहुंचते हैं। (v) अंत में, रोगजनक किसी क्रियाविधि द्वारा साल के उन महीनों में, जब उसके पोषी पौधे अनुपस्थित होते हैं, जीवित बना रहता है। इससे वह अगले वर्ष अपने पोषी पौधों को पुन:संक्रमित करने में सफल होता है।

कवकों द्वारा उत्पादित पादप रोग (Plant Diseases Caused by Fungi)

सभी पौधों को कोई न कोई कवक रोगजनक संक्रमित करता है। कई कवक रोगजनक **अविकल्पी परजीवी** होते हैं, और ये केवल अपने पोषी पौधों में ही वृद्धि एवं गुणन करते हैं। इसके विपरीत, अन्य कवक रोगजनक **विकल्पी परजीवी** होते हैं, जो अपने जीवित परपोषियों तथा निर्जीव कार्बनिक पदार्थों दोनों पर ही वृद्धि एवं गुणन कर सकते हैं।

प्रकीर्णन : कवक एक पौधे से दूसरे पौधों तथा एक स्थान से अन्य स्थानों पर प्रमुख रूप से बीजाणुओं के रूप में जाते हैं। ये वायु, जल, पक्षी, कीट, अन्य जंतु एवं मानव की क्रियाओं के कारण फैलते हैं। कवक रोगजनक अपने पोषी के ऊतकों में सीधे प्रवेश करते हैं, अथवा प्राकृतिक छिद्रों से या घावों से होकर पहुंचते हैं।

लक्षण : कवक रोगजनक पोषी पौधों में सीमित अथवा व्यापक लक्षण उत्पन्न करते हैं (चित्र 23.10), जिनमें ऊतकक्षय,



चित्र 23.10 चने की एस्कोकाइटा पत्ती की शीर्णता का कारण एक कवक है

सारणी 23.2 : कवक बैक्टीरिया, वाइरस एवं सूत्रकृमि रोगजनकों द्वारा उत्पन्न पादप रोगों के महत्वपूर्ण लक्षण

लक्षण	रोगजनक			
	कवक	बैक्टीरिया	वाइरस	सूत्रकृमि
ऊतकक्षय	+*	+	–	–
ऊतकों की अत्यधिक वृद्धि	+	+	–	–
बौनापन	+	+	+	+
स्फोट	+	–	–	–
मोजेक	–	–	+	–
म्लानि	+	+	–	–
गर्तन (प्ररोह/फल)	–	–	+	–
मूल गांठ या पिटिका	–	–	–	+
अत्यधिक मूल शाखन	–	–	–	+

*+, सामान्य लक्षण; –, लक्षण विरल अथवा अनुपस्थित।

पादप अंगों की अधिक वृद्धि, पौधों का छोटा होना आदि शामिल हैं (सारणी 23.2)।

कवक रोगों का नियंत्रण : पादप रोगों के नियंत्रण के विविध उपायों में रोधी किस्में, रोगजनक से मुक्त बीजों का उपयोग आदि शामिल हैं (सारणी 23.3)।

बैक्टीरिया द्वारा उत्पादित पादप रोग (Plant Diseases caused by Bacteria)

सामान्यतया, बैक्टीरिया एककोशिक असीमकेंद्रकी होते हैं। बैक्टीरियाई कोशिकाएं एक कोशिकाभित्ति से घिरी होती हैं। अधिकांश स्पीशीज़ों में कोशिकाभित्ति के चारों ओर एक श्यान गोंद जैसा पदार्थ लिपटा होता है। लगभग 100 बैक्टीरियाई स्पीशीज़ें पादप रोग उत्पन्न करती हैं।

पादपरोग जनक बैक्टीरिया अधिकतर पोषी के ऊतकों में ही परिवर्धित होते हैं। कुछ रोगजनक बैक्टीरिया जब मृदा में मुक्त होते हैं, तो इनकी संख्या धीमी दर से घटती है। लेकिन अन्य रोगजनक बैक्टीरिया मृदा में पोषी के निर्जीव ऊतकों में ही विभिन्न काल तक जीवित रह सकते हैं।

प्रकीर्णन : एक ही पौधे के विभिन्न भागों तथा एक पौधे से अन्य पौधों पर बैक्टीरिया जल, कीट, अन्य जंतुओं अथवा मानव की सहायता से पहुंचते हैं। कुछ बैक्टीरिया कीटों के शरीर में बने रहते हैं, और इनके द्वारा ही फैलाए जाते हैं। बैक्टीरिया पौधों के ऊतकों में मुख्य रूप से घावों से होकर प्रवेश करते हैं, लेकिन कभी-कभी वे प्राकृतिक छिद्रों से भी प्रवेश करते हैं।

सारणी 23.3 : कवक, बैक्टीरिया, वाइरस एवं सूत्रकृमि रोगजनकों द्वारा उत्पन्न रोगों के नियंत्रण की कुछ महत्त्वपूर्ण विधियां

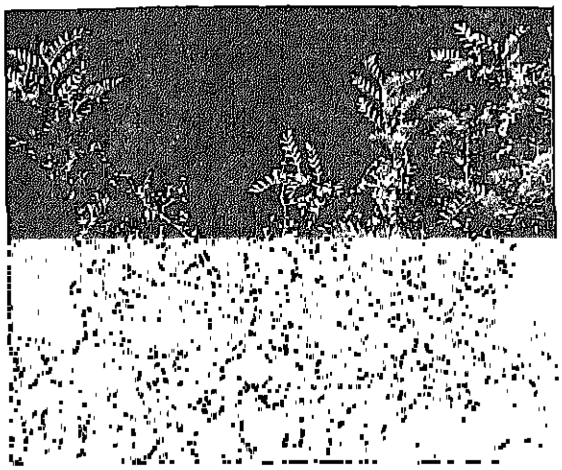
नियंत्रण विधि	रोगजनक			
	कवक	बैक्टीरिया	वाइरस	सूत्रकृमि
रोधी किस्म	+*	+	+	+
रोगजनक-मुक्त बीज	+	+	+	+
रासायनिक नियंत्रण	+	±	–	+
जैविक जीवनाशी**	+	+	–	–
वाहक कीटों का नियंत्रण	–	–	+	–
खेत का जल प्लावन	–	–	–	+

*+, नियंत्रण विधि प्रभावशाली; ±, नियंत्रण विधि कम प्रभावशाली; –, नियंत्रण विधि प्रभावहीन

**, केवल कुछ पादप रोगों के लिए

रोगों के लक्षण: रोगजनक बैक्टीरिया द्वारा लगभग उतने ही प्रकार के लक्षण उत्पादित किए जाते हैं, जितने कि कवक रोगजनकों द्वारा, जैसे (i) ऊतकों की मृत्यु या ऊतकक्षय, (ii) संक्रमित पौधों का बौनापन, (iii) ऊतकों की अत्यधिक वृद्धि, (iv) म्लानि आदि (सारणी 23.2; चित्र 23.11)।

नियंत्रण के उपाय: बैक्टीरियाई रोगों का नियंत्रण कठिन होता है। अक्सर एक से अधिक नियंत्रण उपायों को एक-साथ अपनाना जरूरी होता है। इनके नियंत्रण के विभिन्न उपायों में स्वस्थ एवं रोग-मुक्त बीजों का उपयोग, रोधी किस्मों का उपयोग आदि शामिल हैं (सारणी 23.3)।



चित्र 23.11 चने की बैक्टीरियाई पर्णशीर्णता। रोगी पौधे सूख जाते हैं।

वाइरस के कारण उत्पन्न पादप रोग (Plant Diseases caused by Viruses)

कोई भी वाइरस एक न्यूक्लियोप्रोटीन होता है। इनमें एक न्यूक्लीक अम्ल (DNA या RNA) जिनोम होता है, जो एक प्रोटीन आवरण में घिरा होता है। वाइरस केवल जीवित पोषी कोशिकाओं के भीतर ही गुणन कर सकते हैं। ज्ञात वाइरसों में से एक-चौथाई पौधों को संक्रमित करते हैं। अधिकांश पादप वाइरसों में एकरज्जुकी RNA आनुवंशिक द्रव्य होता है।

प्रकीर्णन: वाइरस पोषी ऊतकों में घावों के माध्यम से प्रवेश करते हैं। यह घाव यांत्रिकत: लग सकते हैं, अथवा वाहक कीटों द्वारा (अधिकांश मामलों में) उत्पन्न किए जाते हैं। अंतत: वाइरस फ्लोएम में पहुंच जाते हैं। इसके माध्यम से वे पूरे पौधे में फैल जाते हैं। एक पौधे से अन्य पौधों में वाइरस निम्नलिखित तरीकों से फैलते हैं: (i) वानस्पतिक प्रवर्धों द्वारा, (ii) संक्रमित पौधों के रस के माध्यम से यांत्रिक रूप से, (iii) बीजों के द्वारा, (iv) परागकणों द्वारा, (v) वाहक कीटों द्वारा, एवं (vi) चिड़ियों, सूत्रकृमियों एवं कवकों द्वारा।

रोगों के लक्षण: वाइरस रोगजनकों द्वारा उत्पादित महत्त्वपूर्ण लक्षणों में पौधों की वृद्धि में कमी, पत्तियों, फलों, फूलों या तनों पर हल्के हरे, पीले या सफेद चकत्ते (मोजेक) आदि शामिल होते हैं (सारणी 23.2; चित्र 23.12)।



चित्र 23.12 कुकंबर मोजेक वाइरस द्वारा उत्पन्न चने के प्ररोह में अत्यधिक शाखन एवं वृद्धि

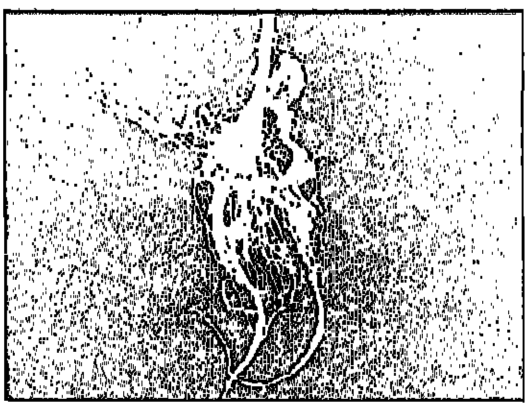
रोग नियंत्रण के उपाय: वाइरसी रोगों के नियंत्रण के लिए रोधी किस्में उगाना, वाइरस-मुक्त वानस्पतिक प्रवर्धों एवं बीजों का उपयोग आदि उपाय किए जाते हैं (सारणी 23.3)। लेकिन इन रोगों के नियंत्रण की कोई रासायनिक विधि उपलब्ध नहीं है।

सूत्रकृमियों द्वारा उत्पादित रोग (Diseases caused by Nematodes)

सूत्रकृमि छोटे-छोटे जंतु होते हैं, जो कृमियों के समान दिखते हैं, परंतु ये उनसे भिन्न होते हैं। कई सूत्रकृमि पादप रोग उत्पन्न

करते हैं। पादप परजीवी सूत्रकृमि अंडे देते हैं, जिनसे किशोर निकलते हैं। सभी पादप परजीवी सूत्रकृमि अपने जीवन काल का एक भाग मृदा में व्यतीत करते हैं।

प्रकीर्णन: सूत्रकृमि जल, जंतुओं के पैरों, कृषि यंत्रों, पक्षियों, मानव तथा आंधी-तूफान के द्वारा आसानी से फैलाए जाते हैं। इनके अलावा ये मृदा में स्वयं धीमी दर से फैलते हैं।
रोगों के लक्षण: सूत्रकृमि पौधे से अपना भोजन निम्नलिखित विधि से ग्रहण करते हैं। ये कोशिका भित्ति में छेद करते हैं, कोशिका में लार अंत:क्षेपित करते हैं, और फिर कोशिका में उपस्थित पदार्थों को चूसते हैं। अधिकांश क्षति कोशिकाओं में अंत:क्षेपित लार के कारण ही होती है। पादप परजीवी सूत्रकृमियों द्वारा निम्नलिखित लक्षण उत्पन्न किए जाते हैं: मूल गांठे (चित्र 23.13) या मूल पिटिकाएं, मूल विक्षत, अत्यधिक शाखन आदि, और प्ररोह वृद्धि में कमी, पीलापन आदि (सारणी 23.2)।



चित्र 23.13 *एक सूत्रकृमि के कारण उत्पन्न बैंगन का मूल गांठ रोग (चित्र प्रो. के.पी. सिंह, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी के सौजन्य से)*

नियंत्रण के उपाय: सूत्रकृमियों के नियंत्रण के प्रमुख उपाय सारणी 23.3 में दिए गए हैं। सामान्यतया, इन उपायों में से कई को एक-साथ उपयोग करना आवश्यक होता है।

23.13 जंतु रोग एवं उनका नियंत्रण (Animal Diseases and their Control)

पालतू जंतुओं को कई प्रकार के रोग होते हैं। जंतुओं में **रोग** वह कष्टप्रद दशा होती है, जिसमें जंतु के शरीर का प्रकार्य असामान्य होता है। रोग उत्परिवर्ती जीनों (**आनुवंशिक रोग**), असंतुलित पोषण अथवा रोगजनकों के कारण उत्पन्न होते हैं। प्रजनन के दौरान आनुवंशिक रोगों का दृढ़ता से वरण नहीं किया जाता है। सामान्यतया, जंतुओं को संतुलित आहार की समुचित मात्रा दी जाती है, जिससे उनका निष्पादन अनुकूलतम हो, और पोषण संबंधी रोग न हों। पालतू जंतुओं में निम्नलिखित रोगजनक रोग उत्पन्न करते है: (i) वाइरस, (ii) बैक्टीरिया, (iii) प्रोटोजोआ, (iv) कवक, एवं (v) कृमि आदि जंतु। ऐसे रोगों को साधारणतया **संक्रामक रोग** कहा जाता है, क्योंकि ये रोगजनकों द्वारा संक्रमण के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं। कई संक्रामक रोग **संसर्गज** होते हैं, क्योंकि ये रोग रोगी पशुओं अथवा उनके संपर्क में आए पदार्थों आदि के माध्यम से स्वस्थ पशुओं मे फैलते हैं।

संक्रमण त्वचा, आहार पथ, श्वसन तंत्र, नेत्रश्लेष्मला, जननमूत्र पथ, अपरा, नाभि, थन, चूचुक, अंडों आदि के माध्यम से हो सकता है। संक्रामक रोगों के रोकथाम के निम्नलिखित उपाय हैं: *इन उपायों से इन रोगों के नियंत्रण में काफी सहायता* मिलती है।

(i) किसी संक्रामक रोग से पीड़ित अथवा संदिग्ध रोगी पशुओं को स्वस्थ पशुओं से अलग रखना।
(ii) रोगी पशुओं के शवों तथा उनके संपर्क में आए सभी पदार्थों आदि का समुचित निवर्तन ।
(iii) रोगी पशुओं के संपर्क में आए पदार्थों तथा पशुघरों की सफाई तथा रोगाणुनाशन।
(iv) रोगी पशुओं द्वारा उपयोग किए गए चरागाहों से स्वस्थ पशुओं को दूर रखना ।
(v) पशुओं का टीकाकरण।
(vi) महामारी की आंशका होने पर स्वस्थ पशुओं को संबंधित प्रतिसीरम के इंजेक्शन देना ।
(vii) संक्रामक रोगों का पता चलते ही पशु चिकित्सा विभाग के अधिकारियों को सूचित करना। ऐसा करने पर वे इन रोगों की रोकथाम के उपयुक्त उपाय कर सकेंगे।

बैक्टीरियाई रोग (Bacterial Diseases)

जंतुओं को कई प्रकार के बैक्टीरियाई रोग होते हैं। उदाहरण के लिए, गायों में ऐंथ्रैक्स, थनैला, निमोनिया आदि बैक्टीरियाई रोग होते है। यहां पर ऐंथ्रैक्स का विवरण दिया गया है।

ऐंथ्रैक्स: ऐंथ्रैक्स *बैसिलस ऐंथ्रैसिस* के कारण उत्पन्न होता है। यह संसर्गज रोग गायों, भैंसों, घोड़ों, भेंड़ों एवं बकरियों को होता है। यह रोग मानव को भी हो सकता है। जंतुओं

में ऐंथ्रैक्स दूषित चारा, जल एवं चरागाह के माध्यम से फैलता है।

***लक्षण एवं निदान*:** अति तीव्र मामलों में ऐंथ्रैक्स के निम्नलिखित लक्षण प्रकट होते हैं: उच्च श्वसन दर, एवं मुंह, नाक और गुदा द्वार से रक्त-मिश्रित झाग जैसा स्राव। इन मामलों में रोगी पशु की मृत्यु मिनटों में हो जाती है। कम तीव्र एवं धीमे संक्रमणों में संक्रमित पशुओं का उच्च ज्वर (41.1°C तक) होता है, और इनकी श्वसन दर बढ़ जाती है। इनके प्राकृतिक छिद्रों से काले, चमकदार एवं झागदार पदार्थ का स्राव होता है। रोगी पशुओं की 2-3 दिनों में मृत्यु हो जाती है। ऐंथ्रैक्स उत्पन्न करने वाला बैक्टीरिया जंतु के रक्त में उपस्थित ऑक्सीजन का तेजी से उपयोग करता है। अतः रोगी पशु ऑक्सीजन की कमी के कारण मर जाते हैं।

रोग के निदान की पुष्टि रोगी पशुओं के रक्त में उपस्थित बैक्टीरिया के सूक्ष्मदर्शी प्रेक्षण द्वारा, अथवा बैक्टीरिया को उपयुक्त पोष पदार्थ पर कल्चर करके किया जा सकता है।

उपचार: लेकिन पशुओं में केवल धीमे संक्रमणों में ही सिप्रोफ्लॉक्सेसिन प्रभावकारी होता है। मानव मे ऐंथ्रैक्स के उपचार मे सिप्रोफ्लॉक्सेसिन काफी प्रभावशाली सिद्ध हुई है, विशेष रूप से यदि इसका उपयोग रोग की आरंभिक दशाओं में किया जाता है। एंथ्रैक्स प्रतिसीरम देने से अच्छे परिणाम मिलते हैं। स्वस्थ पशुओं को एंथ्रैक्स प्रतिसीरम देने से उनको इस रोग से बचाया जा सकता है।

***नियंत्रण एवं रोकथाम*:** संक्रामक रोगों की रोकथाम के उपाय लागू करने चाहिए। स्वस्थ पशुओं का टीकाकरण करना चाहिए। जो स्वस्थ पशु रोगी पशुओं के संपर्क में आए हों, उन्हें रोग से बचाने के लिए ऐंथ्रैक्स प्रतिसीरम देना चाहिए।

वाइरसी रोग (Viral Diseases)

जंतुओं में कई वाइरसी रोग होते हैं। उदाहरणार्थ, गायों में पशु महामारी या रिंडरपेस्ट, खुरपका, चेचक आदि रोग होते हैं। इस खंड में रिंडरपेस्ट का वर्णन किया गया है।

***रिंडरपेस्ट*:** यह रोग एक वाइरस के कारण उत्पन्न होता है, और यह एक संसर्गत रोग है। यह वाइरस रोगी पशुओं के सभी स्रावों एवं कायिक द्रवों में उपस्थित होता है। यह रोगी पशु के संपर्क द्वारा बड़ी तेजी से फैलता है। यह संदूषित चारे, जल, कर्मचारियों एवं उनके वस्त्र तथा मक्खियों द्वारा भी फैलता है।

लक्षण: आरंभ में संक्रमित पशु को बुखार (40.0° से 42.2°C) आता है; रोगी पशु की भूख कम हो जाती है; उसे कब्ज हो जाता है और उसका मल कड़ा एवं रक्त से सना होता है। इस रोग की अंतिम अवस्था में रोगी पशु को पतले दस्त होते हैं, और उसके शरीर से बदबू निकलती है। रोगी का तापमान कम होने लगता है, और यह सामान्य से नीचे जा सकता है। सामान्यतया, रोगी पशु की 7 दिनों में मृत्यु हो जाती है।

***उपचार*:** उपचार तभी प्रभावशाली होता है, जब यह रोग की आरंभिक अवस्था में ही शुरू कर दिया जाता है। सल्फामेथाजीन सोडियम का इंजेक्शन अक्सर लाभकारी होता है। रिंडरपेस्ट के प्रतिसीरम का इंजेक्शन काफी प्रभावशाली होता है, विशेषरूप से जब इसे सल्फामेथाजीन सोडियम के इंजेक्शन के साथ दिया जाता है।

***रोकथाम*:** संक्रामक रोगों के रोकथाम के सभी उपायों को अपनाना चाहिए। भारतवर्ष में 1954 में बड़े पैमाने पर रिंडरपेस्ट टीकाकरण अभियान चलाया गया था। यह अभियान काफी सफल रहा, और अब रिंडरपेस्ट एक भयानक रोग नहीं रह गया है।

परजीवी जंतुओं द्वारा उत्पन्न रोग (Diseases Caused by Parasitic Animals)

पशुओं पर कई परजीवी जंतु, जैसे फीताकृमि, गोलकृमि, पर्णाभ कृमि, किलनी आदि, आक्रमण करते हैं। ये परजीवी मुख्यरूप से दो प्रकार के होते है: (i) बाह्य परजीवी एवं (ii) अंत:परजीवी। **बाह्य परजीवी** जंतुओं की त्वचा के ऊपर रहते हैं, जैसे किलनी। लेकिन **अंत:परजीवी** जंतु शरीर के भीतर रहते है, जैसे गोल कृमि, फीता कृमि, यकृत पर्णाभ कृमि आदि। दोनों ही प्रकार के परजीवी जंतुओं के रक्त आदि द्रवों का शोषण करते हैं, और उनकी सामान्य वृद्धि एवं परिवर्धन को बाधित करते हैं। कई परजीवी रोगजनकों को फैलाने में सहायक होते हैं। इनमें से कुछ परजीवी, जैसे फीताकृमि, मनुष्यों को भी संक्रमित करते हैं।

एस्केरिस एक अंत:परजीवी सूत्रकृमि है। यह कई जंतुओं तथा मानव का संक्रमण करता है। *एस्केरिस* के लार्वा जंतु शरीर में मुख के मार्ग से संदूषित चारे के साथ प्रवेश करते हैं। जंतु की आंतों में पहुंचने के बाद लार्वा आंतों के ऊतकों में प्रवेश करते हैं। यहां से वे यकृत, फेफड़ों, तिल्ली, ग्रसनी, गुर्दों आदि में भ्रमण करते हुए ग्रासनली के मार्ग से आंतों में पुन:प्रवेश करते हैं। ये लार्वा अपनी भ्रमणकारी अवस्था में

जिन-जिन अंगों से होकर गुजरते हैं, उन्हें क्षतिग्रस्त करते जाते हैं। आंतों में पुन: पहुंचने तक लार्वा वयस्क नर एवं मादा में परिवर्धित हो जाते हैं। वयस्क सूत्रकृमि जंतु आंतों में घाव करके उनसे रक्त चूसते हैं, और जंतुओं के पाचन में बाधा पहुंचाते हैं। सक्रंमित पशुओं में कब्ज, दस्त एवं रक्ताल्पता के लक्षण पाए जाते हैं। संक्रमण की तीव्र दशाओं में रोगी पशु मर भी सकता है।

मादा *एस्केरिस* बहुत सारे अंडे देती हैं। ये अंडे जंतु के मल के साथ बाहर आते हैं। इन अंडों से लार्वा निकलते हैं, और वे चरागाहों में घास से चिपके रहते हैं। जब पशु इस प्रकार की घास चरते हैं, तो ये लार्वा पशु के मुंह से उसके आहार पथ में प्रवेश करते हैं।

उपचार: *एस्केरिस* के उपचार के लिए प्रभावशाली दवाओं, जैसे पिपरैक्स, पिपराजीन एडिपेट, वर्मेक्स आदि, का उपयोग किया जाता है।

प्रोटोजोआ के कारण उत्पन्न रोग (Diseases Caused by Protozoa)

जंतुओं के कई रोग, जैसे किलनी ज्वर, काक्सिडियता आदि, प्रोटोजोआ परजीवियों के कारण उत्पन्न होते हैं। इस खंड में किलनी ज्वर के बारे में वर्णन किया गया है।

किलनी ज्वर: यह रोग *बैबीसिया* की कई स्पीशीज़ों के कारण उत्पन्न होता है। भारतवर्ष में यह रोग मुख्यरूप से *बैबीसिया बाइजेमिना* के कारण होता है। यह परजीवी लाल रक्त कणिकाओं में प्रवेश करता है, और उन्हें नष्ट कर देता है।

लक्षण: इस रोग के तीव्र रुप में जंतुओं को तीव्र बुखार (41.1-41.7°C) होता है और वे चारा खाना बंद कर देते हैं। लेकिन किलनी ज्वर के चिरकालीन मामलों में रोगी पशुओं को अनियमित रुप से बुखार और कब्ज के बाद दस्त होता है। लाल रुधिर कणिकाओं के भीतर नाशपाती के आकार के परजीवी की उपस्थिति इस रोग का सुस्पष्ट निदान होता है।

उपचार: रोगी पशुओं को उपयुक्त औषधि, जैसे ट्राइपैन ब्लू, एकैप्रिन या बेरेनिल का इंजेक्शन दिया जाता है। बेरेनिल के एक ही इंजेक्शन से रोगी पशु सामान्यतया ठीक हो जाता है। इसके अलावा, स्वच्छता बनाए रखना चाहिए और किलनी के उन्मूलन के लिए उपयुक्त कीटनाशी का उपयोग करना चाहिए।

नियंत्रण एवं रोकथाम : किलनी का उन्मूलन करने से किलनी ज्वर की रोकथाम की जा सकती है। पशुओं के शरीरों, चरागाहों आदि से किलनियों आदि के उन्मूलन के लिए उपयुक्त कीटनाशियों का उपयोग किया जाता है।

सारांश

किसी जीव का निष्पादन मुख्य रूप से इसके अपने जीनप्रारूप एवं वातावरण पर निर्भर होता है। किसी पादप/जंतु के जीनप्ररूप में सुधार कर उसे मानव के लिए अधिक उपयोगी बनाना प्रजनन कहलाता है। प्रजनन का प्रथम चरण किसी स्पीशीज़ का ग्राम्यन, अर्थात् उस स्पीशीज़ को मानव प्रबंध के अतंर्गत लाना, होता है। पादप प्रजनन में निम्नलिखित क्रियाएं की जाती हैं: (i) विविधता उत्पादन, (ii) वरण, (iii) मूल्यांकन एवं *किस्म विमोचन, तथा (iv) बीज गुणन एवं वितरण।*

आनुवंशिक विविधता का उत्पादन निम्नलिखित विधियों से कर सकते हैं: (i) ग्राम्यन, (ii) जननद्रव्य संग्रह, (iii) पादप पुरःस्थापन, (iv) संकरण, (v) बहुगुणिता, (vi) उत्परिवर्तन एवं (vii) आनुवंशिक इंजीनियरी। इनमें से संकरण का सबसे व्यापक उपयोग किया जाता है। स्वपरागित फसलों में वरण द्वारा सर्वोत्तम शुद्धवंश क्रम को विलग करते हैं। लेकिन परपरागित फसलों में वरण का उद्देश्य, विषम युग्मजता में कमी किए बिना, समष्टि में उत्कृष्ट जीनप्ररूपों की आवृत्ति बढ़ाना होता है। वरण द्वारा प्राप्त लाइनों या क्रमों का कई स्थानों पर 4-5 वर्षों तक परीक्षण करने के बाद उनमें से उत्कृष्ट क्रम को नई किस्म के रूप में विमोचित कर सकते हैं। उन्नत किस्मों के बीजों का गुणन करके किसानों को उपलब्ध कराया जाता है।

किसी भी सफल प्रजनन कार्यक्रम का आधार अच्छा जननद्रव्य संग्रह होता है। जननद्रव्य संग्रह में फसलों के विभिन्न क्रमों, जीनप्ररूपों एवं उसके जंगली संबंधियों का संग्रह किया जाता है। जननद्रव्य का आयात भी किया जाता है। आयात करते समय संगरोध नियमों का कड़ाई से पालन किया जाता है, जिससे देश में नए खरपतवारों, नाशी कीटों एवं रोगजनकों का प्रवेश रोका जा सके। एक ही पूर्वज के वंशजों में संगम को अंत:प्रजनन कहते हैं। अंत:प्रजनन से समष्टि के ओज एवं उर्वरता में कमी होती है, जिसे अंत:प्रजनन ह्रास कहा जाता है। जंतुओं और परपरागित फसलों में अंत:प्रजनन ह्रास व्यापक रूप से पाया जाता है, लेकिन स्वपरागित फसलों में यह नहीं पाया जाता। असंबंधी क्रमों के बीच संगम से प्राप्त *F1* पीढ़ी अक्सर दोनों ही जनकों से उत्कृष्ट होती है (संकर ओज)। संकर ओज सभी स्पीशीजों में पाया जाता है। इसका उपयोग संकर नस्लों एवं संकर किस्मों द्वारा किया जाता है। अंत:प्रजनन ह्रास का सर्वाधिक संभावित कारण हानिकारक अप्रभावी विकल्पियों का समयुग्मज होना है। इसके विपरीत, *F1* पीढ़ी में इन विकल्पियों का विषमयुग्मज दशा में होना ही संकर ओज का कारण है। अत: संकर ओज तब उत्पन्न होगा, जब एक जनक में जिन जीनों के अप्रभावी विकल्पी हैं, वे दूसरे जनक में प्रभावी रूप में हों। संकर जंतु एवं फसलें काफी लोकप्रिय हो रही हैं।

कुछ भौतिक एवं रासायनिक कारक उच्च दर से उत्परिवर्तन प्रेरित करते हैं। इन उत्परिवर्तनों का उपयोग करके भारत में 200 से अधिक किस्मों का विकास किया गया है। काल्चिसीन के उपयोग से स्वबहुगुणिता का प्रेरण कर सकते हैं; इसके उपयोग से कुछ सफल किस्मों का विकास किया गया है। लेकिन परबहुगुणिता का पादप प्रजनन में अपेक्षाकृत अधिक उपयोग हुआ है। एक नई मानव निर्मित फसल ट्रिटिकेल को गेहूं का राई (*सीकेल सीरिएल*) से संकरण करके, और इससे उत्पन्न *F1* का क्रोमोसोम द्विगुणन करके प्राप्त किया गया है। अगुणितों का उपयोग समयुग्मज क्रमों की शीघ्र प्राप्ति के लिए किया जाता है।

प्रजनन द्वारा फसल उत्पादों से कई प्रतिपोषक कारकों को हटाया गया है। इसके साथ ही, प्रोटीन एवं तेल अंशों तथा इनकी गुणवत्ताओं में भी परिवर्तन किया गया है। फसलों के कुछ जीनप्ररूप विशिष्ट रोग जनकों द्वारा संक्रमण को रोकने में सक्षम होते हैं। इनके उपयोग से उच्च उपज वाली रोग रोधी किस्मों का विकास किया गया है। अधिकांश फसलों में ऐसी किस्मों का विकास प्रमुख प्रजनन क्रिया होती है। जंतु एवं फसल दोनों में ही वाइरस, बैक्टीरिया, प्रोटोजोआ, कवक, सूत्रकृमि एवं कुछ अन्य परजीवी कई प्रकार के रोग उत्पन्न करते हैं। इन रोगों के नियंत्रण के लिए विविध उपाय आवश्यक होते हैं। फसलों में रोग रोधी किस्मों का उपयोग सबसे सस्ता, एवं प्रभावकारी होता है। लेकिन जंतुओं में टीकाकरण सबसे अधिक लाभकारी उपाय है। इसके अलावा, स्वच्छता बनाए रखने से महामारी का खतरा काफी घट जाता है।

सभी जंतु नस्लों का विकास अंत:प्रजनन की किसी विधि द्वारा किया गया है। अंत:प्रजनन के कारण समयुग्मजता बढ़ती है, जिससे हानिकारक विकल्पियों को हटाया जाता है, और नस्ल का निष्पादन सुधरता है। लेकिन लगातार अंतप्रजनन से जनन दर और निष्पादन दोनों ही घटते हैं। ऐसा होने पर उसी नस्ल के असंबंधित पशुओं या किसी अन्य नस्ल से संगम कराया जाता है। दो भिन्न नस्लों के संकरण से प्राप्त संततियों को व्यापारिक उत्पादन के लिए उपयोग कर सकते हैं। इस प्रकार प्राप्त संकरों में अंत:प्रजनन द्वारा नई नस्लों का विकास भी कर सकते हैं। अंतरास्पेसीज संकरणों से नए एवं उपयोगी जंतु, जैसे टट्टू, प्राप्त किए जा सकते हैं।

अभ्यास

अ. दिए गए विकल्पों में से सही विकल्प चुनिए।

1. आनुवंशिक विविधता उत्पादन के लिए निम्नलिखित में से किसका उपयोग सबसे अधिक किया जाता है?

   (क) बहुगुणिता (ख) संकरण

   (ग) उत्परिवर्तन (घ) आनुवंशिक इंजीनियरी

2. निम्नलिखित में से कौन से पादप रोग के परिणाम हैं?
   (क) उपज में कमी, एवं उत्पाद की निम्नतर गुणवत्ता।
   (ख) उपज एवं उत्पाद की गुणवत्ता में कमी, तथा उत्पादन लागत में वृद्धि।
   (ग) उपज एवं उत्पाद की गुणवत्ता में कमी, उत्पाद की लागत में वृद्धि, तथा विषैला उत्पाद।
   (घ) उपज एवं उत्पाद की गुणवत्ता में कमी, विषैला उत्पाद, एवं उत्पादन लागत में वृद्धि।
3. निम्नलिखित में से किसके लिए काल्चिसीन का उपयोग किया जाता है।
   (क) कायिक क्लोनीय विविधता (ख) अगुणित
   (ग) बहुगुणित (घ) संकर
4. स्तंभ I में कुछ क्रम आदि दिए गए हैं, जबकि स्तंभ II में उन्हें प्राप्त करने के तरीके दिए गए हैं। दोनों कॉलमों में सुमेल जोड़े बनाइए।

स्तंभ I	स्तंभ II
(क) संकर किस्म	(i) एक्स-किरण
(ख) उत्परिवर्तन	(ii) परबहुगुणिता
(ग) शुद्धवंशक्रम	(iii) *F1* पीढ़ी
(घ) ट्रिटिकेल	(iv) स्वपरागित फसलों में वरण
	(v) आनुवंशिक इंजीनियरी

5. निम्नलिखित में से किस विधि से वाइरस अपने पोधी में प्रवेश करते हैं?
   (क) कीट वाहकों द्वारा किए गए घावों से
   (ख) प्राकृतिक छिद्रों से
   (ग) सीधे प्रवेश द्वारा
   (घ) यांत्रिकतः या वाहक कीटों द्वारा बनाए गए घावों से
6. पादप पुरःस्थापन के संदर्भ में निम्नलिखित में से कौन सही नहीं है?
   (क) इनसे नई फसलें प्राप्त होती हैं।
   (ख) इनसे नई किस्में मिलती हैं।
   (ग) इनके साथ रोगजनक आदि देश में प्रवेश कर सकते हैं।
   (घ) संगरोध आवश्यक नहीं होता है।
7. जंतुओं के निम्नलिखित रोगों में से कौन-सा रोग वाइरस के कारण उत्पन्न होता है ?
   (क) ऐंथ्रैक्स (ख) रिंडरपेस्ट
   (ग) किलनी ज्वर (घ) कॉक्सिडियता
8. खच्चर का उत्पादन निम्नलिखित में से किस विधि से किया जाता है ?
   (क) वरण (ख) अंतःप्रजनन
   (ग) अंतरास्पीशीज संकरण (घ) बाह्य-प्रजनन
9. निम्नलिखित में से किस पादप रोग का रासायनिक उपाचार द्वारा नियंत्रण नहीं किया जा सकता है?
   (क) वाइरसी रोग (ख) सूत्रकृमि द्वारा उत्पन्न रोग
   (ग) कवक रोग (घ) (क) एवं (ख) दोनों ही
10. निम्नलिखित में से किस में संकरों का उत्पादन अंतःप्रजात क्रमों में संकरण द्वारा किया जाता है?
   (क) मक्का (ख) कुक्कुट
   (ग) सूअर (घ) उपरोक्त सभी में
11. निम्नलिखित पदों की परिभाषा दीजिए।
   (क) संकरण (ख) आनुवंशिक इंजीनियरी
   (ग) अंतरास्पीशीज संकरण (घ) अंतःप्रजनन
   (ङ) अंतःप्रजनन ह्रास (च) संगरोध
   (छ) स्वबहुगुणिता (ज) रोगजनक
   (झ) रोगरोधिता (ट) परबहुगुणिता

12. निम्नलिखित में से प्रत्येक की लगभग 100 शब्दों में व्याख्या कीजिए एवं मानव कल्याण में उसका महत्त्व स्पष्ट कीजिए।
    (क) पादप रोग नियंत्रण
    (ख) संकरण
    (ग) उन्नत बीज
    (घ) जननद्रव्य
    (ङ) पादप पुरःस्थापन
    (च) संकर ओज
    (छ) उत्परिवर्तन
    (ज) बहुगुणिता
    (झ) पोषण गुणवत्ता
    (ट) रोग रोधी किस्में
13. फसलों की उन्नत किस्मों के विकास की प्रक्रिया को विभिन्न चरणों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
14. खाद्यान्न उत्पादन की वृद्धि में पादप प्रजनन के योगदान की विवेचना कीजिए।
15. संकर ओज एवं अंतःप्रजनन का अर्थ एवं इनका आधार स्पष्ट कीजिए। खाद्यान्न उत्पादन की वृद्धि में इनका महत्त्व समझाइए।
16. विभिन्न प्रकार के पादप रोगों तथा उनकी नियंत्रण विधियों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
17. विभिन्न प्रकार के जंतु रोगों तथा उनकी नियंत्रण विधियों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
18. अधिक खाद्य उत्पादन में जंतु प्रजनन की भूमिका स्पष्ट कीजिए।
19. संकर क्या होते हैं? इनके उत्पादन की विधि तथा जंतु एवं फसल उत्पादन बढ़ाने में इनके महत्त्व का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

अध्याय 24

पादप ऊतक संवर्धन एवं जैव प्रौद्योगिकी

मानव ने पालतू जंतुओं तथा फसलों के जीनप्रारूपों में सुधार करके उन्हें अधिकाधिक उपयोगी बनाने का सतत् प्रयास किया है। पिछले अध्याय में आपने पढ़ा कि इस प्रक्रिया में मुख्य रूप से दो चरण होते हैं: आनुवंशिक विविधता का उत्पादन तथा वांछित जीनप्रारूपों का वरण। आनुवंशिक विविधता का उत्पादन सामान्यतया संबंधित फसल के जिनोम में उपस्थित जीनों के विकल्पियों के पुनर्संयोजन द्वारा किया जाता है। कुछ वर्ष पहले तक जीनों का स्थानांतरण संकरण द्वारा ही किया जा सकता था। इसके साथ ही प्रजनन की सभी क्रियाएं, जिसमें बीज गुणन शामिल है, केवल खेत में ही की जा सकती थीं। किंतु बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में कई नई तकनीकों का विकास हुआ। इन तकनीकों की सहायता से किसी भी स्रोत से प्राप्त जीन का किसी भी जीव में स्थानांतरण कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त इन तकनीकों के लिए सुसज्जित प्रयोगशालाओं एवं विशिष्ट तकनीकी दक्षता की आवश्यकता होती है। आप पुनर्योगज DNA टेक्नोलॉजी, जंतु क्लोन एवं DNA अंगुलीछापन के बारे में पढ़ चुके हैं। इस अध्याय में हम पादप ऊतक कल्चर के विभिन्न पहलुओं, पुनर्योगज DNA टेक्नोलॉजी के कुछ अनुप्रयोगों तथा बायोटेक्नोलॉजी के कुछ अन्य पहलुओं की चर्चा करेंगे।

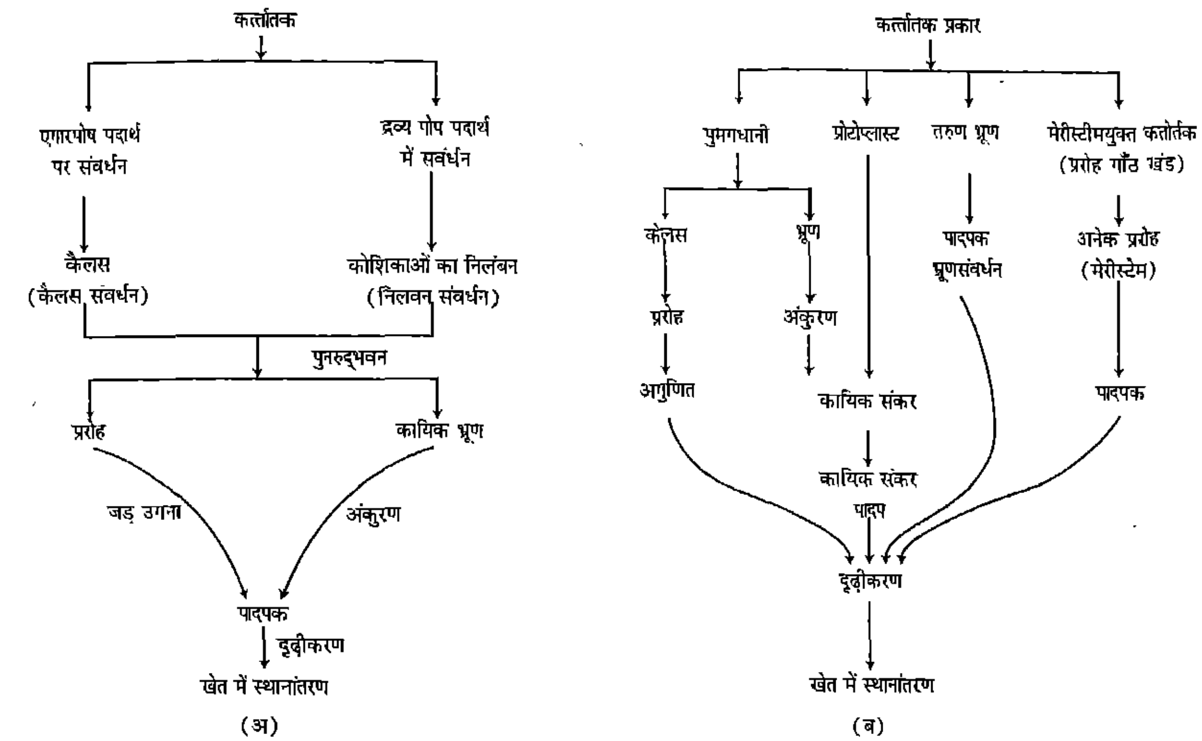
24.1 पादप ऊतक संवर्धन (Plant Tissue Culture)

पादप कोशिकाओं, ऊतकों एवं अंगों को उपयुक्त पोष पदार्थ पर *पात्रे* (किसी पात्र, जैसे परखनली में) संवर्धित करने को **पादप ऊतक संवर्धन** कहते हैं। पादप ऊतक कल्चरों का वर्गीकरण साधारणतया उनकी वृद्धि के प्रकार, जैसे कैलस एवं निलंबन संवर्ध (चित्र 24.1अ), अथवा संवर्ध आरंभ करने के लिए उपयोग किए गए कर्तोतक, जैसे भ्रूण, परागकोष आदि का संवर्ध (चित्र 24.1ब)। वह पादप ऊतक का अंग, जिसे उसके मूल स्थान से विलग करके *पात्रे* संवर्धित किया जाता है; **कर्तोतक** कहा जाता है (चित्र 24.2)। संवर्धन के लिए उपयोग किए जाने वाले कर्तोतकों, संवर्धन पात्रों, पोष पदार्थों एवं उपकरणों आदि को सूक्ष्मजीवों से मुक्त करना अनिवार्य होता है। इसके लिए कर्तोतकों को विशिष्ट प्रतिसूक्ष्मजैविकों से उपचारित किया जाता है। इसे **सतह रोगाणुनाशन** कहते हैं। पात्रों एवं पोष पदार्थों को रोगाणुनाशन भाप, शुष्क ताप या एल्कॉहल से उपचारित करके अथवा उनका फिल्टर करके किया जाता है। इस क्रिया को **रोगाणुनाशन** या **निर्जर्मीकरण** कहा जाता है।

पोष पदार्थ से वे सभी पोषक प्राप्त होने चाहिए, जो कर्तोतक की वांछित वृद्धि एवं परिवर्धन के लिए आवश्यक होते हैं। अधिकांश उद्देश्यों के लिए उपयुक्त मानक पोष पदार्थ उपलब्ध हैं। इन पोष पदार्थों में अकार्बनिक लवण, कुछ विटामिन, सुक्रोस (कार्बन एवं ऊर्जा के स्रोत के रूप में) एवं वांछित वृद्धि नियामक होते हैं। पादप ऊतक संवर्धन में सामान्यतया निम्नलिखित वृद्धि नियामकों का उपयोग किया जाता है: ऑक्सिन, जैसे 2,4-D (2,4-डाइक्लोरोफिनाक्सी एसिटिक अम्ल) एवं साइटोकाइनिन, जैसे BAP (बेंजिलएमीनोप्यूरीन)। वृद्धि नियामक ऊतक संवर्धों की कोशिकाओं में विभाजन, तथा उनसे अंग पुनरुत्पादन के लिए आवश्यक होते हैं। ऊतक संवर्धों को सामान्यतया एक संवर्धन कक्ष में 24°C पर प्रकाश में रखते हैं।

कैलस एवं निलंबन संवर्धन (Callus and Suspension Culture)

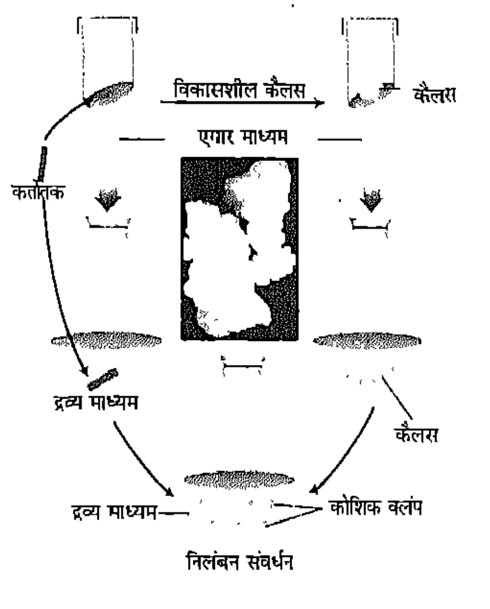
कैलस संवर्ध कोशिकाओं का एक असंगठित समूह होता है। यह एगार पोष पदार्थ पर संवर्धित किया जाता है। पोष पदार्थ में सामान्यतया 2,4-D तथा बहुधा BAP उपस्थित होते हैं। इस पोष पदार्थ पर संवर्धित कर्तोतकों की बहुत सी कोशिकाओं में



चित्र 24.1 पादप संवर्धन के विभिन्न प्रकारों का एक चार्ट के रूप में चित्रण (अ) कैलस एवं निलंबन संवर्धन (ब) पुमंगधानी, प्रोटोप्लास्ट, भ्रूण एवं प्रोह उच्च भाग

विभाजन शुरू हो जाता है। इससे 2-3 सप्ताह में इन कर्तोतकों से कैलस की प्राप्ति होती है इसके विपरीत, निलंबन संवर्धों को द्रव पोष पदार्थों में रखा जाता है, और इनमें एकल कोशिकाएं एवं छोटे-छोटे कोशिका समूह होते हैं (चित्र 24.2)। सामान्यतया, पोष पदार्थ में 2,4 D होता है। निलंबन संवर्धों को सतत 100-200 rpm (चक्कर प्रति मिनट) की दर से हिलाते रहना अनिवार्य होता है। इनको हिलाते रहने से निम्नलिखित तीन उद्देश्य पूरे होते हैं: (i) संवर्ध का वातन, (ii) पोष पदार्थ का सतत् मिश्रण, एवं (iii) कोशिका समूहों का छोटे-छोटे कोशिका समूहों में टूटते रहना। निलंबन संवर्धों की वृद्धि दर कैलस संवर्धो की तुलना में बहुत अधिक होती है।

समय बीतने के साथ सभी प्रकार के पादप ऊतक संवर्धों में निम्नलिखित तीन बातें घटित होती हैं: (i) कोशिकाओं/ऊतकों के शुष्कभार (जैवभार) में वृद्धि होती है, (ii) पोष पदार्थ के पोषकों में कमी होती जाती है, एवं (iii) पोष पदार्थ में से जल के वाष्पन के कारण इसके आयतन में कमी होती जाती है। अतः यदि किसी ऊतक संवर्धन को एक ही संवर्धन पात्र में



चित्र 24.2 कैलस एवं निलंबन संवर्धन का आरंभन

रहने दिया जाए, तो कुछ समय बाद यह मर जाएगा। इस कारण, कोशिकाओं/ऊतकों को नियमित रूप से नवनिर्मित पोष पदार्थ युक्त संवर्धन पात्रों में स्थानांतरित किया जाता रहता है, इस क्रिया को **उपसंवर्धन** कहते हैं (चित्र 24.3)। ध्यान देने योग्य है कि उपसंवर्धन के समय किसी कल्चर के एक अंश को ही नए संवर्धन पात्र में स्थानांतरित किया जाता है। सिद्धांततः नियमित उपकल्चर द्वारा पादप संवर्धों को अनंत काल तक अनुरक्षित किया जा सकता है।

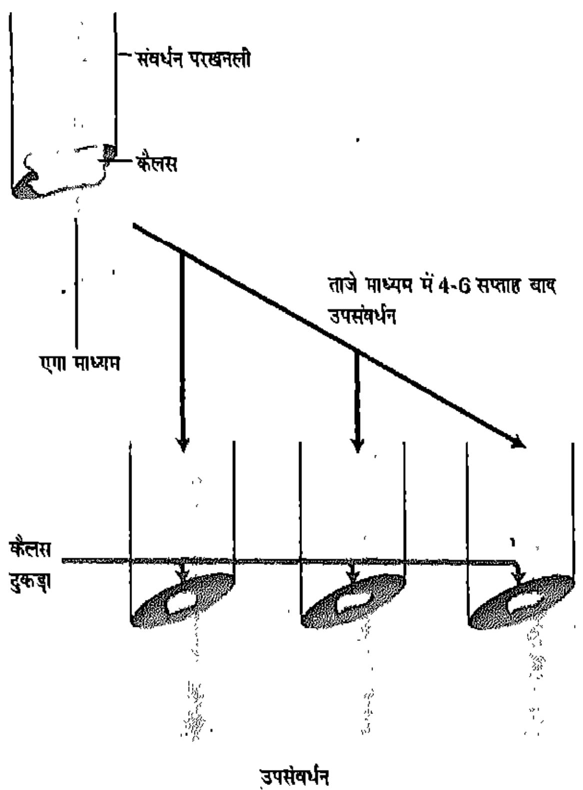
कैलस एवं निलंबन संवर्धों का उपयोग कोशिका जैवभार उत्पादन (जैव रसायनों की प्राप्ति के लिए), पादपकों के पुनरुत्पादन, पारजीन पौधों के उत्पादन एवं प्रोटोप्लास्टों की प्राप्ति के लिए किया जा सकता है। इनके बारे में अधिक विवरण आगे दिया गया है।

पादप पुनरुत्पादन (Regeneration of Plantlets)

पात्रे संवर्धित पादप कोशिकाओं से अंततः संपूर्ण पादपकों की प्राप्ति की जा सकती है। आप जानते हैं कि पादप कोशिकाओं की इस क्षमता को **पूर्णशक्यता** कहते हैं। वास्तव में 1902 में गोटिलिएब हेबरलैंड ने मध्यपर्ण से विलगित पादप एकल कोशिकाओं का संवर्धन उनकी पूर्णशक्यता प्रमाणित करने के लिए ही किया था। इसी प्रयोग से पादप ऊतक संवर्धन का आरंभ हुआ। पादप कोशिकाओं से पादपक दो भिन्न पथों से प्राप्त हो सकते हैं: (i) प्ररोह पुनरुत्पादन से प्राप्त प्ररोहों में मूलोत्पादन के माध्यम से, तथा (ii) कायिक भ्रूणजनन से प्राप्त भ्रूणों के अंकुरण द्वारा सवंर्धित कोशिकाओं से अंगों, जैसे मूल, प्ररोह, भ्रूण आदि के परिवर्धन को **पुनरोत्पादन** कहते हैं।

प्ररोह पुनरोत्पादन: साइटोकाइनिन जैसे BAP प्ररोह पुनरोत्पादन प्रेरित करते हैं। इसके विपरीत, मूलोत्पादन का प्रेरणा ऑक्सिन, जैसे NAA (नैफ्थलीन एसिटिक अम्ल) करते हैं। वास्तव में, प्ररोह एवं मूल पुनरुत्पादन ऑक्सिन एवं साइटोकाइनिन के संतुलन द्वारा नियंत्रित होता है। सामान्यत, ऑक्सिन की अधिकता होने पर मूलोत्पादन, तथा साइटोकाइनिन के अधिक होने पर प्ररोह पुनरोत्पादन होता है। कैलस संवर्धों को पहले BAP-युक्त पोष पदार्थ पर संवर्धित करते हैं। इससे कुछ समय पश्चात प्ररोह पुनरुत्पादन होता है। जब प्ररोह 2-3 cm लंबे हो जाते हैं, तो उन्हें निकाल कर ऑक्सिन-युक्त पोष पदार्थ पर स्थानांतरित करते हैं। इन प्ररोहों के निचले छोर से मूलोत्पादन होता है, जिससे पूर्ण पादपक प्राप्त होते हैं।

कायिक भ्रूणजनन : किसी कायिक कोशिका से परिवर्धित होने वाले भ्रूण को **कायिक भ्रूण** कहा जाता है (चित्र 24.4)।



चित्र 24.3 उपसंवर्धन का रेखाचित्रीय निरूपण



चित्र 24.4 कैलस संवर्ध से कायिक भ्रूण पुनर्जनन

कायिक भ्रूण के परिवर्धन का पैटर्न जाइगोटी भ्रूणों के समान ही होता है। कायिक भ्रूणजनन का उत्प्रेरण 2,4-D जैसे ऑक्सिनों की अपेक्षाकृत उच्च सांद्रताओं द्वारा किया जाता है। ऑक्सिन युक्त पोष पदार्थ पर उत्पन्न हुए तरुण भ्रूण उसी अथवा किसी अन्य पोष पदार्थ पर परिपक्व भ्रूण में विकसित होते हैं। परिपक्व कायिक भ्रूणों के अंकुरण से पूर्ण पादप प्राप्त होते हैं (चित्र 24.5)।



चित्र 24.5 कायिक भ्रूणों के अंकुरण से प्राप्त पादप

पादपकों का खेत में स्थानांतरण : पादपकों को संवर्धन पात्रों से निकाल कर खेतों में लगाया जा सकता है (चित्र 24.6)। पादपकों का खेतों में स्थानांतरण एक विशिष्ट प्रक्रिया के अनुसार करते हैं, इस प्रक्रिया को **दृढ़ीकरण** कहा जाता है। दृढ़ीकरण की प्रक्रिया से पादपक संवर्धन पात्रों से बाहर के अपेक्षाकृत अधिक कठोर वातावरण के लिए अनुकूलित हो जाते हैं।

अनुप्रयोग: पादप बायोटेक्नोलाजी मुख्यरूप से पादप कोशिकाओं की पूर्णशक्यता पर आधारित होती है। पादप कोशिकाओं के उपयोग से मानव द्वारा उपयोगी उत्पादों/सेवाओं के सृजन को **पादप बायोटेक्नोलॉजी** कहा जाता है। अधिकांश पादप बायोटेक्नोलॉजीय गतिविधियों से प्राप्त उपयोगी उत्पाद पादपक होते हैं, जिनके जीनप्रारूप में रूपांतरण किया गया हो सकता है। इन पादपकों के निम्नलिखित उपयोग होते हैं:

(i) *त्वरित क्लॉनीय गुणन:* अलैंगिकजनन द्वारा एक कोशिका व्यष्टि से प्राप्त कोशिकाओं और व्यष्टियों के समूह को **क्लॉन** कहा जाता है। किसी कैलस/निलंबन संवर्ध में उपस्थित सभी कोशिकाएं एक ही कर्तोतक की कोशिकाओं में समसूत्री विभाजन से व्युत्पन्न होती हैं। अत: एक कैलस/निलंबन संवर्ध से पुनरोत्पादित सभी पादपकों से एक क्लॉन प्राप्त होता है। इन पादपकों का उपयोग उन्नत क्रमों के त्वरित क्लॉनीय गुणन के लिए किया जा रहा है। यह तेल ताड़ जैसी कुछ पादप स्पीसीज़ों में किया गया है।

(ii) *कायिक क्लॉनीय विविधता:* पात्रे संवर्धित कोशिकाओं में आनुवंशिक विविधता उत्पन्न होती रहती है। इस विविधता को **कायिक क्लॉनीय विविधता** कहा जाता है। संबंधी कोशिकाओं से पुनरोत्पादित पौधों में भी कायिक क्लॉनीय विविधता विद्यमान रहती है। इस विविधता का उपयोग करके कई उपयोगी किस्में विकसित की गई हैं।

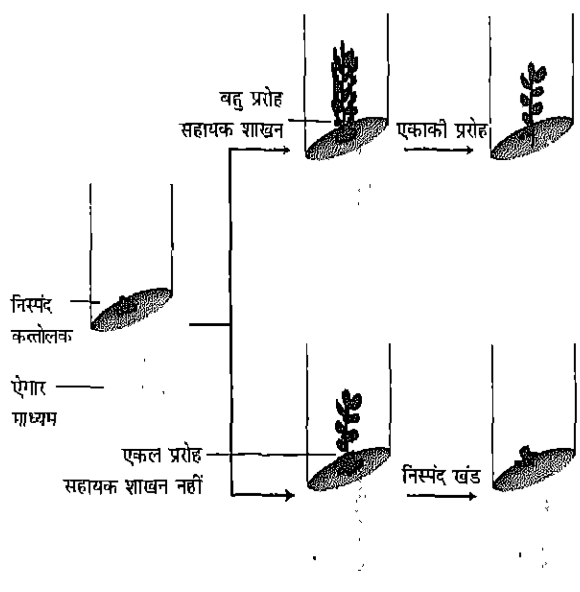
(iii) *पारजीनी पौधे:* आपको याद होगा कि पादप कोशिकाओं में पारजीनों को प्रविष्ट किया जा सकता है। पारजीनों को अभिव्यक्त करने वाली कोशिकाओं का आसानी से वरण किया जा सकता है, और इनसे पादपक पुनरोत्पादित किए जा सकते हैं। इन पादपकों से बहुमूल्य पारजीनी पौधों की प्राप्ति होती है (देखें, खंड 24.4)।



चित्र 24.6 एक उर्वर स्पाइक-युक्त गेहूं का पौधा। यह पौधा उन पौधों में से एक है, जो चित्र 24.4 में प्रदर्शित संवर्धन पात्र में विद्यमान पादपों को खेत में स्थानांतरित करने पर परिवर्धित हुए थे (सौजन्य : डॉ बी. अरुण)

मेरिस्टेम संवर्धन (Meristem Culture)

पिछले खंड में आपने अपस्थानिक प्ररोह पुनरुत्पादन के बारे में पढ़ा। लेकिन हम ऐसे कर्तोतकों का उपयोग कर सकते हैं, जिनमें पूर्ववर्ती प्ररोह मेरिस्टेम उपस्थित हों, और इन मेरिस्टेमों के परिवर्धन से प्ररोह प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रकार के संवर्धों को **मेरिस्टेम संवर्ध** कहते हैं। मेरिस्टेम संवर्ध में सामान्यतया प्ररोहाग्रों एवं बहुधा गांठ खंडों का कर्तोतक के रूप में उपयोग किया जाता है। इन कर्तोतकों को साइटोकाइनिन (सामान्यतया BAP) युक्त पोष पदार्थ पर संवर्धित करते हैं। साइटोकाइनिन शीर्ष प्रभाविता को समाप्त करके पार्श्वशाखन को बढ़ाते हैं। इससे प्रत्येक कर्तोतक से कई प्ररोह उत्पन्न होते हैं (चित्र 24.7)। जब प्ररोह 2-3 cm लंबे हो जाते हैं, तो उन्हें अलग करके मूलोत्पादन के लिए उपयुक्त पोष पदार्थ पर संवर्धित करते हैं। इस प्रकार प्राप्त पादपकों का दृढ़ीकरण करने के बाद उन्हें खेतों में स्थानांतरित कर देते हैं। मेरिस्टेम संवर्धन का उपयोग त्वरित क्लॉनीय गुणन तथा वाइरसमुक्त पौधों की प्राप्ति के लिए किया जाता है। इनका उपयोग जननद्रव्य संरक्षण एवं पारजीनी पौधों के उत्पादन के लिए भी किया जाता है।



चित्र 24.7 कक्षीय शासन द्वारा सूक्ष्म प्रवर्धन।

भ्रूण संवर्धन (Embryo Culture)

परिवर्धन हो रहे बीजों से तरुण भ्रूणों को अलग करके उनके *पात्रे* संवर्धन को **भ्रूण संवर्धन** कहते हैं। सामान्यतया, भ्रूण की आयु जितनी अधिक होगी, उसका *पात्रे* संवर्धन उतना ही आसान होगा। भ्रूण संवर्धन का उद्देश्य तरुण भ्रूण का *पात्रे* परिवर्धन एवं अंततः उनसे पादपकों की प्राप्ति होती है। भ्रूण संवर्धन के निम्नलिखित अनुप्रयोग होते हैं :

(i) कई अंतरास्पीसीज़ संकरणों में संकर बीजों का भ्रूणपोष परिवर्धन की आरंभिक दशा में ही अपह्रासित हो जाता है। चूंकि तरुण भ्रूण अपना पोषण भ्रूणपोष से ही प्राप्त करते हैं, अतः भ्रूणपोष के अपह्रासन के साथ ही संकर भ्रूण भी मर जाते हैं। अतः सामान्य दशा में ऐसे अंतरास्पीसीज़ संकरों का उत्पादन असंभव होता है। लेकिन ऐसे संकरों के तरुण भ्रूणों को भ्रूणपोष के अपह्रासन के पहले ही बीजों से निकाल कर *पात्रे* संवर्धित कर सकते हैं। इन संवर्धों से संकर पादपक प्राप्त किए जा सकते हैं। इस प्रकार से कई अंतरास्पीसीज़ संकरों का उत्पादन किया गया है।

(ii) कई पौधों, जैसे ऑर्किडों, के बीजों में खाद्य भंडार नहीं होता है। इन मामलों में भ्रूण कल्चर करने पर बीजों से उच्च आवृत्ति में पादपक प्राप्त होते हैं। भ्रूण कल्चर द्वारा ऑर्किडों का त्वरित क्लोनीय गुणन भी किया जाता है।

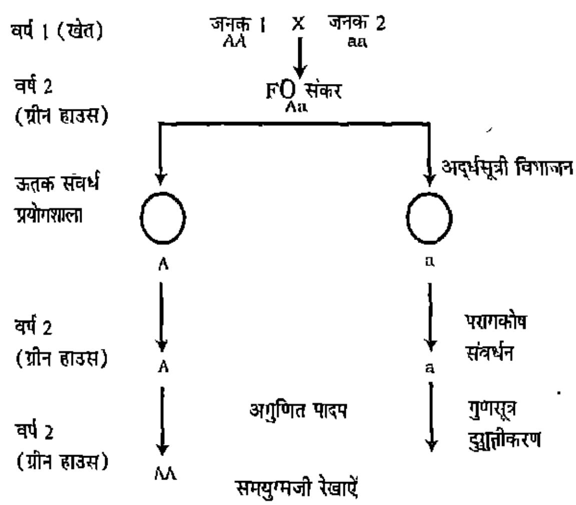
(iii) कई स्पीसीज़ों के बीज भ्रूणपोष या बीज चोल में उपस्थित निरोधकों के कारण प्रसुप्त बने रहते हैं। ऐसे मामलों में भ्रूण कल्चर द्वारा प्रसुप्ति निवारण कर सकते हैं, और पादपक प्राप्त कर सकते हैं।

परागकोष संवर्धन एवं अगुणित उत्पादन (Anther Culture and Haploid Production)

किसी अगुणित पौधे में संबंधित स्पीसीज़ का युग्मकी गुणसूत्र पूरक होता है। सिद्धांततः, युग्मक अगुणित होते हैं, और अगुणित पौधों की उत्पत्ति युग्मकों से होती है। प्रकृति में अगुणित पौधे अनिषेचित अंड कोशिकाओं से उत्पन्न होते हैं। लेकिन प्रयोगशाला में अगुणित पौधों का उत्पादन नर तथा मादा दोनों ही प्रकार के युग्मकों से किया जा सकता है। कई स्पीसीज के पराग कोषों को उपयुक्त पोषपदार्थ पर संवर्धित करने पर उनसे अगुणित पौधे प्राप्त होते हैं। इसे परागकोष संवर्धन कहते हैं। परागकोष संवर्धन करने पर परागकणों के केंद्रकों में समसूत्री विभाजन होने लगता है, जिससे पराग भ्रूण प्राप्त हो सकता है (चित्र 24.8)। इसके विकल्प में, पराग कणों के केंद्रकों के लगातार विभाजन से कैलस बन सकता है,

जिससे बाद मे प्ररोह पुनरोत्पादन किया जा सकता है। कई स्पीशीज में पराग कणों को परागकोष से निकाल कर संवर्धित करने पर अगुणित पौधे उत्पादित होते हैं। कई पादप स्पीसीजों के अनिषेचित अंडाशयों/अंडपों के संवर्धन से भी अगुणित पौधे प्राप्त होते हैं।

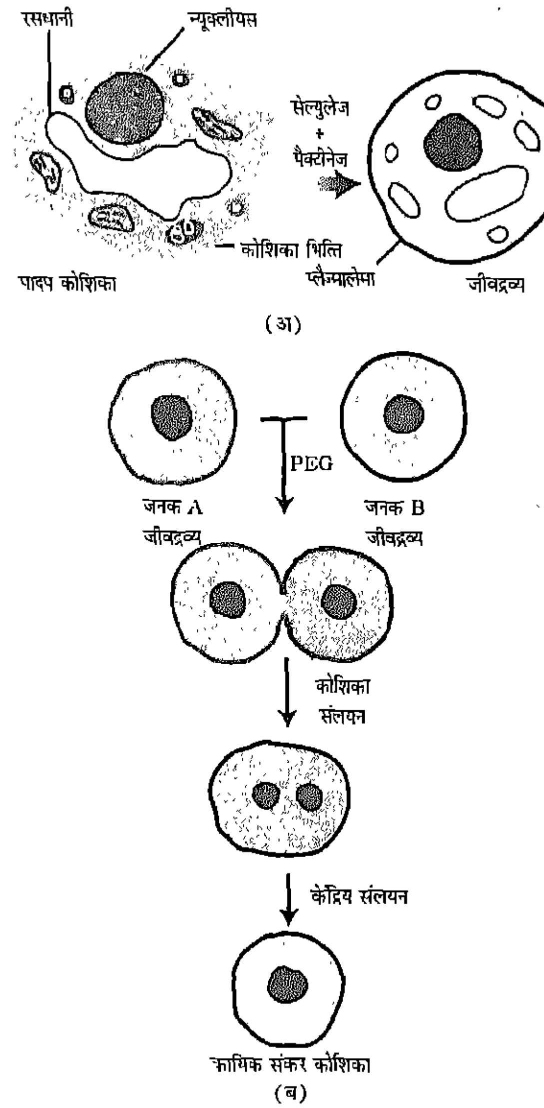
अगुणितों के उपयोग से 2-3 वर्षो में ही समयुग्मज लाइनें प्राप्त की जा सकती हैं (चित्र 24.8)। इस युक्ति को प्रजनन कार्यक्रमों में सरलतापूर्वक शामिल कर सकते हैं। इस युक्ति में पहले दो या दो से अधिक जनकों में संकरण से प्राप्त $F0$ पौधों के परागकोषों के संवर्धन से अगुणित पौधे उत्पादित किए जाते हैं। फिर इन अगुणितों की क्रोमोसोम संख्या को सामान्यतया कॉल्चिसीन उपचार से दो गुना कर देते हैं। इस प्रकार प्राप्त पौधे सभी जीनों के लिए समयुग्मज होते हैं। इस विधि से, विशेष रूप से चावल की, कई उन्नत किस्मों का उत्पादन किया गया है।



चित्र 24.8 परागकोष संवर्धन के उपयोग से समयुग्मीजी का उत्पादन

प्रोटोप्लास्ट संवर्धन और कायिक संकरण (Protoplast Culture and Somatic Hybridisation)

दो भिन्न किस्मों या स्पीशीज की कायिक कोशिकाओं के संगलन से प्राप्त संकरों को **कायिक संकर** कहते हैं। कायिक संकरों के उत्पादन की प्रक्रिया को **कायिक संकरण** कहा जाता है (चित्र 24.9)। इस प्रक्रिया का पहला चरण पादप कोशिकाओं



चित्र 24.9 कायिक संकरण। (अ) पेक्टिनेस एवं सेल्यूलोस के मिश्रण द्वारा कोशिका भित्ति से प्रोटोप्लास्ट कायिक संकर कोशिका की प्राप्ति। (ब) PEG द्वारा प्रोटोप्लास्ट संगलन से अततः संकर कोशिकाएं प्राप्त होती हैं

की भित्ति का एंजाइमी पाचन होता है। इसके लिए पेक्टिनेस एवं सेल्युलेस एंजाइमों के मिश्रण का उपयोग किया जाता है। कोशिका भित्ति के पाचन के बाद शेष बचे जीवद्रव्य कला से घिरे कोशिकाद्रव्य को **प्रोटोप्लास्ट** कहते हैं। चुने गए जनकों के प्रोटोप्लास्टों में पॉलीइथिलीन ग्लाइकॉल (PEG) अथवा अत्यंत

अल्प अवधि की उच्च वोल्टता विद्युत तरंग की सहायता से संगलन प्रेरित किया जाता है (चित्र 24.9 ब)। प्रोटोप्लास्टों को उपयुक्त पोषपदार्थ पर संवर्धित किया जाता है, तो सबसे पहले उनकी कोशिका भित्ति का पुनर्जनन होता है, फिर उनका कोशिका विभाजन होता है, और अंत में पादपक पुनरुत्पादन होता है। कायिक संकरों को कई युक्तियों द्वारा पहचाना जा सकता है।

कायिक संकरण विधि से ऐसे क्रमों एवं स्पीशीज के संकर उत्पादित किए जा सकते हैं, जिनमें लैंगिक संकरण संभव नहीं होता है। उदाहरण के लिए आलू के एक पुष्पी एवं एक अपुष्पी क्लॉन के कायिक संकरण पुष्पी एवं उर्वर थे। इसी तरह चावल एवं गाजर के कायिक संकर प्राप्त किए गए हैं। उपरोक्त दोनों ही मामलों में लैंगिक संकर प्राप्त करना असंभव है। कायिक संकरों के उपयोग से जीन स्थानांतरण, कोशिकाद्रव्य स्थानांतरण एवं उपयोगी परबहुगुणित उत्पादन किए जा सकते हैं।

24.2 जैव प्रौद्योगिकी (Biotechnology)

सूक्ष्मजीवों, जंतु एवं पादप कोशिकाओं अथवा उनके घटकों के उपयोग से मानव उपयोगी उत्पादों या सेवाओं के सृजन को बायोटेक्नोलॉजी कहते हैं। बायोटेक्नोलॉजी में संपूर्ण जंतुओं तथा पौधों के मानव हित में उपयोग को शामिल नहीं किया जाता है। इसका मुख्य कारण यह है कि कृषि, उद्यान कृषि तथा पशुपालन विज्ञान जैसे प्रतिष्ठित विषयों में इनके उपयोग से संबंधित अध्ययन ही किए जाते हैं।

मानव हजारों वर्षों से दही, शराब, सिरका, डबलरोटी आदि के उत्पादन के लिए सूक्ष्मजीवों का उपयोग करता रहा है। किंतु उसे यह ज्ञात नहीं था कि इन उत्पादों में सूक्ष्मजीवों की भी कोई भूमिका होती है। सूक्ष्मजीवों के उपयोग से कुछ कार्बनिक यौगिकों, जैसे सिट्रिक अम्ल, का व्यापारिक उत्पादन प्रथम विश्व युद्ध के बाद आरंभ हुआ। बाद में सूक्ष्मजीवों के उपयोग से प्रतिजैविकों सहित अनेक उत्पादों की प्राप्ति की जाने लगी। इनके अलावा, आजकल जंतु एवं पादप कोशिका कल्चरों से भी कई बहुमूल्य उत्पादों की प्राप्ति की जाती है (सारणी 24.1)। इन सभी प्रक्रियाओं में सूक्ष्मजीवों एवं जंतु/पादप कोशिकाओं के आनुवंशिक सुधारों से उत्पादकता में बहुत अधिक सुधार हुआ है। उदाहरण के लिए, आजकल पेनिसिलिन की उत्पादकता पहले की तुलना में लगभग एक हजार गुना अधिक है। लेकिन सुधरे विभेदों/कोशिका क्रमों से भी केवल वही उत्पाद प्राप्त होते हैं, जो कि प्राकृतिक विभेदों/कोशिका क्रमों से होते थे। इन सभी क्रियाओं को बहुधा **पुरातन बायोटेक्नोलॉजी** कहा जाता है।

बीसवीं शताब्दी के आठवें दशक के दौरान पुनर्योगज DNA टेक्नोलॉजी का विकास हुआ। इनमें से कुछ तकनीकों के बारे में आप ने पिछली कक्षा में अध्ययन किया था। पुनर्योगज DNA टेक्नोलॉजी को प्रचलित भाषा में आनुवंशिक इंजीनियरी कहा जाता है। इस टेक्नोलॉजी के उपयोग से किसी भी जीव से वांछित जीन को विलग करके इसे किसी अन्य जीव में स्थानांतरित एवं अभिव्यक्त किया जा सकता है। आनुवंशिक इंजीनियरी विधि से स्थानांतरित किए गए जीन को पारजीन कहते हैं। पारजीनी जीव उस जीव को कहा जाता है, जिसमें कोई पारजीन उपस्थित एवं अभिव्यक्त होता है।

पारजीनी सूक्ष्मजीव विशेष रूप से *एस्केरिशिया कोलाई*, से नवीन औषधीय प्रोटीन प्राप्त किए जाते हैं। उदाहरणार्थ, एक ऐसे *ई. कोलाई* विभेद, जिसमें मानव इंसुलिन जीन अभिव्यक्त होता है, से मानव इंसुलिन व्यापारिक स्तर पर प्राप्त किया जाता है। पारजीनी कोशिकाओं/जीवों में अभिव्यक्त पारजीनों द्वारा उत्पादित प्रोटीनों को **पुनर्योगज प्रोटीन** कहा जाता है। कई बहुमूल्य पुनर्योगज प्रोटीनों को पारजीनी जंतु कोशिका क्रमों एवं पारजीनी पौधों से भी प्राप्त किया जा रहा है (सारणी 24.1)। ये *कोशिकाएं / जीव प्राकृतिक रूप में इन पुनर्योगज प्रोटीनों* को उत्पादित नहीं कर सकते हैं। ये प्रोटीन उन पारजीनों द्वारा उत्पादित किए जाते हैं, जो कि इनमें आनुवंशिक इंजीनियरी द्वारा प्रविष्ट कराए गए थे। इनके साथ ही, अपारजीनी कोशिकाओं / सूक्ष्मजीवों के उपयोग से इन बहुमूल्य औषधीय प्रोटीनों में से कई का व्यापारिक उत्पादन असंभव था। आनुवंशिक इंजीनियरी आधारित उत्पादन टेक्नोलॉजी को अक्सर **आधुनिक बायोटेक्नोलॉजी** कहते हैं।

24.3 आनुवंशिकता रूपांतरित फसलें (Genetically Modified Crops)

जिन फसलों में कोई पारजीन अभिव्यक्त होता है, उन्हें **पारजीनी फसल** या **आनुवंशिकतः रूपांतरित फसल** (GM crops) कहा जाता है। पारजीनी फसलों के उत्पादन से निम्नलिखित दो अद्वितीय लाभ होते हैं : *प्रथम*, किसी भी जीव के किसी जीन या किसी संश्लेषित जीन का उपयोग किया जा सकता है। *दूसरे*, फसल के जीनप्रारूप में होने वाले परिवर्तन को पूरी तरह नियंत्रित रखा जा सकता है, क्योंकि फसल के जिनोम में केवल पारजीन को ही जोड़ा जाता है।

इसके विपरीत, प्रजनन विधियों से (i) केवल उन्हीं जीनों का उपयोग किया जा सकता है जो ऐसी लाइनों या स्पीसीज़ों में उपस्थित होते हैं, जिनसे संबंधित फसल का संकरण किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, (ii) उन सभी

सारिणी 24.1 : कृषि, उद्योग एवं मानव स्वास्थ्य में सूक्ष्मजीवों, तथा जंतु पादप कोशिकाओं के कुछ महत्वपूर्ण अनुप्रयोग

जीव	अनुप्रयोग	
	कृषि	उद्योग एवं मानव स्वास्थ्य
	अपारजीनी विभेद/क्रम	
सूक्ष्म जीव	जैव उर्वरक जैव कडेनाशी	टीके एंटीबायोटिक, विटामिन, कार्बनिक यौगिक एकल कोशिका प्रोटीन
जंतु कोशिकाएं		टीके औषधीय प्रोटीन (प्रतिरक्षी सहित)
पादप कोशिकाएं, ऊतक एवं अंग	सूक्ष्म प्रवर्धन अगुणित पौधे कायिक संकर कायिक क्लॉनीय विविधता	द्वितीयक उपापचयज (औषधीय यौगिकों सहित) सूक्ष्मप्रवर्न्धन
	पारजीनी विभेद / क्रम	
सूक्ष्म जीव	–	नवीन औषधीय प्रोटीन
जंतु कोशिकाएं	–	टीके, नवीन उत्पाद नवीन औषधीय प्रोटीन, टीके, प्रतिरक्षी
पादप कोशिकाएं	परजीनी फसलें शाकनाशी रोधी, कीट रोधी, वाइरस रोधी रूपांतरित गुणवत्ता, सुधरा पोषण आदि	नवीन औषधीय प्रोटीन नवीन बहुमूल्य उत्पाद आनुवंशिकत: रूपांतरित खाद्य

* प्राकृतिक विभेदों/क्रमों द्वारा ये उत्पाद निर्मित नहीं किए जाते हैं। अधिकांश मामलों में, (पारजीनी विभेदों/क्रमों का उपयोग किए बिना) ये उत्पाद व्यापारिक स्तर पर प्राप्त किए ही नहीं जा सकते।

लक्षणों, जिनके लिए संकरण में उपयोग किए गए जनक भिन्न होते हैं, में परिवर्तन हो सकता है। जब किसी फसल में किसी पारजीन को अभिव्यक्त किया जाता है, तो इसके निम्नलिखित प्रकार के प्रभाव हो सकते हैं :

(i) इसके द्वारा उत्पादित प्रोटीन ही हमारा वांछित उत्पाद हो सकता है।

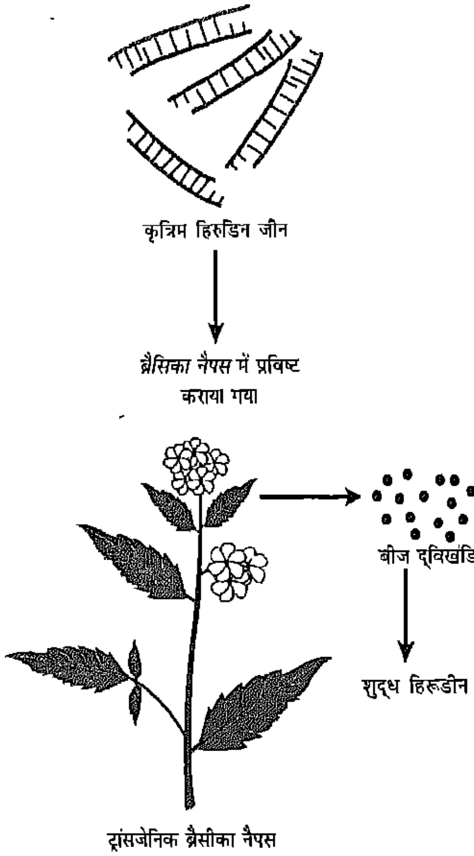
(ii) इसके द्वारा उत्पादित प्रोटीन स्वयं अकेले ही वांछित लक्षणप्रारूप उत्पादित कर सकता है।

(iii) इसका प्रोटीन उत्पाद फसल के किसी जैवसंश्लेषण पथ में इस प्रकार रूपांतरण कर सकता है, जिससे इस पथ से एक नया अंतिम उत्पाद प्राप्त हो।

(iv) यह किसी अंतर्जात जीन की क्रिया को रुद्ध कर सकता है।

हम इस क्षेत्र में हुई उपलब्धियों का सिंहावलोकन करेंगे। **हिरुडिन** एक ऐसा प्रोटीन है, जो रक्त में थक्का बनने से रोकता है। हिरुडिन कोडित करने वाले जीन का रसायनत: संश्लेषण किया गया। फिर इस जीन को सरसों कुल के *ब्रैसिका नैपस* (गोभी-सरसों) में स्थानांतरित किया गया। इस *ब्रैसिका नैपस* के बीज में हिरुडिन प्रोटीन संचित होता है। इस प्रोटीन को विलग एवं शोधित करके औषधि के रूप में उपयोग किया जा रहा है। इस उदाहरण में, पारजीन द्वारा उत्पादित प्रोटीन ही हमारा वांछित उत्पाद है (चित्र 24.10।

एक मृदा बैक्टीरिया, *बैसिलस थुरिंजिएंसिस* एक क्रिस्टल (Cry) प्रोटीन उत्पादित करता है। यह प्रोटीन कुछ कीटों के डिंबों के लिए आविषालु होता है। ये Cry प्रोटीन कई प्रकार के होते हैं। प्रत्येक Cry प्रोटीन एक भिन्न समूह के कीटों लिए आविषालु होता है। Cry प्रोटीनों को कोडित करने वाले जीनों, यानि Cry जीनों, को क्लॉन किया गया है, और इन्हें कई फसलों में स्थानांतरित किया गया है। जिस फसल में कोई Cry जीन अभिव्यक्त हो रहा होता है, वह सामान्यतया उस कीट



चित्र 24.10 पारजीवी ब्रैसिका नैपस के बीजों से हिरूडिन प्राप्ति की विधि का सरल रेखा चित्र

समूह के लिए रोधी होती है, जिसके लिए उसके द्वारा उत्पादित Cry प्रोटीन अविषालु होता है। इस मामले में पारजीन द्वारा उत्पादित प्रोटीन स्वयं ही वांछित लक्षणप्रारूप उत्पन्न करता है। ध्यान देने योग्य है कि किसी जीन तथा उसके द्वारा कोडित प्रोटीन के लिए एक ही संकेत का उपयोग किया जाता है। लेकिन जीन संकेत के सभी अक्षर सामान्यतया छोटे होते हैं, और वे सदैव तिर्यक अक्षरों में लिखे जाते हैं। दूसरी ओर, प्रोटीन संकेत का पहला अक्षर हमेशा बड़ा होता है, और यह सदैव रॉमन अक्षरों में लिखा जाता है।

टमाटर की 'फ्लेवर सेवर' किस्म में टमाटर के पालीगैलैक्ट-यूरोनेस जीन की अभिव्यक्ति निरोधित की गई है। पालीगैलैक्ट्-यूरोनेस एंजाइम पेक्टिन का पाचन करता है, जिससे फल गलने लगते हैं। टमाटर की पारजीनी किस्म 'फ्लेवर सेवर' में पालीगैलैक्ट्-यूरोनेस एंजाइम का उत्पादन निरोधित कर दिया गया है। अत: इस किस्म के फल सामान्य किस्मों के फलों की तुलना में अधिक दिनों तक ताजे रहते हैं, और उनकी सुगंध भी सुरक्षित रहती है। इसके अलावा, इसके फलों का स्वाद भी उत्कृष्ट होता है, और इसमें कुल घुलनशील ठोस अपेक्षाकृत अधिक होते हैं, ये दोनों ही अप्रत्याशित लाभ हैं।

पारजीनी फसलों की खेती संयुक्त राज्य अमेरिका, योरोप तथा कई अन्य देशों में की जा रही है। भारत में कपास की कुछ किस्में, जो Cry जीन की अभिव्यक्ति के कारण कीट रोधी हैं, खेती के लिए संस्तुत की गई हैं। पारजीनी फसलों के पर्यावरण के लिए हानिकारक होने की आशंकाएं व्यक्त की जाती रही हैं। ये आशंकाएं मुख्य रूप से निम्नलिखित तीन प्रकार की हैं। *प्रथम*, इन फसलों से पारजीन इनके किसी निकट संबंधी खरपतवार में स्थानांतरित हो सकते हैं, जिससे ये खरपतवार और अधिक अनिष्टकारी हो सकते हैं। इससे बचने के लिए किसी पारजीनी फसल की उस क्षेत्र में खेती नहीं की जानी चाहिए जहां खेतों में और उनके आसपास इन फसलों के निकट संबंधी खरपतवार पाए जाते हो। *दूसरे*, पारजीनी फसलें स्वयं ही अनिष्टकारी खरपतवार बन सकती हैं। लेकिन इसकी संभावना बहुत ही कम है क्योंकि केवल एक जीन के कारण किसी फसल के खरपतवार बन सकने की संभावना नगण्य है। अंत में, पारजीनी किस्मों से कोई अब तक अज्ञात हानि पहुंच सकती है। बाद के दोनों पहलुओं पर अंतिम निर्णय के लिए व्यापक अध्ययन किए जा रहे हैं।

24.4 आनुवंशिकता रूपांतरित खाद्य (Genetically Modified Food)

आनुवंशिकता रूपांतरित फसलों के उत्पादों से बनाए गए खाद्य को **आनुवंशिकता रूपांतरित खाद्य (GM food)** कहा जाता है। यह खाद्य परंपरागत प्रजनन द्वारा विकसित किस्मों से बने खाद्यों से निम्नलिखित तीन बातों में भिन्न होता है : *प्रथम* इसमें उस एंटीबायोटिक रोधिता जीन, जिनका उपयोग आनुवंशिक इंजीनियरी के दौरान किया गया था, द्वारा उत्पादित एंजाइम उपस्थित होता है। *दूसरे*, इसमें संबंधित पारजीन जैसे कीट रोधी किस्मों में जीन Cry द्वारा उत्पादित प्रोटीन उपस्थित होता है। अंत में, इसमें एंटीबायोटिक रोधिता जीन स्वयं उपस्थित रहता है।

उपरोक्त के कारण आनुवंशिकत: रूपांतरित खाद्यों के उपयोग से निम्नलिखित तीन प्रकार के प्रभावों की संभावना

व्यक्त की गई है : *प्रथम*, पारजीनों के उत्पाद अविषालु हो सकते हैं। *दूसरे*, वे एलर्जी पैदा कर सकते हैं। *तीसरे*, एंटीबायोटिक रोधिता जीन द्वारा कोडित एंजाइम एलर्जी पैदा कर सकता है। *अंत में*, आनुवंशिकत: रूपांतरित खाद्य में उपस्थित एंटीबायोटिक रोधिता जीन को आंतों में उपस्थित बैक्टीरिया ग्रहण कर सकते हैं। ऐसा होने पर ये बैक्टीरिया संबंधित एंटीबायोटिक के लिए रोधी हो जाएंगे। इसके परिणामस्वरूप रोग की दशा में इन बैक्टीरियाओं को नियंत्रित करने में कठिनाई होगी।

पारजीनी फसलों के विकास में व्यस्त वैज्ञानिक उपरोक्त संभावित समस्याओं के कारगर समाधान खोजने में लगे हुए हैं। आनुवंशिक इंजीनियरी के दौरान एंटीबायोटिक रोधिता के स्थान पर अन्य जीनों के उपयोग के प्रयास हो रहे हैं। ये नए जीन मुख्य रूप से पारजीनी कोशिकाओं को असामान्य कार्बन स्रोतों या साइटोकाइनिनों के उपयोग में सक्षम बनाते हैं। इन जीनों का उपयोग करने पर एंटीबायोटिक रोधिता जीनों के कारण उत्पन्न होने वाली समस्या समाप्त हो जाएगी। पारजीनी उत्पाद के अविषालु होने एवं उससे एलर्जी पैदा होने की समस्या का समुचित समाधान उपयुक्त जंतु मॉडलों में इनका व्यापक परीक्षण है।

24.5 प्रतिपालनीय कृषि (Sustainable Agriculture)

आधुनिक कृषि पद्धतियों में पेट्रोलियम उत्पादों जैसे अनवीकरणीय संसाधनों का उपयोग होता है, और ये प्रदूषण भी उत्पन्न करते हैं। ये दोनों ही बातें अनंतकाल तक जारी नहीं रह सकती हैं, अर्थात् ये प्रतिपालनीय नहीं हैं। प्रतिपालनीय विकास कई भिन्न तरीकों से परिभाषित किया गया है। इनमें से प्रतिपालनीय कृषि के अनुसार, प्रतिपालनीय विकास द्वारा हम आज की अपनी आवश्यकताओं की इस प्रकार पूर्ति करते हैं, जिससे भविष्य की पीढ़ियों द्वारा अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने की क्षमता पर प्रतिकूल असर न पड़े। अत: प्रतिपालनीय कृषि को सामान्यतया नवीकरणीय संसाधनों का उपयोग करना चाहिए, कम से कम प्रदूषण उत्पन्न करना चाहिए, और अनुकूलतम उपज देनी चाहिए। ऐसी कोई भी प्रक्रिया जो अनवीकरणीय संसाधनों के उपयोग अथवा/या प्रदूषण स्तर में कमी करे, वह कृषि की प्रतिपालनीयता में वृद्धि करेगी। बायोटेक्नोलॉजी कृषि की प्रतिपालनीयता में कई प्रकार के योगदान कर सकती है, जिनमें से कुछ का वर्णन आगे के खंडों में किया गया है।

जैव उर्वरक (Biofertilisers)

वे सूक्ष्मजीव जो फसलों के पोषकों, जैसे नाइट्रोजन एवं फॉस्फोरस, की उपलब्धता बढ़ाते हैं, **जैव उर्वरक** कहलाते हैं। कई सूक्ष्मजीव जैसे बैक्टीरिया एवं साएनोबैक्टीरिया (नील-हरित शैवाल), वायवीय नाइट्रोजन का अमोनिया में निम्नीकरण करके उसे पौधों को उपलब्ध कराते हैं। कुछ नाइट्रोजन-निबंधक बैक्टीरिया स्वतंत्रजीवी होते हैं। लेकिन कुछ अन्य एकबीजपत्री फसलों, जैसे धान्यों, मिलेटों, गन्ना आदि, की जड़ों पर सहजीवी के रूप में रहते हैं। कुछ अन्य बैक्टीरिया दलहनों की जड़ों में गांठें बनाते हैं। ये बैक्टीरिया राइजोबिया कहे जाते हैं। अधिकांश नाइट्रोजन निबंधक साएनोबैक्टीरिया स्वतंत्रजीवी होते हैं। लेकिन कई साएनोबैक्टीरिया सहजीवी के रूप में रहते हैं, जैसे *एजोला* नामक फर्न में। *एजोला* का चावल के खेतों में जैव उर्वरक के रूप में उपयोग किया जाता है।

फॉस्फोरस के अघुलनशील यौगिकों को कुछ सूक्ष्मजीव घुलनशील यौगिकों में बदल देते हैं। इससे फॉस्फोरस की पौधों को उपलब्धता बढ़ती है। यह क्रिया कुछ बैक्टीरिया तथा कुछ ऐसे कवकों, जो पौधों की जड़ों के साथ सहजीवी के रूप में रहते हैं, द्वारा की जाती है। कवकों एवं पौधों की जड़ों के साथ सहजीविता को **कवकमूल** कहा जाता है। कुछ कवकमूलों में कवक जड़ों की सतह पर रहते हैं, जबकि कुछ अन्य में ये जड़ों के भीतर भी उपस्थित होते हैं। ये कवक फॉस्फोरस को घुलनशील बनाते हैं, पादप वृद्धिकारी पदार्थ उत्पादित करते हैं, और पोषी पौधों की मृदा रोगजनकों से रक्षा करते हैं। जैव उर्वरक के रूप में उपयोग किए जाने वाले अन्य सूक्ष्मजीव भी पादप वृद्धि बढ़ाते हैं, एवं पौधों की मृदा रोगजनकों से रक्षा करते हैं।

जैव उर्वरक कम खर्चीले होते हैं, और ये पर्यावरण को प्रदूषित नहीं करते हैं। ये रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता में कमी करते हैं। लेकिन जैव उर्वरकों का खेती में केवल सीमित उपयोग हो रहा है। इसके कई कारण हैं, जिनमें से प्रमुख इनके द्वारा शीघ्र एवं ध्यानाकर्षक प्रभाव न उत्पन्न कर पाना है। लेकिन कृषि उत्पादन में जैव उर्वरकों का योगदान बढ़ाने के लिए इनकी प्रभावशीलता में वृद्धि के व्यापक प्रयास किए जा रहे हैं।

जैवनाशी (Biopesticides)

वे जैविक कारक, जिनका उपयोग खरपतवारों, कीटों एवं रोगजनकों के नियंत्रण के लिए किया जाता है, उन्हें

जैवनाशी कहते हैं। जैवनाशी के रूप में वाइरसों, बैक्टीरियाओं, कवकों, प्रोटोजोओं एवं चिंचड़ियों का उपयोग किया जाता है।

कई सूक्ष्मजीव एवं चिंचड़ी कीटों पर आक्रमण करते हैं। इनमें से वाइरसों, बैक्टीरियों एवं कवकों का व्यापारिक स्तर पर उपयोग किया जाता है। इसका एक उदाहरण *बैसिलस थुरिंजिएंसिस* नामक मृदा बैक्टीरिया है। इस बैक्टीरिया के बीजाणु कीटनाशी क्रिस्टल प्रोटीन उत्पादित करते हैं। अतः इस बैक्टीरिया के बीजाणु कुछ कीटों के डिंबों का हनन करते हैं (खंड 24.4)। *बैसिलस थुरिंजिएंसिस* के व्यापारिक विरचन इसके बीजाणुओं, क्रिस्टल प्रोटीन एवं अक्रिय वाहक के मिश्रण होते हैं। सर्वप्रथम इसी बैक्टीरिया से निर्मित जैवनाशी का व्यापारिक स्तर पर उपयोग हुआ था। भारत में भी सर्वप्रथम इसी के व्यापारिक स्तर पर उत्पादन की प्रत्याशा है। कई फसलों के खरपतवारों एवं रोगों के नियंत्रण के लिए कुछ अन्य बैक्टीरियों एवं कवकों का भी उपयोग किया जाता है।

जैवनाशियों के उपयोग से रोगों, कीटों एवं खरपतवारों के नियंत्रण के लिए रसायनों के उपयोग में कमी आएगी। ये रसायन आविषालु एवं प्रदूषणकारी होते हैं। इसके साथ ही कृषि उत्पादों में इन रसायनों के अवशिष्टों की उपस्थिति मानव स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होती है।

रोग एवं कीट रोधी किस्में (Disease and Insect-resistant Varieties)

आनुवंशिक इंजीनियरी द्वारा कुछ फसलों की कीट एवं रोग रोधी किस्में विकसित की गई हैं। कीट रोधी किस्मों के उत्पादन का वर्णन खंड 24.4 किया गया है। इस खंड में रोग रोधी किस्मों के बारे में संक्षेप में बताया गया है। पादप रोग वाइरसों, बैक्टीरियों, कवकों एवं सूत्रकृमियों के कारण होते हैं। वाइरस रोधी पौधों का उत्पादन कई विधियों से किया जा सकता है। संबंधित वाइरस के आवरण प्रोटीन जीन का फसल में स्थानांतरण एवं अभिव्यक्ति अब तक सबसे सफल विधि रही है।

वाइरसों की संरचना सरल होती है। इनका आनुवंशिक द्रव्य एक प्रोटीन आवरण से घिरा होता है। रोगजनक वाइरस के जिनोम से उसके आवरण प्रोटीन को कोडित करने वाले जीन को विलग कर लेते हैं। इस जीन को उस वाइरस के पोषी के जिनोम में समाकलित करके अभिव्यक्त किया जाता है। आवरण प्रोटीन जीन की अभिव्यक्ति के कारण पोषी संबंधित वाइरस के लिए रोधी हो जाता है। इस विधि से स्क्वैश की एक वाइरस रोधी किस्म का विकास किया गया है। बैक्टीरियों एवं कवकों द्वारा उत्पादित रोगों से रोधी किस्मों को विकसित करने के प्रयास जारी हैं।

कीट एवं रोग रोधी किस्मों के विकास के फलस्वरूप इनके नियंत्रण के लिए रसायनों के उपयोग में कमी होने की प्रत्याशा है। इससे पर्यावरण के प्रदूषण में कमी होगी और मानव स्वास्थ्य को खतरा घटेगा। इसके अलावा, ऐसी किस्मों की खेती से फसलों की उपज में रोगों एवं कीटों के कारण होने वाली हानि में कमी आएगी। इन सब के फलस्वरूप कृषि उत्पादन में वृद्धि होगी।

एकल कोशिका प्रोटीन (Single Cell Protein)

सूक्ष्मजीवों का उपयोग कई किण्वित खाद्यों, जैसे पनीर, मक्खन, इडली आदि, के उत्पादन के लिए किया जाता है। इसके अतिरिक्त, कई सूक्ष्मजीवों, जैसे नील-हरित शैवाल *स्पाइरुलीना* एवं छत्रक के नाम से मशहूर कवक आदि का प्राचीन काल से मानव भोजन के रूप में उपयोग किया जाता रहा है। हाल के वर्षों में, कम लागत वाले क्रियाधारों के उपयोग से मानव भोजन योग्य सूक्ष्मजीव जैवभार उत्पादन के प्रयास किए जा रहे हैं। चूंकि यह सूक्ष्मजीव जैवभार प्रोटीन समृद्ध होता है, अतः इसे **एकल कोशिका प्रोटीन** कहते हैं।

एकल कोशिका प्रोटीन के उत्पादन के लिए शैवालों, कवकों, खमीरों तथा बैक्टीरियों का उपयोग कर सकते हैं। इसके लिए जिन क्रियाधारों का उपयोग किया जाता है वे CO_2 (शैवालों द्वारा प्रयुक्त) से लेकर औद्योगिक बहिःस्रावों, जैसे छेने का पानी आदि, तथा कम लागत वाले कार्बनिक पदार्थों जैसे लकड़ी का बुरादा, पुआल आदि, तक हो सकते हैं। एकल कोशिका प्रोटीन का व्यापारिक उत्पादन मुख्य रूप से खमीरों तथा कुछ कवकों, जिनमें छत्रक शामिल हैं, से किया जाता है। एकल कोशिका प्रोटीनों में उपस्थित न्यूक्लीक अम्लों की अधिक मात्रा को हटाने के लिए उनका प्रसंस्करण जरूरी होता है। एकल कोशिका प्रोटीन उच्च गुणवत्ता प्रोटीन-समृद्ध तथा कम वसा वाला होता है। मानव भोजन की दृष्टि से ये दोनों ही बातें महत्त्वपूर्ण हैं।

एकल कोशिका प्रोटीन मानव भोजन में एक महत्त्वपूर्ण प्रोटीन समृद्ध संपूरक होता है। इनका उपयोग मानव भोजन में प्रोटीन की कमी की समस्या को हल करने में सहायक होगा। इससे मानव तथा जंतु भोजन में आवश्यक प्रोटीन के उत्पादन के लिए कृषि उत्पादन पद्धतियों पर पड़ने वाला बोझ भी कम

होगा। इसके साथ ही, एकल कोशिका प्रोटीन उत्पादन के लिए औद्योगिक बहि:स्रावों का उपयोग करने से पर्यावरण के प्रदूषण में कमी होगी।

24.6 जैवपेटेंट (Biopatent)

पेटेंट किसी सरकार द्वारा किसी आविष्कारक को दिया गया वह अधिकार होता है जिसके द्वारा वह अन्य लोगों को अपने अविष्कार के व्यापारिक उपयोग से रोकता है। पेटेंट निम्नलिखित के लिए दिया जाता है: (अ) कोई आविष्कार (जिसमें उत्पाद शामिल हैं), (ब) किसी पहले के आविष्कार में कोई सुधार, (स) किसी उत्पाद को प्राप्त करने की प्रक्रिया, एवं (द) कोई धारणा या डिजाइन। आरंभ में औद्योगिक आविष्कारों आदि के लिए ही पेटेंट दिए जाते थे। लेकिन आजकल जैविक कारकों और उनसे प्राप्त उत्पादों का भी पेटेंट होने लगा है। इस प्रकार के पेटेंटों को **जैवपेटेंट** कहा जाता है। जैवपेटेंट मुख्य रूप से औद्योगिकत: संपन्न राष्ट्रों, जैसे सं. रा. अमेरिका, जापान, योरोपीय संघ के सदस्यों, द्वारा जारी किए जा रहे हैं।

जैवपेटेंट निम्नलिखित के लिए दिए जाते हैं: (i) सूक्ष्मजीवों के विभेद, (ii) कोशिका क्रम, (iii) पौधों एवं जंतुओं के आनुवंशिकत: रूपांतरित विभेद, (iv) DNA क्रमों, (v) DNA क्रमों द्वारा कोडित प्रोटीनों, (vi) विविध बायोटेक्नोलॉजीय प्रक्रियाएं, (vii) उत्पादन प्रक्रियाएं, (viii) उत्पाद एवं (ix) उत्पादों के अनुप्रयोग। जैवप्रारूपों के पेटेंटन का विभिन्न सामाजिक समूहों द्वारा कड़ा विरोध किया जाता रहा है। ये विरोध मूलत: नैतिक एवं राजनैतिक प्रकृति के हैं। जैवपेटेंटों के समर्थन में सबसे बड़ा तर्क आर्थिक प्रगति का है। अब तक के इतिहास से ऐसा प्रतीत होता है कि आर्थिक तर्क नैतिक आदि तर्कों से अधिक मजबूत होते हैं, और ये ही अक्सर मानव क्रियाओं की दिशा निर्धारित करते हैं।

कई बायोटेक्नोलॉजीय पेटेंटों का क्षेत्र काफी व्यापक है। उदाहरणार्थ, एक पेटेंट का विषय *ब्रैसिका* (सरसों) कुल के सभी पारजीनी पौधे हैं। ऐसे विस्तृत पेटेंटों को अनैतिक और भेदभावपूर्ण माना जाना चाहिए। ऐसे पेटेंटों के माध्यम से आर्थिक रूप से समर्थ निगमों को बायोटेक्नोलाजीय प्रक्रियों पर एकाधिकार प्राप्त हो जाएगा। इससे वे, अंत में, संसार में कृषि अनुसंधानों, जिसमें पादप प्रजनन शामिल है, की दिशा को नियंत्रित कर सकते हैं। ऐसी अवस्था विश्व खाद्य सुरक्षा के लिए खतरा बन जाएगी।

24.7 जैवदस्युता (Biopiracy)

किसी राष्ट्र के व्यक्ति/समूह/संस्था द्वारा किसी अन्य राष्ट्र के जैविक संसाधनों तथा उससे संबंधित परंपरागत ज्ञान का बिना इस राष्ट्र की सहमति के दोहन किया जाना **जैवदस्युता** कहा जाता है। औद्योगिक राष्ट्र आर्थिक संसाधनों एवं टेकनोलाजी में समृद्ध हैं। किंतु ये राष्ट्र जैव विविधता एवं इनके उपयोग से संबंधित परंपरागत ज्ञान में हीन हैं। इसके विपरीत, विकासशील राष्ट्र आर्थिक एवं टेक्नोलाजी की दृष्टि से गरीब हैं। लेकिन ये जैव संसाधनों तथा इनके उपयोग से संबंधित परंपरागत ज्ञान में समृद्ध हैं।

जैविक विविधता किसी क्षेत्र या देश में जंतुओं और पादपों सहित सभी जीवों में उपस्थित विविधता को कहा जाता है। **जैविक संसाधन** या **जैव-संसाधन** में वे सभी जीव शामिल होते हैं, जिनका व्यापारिक उपयोग किया जा सकता है। **जैव-संसाधनों से संबंधित परंपरागत** ज्ञान उस समस्त सूचना को कहते हैं, जिसे विभिन्न समुदायों द्वारा जैविक संसाधनों के लाभकारी उपयोग, जैसे पौधों के औषधि के रूप में उपयोग, के लिए संचित किया है। बहुधा इस परंपरागत ज्ञान की सहायता से जैव-संसाधनों के दोहन के लिए आधुनिक व्यापारिक प्रक्रिया का उपयोग किया जाता है। यह ज्ञान शोध की दिशा का संकेत देता है। इससे जैव-संसाधनों के व्यापारिक दोहन की प्रक्रिया के विकास के दौरान बहुमूल्य समय, संसाधन एवं प्रयास की बचत होती है। औद्योगिक राष्ट्रों की संस्थाएं एवं कंपनियां जैव संसाधनों का संग्रह एवं उनका निम्नलिखित रूपों में दोहन कर रही हैं :

(i) वे आनुवंशिक संसाधनों का संग्रह करके उनका पेटेंट करा रही हैं। उदाहरणार्थ, सं. रा. अमेरिका में दिया गया एक पेटेंट व्यवहार में 'बासमती' चावल के संपूर्ण जननद्रव्य पर लागू होगा।

(ii) जैव संसाधनों के विश्लेषण से मूल्यवान जैव अणुओं की पहचान की जा रही है। किसी जीव द्वारा उत्पादित किसी अणु को **जैव अणु** कहा जाता है। इन जैव अणुओं को पेटेंट कराने के बाद उनका व्यापारिक उपयोग किया जाता है।

(iii) जैव संसाधनों से मूल्यवान जीनों को क्लॉन करके उनका पेटेंट कराया जा रहा है। इन जीनों के उपयोग से व्यापारिक उत्पाद प्राप्त किए जाते हैं।

(iv) परंपरागत ज्ञान उपरोक्त उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए उपयोग किया जाता है। कई बार परंपरागत ज्ञान का ही पेटेंट कराया जाता है।

एक पश्चिम अफ्रीकी पौधा, *पेंटाडिपलांड्रा ब्रैजिएना*, एक ऐसे प्रोटीन का उत्पादन करता है, जो शक्कर से लगभग 2,000 गुना मीठा होता है। इस प्रोटीन को **ब्रैजेइन** कहा जाता है। ब्रैजेइन एक निम्न कैलोरी मधुरक है। इस पौधे के अति मधुर फलों का स्थानीय लोगों द्वारा सदियों से उपयोग किया जाता रहा है। लेकिन इस प्रोटीन को सं. रा. अमेरिका में पेटेंट किया गया है। बाद में, ब्रैजेइन कोडित करने वाले जीन को सं. रा. अमेरिका में क्लॉन करने के बाद, उसका अनुक्रमण एवं पेटेंट किया गया। अब इस जीन को मक्के में स्थानांतरित एवं अभिव्यक्त करने की योजना है। इस प्रकार प्राप्त पारजीनी मक्के के दानों में ब्रैजेइन के भंडारण का प्रयास किया जाएगा और इन दोनों से ब्रैजेइन को शोधित किया जाएगा। इस योजना के सफल होने पर शक्कर निर्यातक देशों के लिए कठिन समस्या होगी।

औद्योगिक राष्ट्रों द्वारा विकासशील राष्ट्रों की जैव संपदा का हमेशा से व्यापारिक शोषण किया जाता रहा है। इन राष्ट्रों ने कभी भी विकासशील राष्ट्रों की इसके लिए कोई भी क्षतिपूर्ति नहीं की है। विश्लेषण की आधुनिक सामर्थ्यवान तकनीकों एवं यंत्रों के विकास के साथ जैव-संसाधनों के दोहन की गति काफी तेज हो गई है। इसके साथ ही, लोगों के मन में इस प्रकार की अन्यायपूर्ण क्रियाओं के प्रति विरोध बढ़ा है, और इनके लिए समुचित क्षतिपूर्ति की मांग बढ़ी है। कई राष्ट्र ऐसे व्यापक कानून बना रहे हैं, जिनकी सहायता से उनकी जैविक संपदा एवं परंपरागत ज्ञान के अनधिकृत दोहन को रोका जा सकेगा।

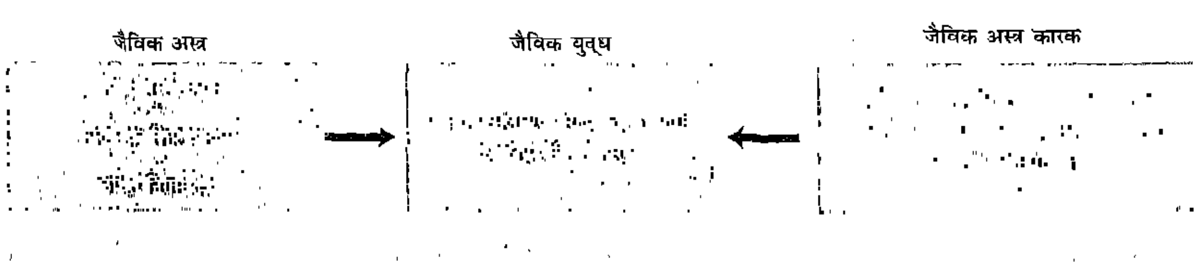
24.8 जैविक युद्ध (Biowar)

मानव, इसके जंतुओं एवं फसलों के विरुद्ध जैविक शस्त्रों का उपयोग **जैविक युद्ध** कहा जाता है। जैविक **हथियार** उसको कहते हैं, जो किसी रोगजनक या उससे प्राप्त आविष को लक्ष्यजीव तक पहुंचाता है। रोगजनक या आविष को एक उपयुक्त पात्र में इस प्रकार रखा जाता है, जिससे यह पूरी प्रक्रिया में सक्रिय एवं उग्र बना रहे। इस रोगजनक अथवा आविष को जैविक **हथियार कारक** कहते हैं (चित्र 24.11)। इस पात्र को विभिन्न साधनों, जैसे वायुयान, प्रक्षेपास्त्र आदि, के माध्यम से लक्ष्यजीव तक पहुंचा सकते हैं। जैविक कारकों का युद्ध में सर्वप्रथम उपयोग शायद 500 वर्ष ईसापूर्व हुआ था।

जैविक हथियार कारकों के कुछ उदाहरण हैं, ऐंथ्रैक्स, चेचक आदि के रोगजनक तथा बॉचुलिनम आविष। इनमें से कुछ का जैविक युद्ध में उपयोग किया जा चुका है, जैसे सितंबर 2001 के बाद पत्रों के माध्यम से भेजे गए ऐंथ्रैक्स के बीजाणु। भूतकाल में संक्रमित व्यक्तियों, जंतुओं, मृत रोगियों, तथा रोगजनकों से संदूषित कपड़ों का उपयोग रोग फैलाने के लिए किया जाता था। लेकिन अब रोग फैलाने की तकनीकों में अत्यधिक सुधार कर लिया गया है। अब बड़े पैमाने पर संवर्धित रोगजनकों, या उनसे प्राप्त आविषों को लक्ष्य जीवों तक अथवा स्प्रे के रूप में पहुंचाया जाता है। इसके लिए विविध युक्तियों का उपयोग किया जाता है। *जैवअस्त्र इतने आकर्षक क्यों होते हैं? प्रथम, ये सस्ते होते हैं।* परंपरागत अस्त्रों की तुलना में इनकी लागत केवल 1/2000 होती है। द्वितीय जैव हथियारों के कारण होने वाली मृत्यु परंपरागत तथा रासायनिक हथियारों की तुलना में बहुत अधिक होने की प्रत्याशा है। तृतीय, जैविक हथियार अदृश्य होते हैं तथा इनका संसूचन लगभग असंभव होता है। इन अभिलक्षणों के कारण आतंकवादियों तथा सरकारों द्वारा जैविक हथियारों का उपयोग काफी सुविधाजनक होता है। अभी तक सरकारों एवं आतंकवादियों ने जैविक हथियारों का सीमित पैमाने पर ही उपयोग किया है।

24.9 जैव नैतिकता (Bioethics)

नैतिकता ऐसे मानकों का एक समूह होता है, जिसके आधार पर कोई समुदाय अपने व्यवहार का नियमन करता है, और यह निर्णय लेता है कि कौन सी क्रियाएं करने



चित्र 24.11 जैविक युद्ध एवं इसके औजार

योग्य हैं, और कौन सी नहीं। अतः **जैव नैतिकता** को ऐसे मानकों का समूह कहा जा सकता है, जिनके आधार पर जैविक संसार के साथ हमारे व्यवहार का नियमन किया जा सकता है। बायोटेक्नोलॉजी, विशेष रूप से पुनर्योगज टेक्नोलॉजी, जैविक संसार की अभूतपूर्व विधियों द्वारा शोषण करने पर केंद्रित है। इन कारणों से बायोटेक्नोलॉजी को 'अप्राकृतिक' से लेकर 'जैविक विविधता के लिए हानिकारक' आदि कहा गया है। बायोटेक्नोलॉजी के संदर्भ में उठाए गए विभिन्न जैवनैतिक सवाल निम्नलिखित हैं :

(i) बायोटेक्नोलॉजी में जानवरों का उपयोग उनके लिए कष्टदायी होता है।

(ii) जब जंतुओं का औषधीय प्रोटीनों के उत्पादन के लिए उपयोग किया जाता है, तो हम उन्हें जीव से हटाकर केवल 'फैक्ट्री' के दर्जे में ला खड़ा करते हैं।

(iii) किसी स्पीशीज के जीनों को किसी अन्य स्पीसीज़ में स्थानांतरित करने पर हम उस 'स्पीशीज की पहचान' को प्रभावित करते हैं।

(iv) मानव में जंतुओं के जीनों का स्थानांतरण (अथवा इसका उल्टा) करने से 'मनुष्यता' की अवधारणा को धक्का लगता है।

(v) बायोटेक्नोलॉजी जीवों के लिए अपमानजनक होती है, क्योंकि यह उनका मानव हित के लिए शोषण करती है।

(vi) बायोटेक्नोलॉजी से पर्यावरण, जिसमें जैविक विविधता शामिल है, को अप्रत्याशित खतरा हो सकता है।

ये तर्क काफी आर्कषक लग सकते हैं। यह ध्यान देने योग्य है कि बायोटेक्नोलाजी में वही किया जाता है, जो पहले परंपरागत तरीकों से किया जाता रहा है। यह बात अवश्य है कि बायोटेक्नोलॉजी द्वारा यह सब अधिक बड़े पैमाने पर और अपेक्षाकृत अति उच्च दर पर किया जाता है। बायोटेक्नोलॉजी से संबंधित इन तथा अन्य तर्कों के औचित्य का प्रत्येक समुदाय को अपने दृष्टिकोण से मूल्यांकन करना होगा । इसके साथ ही, प्रत्येक समुदाय को यह भी निर्णय लेना होगा कि कौन सी क्रियाएं उसे स्वीकार्य हैं और कौन सी नहीं।

सारांश

बायोटेक्नोलॉजी सूक्ष्मजीवों, पादप एवं जंतु कोशिकाओं, तथा उनके घटकों के उपयोग से मानव उपयोगी उत्पादों एवं सेवाओं का सृजन करती है। पुनर्योगज DNA तकनीक से पारजीनी जीवों का उत्पादन किया जाता है। इन जीवों में सर्वथा नवीन क्षमताएं होती हैं। पादप कोशिकाओं एवं अंगों को उपयुक्त पोष पदार्थ पर **पात्रे** सवर्धित किया जाता है। इस प्रक्रिया को पादप ऊतक संवर्धन कहा जाता है। पादप ऊतक संवर्धन में उपयोग होने वाले कर्तोतकों, पोष पदार्थों, पात्रों एवं उपकरणों को निर्जर्मित करना अनिवार्य होता है। कर्तोतकों को 2,4-D-युक्त एगार पोष पदार्थ पर संवर्धित करने पर कैलस संवर्ध प्राप्त होते हैं। लेकिन इन्हें द्रव पोष पदार्थ में सवंर्धित करने पर एकल कोशिकाओं एवं छोटे-छोटे कोशिका समूहों का निलंबन प्राप्त होता है, जिसे निलंबन संवर्धों कहा जाता है। निलंबन संवर्धों का लगातार दोलन अनिवार्य होता है। कैलस एवं निलंबन संवर्धों से संपूर्ण पादपक पुनरोत्पादित किए जा सकते हैं। पादपक पुनरोत्पादन प्ररोह अथा कायिक भ्रूण पुनर्जनन के माध्यम से होता है। इन पादपकों को खेतों में प्रतिरोपित किया जा सकता है।

प्ररोहाग्रों एवं गांठ खंडों के संवर्धन द्वारा बहुत से पादपक प्राप्त किए जा सकते हैं। तरुण भ्रूणों, विशेष रूप से अंतरास्पीसीज़ संकरों के भ्रूणों, के संवर्धन से पादपक प्राप्त करते हैं (भ्रूण संवर्धन)। परागकोषों एवं अनिषेचित अंडाशयों के संवर्धन से अगुणित पौधे प्राप्त होते हैं। इन अगुणित पौधों का क्रोमोसोम द्विगुणन करने पर 2-3 वर्षों में समयुग्मज क्रम प्राप्त होते हैं। पादप कोशिकाओं की भित्ति का पेक्टिनेस एवं सेल्युलेस द्वारा पाचन करने पर प्रोटोप्लास्ट प्राप्त होते हैं। प्रोटोप्लास्टों के संगलन से कायिक संकर उत्पन्न होते हैं।

पादप ऊतक संवर्धन के कई अनुप्रयोग हैं। इनमें से सबसे महत्वपूर्ण अनुप्रयोग पारजीनी फसलों का उत्पादन है। किसी पारजीनी फसल में आनुवंशिक इंजीनियरी द्वारा स्थानांतरित एक या अधिक जीन होते हैं। कीट रोधी, सुधरी गुणवत्ता वाली, औषधीय प्रोटीनों के उत्पादन में सक्षम आदि प्रकार की पारजीनी किस्मों

की कई देशों में खेती की जा रही है। पारजीनी किस्मों से प्राप्त खाद्य को आनुवंशिकत: रूपांतरित खाद्य कहते हैं। ऐसे खाद्यों के आविषालु होने, एलर्जी पैदा करने तथा इनके कारण पाचन तंत्र की सूक्ष्मजीवी समष्टियों में परिवर्तन होने की आशंकाएं व्यक्त की गई हैं। इन आशंकाओं के समुचित निवारण के प्रयास जारी हैं। प्रतिपालनीय कृषि में नवीकरणीय संसाधनों का उपयोग होना चाहिए और इसे प्रदूषणकारी नहीं होना चाहिए। बायोटेक्नोलॉजी के प्रतिपालनीय कृषि में निम्नलिखित योगदान हैं: जैव उर्वरक, जैवनाशी जीवनाशी, रोग एवं कीट रोधी किस्में तथा एकल कोशिका प्रोटीन । जैव उर्वरक उन सूक्ष्मजीवों को कहते हैं जो पौधों को या तो वायवीय नाइट्रोजन या मृदा फॉस्फोरस उपलब्ध कराते हैं। जैवनाशी जीवनाशी उन वाइरसों, जीवाणुओं, प्रोटोजोओं, कवकों एवं चिंचड़ियों को कहते हैं, जिनकी सहायता से रोगों, कीटों या खरपतवारों का नियंत्रण किया जाता है। जैव उर्वरकों, जैवनाशी जीवनाशियों, तथा रोग एवं कीट रोधी किस्मों के उपयोग से अनवीकरणीय संसाधनों की बचत होती है, और प्रदूषण में कमी आती है। एकल कोशिका प्रोटीन सूक्ष्मजीव जैव भार होता है, जो उच्च गुणवत्ता प्रोटीन समृद्ध होता है। यह मानव एवं पशु आहार में महत्त्वपूर्ण संपूरक का प्रकार्य करता है।

बायोटेक्नोलॉजी की सफलता के कारण जैवपेटेंट एवं जैवदस्युता की गति तेज हुई। जैव-संसाधनों एवं उनसे संबंधित परंपरागत ज्ञान के अनाधिकृत व्यापारिक उपयोग को जैवदस्युता कहते हैं। इनके कारण उत्तरी गोलार्द्ध के समृद्ध औद्योगिक राष्ट्रों को आर्थिक लाभ पंहुचता है, जबकि दक्षिणी गोलार्द्ध के विकासशील देशों का आर्थिक शोषण होता है। बायोटेक्नोलॉजी का एक अवांछनीय पहलू जैविक युद्ध है। इस में रोग जनक वाइरसों, जीवाणुओं, कवकों और उनके आविषों का फसलों, पालतू जानवरों एवं मानव समुदायों को नष्ट करने के लिए उपयोग किया जाता है। बायोटेक्नोलॉजी के संदर्भ में कई जैवनैतिक सवाल उठाए जाते रहे हैं । प्रत्येक मानव समाज को इन प्रश्नों के संदर्भ में अपनी दृष्टि से उचित निर्णय लेना होगा।

अभ्यास

1. जैवदस्युता का संबंध निम्नलिखित में से किससे है?
   (क) परंपरागत ज्ञान से (ख) जैव अणुओं एवं जैव-संसाधनों से विलग किए गए जीनों से
   (ग) जैव-संसाधन से (घ) उपरोक्त सभी से
2. जैविक युद्ध में निम्नलिखित में से किसका उपयोग किया जाता है?
   (क) रोगजनक का (ख) रोगजनक के आविष का
   (ग) रोगजनक/आविष (घ) उपरोक्त सभी का
3. निम्नलिखित में से कौन जैवनाशी जीवनाशी है?
   (क) वाइरस एवं बैक्टीरिया (ख) वाइरस, बैक्टीरिया एवं कवक
   (ग) वाइरस, बैक्टीरिया, कवक (घ) वाइरस एवं बैक्टीरिया, कवक एवं प्रोटोजोआ प्रोटोजोआ एवं चिंचड़ी
4. जैवनाशी जीवनाशियों द्वारा निम्नलिखित में से किसका नियंत्रण किया जा सकता है?
   (क) कीटों का (ख) रोगों का
   (ग) खरपतवारों का (घ) उपरोक्त सभी का
5. जैव उर्वरकों में निम्नलिखित में से कौन शामिल होते हैं?
   (क) नील-हरित शैवाल, राइजोबिया, अन्य नाइट्रोजन-निबंधक बैक्टीरिया एवं कवक मूल।
   (ख) नील-हरित शैवाल,राइजोबिया एवं अन्य नाइट्रोजन-निबंधक बैक्टीरिया।
   (ग) राइजोबिया, अन्य नाइट्रोजन-निबंधक बैक्टीरिया एवं कवक मूल।
   (घ) नील-हरित शैवाल, राइजोबिया एवं कवक मूल।

6. आनुवंशिकतः रूपांतरित खाद्यों के कारण निम्नलिखित में से कौन-से खतरे उत्पन्न हो सकते हैं?

   I. आविषालुता

   II. एलर्जी

   III. पाचन तंत्र में पाए जाने वाले सूक्ष्मजीवों में एंटीबायोटिक रोधिता

   विकल्प :

   (क) I एवं II　　　　(ख) I, II एवं III

   (ग) I एवं III　　　　(घ) II एवं III

7. भ्रूण संवर्धन का निम्नलिखित में से किसके लिए उपयोग किया जाता है?
   (क) निलंबन कल्चर के लिए
   (ख) अंतरास्पीसीज़ संकरों की प्राप्ति के लिए
   (ग) कायिक संकरण के लिए
   (घ) अगुणित उत्पादन के लिए

8. किसी पारजीन की अभिव्यक्ति से निम्नलिखित में से क्या हो सकता है?
   (क) किसी अंतर्जात जीन की अभिव्यक्ति का निरोध
   (ख) किसी जैवसंश्लेषण पथ का रुपांतरण
   (ग) किसी वांछनीय प्रोटीन का उत्पादन
   (घ) उपरोक्त सभी

9. स्तंभ I में दिए गए यौगिकों/तकनीकों का स्तंभ II में दिए गए उनके उपयोग से मेल कीजिए, और नीचे दिए गए विकल्पों में से सभी विकल्प चुनिए।

स्तंभ I	स्तंभ II
(क) 2,4-D	(i) वाइरस रोधिता
(ख) आवरण प्रोटीन जीन	(ii) कायिक संकरण
(ग) PEG	(iii) कैलस संवर्ध
(घ) *cry* जीन	(iv) कीट रोधिता

   विकल्प:

   (क) अ 3, ब 4, स 1, द 2 (ख) अ 3, ब 1, स 2, द 4

   (ग) अ 3, ब 2, स 1, द 4 (घ) अ 4, ब 3, स 1, द 2

10. निम्नलिखित की परिभाषा दीजिए।

    (क) सतह रोगाणुनाशन　　　　(ख) उपसंवर्धन

    (ग) कायिक भ्रूण　　　　(घ) प्रोटोप्लास्ट

    (ङ) कायिक संकर　　　　(च) बायोटेक्नोलॉजी

    (छ) पारजीन　　　　(ज) पारजीनी जीव

    (झ) प्रतिपालनीय कृषि　　　　(ञ) रोगणुनाशक

11. निम्नलिखित का अधिकतम 100 शब्दों में अर्थ समझाइए एवं उनका मानव कल्याण में महत्त्व समझाइए।
    (क) कैलस एवं निलंबन संवर्धन
    (ख) मेरिस्टेम संवर्धन

(ग) भ्रूण संवर्धन
(घ) परागकोष संवर्धन
(ङ) कायिक संकरण
(च) पूर्ण शाक्यता
(छ) जैव उर्वरक
(ज) जैवनाशी जीवनाशी

12. निम्नलिखित की अधिकतम 70 शब्दों मे व्याख्या कीजिए।
(क) एकल कोशिका प्रोटीन
(ख) जैवपेटेंट
(ग) जैवयुद्ध
(घ) जैव नैतिकता
(ङ) जैव दस्युयता
(च) आनुवंशितः रूपांतरित खाद्य

13. खाद्य उत्पादन बढ़ाने में पादप ऊतक संवर्धन की भूमिका की व्याख्या कीजिए।
14. प्रतिपालनीय कृषि में बायोटेक्नोलॉजी की भूमिका का वर्णन कीजिए।
15. अधिक खाद्य उत्पादन में बायोटेक्नोलॉजी की भूमिका की विवेचना कीजिए।
16. 'बायोटेक्नोलॉजी मानव कल्याण में अत्यधिक उपयोगी हो सकती है। किंतु इसका दुरुपयोग मानव के लिए बहुत अधिक कष्टकारी हो सकता है।' उपरोक्त कथन पर उपयुक्त उदाहरणों की सहायता से टिप्पणी कीजिए ।

अध्याय 25

प्रतिरक्षित तंत्र तथा मानव स्वास्थ्य

जानवर विभिन्न बाहरी पदार्थों, संक्रमण वाहक जैसे बैक्टीरिया वायरस, कवक तथा अन्य परजीवी के संपर्क में लगाकर रहते हैं। यह बहुत पहले देखा जा चुका है कि कुछ बीमारियां एक बार ही आक्रमण करती हैं जैसे खसरा। यह साफ है कि ये लोग इस बीमारी से प्रतिरक्षित हो चुके हैं। पशु शरीर की वह पद्धति जो उसे विभिन्न संक्रमण वाहकों तथा कैंसर से बचाती है, **असंक्राम्य पद्धति** कहलाती है एवं इसका अध्ययन **इमुनोलोजी** कहलाता है। इस अध्याय का उद्देश्य असंक्राम्य पद्धति की मूलभूत धारणाओं से अवगत कराना तथा उनका मानव स्वास्थ्य एवं कल्याण के सुधार के लिए उपयोग दर्शाना है।

25.1 सहज तथा अर्जित असंक्राम्य (Innate and Acquired Immunity)

लैटिन शब्द 'इम्यूनिस' अर्थात 'ऐक्सेंप्ट' या 'फ्रीडम' से अंग्रेजी के शब्द 'इम्यूनिटि' का उद्भव हुआ। इसके अंतर्गत शरीर के द्वारा पर्यावरण कारकों से बचने के लिए उपयोग की जाने वाली वे सभी क्रियाएं आती हैं, जो शरीर के लिए अलग हैं। यह कारक सूक्ष्मजीवाणु या उनके उत्पाद, कुछ भोज्य पदार्थ, रसायन, दवा तथा पराग इत्यादि हो सकते हैं। असंक्राम्य दो प्रकार के होते हैं (i) **सहज** तथा (ii) **अर्जित** असंक्राम्य।

25.2 सहज (अविशिष्ट) असंक्राम्य (Innate-Non-specific Immunity)

इसके अंतर्गत वे सभी सुरक्षा तत्त्व आते हैं, जिसके साथ व्यक्ति पैदा हुआ है तथा जो जीवित शरीर की सुरक्षा के लिए हमेशा उपलब्ध रहता है। सहज असंक्राम्य इस तरीके के अंतर्गत शरीर में विभिन्न प्रकार की रोधिकाएं बनी होती हैं, जो बाह्य तत्वों को शरीर के भीतर प्रवेश करने से बचाती हैं। जब रोगाणु शरीर के भीतर प्रवेश करता है तो उसे भी इसी पद्धति के अन्य अवयव तुरंत मार देते हैं। यह क्षमता किसी भी प्राणी या पौधों की पहली सुरक्षा पद्धति है। सहज असंक्राम्य चार रोधिकाओं से बना होता है :

(i) शारीरिय, (ii) शरीर क्रियात्मक, (iii) भक्षकाणुक, (iv) शोथज रोधिकाएं

शारीरीय रोधिकाएं (Anatomic Barriers)

ये रोधिकाएं जीवाणुओं को शरीर में प्रवेश करने से रोकती हैं। ये त्वचा तथा श्लेष्मल से बनी होती हैं। श्लेष्मल बाह्य सूक्ष्म जीवाणुओं को फंसाता है तथा पक्ष्माभ जीवाणुओं को शरीर से बाहर निकालता है।

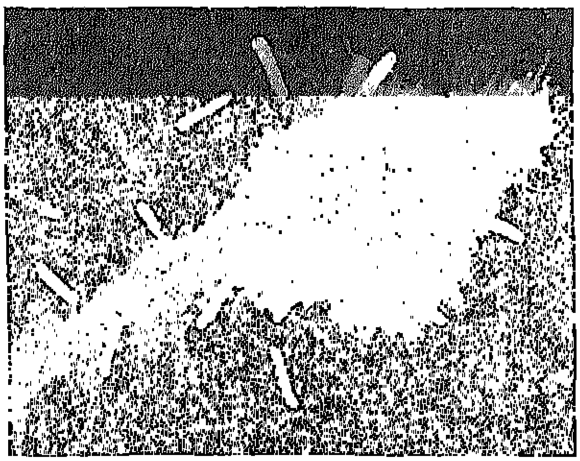
शरीर क्रियात्मक रोधिकाएं (Physiological Barriers)

शरीर तापमान जैसे कारक P^{H} तथा शरीर के विभिन्न प्रकार के स्राव कई प्रकार के रोगाणु जीवों को पनपने से रोकते हैं। उदाहरण के लिए बुखार का होना कई प्रकार के रोगाणुओं को जन्म देने से रोकता है। पेट की अम्लता सबसे अंतर्ग्रहित जीवाणुओं को मार देती है। स्राव में उपस्थित लाइसोज़ाइम जैसे कि आंसू, बैक्टिरीया की कोशिका भित्ति को पचाता है तथा इंटरफेरॉन, असंक्रमित कोशिकाओं में प्रतिविषाणुक अवस्था लाता है। निश्चित प्रकार की कोशिकाएं जब विषाणु द्वारा संक्रमित होती हैं तो वे कुछ मात्रा में एक विशेष वर्ग के ग्लाइकोप्रोटीन का उत्सर्जन करती हैं जिसे **इंटरफेरॉन** कहते हैं। इंटरफेरॉन दूसरी और कोशिकाओं को विषाणु के संक्रमण से बचाते हैं। इस प्रक्रिया में कई क्रियाविधि होती हैं, जैसे कि, प्रतिविषाणुक प्रोटीन का संश्लेषण। इसके परिणामस्वरूप, उस व्यक्ति में विषाणु संक्रमण के प्रति उच्चस्तरीय प्रतिरोध उत्पन्न होता है।

भक्षकाणुविक बाधाएं (Phagocytic Barriers)

कोशिकाशन, सहज रोधक्षमता की महत्त्वपूर्ण क्रियाविधि है।

रोगजनक संक्रमण के प्रतिवेदन स्वरूप, श्वेताणु (WBC) की कुल संख्या में तेजी से बढ़ोत्तरी होती है। मानव में परिभ्रमी भक्षकाणु होते हैं (चित्र 25.1), जोकि शरीर में संवहन करते हैं। सबसे महत्वपूर्ण भक्षकाणु हैं, **वृहत्भक्षकाणु** तथा **न्यूट्रोफाइल**। वृहत्भक्षकाणु (बड़ा भक्षी), वृहत् अनियमित आकृति वाली कोशिका है, जोकि सूक्ष्म जीवाणुओं, विषाणुओं, कोशिकीय मलबों इत्यादि का परिग्रहण कर लेती है। संक्रमण के प्रतिवेदन स्वरूप, एककेंद्रकाणु संक्रमण स्थल पर छोड़े जाते हैं तथा वृहत् भक्षकाणु में परिवर्तित होते हैं।

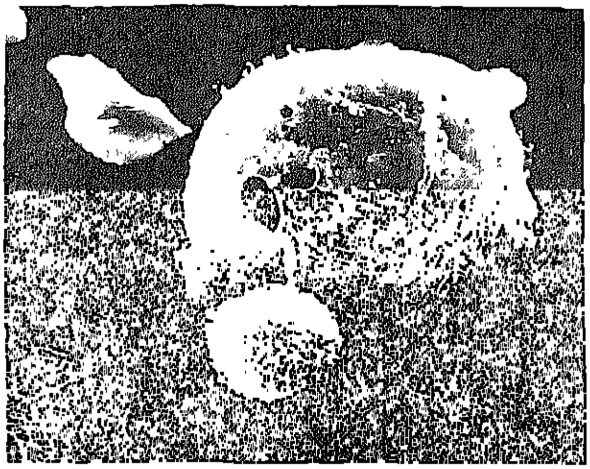


चित्र 25.1 एक भक्षकाणु जिसकी सतह पर बैक्टीरिया जुड़े हुए हैं

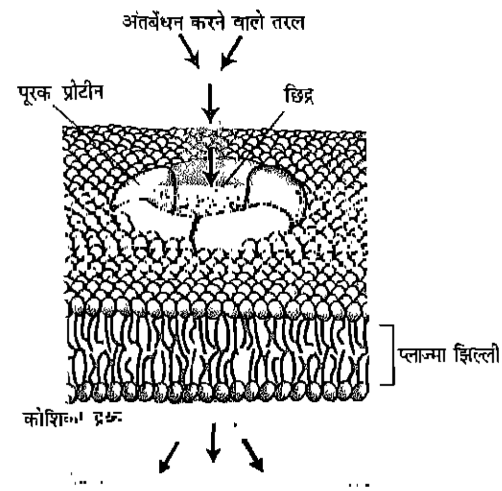
शोथज बाधाएं (Inflammatory Barriers)

आपने ध्यान दिया होगा कि संक्रमण या ऊतक में चोट लगने से लाल या फूल जाता है, साथ ही दर्द भी होता है तथा ऊष्मा का उत्पादन होता है, जिससे ज्वर हो जाता है। इस प्रकार की अभिव्यक्ति स्थानिक होती है, जिसे **शोथज प्रतिवेदन** कहते हैं। यह प्रतिवेदन, रासायनिक सचेतक संकेत के उत्सर्जन के कारण होता है जैसे कि, हिस्टामीन तथा प्रोस्टाग्लैंडीन का उत्सर्जन घायल मास्ट कोशिका से होना। संवहनीय तरल निकलता है, जोकि बैक्टीरिया विरोधी सीरम प्रोटीन युक्त होता है। इसके बाद, प्रभावित क्षेत्र में भक्षकाणुविक कोशिकाओं का अंतर्वाह होता है। इन प्रतिवेदन के द्वारा आक्रमणकारी सूक्ष्म जीवाणुओं का अवरोध उत्पन्न कर नष्ट किया जाता है (चित्र 25.1)।

भक्षकाणुओं के अतिरिक्त, **प्राकृतिक मारक कोशिका** भी विषाणु संक्रमित कोशिकाओं को मार देती है तथा शरीर की कुछ अर्बुद कोशिकाओं को भी लक्ष्य कोशिकाओं के प्लाज्मा झिल्ली में परफोरीन युक्त रंध्रों द्वारा नष्ट कर देता है (चित्र 25.2)। ये रंध्र लक्ष्य कोशिकाओं में जल के आगमन को अनुमति देता है, जोकि इसके बाद फूल जाता है एवं फट जाता है।



चित्र 25.2 एक ट्यूमर कोशिका को प्रहार करने वाली एक प्राकृतिक मारक कोशिका (छोटी)



चित्र 25.3 पूरक प्रोटीन, प्लाज्मा झिल्ली में एक छिद्र बनाता हुआ

पूरक तंत्र सहज तथा उपार्जित प्रतिरक्षा दोनों में भाग लेता है। यह 30 से अधिक प्रोटीन से बना होता है जोकि विभिन्न प्रकार की क्रिया कर व्यक्ति को बाहरी आक्रमणकारियों से बचाता है। पूरक तंत्र के प्रोटीन सदस्य व्यवस्थित तरीके से कार्य करते हैं। अंततः सूक्ष्म जीवियों में पारगम्य झिल्ली रंध्र का निर्माण होता है। जोकि, उसके नष्ट होने में सहायक होता है (चित्र 25.3)। पूरक तंत्र के कुछ अवयव, आक्रमणकारी सूक्ष्मजीवाणुओं को आवरित कर देते हैं। यह आवरण के द्वारा भक्षकाणु, सूक्ष्मजीवाणुओं के साथ जुड़ने तथा उन्हें नष्ट करने में सक्षम हो जाते हैं।

25.3 अर्जित प्रतिरक्षा (Acquired Immunity)

उपार्जित प्रतिरक्षा को **अनुकूलित** या **विशिष्ट प्रतिरक्षा** भी कहते हैं। यह विशिष्ट सूक्ष्मजीवाणुओं को पहचानने तथा चुन-चुन कर नष्ट करने में सक्षम होती है। उपार्जित प्रतिरक्षा सिर्फ कशेरुकीयों में ही पाई जाती है। सहज प्रतिरक्षा द्वारा दी जाने वाली सुरक्षा की यह पूरक होती है। यह सूक्ष्म जीवाणु के संपर्क में आने पर उनसे बचाव के लिए उत्पन्न होती है। साधारण रक्षा क्रियाविधि के काम नहीं करने पर अतिविशिष्ट रक्षा क्रिया विधि की कई दिनों तक आवश्यकता होती है। उपार्जित प्रतिरक्षा की निम्नलिखित विशेषताएं हैं।

(i) ***विशिष्टता*** : यह विभिन्न बाह्य अणुओं के बीच भिन्नता को पहचानने की क्षमता है।

(ii) ***विभिन्नता*** : यह बाह्य अणुओं की विविधताओं को पहचानने की क्षमता है।

(iii) ***स्मृति*** : जब प्रतिरक्षा प्रणाली खास बाह्य कारकों से मुकाबला करती है, उदाहरण के लिए एक जीवाणु, पहली बार, प्रतिरक्षा उपार्जित करता है तथा आक्रमणकारी को निकाल बाहर करता है। प्रतिरक्षा प्रणाली इस मुकाबले की स्मृति को बनाए रखती है। फलस्वरूप इसी जीवाणु के द्वारा मुकाबले में उच्च प्रतिरोधी क्षमता पैदा होती है।

(v) ***स्वयं तथा अन्य के बीच विभेद*** : यह अन्य बाह्य अणुओं को पहचान कर उनके प्रति प्रतिक्रिया करता है। साथ ही यह उन अणुओं के प्रति प्रतिक्रिया नहीं करता है जो प्राणी के शरीर के भीतर उपस्थित रहते हैं।

विशिष्ट प्रतिरक्षा कोशिकाओं के दो मुख्य समूह हैं–
(i) **लसीकाणु**, तथा (ii) प्रतिजन उपलब्ध करने वाली कोशिकाएं। एक स्वस्थ मानव में लगभग एक ट्रीलीयन लसीकाणु रहते हैं। **लसीकाणु** दो प्रकार के होते हैं; जैसे कि, **T लसीकाणु** या **T कोशिकाएं**, तथा **B लसीकाणु** या **B कोशिकाएं**। दोनों प्रकार के लसीकाणु, साथ ही प्रतिरक्षित प्रतिवेदन की दूसरी कोशिकाएं, **अस्थिमज्जा** में बनते हैं। उनके उत्पादन की प्रक्रिया **रक्तोत्पत्ति** कहलाती है। कुछ अपरिपक्व लसिकाणु, जिनका थाइमोसाइट बनना तय होता है, वे रक्त से अभिगमन कर **थाइमज** में चले जाते हैं जहां, वे T कोशिकाओं के रूप में परिपक्व होते हैं। दूसरी तरफ B कोशिकाएं, रक्तमज्जा में ही परिपक्व होती हैं। B तथा T कोशिकाएं मिलकर निम्न दो प्रकार की विशिष्ट प्रतिरक्षी उत्पन्न करती हैं: (i) कोशिका को माध्यम बनाकर (T कोशिकाओं द्वारा), तथा (ii) प्रतिरक्षी के माध्यम से या तरल प्रतिरक्षण (B कोशिकाओं द्वारा)।

बड़े तथा जटिल बाहरी अणुओं (मुख्यतः प्रोटीन), जोकि विशिष्ट प्रतिरक्षा को सक्रिय करते हैं **प्रतिजन** कहलाते हैं। हमारा प्रतिरक्षण तंत्र एक वृहत् प्रकार के प्रतिजन को आसानी से पहचान सकता है। प्रतिजन पर, **प्रतिजनिक निर्धारण** वे स्थान हैं जोकि प्रतिरक्षी द्वारा तथा T एवं B कोशिकाओं पर उपस्थित ग्राहियों द्वारा पहचाने जाते हैं। एक प्रतिजन स्वयं के प्रति एक विशिष्ट प्रतिरक्षण प्रतिवेदन की शुरुआत करता है।

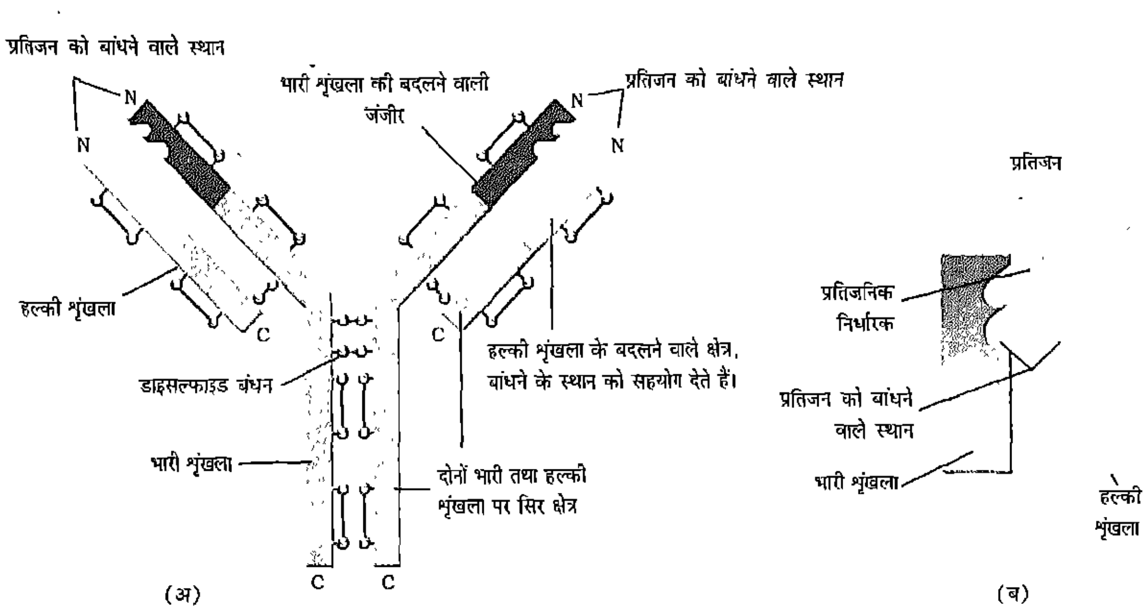
अनुकूलित प्रतिरक्षण, सक्रिय या निष्क्रिय हो सकते हैं। **सक्रिय प्रतिरक्षण** व्यक्ति विशेष में रोगाणु या टीका के द्वारा प्रतिरक्षण प्रतिवेदन के द्वारा प्रारंभ होता है जबकि, **निष्क्रिय प्रतिरक्षण** प्रतिरक्षी जैसे प्रतिरक्षण उत्पादों के अन्य व्यक्तियों से प्रतिरक्षण विहीन व्यक्तियों में स्थानांतरण से उत्पन्न होता है।

अनुकूलित प्रतिरक्षण की सक्रियता (Activation of Adaptive Immunity)

प्रत्येक प्रतिजन का संवर्धन, प्रतिजन उपलब्ध कराने वाली कोशिकाओं, जैसे वृहत्भक्षकाणुओं, B लसिकाणुओं इत्यादि, के द्वारा होता है। संवर्धित प्रतिजन, इन कोशिकाओं के सतहों पर उपस्थित कराया जाता है। A कोशिकाओं केंद्र उपसमूह जो **T सहायक कोशिकाएं** कहलाती हैं, ये विशेष रूप से उपस्थित कराए गए प्रतिजन से पारस्पारिक क्रिया करती हैं तथा सक्रिय हो जाती हैं। सक्रिय T सहायक कोशिकाएं उसके बाद B कोशिकाओं को (सक्रिय कर देती हैं) तथा T कोशिकाओं के उपसमूहों को, जो **T कोशिकाविष कोशिका** कहलाता है, उसे विशेष प्रकार से सक्रिय कर देती हैं। ये सक्रिय B तथा T कोशिकाविष कोशिकाएं प्रचुरोद्भवन द्वारा क्लोन का निर्माण करती हैं। क्लोन की सभी कोशिकाएं एक ही प्रकार के प्रतिजन को पहचानती हैं तथा उन्हें नष्ट कर देती हैं।

कोशिका माध्यम से प्रतिरक्षा (Cell-mediated Immunity)

कोशिका के माध्यम से प्रतिरक्षण T कोशिकाओं के उपसमूहों



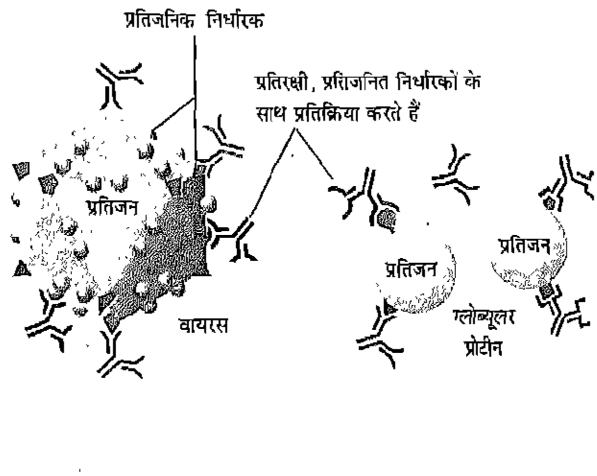
चित्र 25.4 प्रतिरक्षी ग्लोब्युलिन (अ) संरचना (ब) प्रतिजन बंधक स्थान

की जिम्मेदारी होती है, जिसे T कोशिकाविष कोशिका कहते हैं। एक सक्रिय T कोशिकाविष कोशिका, लक्ष्य कोशिका विशिष्ट होती है जोकि संक्रमित होती है तथा लक्ष्य कोशिका को विभिन्न प्रक्रियाओं द्वारा मार देती है। इस प्रक्रिया से रोगाणु का जीवन चक्र पूर्ण नहीं होता है चूंकि यह स्थिर मेजबान कोशिका पर निर्भर करता है। कोशिका के माध्यम से प्रतिरक्षण द्वारा कैंसर कोशिकाओं को नष्ट किया जाता है।

प्रतिरक्षी मध्यस्थता रोधक्षमता (Antibody-mediated Immunity)

B कोशिका **प्रतिरक्षी** नामक विशिष्ट प्रोटीन उत्पादित करती है, ये ग्लाइकोप्रोटीन, विशिष्ट प्रतिजन के लिए उच्चस्तरीय विशिष्टता दर्शाती है। सामूहिक रूप से प्रतिजन को **प्रतिरक्षाग्लोब्युलिन**, 4 पॉलीपेप्टाइड शृंखलाओं से बना होता है। चित्र 25.4 दो लंबी शृंखलाएं होती हैं जिसे **भारी** या **H-शृंखला** कहते हैं तथा दो छोटी शृंखलाएं जिसे **हल्की** या **L-शृंखला** कहते हैं। चार पॉलीपेप्टाइड शृंखलाएं एक दूसरे से जुड़कर एक "Y" आकृतिनुमा अणु का निर्माण करती हैं। इस "Y" आकृतिनुमा अणुओं के ऊपरी दो भाग विशिष्ट प्रतिजन के साथ ताला-चाभी की तरह बंधन बनाकर **प्रतिजन-प्रतिरक्षा यौगिक** का निर्माण करते हैं। प्रत्येक प्रतिजन का कई विभिन्न प्रतिजनित निर्धारक होता है, जिसका प्रत्येक भाग एक विशिष्ट प्रतिरक्षी के साथ संयोग करता है तथा उसके साथ बंधन बनाता है (चित्र 25.5)। B कोशिका, इस प्रकार **प्रतिरक्षी मध्यस्थता प्रतिरक्षण** को निर्देशित करती है (**तरल प्रतिरक्षी** भी कहलाती है)।

प्रतिरक्षी अणु, एक कोशिका झिल्ली के साथ बंधन बना सकते हैं या वे स्वतंत्र भी रह सकते हैं। स्वतंत्र प्रतिरक्षी के तीन मुख्य कार्य हैं: **कणिकीय** पदार्थों का समूहन, साथ ही



चित्र 25.5 प्रतिजन-प्रतिरक्षी जटिल का निर्माण

सारणी 25.1 : विभिन्न प्रतिरक्षाग्लोब्यूलिन वर्गों के कार्य

प्रतिरक्षाग्लोब्यूलिन वर्ग	कार्य
IgA	निःश्वास तथा अंतर्ग्रहित रोगाणुओं से सुरक्षा
IgD	लसिकाणु की सतहों पर ग्राही के रूप में उपस्थित, B कोशिकाओं की सक्रियता
IgE	प्रत्युर्जता प्रतिवेदन में मध्यस्थता
IgG*	भक्षकाणुओं का उद्दीपन तथा गर्भ में पूरक तंत्र की निष्क्रिय प्रतिरक्षण
IgM	B कोशिकाओं की सक्रियता

* सबसे प्रचुर Ig (मानव प्रतिरक्षा का लगभग 75 प्रतिशत) ऐसी प्रतिरक्षा जो प्लैसेंटा को पार कर सकती है।

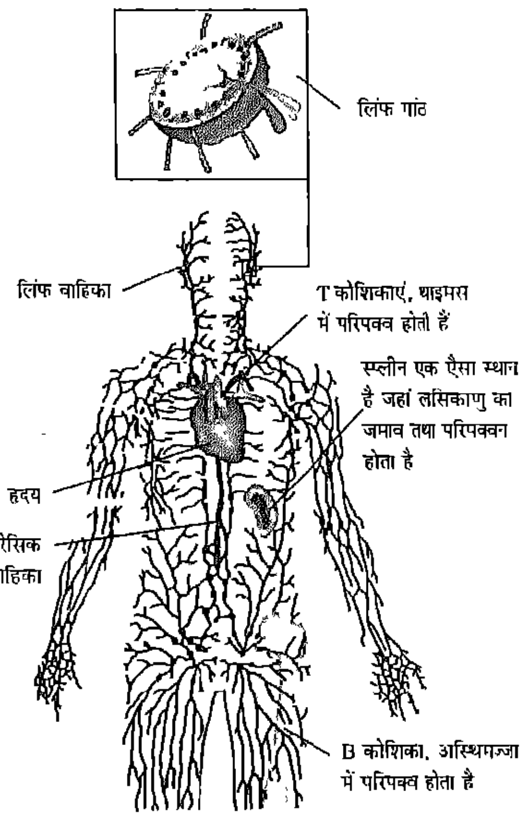
बैक्टीरिया तथा विषाणुओं का भी तथा **बैक्टीरिया** द्वारा **उत्सर्जित** विषों का निष्प्रभावन, जैसे टिट्नस विष। मनुष्य में प्रतिरक्षाग्लोब्युलिन को निम्नलिखित पांच वर्गों में समूहित किया जाता है: IgA, IgD, IgE, IgG तथा IgM. इन प्रतिरक्षाग्लोब्यूलिन के कार्यों को सारणी 25.1 में सूचीबद्ध किया गया है।

25.4 क्लोनीयवरण तथा प्राथमिक एवं द्वितीयक प्रतिरक्षा प्रतिवेदन (Clonal Selection and Primary and Secondary Immune Responses)

जैसाकि पहले ही कहा गया है प्रत्येक B तथा T लसिकाणु अपनी सतह पर एक विशिष्ट ग्राही दर्शाता है, एक दिए गए ग्राही को व्यक्त करने वाली कोशिकाओं की संख्या कम ही होती है। B कोशिकाओं में, यह ग्राही प्रतिरक्षी उस कोशिका द्वारा उत्पादित होता है। जब यह ग्राही विशिष्ट **प्रतिजन निर्धारक** के साथ पारस्परिक क्रिया करता है, तो लसिकाणु सक्रिय हो जाते हैं तथा विभाजित होकर कोशिकाओं के क्लोन बनाते हैं। ये कोशिकाएं कार्यकर कोशिकाओं में रूपांतरित हो जाती हैं; जैसे कि, प्रतिजन उत्पादित करने वाली B कोशिका तथा T कोशिकाविष कोशिकाएं (चित्र 25.6)।

यह प्रक्रिया क्लोनीयवरण कहलाती है जहां, T या B कोशिका क्लोन की सभी कोशिकाएं एक पैतृक कोशिका से निकली होती हैं तथा प्रतिजनित निर्धारण के लिए उसी प्रकार की विशिष्टता दर्शाती हैं। लेकिन, सक्रिय लसिकाणुओं में से कुछ तो दीर्घायु **याददाश्त कोशिका** के रूप में विकसित होते हैं तथा प्रतिरक्षी उत्पादित नहीं करते हैं या संक्रमित कोशिकाओं को नष्ट नहीं करते हैं।

एक प्राणी के एक प्रतिजन के साथ पहले टकराव के फलस्वरूप, प्रतिरक्षित प्रतिवेदन का प्रभाव इस हद तक बढ़ जाता है कि पहले यह लंबा समय लेता है फिर क्षीण होता है तथा तेजी से घट जाता है। लेकिन इस प्राणी का उसी प्रतिजन द्वारा दूसरे टकराव के परिणामस्वरूप प्रतिरक्षित प्रतिवेदन बहुत तेजी से होता है। इसे **द्वितीयक प्रतिरक्षित प्रतिवेदन** कहते हैं। द्वितीयक प्रतिवेदन याददाश्त कोशिकाओं के द्वारा होता है जोकि प्राथमिक प्रतिवेदन के समय उत्पादित हुआ रहता है; यह **प्राथमिक प्रतिवेदन** की तुलना में ज्यादा देर तक टिकता है।



चित्र 25.6 मानव लिंफैटिक तंत्र

इसी कारण, एक व्यक्ति जो चिकेन पॉक्स या मिजिल्स से प्रभावित होकर बच जाता है, तो वह दूसरे या बाद के उसी प्रकार के संक्रमण के प्रति प्रतिरक्षित हो जाता है।

25.5 लसीकाभ अंग (Lymphoid Organs)

लसीकाभ अंग वे हैं जहां लसीकाणुओं का परिपक्वन तथा प्रचुरोद्भवन होता है (चित्र 25.6)। दो प्रकार के लसीकाभ अंग होते हैं। **प्राथमिक लसीकाभ** अंग वे स्थान हैं जहाँ, T तथा B लसीकाणु परिपक्व होते हैं तथा अपना प्रतिजन विशिष्ट ग्राही स्थान प्राप्त कर लेते हैं।

रक्त मज्जा (B कोशिका के परिपक्वन का स्थान) तथा *थाइमस (T कोशिका के परिपक्वन का स्थान) मिलकर* प्राथमिक लसीकाभ अंग बनाते हैं। परिपक्व होकर, B तथा T कोशिकाएं, परिसंचरण तंत्र (रक्त संवहन तथा लसीकाणु तंत्र) से अभिगमन कर **द्वितीयक लसीकाभ अंग** में जाती हैं। ये हैं:- लसीका पर्व, तिल्ली तथा श्लेष्मकायुक्त लसीकाभउतक जैसेकि, टांसिल। ये अंग वैसे स्थान हैं जहां विशिष्ट प्रतिजन के प्रतिवेदन स्वरूप लसीकाणु का प्रचुरोद्भवन तथा विभेदन होता है। प्रतिजन के प्रति उपार्जित प्रतिरक्षा प्राय: इन अंगों में विकसित होता है।

25.6 टीकाकरण तथा प्रतिरक्षण (Vaccination and Immunisation)

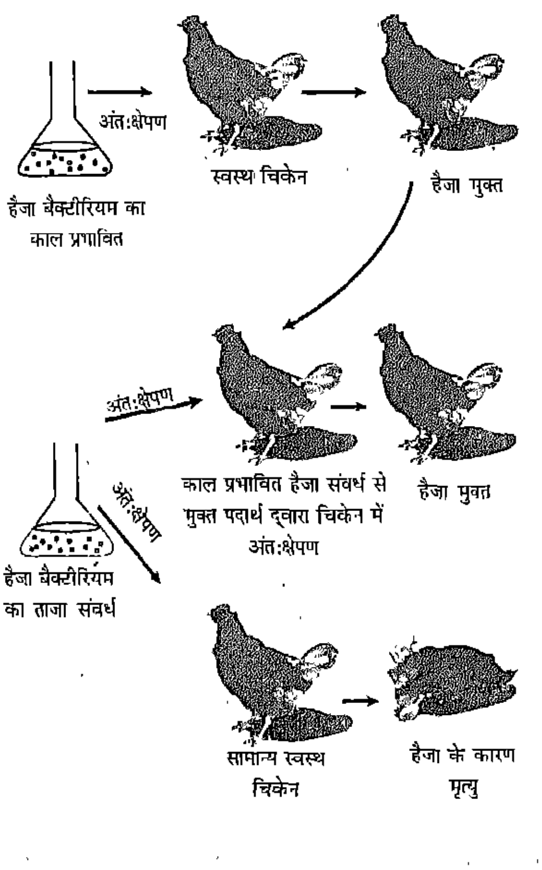
टीकाकरण तथा प्रतिरक्षण का सिद्धांत प्रतिरक्षी तंत्र के 'याद्दाश्त' के ऊपर आधारित है। टीकाकरण में रोगाणुओं के या असक्रिय कमजोर रोगाणुओं के प्रतिजनित प्रोटीन को तैयार कर शरीर में प्रवेश कराया जाता है। ये प्रतिजन प्राथमिक प्रतिरक्षी प्रतिवेदन तथा याददाश्त B तथा T कोशिकाओं को उत्पादित करते हैं। जब टीकायुक्त व्यक्ति उसी रोगाणुओं से आक्रमित होता है तो उपस्थित याददाश्त T या B कोशिकाएं प्रतिजन को तेजी से पहचान लेती हैं तथा आक्रमणकारी को अत्यधिक लसीकाणुओं तथा प्रतिरक्षियों से घेर लेती हैं।

एडवर्ड जेनर, एक अंग्रेज कार्य चिकित्सक, ने सन् 1796 में अपने एक ऐतिहासिक प्रयोग में, एक लड़के की त्वचा को खरोंचा तथा उसके शरीर में ऐसा तरल प्रवेश कराया जोकि कॉव पॉक्स से ग्रसित ग्वाला के घाव से निकाला गया था। जब वह व्यक्ति बाद में स्माल पॉक्स के संपर्क में लाया गया, तो वह इस रोग का प्रतिरोधक दर्शाया। लुइस पाश्चर, एक फ्रांसीसी वैज्ञानिक ने पाया कि हैजा बैक्टीरिया के काल प्रभावन संवर्ध, रोग पैदा करने में बहुत ही कमजोर सिद्ध हुए जब चिकेन में अंत:क्षिप्त कराया गया। लेकिन, इन संवर्ध को चिकेन में अंत:क्षिप्त करने पर, ये फॉल हैजा के प्रति प्रतिरक्षण दर्शाए (चित्र 25.7)। इस प्रक्रिया को उपयोग में लाकर, पाश्चर ने सन् 1885 में रैबीज के विरुद्ध एक टीका विकसित किया। यह बाद में खोजा गया कि ऐसे प्राणी में अल्पमात्रा में टिट्नस विष के अंत:क्षिप्त करने पर ये इस रोग के प्रति प्रतिरक्षण दर्शाए।

1920 के अंत में, डिफ्थीरीया, टिट्नस, परटूसीस (हूपींग खांसी) तथा ट्यूबरकुलोसिस (BCG) के टीके प्राप्त हो गए।

सामान्य टीकों के कुछ उदाहरणों को सारणी 25.2 में सूचीबद्ध किया गया है। परंपरागत तौर पर, टीका निर्मित में *या तो असक्रिय रोगाणु या जीवित, लेकिन कमजोर रोगाणु* रहते हैं।

इसके बाद, रोगाणुओं से निर्मित प्रतिजनित पॉलीपेप्टाइड का उपयोग टीके में किया गया। पुनर्योगज DNA प्रौद्योगिकी



चित्र 25.7 पाश्चर का चिकेन हैजा का चिरसम्मत प्रयोग

सारणी 25.2 : शिशुओं तथा बच्चों के लिए प्रमुख टीके

टीका	बीमारी	उम्र वर्ग	सुरक्षा
बी सी जी	हैपेटाइटिस ट्यूबरकुलोसिस	10 से 14 वर्ष के सभी बच्चे।	70 प्रतिशत
डिप्थीरिया	डिप्थीरिया, टिट्नस काली खांसी, हीमोफिलस इंफ्लूएंज़ा टाइप B	2, 3 तथा 4 महीने की उम्र के सभी बच्चे।	90 से 99 प्रतिशत के बीच
हैपेटाइटिस B	हैपेटाइटिस	उन सभी बच्चों को जिनकी माताएं या नजदीकी परिवार हैपेटाइटिस B से संक्रमित हो चुके हैं।	अभी तक जानकारी नहीं है।
पोलियो	पोलियो	2, 3 तथा 4 महीने की उम्र के सभी बच्चों को DTP-Hib के साथ	लगभग 100 प्रतिशत

द्वारा रोगाणुओं के प्रतिजनित पॉलीपेप्टाइडों का उत्पादन ट्रांसजेनिक जीवों में संभव कर दिया है। इस पद्धति द्वारा उत्पादित कुछ टीके अब उपलब्ध हैं– जैसे कि, हैपेटाइटिस B टीका ट्रांसजेनिक यीस्ट से उत्पादित किया गया। यह प्रयास किया जा रहा है कि रोगाणुओं से स्वयं खास जीन से निर्मित कर टीके के रूप में बनाया जाए।

25.7 रक्त समूह (Blood Groups)

रक्त कोशिकाओं की सतह पर 30 या उससे अधिक ज्ञात प्रतिजन हैं जो विभिन्न रक्त समूह बनाते हैं। संचरण के समय वह रक्त समूह उदाहरण के लिए लेने वाले के ABO रक्त समूह, देने वाले से मिलना चाहिए नहीं तो लेने वाले का प्रतिरक्षा प्रणाली प्रतिरक्षी बनाने लगेगा जिससे संचरित कोशिकाओं का समूहन शुरू हो जाएगा तथा कैपिलरी के द्वारा रक्त परिसंचरण अवरुद्ध हो जाएगा।

ABO रक्त समूह जीन I (आइसोएग्लूटिनिन) के द्वारा निर्धारित किया जाता है। इस जीन के I^A तथा I^B तथा I^O तीन एलील होते हैं। I^A तथा I^B एलील के द्वारा उत्पादित प्रोटीन क्रमशः A तथा B प्रतिजन कहलाता है। A रक्त समूह वाले व्यक्ति की लाल रक्त कण कोशिकाओं की सतह पर A प्रतिजन पाया जाता है उनके प्लाज्मा में B प्रतिजन के विरुद्ध प्रतिरक्षी पाया जाता है। जिन व्यक्तियों का रक्त समूह B है उनके लाल रक्त कणों में B प्रतिजन होता है तथा उनके प्लाज्मा में A प्रतिजन के विरुद्ध प्रतिरक्षी होता है। जिन व्यक्तियों का रक्त समूह AB है उनके लाल रक्त कण की सतह पर A तथा B दोनों प्रतिजन पाए जाते हैं तथा उनके प्लाज्मा में किसी भी प्रतिजन के विरुद्ध कोई भी प्रतिरक्षी नहीं पाया जाता है। O रक्त समूह वाले व्यक्ति में A तथा B प्रतिजन नहीं पाया जाता लेकिन उनके प्लाज्मा में दोनों प्रतिजन के विरुद्ध प्रतिरक्षी पाए जाते हैं। AB रक्त समूह वाला व्यक्ति A, B तथा O रक्त ले सकता है जबकि O रक्त समूह वाला व्यक्ति किसी भी व्यक्ति को रक्त दे सकता है। रक्त संचरण में यह रक्त समूह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। रक्त संचरण अगर असमान रक्त समूह वाले व्यक्ति के बीच होता है तो प्रतिजन की प्रतिक्रिया कोशिकाओं पर होती है तथा प्लाज्मा में उपस्थित प्रतिरक्षी रक्त को थक्का बना देता है, फलस्वरूप कैपिलरी बंद हो जाता है।

Rh (रेहसस) रक्त समूह यह कोशिकाओं की प्रतिजन सतह के कारण होता है। यह सर्वप्रथम रेहसस बंदर में पाया गया। जिन व्यक्तियों में यह प्रतिजन पाया जाता है उसे Rh पॉजिटीव कहते हैं (Rh^+) जबकि Rh निगेटिव (Rh^-) व्यक्तियों में यह प्रतिजन नहीं पाया जाता है। Rh^+ प्रतिजन Rh^- व्यक्ति के संपर्क में आने पर बहुत तेज प्रतिरक्षाजनी प्रतिक्रिया करता है। Rh रक्त समूह, रक्त संचरण के समय बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह नवजात शिशु में रुधिरलंबी बीमारी के लिए उत्तरदायी होता है (HDN)। जब एक Rh^- मां Rh^+ भ्रूण को धारण करती है तो बच्चे को जन्म देते समय Rh^+ भ्रूण का लाल रक्त कण मां के परिसंचरण प्रणाली में प्रवेश कर सकता है जिससे Rh प्रतिरक्षी तैयार हो जाता है। फलस्वरूप Rh^+ भ्रूण माँ के द्वारा तैयार एंटी Rh प्रतिरक्षी के संपर्क में आता है जिससे HDN होती है। HDN से बचने के लिए Rh^- माताओं को जो Rh^+ भ्रूण धारण करती हैं एंटी Rh^- प्रतिजन की सूई दी जाती है।

25.8 अंग प्रत्यारोपण तथा प्रतिरक्षी (Organ Transplants and Antibodies)

अंग प्रत्यारोपण तथा त्वचारोपण की सफलता उत्तकसंयोज्यता प्रतिरक्षी के पूरी तरह मिलने पर निर्भर करती है, जोकि शरीर की कोशिकाओं में पाए जाते हैं। चूहे का क्रोमोजोम 6 में जीन का समूह पाया जाता है जिसे **उत्तकसंयोज्यता सम्मिश्र** कहते हैं। मनुष्य में इसे मनुष्य **श्वेतरक्तता प्रतिरक्षी** (HLA) **सम्मिश्र** कहते हैं। HLA जीन का एलील सह शासित प्रदेश होता है। इन जीन का उत्पाद उत्तकसंयोज्यता को निर्धारित करता है। जैसे प्रत्यारोपण में देने तथा लेने वाले के ऊतकों की समानता।

हमारे गुणसूत्र 6 को HLA एलील समजात HLA एलील का व्यूह हमारे गुणसूत्र 6 के समजात का **हैप्लोटाइप** कहते हैं। एक व्यक्ति प्रत्येक जनक से एक HLA हैप्लोटाइप प्राप्त करता है। इस विस्थल पर अधिक संख्या में एलील यह सुनिश्चित करता है कि केवल *अभिन्न यमज* के पास ही समान हैप्लोटाइप हो। एक परिवार के अंदर ही उत्कृष्ट HLA जोड़ा पाया जाता है। इस प्रकार, प्रत्यारोपण के लिए अधिमान का क्रम निम्न प्रकार होता है– अभिन्न यमज > सहोदर > जनक > असंबंधी दाता। दाता तथा ग्राही HLA प्रोटीन को जोड़ा लगाने की कार्यविधि को ऊत्तक प्रारूपता कहते हैं। जब HLA प्रारूप को सही प्रकार से जोड़ा लगाया जाता है, तो प्रत्यारोपित अंगों की जीविता नाटकीय ढंग से बढ़ जाती है।

25.9 असंक्राम तंत्र अव्यवस्था (Immune System Disorders)

स्पष्ट रूप से, प्रतिरक्षण तंत्र एक बहुअवयवी पारस्परिक क्रिया करने वाला तंत्र है। यह मेजबान को प्रभावी ढंग से कई प्रकार के *संक्रमण* से बचाता है। लेकिन प्रतिरक्षण तंत्र के *असामान्य* फलन से तकलीफ, रोग या यहां तक की मृत्यु तक हो जाती है। असामान्य फलन को निम्नलिखित प्रमुख वर्गों में बांटा गया है:

(i) अतिसंवेदनशीलता या प्रत्यूर्जता, (ii) स्वप्रतिरक्षण रोग, तथा (iii) प्रतिरक्षाह्रास।

अति संवेदनशीलता (Hypersensitivity)

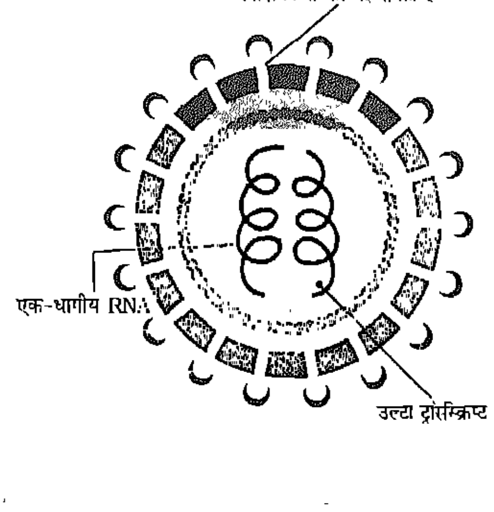
एक ही प्रकार के प्रतिजन के प्रति एक अनुपयुक्त तथा बहुत ज्यादा प्रतिरक्षण प्रतिवेदन के फलस्वरूप प्रत्यूर्जन उत्पन्न होता है। वे पदार्थ जो प्रत्यूर्जन पैदा करते हैं उन्हे **प्रत्यूर्जक** कहते हैं; जैसे धूल, फफूंदी, पराग, कुछ विशेष भोजन, तथा कुछ दवाएं (जैसेकि, पेनीसीलीन)। प्रत्यूर्जन में मुख्य रूप से IgE प्रतिरक्षी तथा हीस्टामीन संलग्न होते हैं। प्रत्यूर्जन का सामान्य लक्षण है दमा। कभी-कभी, एक प्रत्यूर्जक द्वारा एक संवेदनशील व्यक्ति में एकाएक, प्रचंड तथा घातक प्रतिक्रिया हो सकती हैं। यह **तीव्रग्राहिता** कहलाती है।

स्वप्रतिरक्षित रोग (Autoimmune Diseases)

स्वप्रतिरक्षित रोग तब उत्पन्न होता है जब प्रतिरक्षण तंत्र स्वयं की कोशिकाओं तथा अणुओं को प्रहार तथा उसे नष्ट करता है। यह स्थिति दीर्घकालीन या गंभीर रोग पैदा कर सकती है। स्वप्रतिरक्षित रोगों के उदाहरण हैं- इंसुलीन-निर्भर मधुमेह, बहुदृढ़न, रुमेटॉइड संधिशोथ इत्यादि। **बहुदृढ़न** (MS) उस प्रतिरक्षी द्वारा होता है जोकि तंत्र कोशिकाओं के माइलीन सीथ को प्रहार करता है।

प्रतिरक्षाह्रास रोग (Immunodeficiency Diseases)

सहज *या* **अनुकूलित रोधक्षमता** के एक *या अधिक* अवयवों में गड़बड़ी के कारण प्रतिरक्षाह्रास रोग उत्पन्न होते हैं। प्रभावित व्यक्ति उन रोगों के प्रति सुग्राहीता दर्शाते हैं जोकि ज्यादातर लोगों में होने की संभावना नहीं होती है। प्रतिरक्षाह्रास, जीन उत्परिवर्तनों, संक्रमणों, कुपोषणों या दुर्घटनाओं के द्वारा हो सकता है। **अतिसंयुक्त प्रतिरक्षणह्रास** (SCID), कई आनुवंशिक गड़बड़ी में से किसी एक के द्वारा हो सकता है, उसमें से एक आनुवंशिक गड़बड़ी के कारण एडीनोसीन डीएमीनेज ह्रास उत्पन्न करता है। SCID को



चित्र 25.8 HIV का योजनाबद्ध निरूपण

एक बहुत ही निम्न अंकीय थाइमोसाइटों के द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है। प्रभावित व्यक्ति सामान्यतया कम उम्र में ही मर जाते हैं। उपार्जित प्रतिरक्षणह्रास सिंड्रोम, संक्रमण के द्वारा उत्पन्न प्रतिरक्षणह्रास रोग का उदाहरण है।

उपार्जित प्रतिरक्षणह्रास सिंड्रोम (AIDS)- यह प्रतिरक्षणह्रास रोग का सबसे सामान्य उदाहरण है। AIDS, मानव प्रतिरक्षण ह्रासविषाणु (HIV) नामक एक रीट्रोविषाणु के संक्रमण द्वारा उत्पन्न होता है (चित्र 25.8)। रीट्रोविषाणुओं में RNA जीनोम होता है जोकि DNA प्रतियों द्वारा प्रतिकृत होता है। HIV, T सहायक कोशिकाओं को चुनकर संक्रमित कर मार देता है। T सहायक कोशिकाओं के ह्रास से उपार्जित प्रतिरक्षण प्रतिवेदन को कमजोर कर देता है, तथा इसे पूर्णतः नष्ट भी कर सकता है। विषाणु RNA जीनोम, विषाणु एंजाइम, विपरीत अनुलेखन द्वारा DNA प्रति में परिवर्तित कर दिया जाता है। HIV का DNA प्रति मानव गुणसूत्र में स्थापित हो जाता है तथा कोशिका DNA के साथ प्रतिकृति करता है।

यह अनुलेखित होकर विषाणुओं के जीनोम की RNA प्रतियां उत्पादित कर सकता है। RNA प्रतियां संगठित होती हैं तथा विषाणुओं के रूप में स्वतंत्र हो जाती हैं। इस प्रक्रिया में संक्रमित कोशिका विखंडित होती है, तथा निकर्षित विषाणु नए T सहायक कोशिकाओं को संक्रमित करते हैं।

सारांश

प्राणियों के शरीरों में बाह्य कारकों तथा कैंसर कोशिकाओं (प्रतिरक्षण) से बचाव के लिए विस्तृत प्रक्रिया उपलब्ध रहती है। प्रतिरक्षण या तो सहज या उपार्जित होता है। सहज या अविशिष्ट प्रतिरक्षण उस प्रक्रिया पर आधारित है जोकि प्राणी शरीरों के बचाव के लिए हमेशा तत्पर रहता है। यह प्रक्रिया शारीरिय, शरीर-क्रियात्मक, भक्षकाणुयुक्त, तथा शोथज बाधाओं से बनी होती है। ज्यादातर प्राणी तथा पादपों में सहज प्रतिरक्षण तो सुरक्षा की पहली पंक्ति होती है। उपार्जित प्रतिरक्षण (अनुकूलित या विशिष्ट प्रतिरक्षण भी कहा जाता है) सिर्फ कशेरुकीयों में ही पाया जाता है। इसके पास विशिष्ट बाह्य कारकों को परखने तथा वर्णात्मक तरीके से नष्ट करने की क्षमता होती है। यह बाह्य कारकों के आक्रमण के प्रतिवेदन स्वरूप प्रारंभ होता है तथा इस प्रक्रिया में कई दिन लगते हैं। उपार्जित प्रतिरक्षण का निम्नलिखित विशिष्ट लक्षण होता है– (i) विशिष्टता, (ii) विविधता, (iii) याददाश्त, तथा (iv) स्वयं तथा 2 अन्य के बीच विभेद। यह दो प्रकार का होता है, जैसे कि, सक्रिय (उक्त व्यक्ति में प्रतिरक्षण प्रतिवेदन उत्पन्न होता है) तथा निष्क्रिय (दूसरे व्यक्तियों से अप्रतिरक्षणयुक्त व्यक्तियों में प्रतिरक्षियों इत्यादि का स्थानांतरण)।

उपार्जित प्रतिरक्षण कोशिकाओं के दो प्रमुख समूहों को उपयोग में लाता है, जैसेकि, लसिकाणु तथा प्रतिजन उपलब्ध कराने वाली कोशिकाएं। लसिकाणु दो प्रकार के होते हैं:- (क) B लसिकाणु (रक्त मज्जा में परिपक्व होता है तथा प्रतिरक्षी उत्पादित करता है) तथा (ख) T लसिकाणु (थाइमस में परिपक्व होता है तथा कोशिकाविष या सहायक कोशिकाओं जैसा कार्य करता है)। T तथा B दोनों कोशिकाएं अपनी सतहों पर विशिष्ट ग्राही को दर्शाती हैं जोकि प्रतिजनों से पारस्परिक क्रिया करता है।

प्रतिजन- प्रतिजन उपलब्ध कराने वाली कोशिकाओं के द्वारा संवर्धित होता है तथा इसके खंड इनकी कोशिकाओं की सतहों पर प्रदर्शित होते हैं। T सहायक कोशिकाएं उपलब्ध कराए गए प्रतिजन के साथ पारस्परिक क्रिया करती हैं तथा सक्रिय हो जाती हैं। बाद में ये T कोशिकाएं विशिष्ट B तथा T कोशिकाविष कोशिकाओं को सक्रिय किए गए B तथा T कोशिकाएं वर्धन कर क्लोन का निर्माण करती हैं (क्लोनीय वरण)(इनमें से कुछ कोशिकाएं प्रतिरक्षण प्रतिवेदन में कार्य करती हैं (जबकि, कुछ दूसरी कोशिकाएं याददाश्त कोशिकाएं बन जाती हैं (द्वितीयक प्रतिवेदन तथा टीकाकरण के लिए उत्तरदायी होता है)। B कोशिका प्रतिरक्षी उत्पादित करता है, जबकि T कोशिका लक्ष्य कोशिकाओं को मार देती है (संक्रमित कोशिकाएं, कैंसर कोशिकाएं)।

प्रतिरक्षी तो ग्लाइको प्रोटीन है (प्रतिरक्षण ग्लोब्यूलीन)। प्रत्येक प्रतिरक्षी के पास दो हल्की श्रृंखलाएं तथा दो भारी श्रृंखलाएं होती हैं जोकि, y- आकृतिनुमा संरचना बनाती हैं। इस y के उपरी दो भाग प्रतिजन के साथ विशिष्टरूप से पारस्परिक क्रिया कर प्रतिजन-प्रतिरक्षी यौगिक का निर्माण करते हैं। प्रतिरक्षीयों को निम्नलिखित 5 वर्गों में समूहित किया जाता है:- IgA, IgD, IgE, IgG तथा IgM।

प्रतिरक्षण तंत्र के 'याददाश्त' के अभिलक्षणों को टीकाकरण में उपयोग किया जाता है। टीका, रोगाणुओं के कमजोर किए गए, निष्क्रिय किए गए रोगाणुओं से प्रतिजनित प्रोटीन द्वारा निर्मित होते हैं। प्रतिजनित प्रोटीन रोगाणुओं से बनाए जा सकते हैं या ट्रांसजेनिक जीवों में उत्पादित होते हैं जैसेकि, हैपेटाइटिस B टीका यीस्ट से उत्पादित किया जाता है। टीकाकरण की शुरूआत एडवर्ड जेनर तथा लूइस पाश्चर के कार्यों द्वारा हुई है। सामान्य तथा उपयोग में लाए जाने वाले टीके के उदाहरण हैं- BCG, DPT- हीब, हैपेटाइटिस B, पोलियो, इत्यादि।

मानव रक्त कोशिकाएं अपनी सतहों पर 30 या अधिक विभिन्न प्रतिजनों को प्रदर्शित करती हैं। ये प्रतिजन कई प्रकार के रक्त समूहों को जन्म देते हैं, जैसे कि, ABO, Rh, इत्यादि रक्त समूह। अंग प्रत्यारोपण सफलता, मानव लसिकाभप्रतिजन प्रोटीन नामक प्रोटीन के समूह उचित युग्मन पर निर्भर करता हैं। प्रत्यारोपण के वरीयता क्रम इस प्रकार हैं:- अभिन्न यमज > सहोदर > जनक > असंबधी दाता।

प्रतिरक्षण तंत्र के असामान्य फलन निम्नलिखित डिसऑर्डर के वर्गों में दर्शाते हैं- (i) प्रत्यूर्जता (सामान्य प्रतिजन के प्रति अत्यधिक प्रतिरक्षण प्रतिवेदन), (ii) स्वप्रतिरक्षण रोग (प्रतिरक्षण तंत्र स्वकोशिकाओं तथा अणुओं को प्रहार कर नष्ट करता है), (iii) प्रतिरक्षा ह्रास रोग (प्रतिरक्षण प्रतिवेदन के प्रति संवेदनहीनता), प्रतिरक्षण ह्रास, जीन उत्परिवर्तन द्वारा होता है (जैसे कि, SCID), संक्रमण (जैसे कि, HIV द्वारा), कुपोषण या दुघटनाएं। HIV एक रीट्रोविषाणु है, इसके पास एकाय धारीय RNA जीनोम होता है, जोकि विपरीत रूप से आलेखित होता है तथा मेजबान जीनोम में संयुक्त कर दिया जाता है। HIV विशिष्ट रूप से T सहायक कोशिकाओं को प्रहार करता है।

अभ्यास

निम्न में से सही विकल्प चुनिए

1. उपार्जित रोधक्षमता के कौन से निम्न गुण टीकाकरण का आधार हैं?
   (क) विशिष्टता (ख) विविधता
   (ग) स्मृति (घ) स्वंय तथा अन्य के बीच भेद भाव
2. निम्न में से किसके द्वारा प्रतिरक्षा ह्रास होता है?
   (क) जीन उत्परिवर्तन (ख) संक्रमण
   (ग) कुपोषण (घ) उपरोक्त सभी
3. स्तंभ-I में दिए गए प्रतिरक्षित तंत्र के घटकों को स्तंभ-II में दी गई घटनाओं से जोड़ें।

स्तंभ-I	स्तंभ-II
(क) हिस्टैमिन	(i) प्रतिरक्षी उत्पादन
(ख) IgE	(ii) B कोशिकाओं की सक्रियता
(ग) T कोशिकाविष कोशिकाएं	(iii) शोथज अनुक्रिया
(घ) B कोशिकाएं	(iv) प्रतिजन की प्रक्रमण
(ङ.) B कोशिकाएं	(v) गर्भ की निष्क्रिय रोधक्षमता
(च) T सहायक कोशिकाएं	(vi) रंध्र निर्माण
(छ) प्रतिजन उपलब्ध कराने वाली कोशिकाएं	(viii) प्रत्युर्जता
(ज) IgG	
(झ) IGM	

4. एच आई वी निम्न में से किस पर आक्रमण करता है?
   (क) B कोशिका (ख) T कोशिका
   (ग) प्रतिजन उपलब्ध कराने वाली कोशिकाएं (घ) T सहायक कोशिकाएं

5. निम्नलिखित में से कौन सा सहज रोधक्षमता का अंग नही है?
   (क) प्रतिरक्षी
   (ख) व्यतिकारक
   (ग) पूरक प्रोटीन
   (घ) भक्षकाणु
6. निम्नलिखित को परिभाषित करें:
   (क) सहज रोधक्षमता
   (ख) क्लोनीयवरण
   (ग) उपार्जित रोधक्षमता
   (घ) प्रतिरक्षाविज्ञान
   (ड.) रक्तोत्पत्ति
   (च) प्रतिजन
   (छ) प्रतिजन निर्धारक
   (ज) टीका
   (झ) प्राथमिक प्रतिरक्षित अनुक्रिया
   (ञ) द्वितीयक
7. निम्नलिखित की व्याख्या 70 शब्दों से अधिक में न करें:
   (क) उपार्जित रोधक्षमता के गुण
   (ख) अनुकूलित रोधक्षमता की सक्रियता
   (ग) प्रतिरक्षित अनुक्रिया में लसिकाभ की भूमिका
   (ड.) ABO रक्त समूह
   (च) अतिसंवेदीता
   (छ) स्वप्रतिरक्षित रोग
   (ज) एड्स
8. निम्नलिखित की व्याख्या 100 शब्दों से अधिक में न करें।
   (क) सहज रोधक्षमता
   (ख) Rh रक्तसमूह
   (ग) अंग प्रत्यारोपन
   (घ) टीकाकरण
9. संक्रामक वाहक से बचाव में सहज रोधक्षमता की भूमिका की व्याख्या करें।
10. अनुकूली रोधक्षमता की परिघटना की व्याख्या, इसके गुण, सक्रियता, क्लोनीयवरण, तथा टीकाकरण के विशेष संदर्भ में करें तथा टीकाकरण में इसकी भूमिका को बताएं।
11. प्रतिरक्षण तंत्र की असामान्य गतिविधियों के कारण उत्पन्न होने वाले विकारों का संक्षेप में वर्णन करें।
12. रोधक्षमता के परिपेक्ष्य में निम्नलिखित के कार्यों की संक्षेप में व्याख्या करें:
   (क) प्रतिरक्षी
   (ख) T सहायक कोशिकाएं
   (ग) एच एल ए प्रोटीन
   (घ) B कोशिकाएं
   (ड.) इंटरफेरोन
   (च) श्लेष्मल झिल्ली
   (छ) भक्षकाणु
   (ज) पूरक प्रोटीन

अध्याय 26

जैव चिकित्सा तकनीकियां

चिकित्सक तरह-तरह के साधारण औजारों का उपयोग करते हैं। जैसे ज्वरमापी थर्मामीटर शरीर का तापमान जांचने के लिए तथा शरीर के अंदर की सामान्य आवाज सुनने के लिए स्टेथोस्कोप इत्यादि। तकनीकी विकास के कारण बीमारी जांचने के औजारों में क्रांतिकारी परिवर्तन आए हैं। कई आधुनिक अस्पताल या क्लीनिक बहुत विस्तृत प्रकार के उपकरणों का प्रयोग करते हैं। इस अध्याय में हम जांच में उपयोग किए जाने वाले उपकरणों के बारे में पढ़ेंगे।

26.1 निदान सूचक प्रतीक (Diagnostic Images)

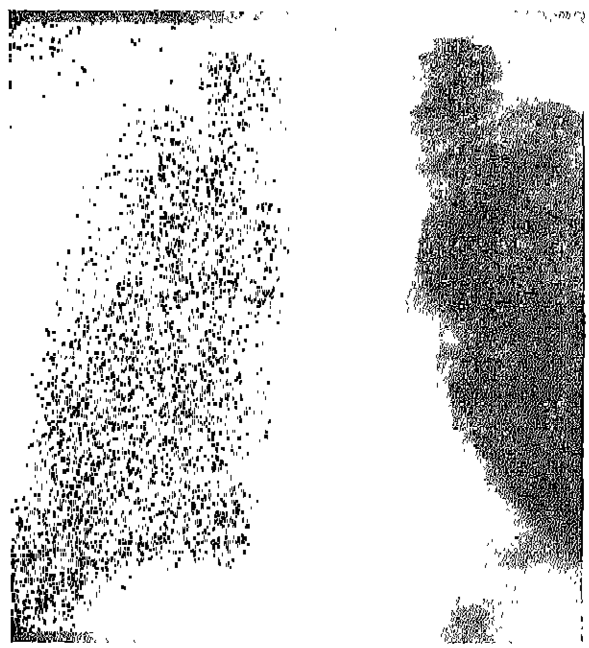
शरीर के बारे में बहुत हद तक X-विकिरण तथा स्कैनर के जरिए जाना जा सकता है। प्राप्त की गई छाया बीमारी को तथा असमान्यता को बताती है, जिसे बीमारी के निदान सूचक के रूप में मानते हैं।

X-किरण रेडियोग्राफी (X-Ray Radiography)

X-किरण (जर्मन भौतिकवेत्ता विलहेम रॉंजेन ने 1895 में इसकी खोज की) में पदार्थ विभेदन की अद्‌भुत क्षमता है। ये शरीर के सघन हिस्सों की विस्तृत छाया लेने में प्रमुख निदान सूचक उपकरण का काम करते हैं, जैसे हड्डी। X-किरण का मुख्य उद्देश्य रोगियों के वस्त्रविहीन हिस्सों की जांच करना है। कुछ विकिरण शरीर के हिस्से से गुजरती हुई फिल्म पर गिरती है, जो X-किरण संवेदी इमलशन को अंतर्विष्ट किए रहती हैं। इससे एक छाया प्राप्त होती है, जिसे रेडियोग्राफ कहते हैं, यह शरीर के सघन हिस्सों का प्रतिबिंब है (चित्र 26.1)।

एंजियोग्राफी (Angiography)

X-किरण को जब छाया तीव्रक के साथ युग्मित किया जाता है तो यह सही-समय छाया प्रदान करता है। इन छायाओं को CRT (कैथोड रे ट्यूब) विडियो मॉनीटर पर शल्य चिकित्सा के समय लगातार देखा जा सकता है। **डिजिटल सब्स्ट्रेक्शन एंजियोग्राफी** (DSA) एक छाया प्राप्त करने की तकनीक है, जिससे वाहिका में बहते हुए रक्त का साफ चित्र खींचा जा सकता है तथा अगर कोई अवरोध है तो उसे भी दर्शाता है। हृदय तथा प्रमुख रक्त वाहिकाओं (*एंजिओन*- वाहिका, *ग्राफेइन*-रिकार्ड) का एक एंजियोग्राफ लिया जाता है तथा उसे कंप्यूटर में संचित किया जाता है। दूसरा एंजियोग्राफ उसमें विपरीत ऐजेंट आयोडीन डालकर लिया जाता है जो X-किरण के लिए अपारदर्शी होता है, यह रक्त प्रवाह में सुई द्वारा डाला जाता है। पहली छाया को दूसरी छाया से डिजिटलों के द्वारा घटाया जाता है, जिससे हृदय, मस्तिष्क तथा किडनी में रक्त प्रवाह का साफ चित्र मिलता है (चित्र 26.2)।



चित्र 26.1 वक्ष का एक X-किरण रेडियोग्राफ



चित्र 26.2 मानव मस्तिष्क का एंजियोग्राफ



चित्र 26.3 मानव मस्तिष्क का CT क्रमवीक्षण

कंप्यूटेड टोमोग्राफी (Computed Tomography)

साधारण रेडियोग्राफी से प्राप्त छाया को समझने में कठिनाई होती है, क्योंकि उनमें कई आंतरिक संरचनाएं एक-दूसरे पर अध्यारोपित रहती हैं। एक अन्य तकनीक जिसे **कंप्यूटेड टोमोग्राफी** (CT) या (**कंप्यूटेड एक्सीयल टोमोग्राफी**) CAT का विकास 1972 में किया गया। इस संवेदी तकनीक से आंतरिक संरचनाओं का एक-दूसरे से अलग-अलग चित्र लेना संभव हो गया, उनको शरीर के पतले हिस्से के रूप में देखा जाना संभव हो गया (चित्र 26.3)। इस खोज के लिए भौतिकवेत्ता गोडफ्रे हॉन्सफील्ड को 1978 में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

इस तकनीकी को थ्योरी का आधार एक भारतीय जैव भौतिकवेत्ता श्री गोपालसमुद्रम एन. रामाचंद्रन ने दिया। परीक्षण के समय X-विकिरण पुंज की अल्प मात्रा 360^0 पर घूमती है तथा मरीज के शरीर के पतले हिस्से से होकर गुजरती है। शरीर के बाहर आते हुए विकिरण को संवेदी जांच बैंक के द्वारा रिकॉर्ड कर लिया जाता है। इस परीक्षण को कई बार दोहराया जाता है जब तक की उसी हिस्से का सभी कोणों से परीक्षण नहीं कर लिया जाए। एक कंप्यूटर आंकड़ों का विश्लेषण करता है तथा शरीर के हिस्सों के आंतरिक अंगों के चित्रों को जोड़ता है (चित्र 26.3)। कई स्लाइसों को विडियो स्क्रीन पर 'स्टैक' कर मरीज के आंतरिक अंगों का तीन डाइमेंशनल (3D) दृश्य तैयार किया जाता है। डॉक्टरों को थोड़ी अलग सतहों पर स्लाइस के द्वारा शरीर के चित्रों की पूरी एक श्रृंखला प्राप्त हो जाती है, इससे उन्हें बीमारी का सही-सही पता लगाने में मदद मिलती है।

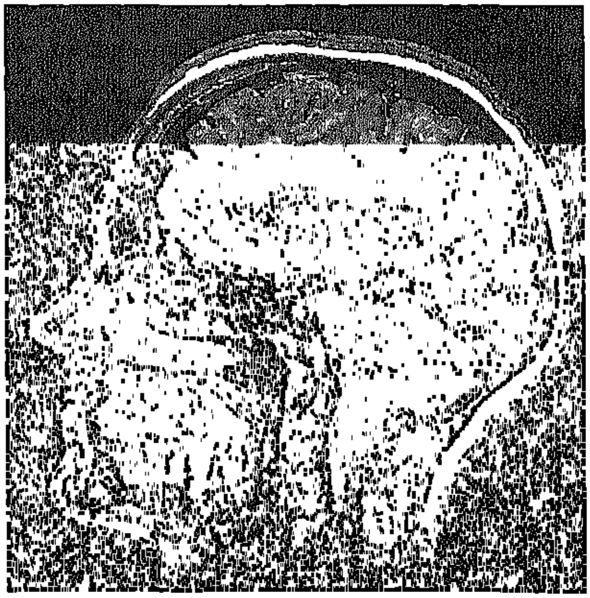
मैग्नेटिक रिजोनेंस इमेजिंग (Magnetic Resonance Imaging)

मैग्नेटिक रिजोनेंस इमेजिंग (MRI) उत्कृष्ट चित्र देता है तथा इसमें मरीज को हानिकारक आयोनाइजिंग विकिरण के संपर्क में नहीं आना पड़ता है। फेलिक्स ब्लॉक तथा एडवर्ड एम. परसेल ने 1952 में भौतिकी में इस यांत्रिकी को विकसित करने के लिए नोबेल पुरस्कार पाया था, जोकि अब MRI स्कैनिंग का आधार बना। MRI जिस पर निर्भर करती है उस परिघटना को **नाभिकीय मैग्नेटिक रिजोनेंस** कहते हैं (NMR)।

हृदय चक्र का प्रत्येक हिस्सा अपना अलग अभिलक्षण स्पाईक कार्डियोस्कोप पर दर्शाता है। कुछ हृदय रोग में पहली तथा दूसरी (स्पाईस आटेरियल तथा वेंट्रीकल का संकुचन) के बीच की दूरी सामान्य से अधिक होती है। एम.आर.आई, नाभिकीय चुंबकीय अनुनाद (एन.एम.आर.) नामक प्रक्रिया पर आधारित होती है।

वैज्ञानिकों ने एम.आर.आई. क्रमवीक्षण के लिए हाइड्रोजन को एक आधार के रूप में चुना क्योंकि, यह शरीर के अंदर प्रचुर मात्रा में उपलब्ध रहता है तथा इसमें विशिष्ट चुंबकीय गुण उपलब्ध होते हैं। प्रोटीन (हाइड्रोजन परमाणु के केंद्रक : ^1H) एक विद्युतीय आवेश का वाहक होता है तथा एक लघु चुंबक की तरह कार्य करता है। सामान्य अवस्था में मानव शरीर में किसी भी प्रकार का चुंबकीय क्षेत्र नहीं होता है। एम.आर.आई. के लिए मरीज को लगभग 2 मीटर चौड़े कक्ष में उत्तान अवस्था में लिटा दिया जाता है जो कि एक विशाल बेलनाकार विद्युत चुंबकीय तारों से घिरा रहता है। यह चुंबक एक चुंबकीय क्षेत्र उत्पन्न करता है जो कि पृथ्वी से 70,000 गुना ज्यादा होता है। यह चुंबकीय क्षेत्र हाइड्रोजन केंद्रक के चुंबकीय आघूर्ण को इस प्रकार अभिविन्यस्त करता है कि वे विद्युत चुंबकीय विकिरणों को एक निश्चित आवृत्ति के अनुसार अवशोषित कर सके। जब हाइड्रोजन केंद्रक के रासायनिक परिवेश होने से इसकी आवृत्ति में परिवर्तन होता है।

एम.आर.आई. जल को संसूचित करता है क्योंकि यह जल के अणुओं में हाइड्रोजन के परमाणुओं के व्यवहार पर ध्यान रखता है। इसके द्वारा एम.आर.आई. जल क्षीण तथा जल से भरपूर उत्तकों के बीच अंतर स्पष्ट करने में सक्षम हो पाता है। दांत तथा हड्डी (अस्थि) जिसमें की जल की कमी होती है, यह एम.आर.आई. में परिलक्षित नहीं होता है। इस प्रकार, ऐसे उत्तक जो कि चारो ओर से अस्थियों से घिरा होता है जैसे कि, मेरुरज्जु को आसानी से एम.आर.आई में देखा जा सकता है। इसका उपयोग मस्तिष्क तथा मेरु उत्तकों में बहु दृढ़न वाले छोटे आघातों के परखने के लिए, जोड़ों के आघातों को तथा मेरु कॉलम में विस्थापित डिस्क की जांच के लिए किया जाता है। एम.आर.आई द्वारा छोटे कैंसजनी अर्बुदों को भी देखा जा सकता है क्योंकि, उन उत्तकों में निहित हाइड्रोजन परमाणुओं द्वारा अवशोषित रेडियो आवृत्ति, उसी प्रकार के क्षेत्र के सामान्य उत्तकों से भिन्नता दर्शाता है। चित्र 26.4 में दर्शाए गए एम.आर. आई. चित्र एक मस्तिष्क स्तंभ अर्बुद को दर्शाता है।



चित्र 26.4 मस्तिष्क स्तंभ ट्यूमर दर्शाता हुआ मानव मस्तिष्क का एक MRI क्रमवीक्षण

पोजिट्रॉन उत्सर्जन (एमिशन) टोमोग्राफी (Positron Emission Tomography)

पोजिट्रॉन उत्सर्जन टोमोग्राफी (PET) स्कैनर न्यूट्रॉन के द्वारा ग्लूकोज जैसे पदार्थ के उपयोग को मॉनीटर करता है। ग्लूकोज को रेडियोआइसोटोप के साथ संहित कर दिया जाता है तथा इनका रेडियो सक्रिय केंद्र होता है जो न्यूट्रॉन विहीन होता है तथा प्रोटीन की प्रचुरता रहती है, जैसे 11_C और $15O$। बीमार मनुष्य की रक्तधारा में रेडियो सक्रिय ग्लूकोज की मात्रा का एक ड्रिप डाला जाता है, जो शरीर क्रिया तथा विभिन्न अंगों की जैव रासायनिक जरूरत के आधार पर पूरे शरीर में वितरित हो जाता है, जैसे ही रेडियो सक्रिय अणु समाप्त होता है यह अवपरमाण्विक कण जिसे पोजिट्रॉन कहते हैं, उसका निसर्जन करता है। तुरंत ही यह निसर्जित पोजिट्रॉन विपरीत कण, जैसे इलेक्ट्रॉन से टकराता है यह टकराव से उन्हें निष्कासित करता है तथा यह विद्युतचुंबकीय ऊर्जा के विकिरण जोड़े रूप में, स्फोट होता है। यह विकिरण साथ-साथ दूसरी दिशा में भी होता है। यह दोहरी निसर्जन ही PET स्कैन की कुंजी है। वे मरीज के मस्तिष्क के पास क्रिस्टल के रिंग डिटेक्टर पर चोट करता है जिससे क्रिस्टल प्रज्वलित हो जाता है।

एक कंप्यूटर इस घटना की प्रत्येक फ्लैश को रिकॉर्ड कर लेता है तथा विकिरण के स्रोत का पता करता है, जिसे 3D छाया के डाटा में रूपांतरित कर लिया जाता है। एक उपापचयी सक्रिय ऊतक, असक्रिय ऊतक की तुलना में रक्तपूर्ति ज्यादा लेता है। इसलिए यह रेडियो सक्रिय ग्लूकोज को ज्यादा लेगा तथा PET चित्र में यह क्षेत्र ज्यादा चमकदार होगा। उदाहरण के लिए मस्तिष्क के बाईं ओर का अंधकार क्षेत्र स्ट्रोक से नुकसान हुए क्षेत्र को दर्शाता है (चित्र 26.5)। मस्तिष्क के दूसरे भाग का चमकदार हिस्सा सामान्य रक्त प्रवाह को दर्शाता है। इस तरह रेडियो सक्रिय ग्लूकोज की सहायता से एक डॉक्टर मस्तिष्क के ज्यादा सक्रिय हिस्से का पता लगा सकता है, जैसे मस्तिष्क का वह भाग जो उस कार्यक्रम में हिस्सा लिया। इस विविध तकनीकी का उपयोग मिर्गी, स्किजोफ्रेनिया, पार्किंसन की बीमारी तथा नशीली दवाइयों से होने वाली बीमारी में होता है।



चित्र 26.5 स्ट्रोक द्वारा बाईं तरफ आघात दर्शाता हुआ मानव मस्तिष्क का PET क्रमवीक्षण

सोनोग्राफी (Sonography)

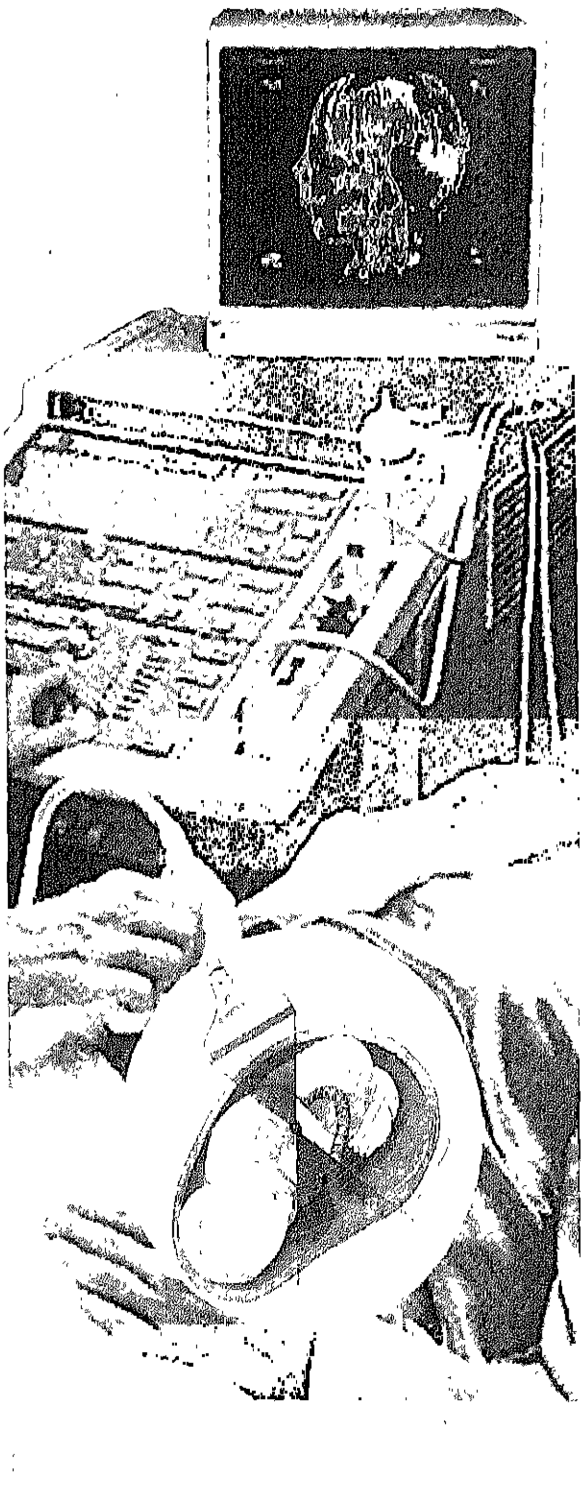
सोनोग्राफी पराध्वनी (अल्ट्रासाउंड) (20 kHz से ऊपर आवृत्ति) पर आधारित होता है। जब मानव शरीर में पराध्वनी की 1 से 15mHz आवृत्ति डाली जाती है तो शरीर से वापस आने वाली इको को जांच लिया जाता है। पराध्वनी तरंग समांगता ऊतकों से अप्रतिबाधित गुजरती है, लेकिन जब वे दूसरे ऊतकों या अंगों से मिलती है तो आंशिक परावर्तन होता है, परावर्तन का गुणांक दो ऊतकों, अंगों के घनत्व में अंतर पर निर्भर करता है।

क्लीनिक परीक्षण के लिए एक सोनोग्राफर स्कैन हैड ट्रांसड्यूसर को जांच किए जाने वाले भाग के पास रखता है। जलीय जेल की एक-एक परत त्वचा तथा स्कैन हैड के बीच लगाई जाती है जिससे यह बात निश्चित हो जाए कि ध्वनि का लक्ष्य तक का रास्ता हवा विहीन है, जैसे एक भ्रूण। एक संक्षिप्त पराध्वनि तरंग श्रेणीबद्ध होकर शरीर में विभेदन करती है। अंगों को स्पर्श कर सतह पर वापस परावर्तित होती है, यहां पर ट्रांसड्यूसर रिसीवर की तरह कार्य करता है। इको को कंप्यूटर पर विडियो छाया में प्रवर्धित कर लिया जाता है। इन सिगनल के वापस आने में लगा समय, लक्ष्य का स्थान, आकार, आकृति तथा टेक्सचर का चित्र खींच लेता है। चित्र 26.6 में छह महीने के स्वस्थ भ्रूण का चेहरा जम्हाई लेने में खुले मुंह को दर्शाता है।

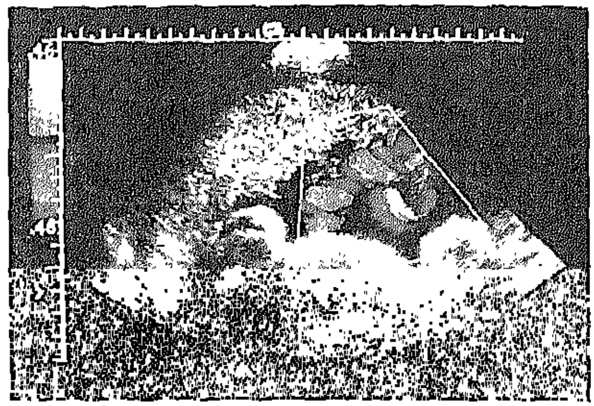
सोनोग्राफी X-विकिरण की तुलना में ज्यादा सुरक्षित है, यह ज्यादा आरामदायक तथा कम खर्चीला है। यह भ्रूण के विकास तथा एक वृहत पैमाने पर असामान्य लक्षण का पता लगाता है जैसे स्पाइना, बाइफीडा तथा प्रसव के समय होने वाले कठिनाइयों का पता लगाता है। सोनोग्राफी युवाओं के शरीर की छाया के लिए भी उपयोग किया जाता है। यह हृदय की धड़कन से हो रहे रक्त प्रवाह का भी चित्र खींचता है जो **डॉप्लर प्रभाव** पर आधारित रहता है (चित्र 26.7)।

26.2 शरीर की प्रमुख क्रियाओं का परीक्षण

अगर आप आधुनिक अस्पताल के अति सतर्कता इकाई (ICU) में जाएं तो आप पाएंगे की मरीज को जीवन-सहायक प्रणाली से जोड़ा गया है तथा एक इलेक्ट्रॉनिक सेंसर श्रेणी लगी रहती है जोकि लगातार उनके प्रमुख संकेतों की देखरेख करती रहती है। हृदय गति दर, रक्त चाप दर शरीर का तापमान, रक्त में ऑक्सीजन का स्तर इत्यादि, मरीज की स्थिति की लगातार सूचना देती है तथा हो रही समस्याओं की चेतावनी देती है। इससे एक डॉक्टर को असामान्यत या बीमारी का पता लगाने में सहायता मिलती है। आपने यह समझ लिया होगा कि मनुष्य शरीर एक विद्युत क्रिया



चित्र 26.6 एक स्वस्थ गर्भ दर्शाता हुआ सोनोग्राफी



चित्र 26.7 डॉप्लर प्रभाव के उपयोग से लिया गया एक रंगीन सोनोग्राफ जो कि मानव हृदय से रक्त प्रवाह को दर्शा रहा है।
लाल रंग : ट्रांस्ड्यूसर की ओर रक्त प्रवाह
नीला रंग : ट्रॉस्ड्यूसर से दूर रक्त प्रवाह

द्वारा जीवित है। तंत्रिका कोशिकाएं मस्तिष्क तथा शरीर में क्रिया विभव के रूप में सूचना का प्रवाह करती हैं। उसी तरह जब एक पेशी सिकुड़ती है इसका प्रत्येक अवयव रेशा एक क्रिया विभव प्रदान करता है। दोनों ही रूपों में क्रिया विभव मापने योग्य विद्युत संकेत प्रदान करता है जोकि शरीर की सतह पर **बायोपोटेंशियल एंपलीफायरों**, जैसे संवेदनशील इलेक्ट्रोनिक सर्किट के द्वारा पता लगाया जा सकता है।

इलेक्ट्रोकार्डियोग्राफी (Electrocardiography)

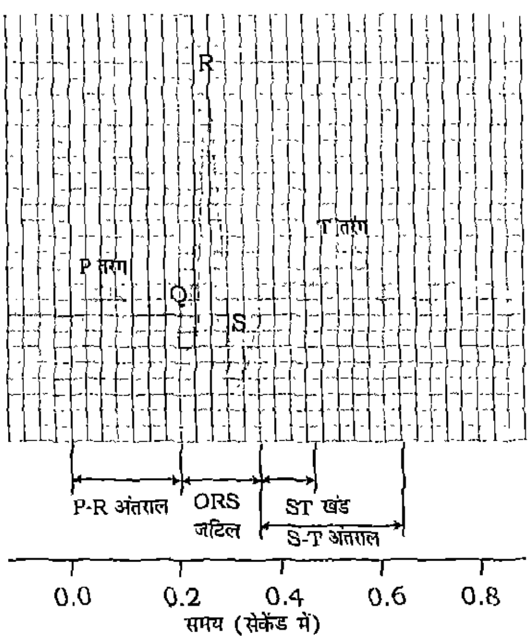
इलेक्ट्रोकार्डियोग्राफी धड़कते हृदय में तंत्रिकाओं तथा पेशियों द्वारा पैदा किए गए विद्युत संकेतों को पढ़ता है तथा उनको **इलेक्ट्रोकार्डियोग्राम** (ECG) के रूप में रिकॉर्ड कर लेता है। ECG को मॉनिटर करने का साधारण तरीका कार्डियोस्कोप है। इसमें तीन इलेक्ट्रोड कंडक्टीव इलेक्ट्रोलाइट जेल से होकर मरीज में जोड़ा जाता है जिससे सूक्ष्म विद्युत संकेतों का पता लगाया जा सके। दो इलेक्ट्रोड को वक्ष पर हृदय से ऊपर लगाया जाता है तथा तीसरा 'रिफरेंस' लिंब से जुड़ा रहता है। जमा किया गया संकेत त्वचा की सतह पर कुछ ही मिली वोल्ट का होता है। इसे CRT ओसिलोस्कोप स्क्रीन पर देखने से पहले वृहत् (एंपलीफाई) किया जाता है या संवेदी चार्ट रिकॉर्डर में रिकॉर्ड कर लिया जाता है।

आपने अध्याय 7 में पढ़ा है कि ECG की तरंगों को P, Q, R, S तथा T से इंगित किया गया है। प्रत्येक अक्षर हृदय पेशी की घटना को संबोधित करते हैं (चित्र 26.8)। हृदयी चक्र का प्रत्येक भाग कार्डियोस्कोप पर्दे पर अपना विशिष्ट अभिलक्षण स्पाइक उत्पन्न करता है। कुछ प्रकार के हृदय रोगों में, प्रथम स्पाइक (परिकोष्ठीय संकुचन) तथा द्वितीय स्पाइक (निलय संकुचन) के बीच की दूरी सामान्य से ज्यादा दृष्टिगोचर होती है। यह प्रेक्षण इस बात को बताता है कि वह तंत्रिका बंडल जो कि आलिंद तथा निलय के संकुचन को संयोजित करता है वह शोध या संक्रमण द्वारा परिक्षिप्त हो जाता है। ज्यादा प्रौढ़ जांच वाला इलेक्ट्रोकार्डियोग्राफ, एक दर्जन या उससे भी अधिक इलेक्ट्रोडों का उपयोग करता है जो कि वक्ष के 6 विभिन्न स्थानों पर रखा जाता है जिससे कि हृदय की विद्युतीय क्रिया कलापों का 3D चित्र दिखा सकें।

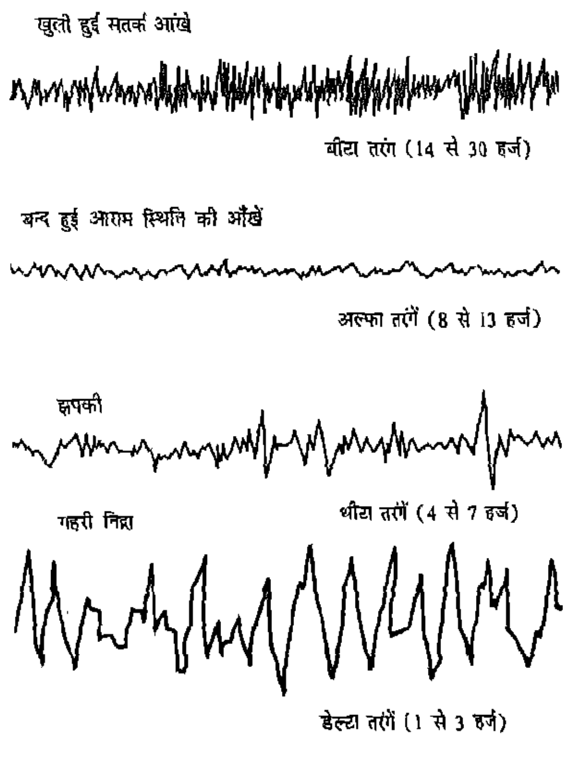
ईसीजी हृदय गति की दर को उद्धृत करता है तथा हृदय गति अवरूद्ध होने (सामान्य हृदय गति से अंतर, हृद धमनी रोगों इत्यादि) की दशा में हृदय की असामान्य अवस्था की जांच कर सकता है।

इलेक्ट्रोइनसेफेलोग्राफी (Electroencephalography)

उसी प्रकार का तकनीकी जिसे **इलेक्ट्रोइनसेफेलोग्राफी** कहते हैं, इसके द्वारा मस्तिष्क में तंत्रिका डीपोलराइजेसन द्वारा उत्पादित क्षणजीवी विद्युतीय संकेतों को मापता है तथा उसका चित्रण करता है तथा इसे एक **इलेक्ट्रोइनसेफेलोग्राम** (ई सी जी) के रूप में अंकित करता है। इ इ जी में बराबर दूरी में 16 से 30 इलेक्ट्रोड को रोगी के शिरोवल्क पर रखा जाता है तथा इसे एक प्रवर्धक से जोड़ दिया जाता है। उनको शिरोवल्क पर संसूचित किया जाता है (चित्र 26.9) तथा उन्हें दिखाने से पूर्व लगभग एक मिलियन गुणा प्रबंधित किया जाता है। यद्यपि ईईजी अनुरेख प्रति, इसीजी के सामान्य उपस्थिति की कमी को इंगित करता है, उनकी अवयवी तरंगों को अनुभवी प्रचालक द्वारा पहचाना जा सकता है। लघु आवृत्ति लय, जिसे अल्फा तरंग कहते हैं, वह उस समय उपस्थित होता है जब मस्तिष्क शांत होता है। अनिद्रा या नींद की अवस्था में ये तरंगें लघु आवृत्ति वाली थीटा या डेल्टा तरंगों द्वारा स्थानांतरित हो जाती



चित्र 26.8 इलेक्ट्रोकार्डियोग्राफ



चित्र 26.9 इलेक्ट्रोइनसीफेलोग्रांफ

हैं। थीटा तरंगे सामान्यतया उन व्यक्तियों में उत्पन्न होती हैं जो कि भावुक प्रतिबल के दौड़ से गुजरता है। डेल्टा तरंगे गहरी निद्रा के समय उत्पन्न होती हैं। उच्च आवृत्ति वाली बीटा तरंगें मस्तिष्क के अग्र क्षेत्रों की मानसिक क्रियाओं से संबंधित होती हैं खासकर इंद्रियों के उद्दीपन समय में।

इ.ई.जी के उपयोग से मस्तिष्क की असामान्य क्रियाओं जो ट्यूमर, ट्रोमा, हिमेटोमा, मिर्गी (epilepsy) अचेतना विस्मृति एवं अन्य असमान्य गतिविधियों से संबंध रखती है का मापन किया जाता है। इससे पूर्ण मस्तिष्क मृत्यु की घटनाओं को पहचानने में भी मदद ली जाती है। 24 घंटों के अंतराल में लिए गए दो EEG में मस्तिष्क तरंगों की पूर्ण अनुपस्थिति मस्तिष्क मृत्यु कहलाती है।

पोलीग्राफी (Polygraphy)

पोलीग्राफी तुलनात्मक रूप से साधारण है, यह कॉम्पेक्ट तथा पोर्टेबल मशीन है जो शरीर क्रियात्मक पैरामीटरों के मात्रात्मक परिवर्तन को रिकॉर्ड करती है न कि उसे सही-सही मापती है। इन पैरामीटरों में प्रमुख अनुरेख, जैसे कि कार्डियक बदलाव (ECG), हृदय धड़कन दर (HR) समानुपातिक रक्त दबाव (BP) दर तथा श्वसन की गहराई तथा विद्युत चालन पर त्वचा की प्रतिरोधक क्षमता इत्यादि। इसे साधारणतः गलत धारणा से 'झूठ पता लगाने की मशीन' कहते हैं।

इस विविध चैनल वाले साधन का एक आधुनिक कंप्युटरीकृत संस्करण तंत्रिका भौतिक क्रिया विज्ञान प्राचाल को रिकॉर्ड करने में होता है, जैसे EEG, EMG (इलेक्ट्रो-मायोग्राफ), EOG (इलेक्ट्रोओकूलोग्राफ इत्यादि)। इस साधन का मुख्य उपयोग झूठ पकड़ने में होता है, यह निद्रा की अवस्थाओं को मॉनिटर करने तथा मस्तिष्क के विद्युत भौतिक क्रियात्मक व्यवहार तथा इसके क्रियाहीन भाग का पता लगाता है।

26.3 जैव रासायनिक स्वतः जांच यंत्र (Biochemical Autoanalysers)

यह एक बहु चैनलीय, पूर्ण रूप से तापमान नियंत्रित तथा कंप्यूटर नियंत्रित उपकरण है। यह शरीर के सैंकड़ों सैंपल तरल, जैसे रक्त सीरम या सेरीब्रोस्पाइनल तरल (CSF) की जांच कम समय में कर सकता है। नमूने (सैंपल) को एक नियमित अंतराल पर अनुक्रमिक तरीके से सूक्ष्म पिपेटो नेटवर्क के संपर्क में रखा जाता है। सैंपल के साथ प्रकाशीय पारदर्शी क्यूवे (द्रोणिका) में अभिकर्मक मिलाया जाता है। अद्र्ध स्वचालित विश्लेषक, मात्र एक ही पैरामीटर की जांच एक समय में कर सकते हैं। जैसे, ग्लूकोज, कोलेस्ट्रॉल, यूरिया, इलेक्ट्रोलाइट इत्यादि। लेकिन अति आधुनिक विश्लेषक एक साथ 40 या इससे अधिक पैरामीटरों की एक ही सैंपल में जांच कर सकता है। यद्यपि ऑपरेटर के द्वारा जिन पैरामीटर की जांच की जानी है उसका चुनाव किया जा सकता है।

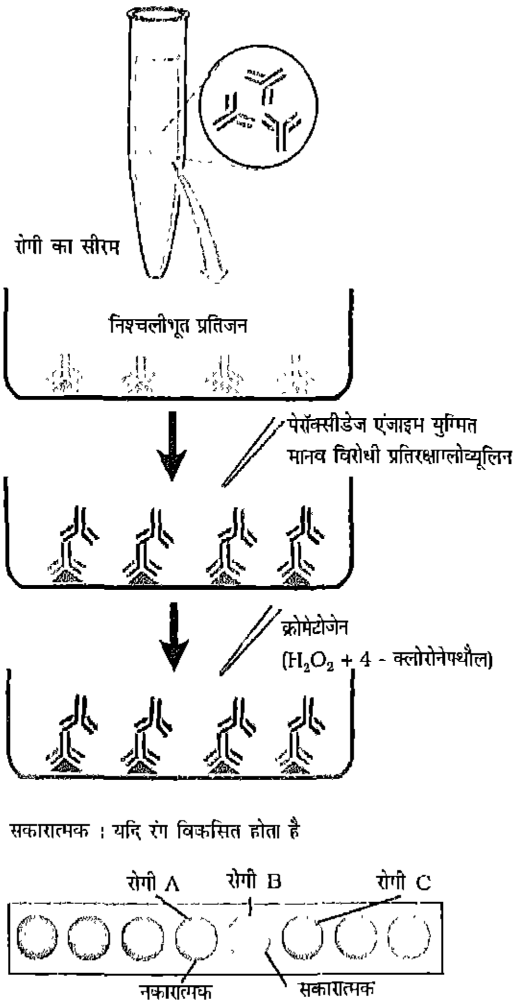
26.4 डाइगनॉस्टिक किट (Diagnostic Kits)

डाइगनॉस्टिक किट एंजाइम की क्रियाओं, प्रतिजन-प्रतिरक्षी परस्पर संपर्क या केंद्रीय अम्ल हाइब्रीडाइजेशन पर आधारित रहते हैं। हम लोग संक्षिप्त में ELISA (एंजाइम, लिंक्ड इम्युनो-सोरबेंट ऐसे) का उदाहरण लेंगे, यह प्रतिजन-प्रतिरक्षी का परस्पर संपर्क करा कर प्रतिजन तथा प्रतिरक्षी की उपस्थिति की जांच करता है। ELISA जांच के तरीके तथा सिद्धांत इस प्रकार हैं। प्रतिजन का खास प्रतिरक्षी जिन का जांच होना है ELISA जांच में उसकी उपस्थिति आवश्यक है।

जिस सैंपल के बारे में हमें शंका होती है कि इसमें प्रतिजन उपस्थित है उसे एक पेट्रीप्लेट की सतह पर या ELISA प्लेट पर डालकर अचल कर दिया जाता है। अब इस प्रतिजन के लिए उपयुक्त प्रतिरक्षी डाला जाता है तथा प्रतिक्रिया कराई जाती है। क्रियारहित प्रतिरक्षी अणुओं को धो दिया जाता है, सिर्फ उन्हीं प्रतिरक्षी अणुओं को छोड़ दिया जाता है जो उस प्रतिजन के हैं। अब एक विपरीत इम्यूनोब्यूलिन डाला जाता है तथा इस प्रतिजन को निश्चित प्रतिरक्षी अणुओं से प्रतिक्रिया करने के लिए छोड़ दिया जाता है, विपरीत-प्रतिरक्षी को उसके लायक सही एंजाइम से जोड़ दिया जाता है। जैसे पेरोक्सीडेज। क्रियारहित विपरीत प्रतिरक्षी को धो दिया जाता है, एंजाइम का क्रियाधार आवश्यक अभिकर्मक के साथ डाला जाता है। एंजाइम की क्रिया एक रंगीन उत्पाद देती है (चित्र 26.10)। रंग की तीव्रता प्रतिजन की मात्रा की समानुपाति होती है। ELISA अत्यधिक संवेदी होता है, तथा प्रतिजन की जांच नेनोग्राम की श्रेणी में कर सकता है। यह बहुत तेजी से होने वाला आमापन है, और अनेक प्रकार के प्रतिजन में लागू हो सकता है।

26.5 अंतर्दर्शी प्रक्रिया (Endoscopy)

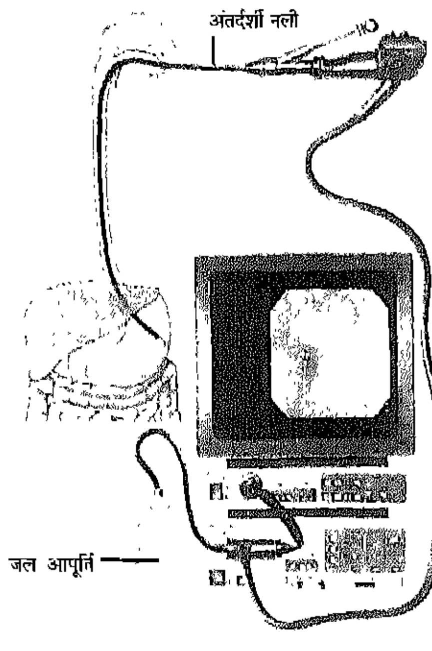
एंडोस्कोप का उपयोग करते हुए एक सर्जन, ऊतकों को काटे बिना ही छोटे ऑपरेशन कर सकता है। एंडोस्कोप में एक लंबी लचीली नली हैंड सेट से जुड़ी रहती है (चित्र 26.11)। शरीर के छिद्र के द्वारा नली को शरीर के अंदर डाला जाता है तथा



चित्र 26.10 एंजाइम लिंक्ड प्रतिरक्षण शोषी आमापन (ELISA) जांच

इसके सिरे को गंतव्य स्थान पर ले जाया जाता है। एंडोस्कोप में उपस्थित आप्टिकल तंतु का बंडल सिरे तक प्रकाश देता है।

प्रकाश संवेदी कोशिकाओं के सिरे के व्यूह पर एक छाया बनती है जिसे चार्ज कपल्ड डिवाइस (CCD) कहते हैं। एक विद्युत संकेत, विद्युत तार के जरिए नली में भेजा जाता है तथा उसे विडियो मॉनिटर पर बड़े चित्र के रूप उतार लिया जाता है। एंडोस्कोप का एक चैनल हवा तथा जल ले जाता है जिससे शल्य स्थान धोना तथा साफ करना संभव हो पाता है। सूक्ष्म सर्जिकल औजार, जैसे फोरसेप, जोकि समानांतर चल रहे तार से नियंत्रित होते हैं, उन्हें भी जरूरत पड़ने पर ऑपरेशन के स्थान



चित्र 26.11 अंतर्दर्शी यंत्र

पर ले जाया जा सकता है। एक वृहत् प्रकार के औजार को एंडोस्कोप से जोड़ा जा सकता है, दांत वाला बायोप्सी फोरसेप जांच के लिए ऊतक को निकाल लेता है। धातु स्नेयर उच्च आवृति विद्युत धारा का वाहन करती है जो कि रक्त वाहिका को जमा सकता है।

एंडोस्कोप का नाम शरीर के हिस्से के ऊपर रखा गया है जिसे शरीर के भीतर का दृश्य देखने के लिए बनाया गया है। उदाहरण के लिए, एक गैस्ट्रोस्कोप का उपयोग आमाशय का अल्सर जांचने के लिए किया जाता है। एक लैपरोस्कोप का उपयोग गर्भाशय के अंदर सिस्ट या संक्रमण तथा फेलोपियन नली एवं अंडाशय को जांचने में किया जाता है।

26.6 लेजर सूक्ष्मशल्य चिकित्सा (Laser Microsurgery)

ऊतकों पर लेजर का प्रभाव उसके तरंगदैर्घ्य पर निर्भर करता है। यह लेजर के प्रकार पर निर्भर करता है। उदाहरण के लिए, कार्बन डाइऑक्साइड लेजर से प्रकाश का तरंगदैर्घ्य 10.16 μm होता है; यह लक्ष्य कोशिकाओं में उपस्थित जल के द्वारा अवशोषित हो जाता है तथा इसकी ऊर्जा तेजी से ऊष्मा में

रूपांतरित हो जाती है। परिणामस्वरूप, लेजर प्रकाश का प्रभाव बहुत ही स्थानिक होता है। तंत्रिका शल्य चिकित्सक उस लेजर का उपयोग उन इन-ऑपरेबल मस्तिष्क ट्यूमर को निकालने में करते हैं जहां साथ के तंत्रिका ऊतकों में अल्प आघात होने से घातक परिणाम होते हैं। दृश्य आर्गन-ऑयन लेजर का ऊतकों पर मध्यवर्ती प्रभाव पड़ता है तथा यह बहुधा आंखों की शल्य चिकित्सा में उपयोग किया जाता है।

26.7 कैंसर जीवविज्ञान तथा उपचार (Cancer Biology and Therapy)

संक्रामक बीमारियों से मृत्यु दर में कमी हो रही है, आधुनिक दुनिया में कैंसर मृत्यु का एक प्रमुख कारण बन गया है। इसलिए, यह आवश्यक है कि कैंसर कोशिकाओं के जीव विज्ञान को समझा जाए। कोशिका के सामान्य व्यवहार को बनाए रखने वाली क्रिया विधि के नियंत्रणकारी क्रियाविधि में असामान्यता आने से कैंसर होता है। इस प्रकार, इस बीमारी को आण्विक तथा कोशिकाओं के स्तर पर समझना होगा।

किस प्रकार कैंसर कोशिकाएं सामान्य कोशिकाओं से अंतर दर्शाती हैं? (How Cancer Cells Differ from Normal Cells?)

कोशिका विभाजन एक उच्चस्तरीय नियंत्रित प्रक्रिया है, जिसमें ज्यादातर ऊतकों तथा अंगों में, नई कोशिकाओं के उत्पादन तथा कोशिका मृत्यु के बीच संतुलन बना रहता है। परिपक्व तथा संवर्धित सामान्य कोशिकाओं का एक निश्चित जीवन काल होता है। सामान्यतया वे कोशिका विभाजन तथा संवर्धन द्वारा उत्पादित नई कोशिकाओं द्वारा प्रतिस्थापित होती रहती हैं। सामान्यतया, नई कोशिकाओं का उत्पादन इस प्रकार नियंत्रित होता है कि एक नियत समय में एक नियत प्रकार की कोशिकाएं एक जटिल एक दूसरे पर आश्रित रहकर एक-दूसरे के प्रचुरोद्भवन को नियंत्रित करती हैं। कभी-कभी, कुछ कोशिकाएं जाग्रत हो सकती हैं जोकि, सामान्य वृद्धि नियंत्रण प्रक्रिया का अनुपालन नहीं करती हैं। ये कोशिकाएं, एक अनियंत्रित व्यवस्था के तहत फैला करती हैं तथा कोशिकाओं के क्लोन को जन्म देती हैं जो कि एक समुचित आकार तक फैलती हैं। यह वृद्धि **ट्यूमर** कहलाता है।

सभी ट्यूमर दुर्दम नहीं होते हैं। अकैंसरकारी ट्यूमर जिसे सामान्यतया **सूक्ष्म ट्यूमर** कहते हैं, वह अपनी उत्पत्ति के स्थान पर ही रहता है तथा वह अनिश्चितकालीन वृद्धि के प्रति सक्षम नहीं होता है; जैसे कि, मस्सा। जबकि, **कैंसरकारी या दुर्दम ट्यूमर** तेजी से वृद्धि करता है जिसमें वृद्धिकारी कोशिकाओं का जीवनकाल अनंत होता है, तथा प्रगतिकारी ढंग से आक्रमणकारी हो जाता है। मात्र दुर्दम ट्यूमर ही सही ढंग से कैंसर या नवद्रव्य होता है।

कैंसर कोशिकाओं के गुण (Properties of Cancer Cells)

कैंसर कोशिकाएं निम्नलिखित में से कुछ लक्षण दर्शाती हैं जोकि उन्हें सामान्य कोशिकाओं से भिन्न दर्शाता है। वे बाह्य कोशिकीय वृद्धि कारकों की घटती आवश्यकता के साथ अनियंत्रित फैलाव क्षमता दर्शाती हैं। वे नई जगहों को आक्रमण करने की क्षमता ग्रहण करती हैं जिस घटना को **मेटास्टैसिस** कहते हैं (चित्र 26.12)। कैंसर कोशिकाएं, कोशिका सतहों पर, कोशिकाद्रव्य में, तथा अपने जीन में कई प्रकार के परिवर्तन को दर्शाती हैं। इन लक्षणों के द्वारा कैंसर की पहचान होती है। कैंसर कोशिकाओं की वह क्षमता जिससे वह कोशिका मृत्यु का प्रतिरोध करती हैं इसके द्वारा ट्यूमर के विकास को बल मिलता है।

कैंसर के प्रकार (Types of Cancer)

कैंसर का वर्गीकरण उस मूल ऊतकों के आधार पर होता है जहां से वे उत्पन्न होते हैं। ज्यादातर कैंसर निम्नलिखित वर्गों में से एक में पाए जाते हैं:

कार्सिनोमा: इस प्रकार के कैंसर की उत्पत्ति एपीथेलीयल ऊतकों, जैसे कि त्वचा से या अंत: अंगों की एपीथेलीयल सतहों से या ग्रंथिकाओं से होती है (सभी ट्यूमर के लगभग 85 प्रतिशत)।

मेलानोमा: ये असीताणुओं की कैंसरनुमा वृद्धि है (त्वचा कोशिकाओं के एक प्रकार)।

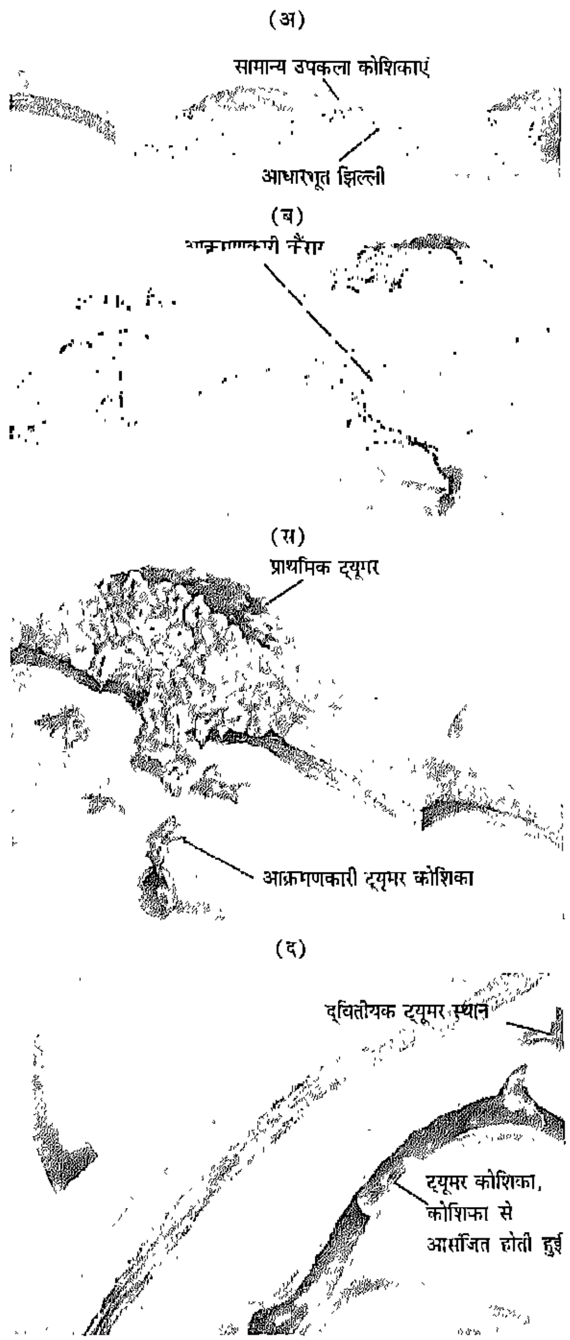
मांसार्बुद: ये ट्यूमर मनुष्य में बहुत ही विरल होते हैं (सभी ट्यूमर के लगभग 1 प्रतिशत)। ये मीजोडर्मल मूल के ऊतकों से बनते हैं, जैसे कि, अस्थि, वसा तथा उपास्थि।

ल्यूकेमिया तथा लींफोमास: यह रक्तोत्पादक कोशिकाओं के ट्यूमर हैं।

कैंसर के कारण (Causes of Cancer)

रासायनिक या भौतिक कारक जो कैंसर उत्पन्न करते हैं उसे कैंसरजन कहते हैं। उनके कार्य करने की विधि के आधार पर कैंसरजन को निम्नलिखित मुख्य वर्गों में बांटा जाता है:

(i) वे कारक जो कि जेनेटिक पदार्थों (DNA) में परिवर्तन उत्पन्न करता है, जिससे **अर्बुदीय रूपांतरण** होता है इससे कैंसर होता है। जैसेकि, विभिन्न प्रकार के विकिरणों तथा रसायनों से।



चित्र 26.12 कैंसर विकास की अवस्थाएं (अ) से (द) तक। प्राथमिक ट्यूमर मेटास्टैटिक हो सकता है तथा द्वितीयक ट्यूमर में परिवर्तित हो जाता है।

(ii) वे कारक जो कोशिकाओं के प्रचुरोद्भवन को बढ़ावा देते हैं, जो कि पहले से ही उस जीनेटिक परिवर्तन की दौड़ से गुजरे हों जिसमें अर्बुदीय रूपांतरण हो चुका हो। ये कारक **ट्यूमर अग्रवर्तनी** कहलाते हैं, जैसे कि, कुछ वृद्धि कारक तथा हॉर्मोन।

(iii) कैंसर उत्पन्न करने वाले DNA तथा RNA विषाणुओं (**ट्यूमर विषाणुओं**) को अर्बुदीय रूपांतरण के लिए दर्शाया जा चुका है।

कैंसर तथा जीन (Cancer and Genes)

सामान्य कोशिका वृद्धि कुछ क्रांतिक नियंत्रणकारी जीनों के वश में रहती है, जो कि, कोशिका प्रचुरोद्भवन विभेदन तथा जीविता को नियंत्रित करती हैं। इन जीनों में परिवर्तन के कारण अर्बुदीय रूपांतरता हो जाती है। कैंसरकारी जीन को निम्नलिखित तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है:

(i) वे जीन जो कोशिकीय प्रचुरोद्भवन को प्रेरित करता है। जैसे, वृद्धि कारकों को संकेतिक करने वाला जीन, वृद्धि कारक ग्राहीयों, ट्रांस्क्रिप्शन कारकों इत्यादि।

(ii) वे जीन जो कोशिकीय प्रचुरोद्भवन को अवरूद्ध करते हैं (ट्यूमर रोकने वाला जीन)।

(iii) वे जीन जो निश्चितकारी कोशिका मृत्यु को नियंत्रित करते हैं।

ये सभी जीन सामान्य वृद्धि में संलग्न होते हैं। कैंसर इन जीनों के उत्परिवर्ती एलील के द्वारा होता हैं, जिसके उत्पाद सामान्य नियंत्रणकारी संकेतों का प्रतिवेदन नहीं करते हैं। परिणामस्वरूप, उत्परिवर्तित कोशिकाएं अनियंत्रित तरीके से प्रचुरोद्भवित होती हैं।

कैंसर किस प्रकार फैलता है? (How Cancer Spreads)

ट्यूमर वृद्धि एक स्थान में प्रारंभ होती है, जहां परिवर्तित कोशिका में प्रचुरोद्भवन होता है, जिससे प्रचुरोद्भवित कोशिकाओं का एक क्लोन बनता है। इस अत्यधिक प्रचुरोद्भवन के द्वारा कोशिकाओं के एक मास (mass) का निर्माण होता है, प्रारंभिक तौर पर उसे सूक्ष्म ट्यूमर कहते हैं। ट्यूमर कोशिकाएं, रक्त वाहिनियों में प्रवेश करती हैं तथा द्वितीयक स्थानों पर फैलती हैं, उन ट्यूमर कोशिकाओं को **मैलीग्नैंट कोशिकाएं** कहते हैं।

पहचान तथा निदान (Detection and Diagnosis)

कैंसर निदान, मैलिग्नैंट कोशिकाओं के अभिलक्षणिक हिस्टोलोजिकल लक्षणों पर आधारित है। असामान्य WBC_S तथा

रक्त मज्जा बायोप्सी के लिए रक्त परीक्षण भी किया जाता है। आंतरिक अंगों, जैसेकि, वृक्क तथा अग्नाशय के कैंसर के लिए असंक्रमक तकनीकी, जैसेकि X -किरणों (इंजेक्टेड रंजों के उपयोग से)। CT स्कैन तथा MRI स्कैन का उपयोग कैंसर की पहचान के लिए किया जाता है। आधुनिक तकनीक द्वारा कैंसर कोशिकाओं में आणविक परिवर्तनों को मॉनिटर द्वारा पहचान लिया जाता है। इसके द्वारा कैंसर का आरंभिक अवस्था में ही निदान संभव होता है। कैंसर-विशिष्ट प्रतिजन के विरूद्ध मोनोक्लोनल प्रतिरक्षियों को उपयुक्त रेडियो समस्थानिकों के साथ उपयोग किया जाता है। तब, इन प्रतिरक्षियों का उपयोग कैंसर की पहचान के लिए किया जाता है।

कैंसर के उपचार (Treatment of Cancer)

कैंसर के उपचार के लिए विभिन्न उपायों को अपनाया गया है। प्रत्येक कैंसर के उद्‌भव के आधार पर चिकित्सीय उपक्रम भिन्नता दर्शाता है। कुछ सामान्य उपक्रम हैं : (i) शल्यचिकित्सा, (ii) रेडियो उपचार, (iii) रासायनी उपचार तथा (iv) प्रतिरक्षण उपचार। इन उपचारों को या तो एकल या योग्यतम अन्य उपचारों के साथ उपयोग किया जा सकता है।

शल्य चिकित्सा : ट्यूमर मांस की शल्यचिकित्सा द्वारा काट-छांट, कैंसर के उपचार का सबसे सरल तरीका है। जबकि, शल्य-चिकित्सा यह सुनिश्चित नहीं करती है कि सभी कैंसर कोशिकाओं को हटा लिया गया है। हालांकि, सभी ट्यूमर शल्य चिकित्सा द्वार काट-छांट योग्य नहीं होते हैं। शल्य चिकित्सा द्वारा ट्यूमर भार को घटाना लाभदायक होता है, जिससे कि दूसरे चिकित्सीय उपक्रमों को करने में आसानी होती है।

विकिरण उपचार : इस विधि द्वारा ट्यूमर पुंज में कोशिकाओं का जानलेवा तरीके से विकिरणीकरण किया जाता है। हालांकि, इस विधि से ट्यूमर पुंज के आस-पास के कई ऊतकों को काफी नुकसान पहुंचता है।

रासायनी उपचार : इस विधि में कई रासायनिक उपचार वाली औषधियों का उपयोग ट्यूमर कोशिकाओं को नष्ट करने में किया जाता है। कुछ इस प्रकार की औषधियां विशिष्ट रूप से ट्यूमर कोशिकाओं को नष्ट कर सकती हैं। यद्‌यपि, उनमें से अधिकतर के कई पार्श्व - प्रभाव होते हैं।

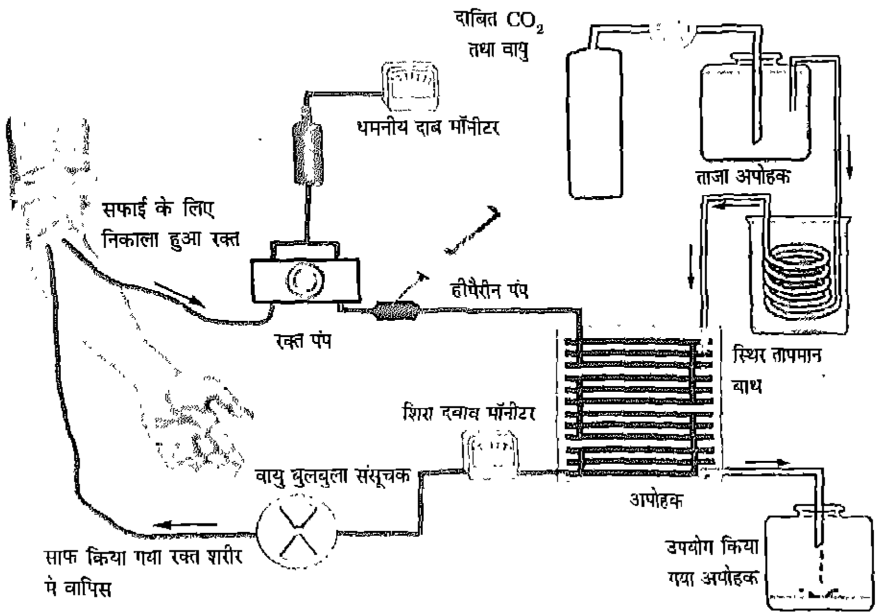
प्रतिरक्षण उपचार : कैंसर उपचार के वर्तमान उपायों में से एक है प्राकृतिक कैंसर- विरोधी असंक्राम्य सुरक्षा क्रिया विधि का संवर्धन। मोनोक्लोनल प्रतिरक्षियों को कैंसर उपचार के लिए विभिन्न तरीकों से उपयोग में लाया गया है; जैसे कि, रेडियो प्रतिरक्षण उपचार इत्यादि। कैंसर टीका विकसित करने के लिए शोध प्रगति में है।

26.8 *प्रत्यारोपण* (Transplantation)

इसके द्वारा क्षतिग्रस्त या रोग ग्रासित ऊतकों या अंगों, जैसे कि, त्वचा, कोर्निया, हृदय, फेफड़ा, वृक्क, यकृत, रक्त मज्जा, रक्त तथा अग्नाशयों का प्रत्यारोपण किया जाता है। अंग प्रत्यारोपण की सफलता ग्राही तथा दाता ऊतकों के **प्रमुख ऊतक संयोज्यता यौगिक** (MHC) या **मानव लसिकाभ प्रतिजन** (HLA) यौगिक लोसी पर मुख्य रूप से निर्भर करती है (अध्याय 25 देखें)। सबसे सफल प्रत्यारोपण, जिसमें स्वयं के अपने ऊतकों को शरीर के दूसरे भागों में रोपित किया जाता है। **समरोपण** वैसे प्रत्यारोपण हैं जिसमें दाता तथा ग्राही दोनों ही आनुवंशिक रूप से समजात होते हैं। जैसे कि, अभिन्न यमज के बीच रोपण। **एलोग्राफ्ट** (एलोजेनिक ग्राफ्ट) ऐसा प्रत्यारोपण है जिसमें प्रत्यारोपण एक ही जाति के बीच होता है लेकिन जिसमें MHC/HLA एलील भिन्न होता है। एलोग्राफ्ट की सफलता MHC/HLA एलील के सुमेलन पर तथा इम्यूनोसप्रेसिव औषधि, जैसे कि, साइक्लोस्पोरीन A का उपयोग ग्राफ्ट अस्वीकृति को रोकने के लिए उत्तरदायी असंक्राम्य क्रिया विधि के सफल प्रयोग पर निर्भर करता है। यद्‌यपि, असंक्राम्य सप्रेसिव उपचार को बंद करने से ग्राफ्ट की अस्वीकृति विभिन्न जातियों के प्राणियों के बीच प्रत्यारोपण होता है। इस प्रकार का प्रत्यारोपण उस समय किया जाता है जब मानव कलम उपलब्ध नहीं होता है।

26.9 हीमो अपोहन (Haemodialysis)

यदि वृक्क रोगों से या आघात से इस प्रकार ग्रासित है कि उसके द्वारा नाइट्रोजनयुक्त अपशिष्टों को उत्सर्जित करने में तथा प्लैज्मा के PH , इलेक्ट्रोलाइट स्तर इत्यादि को नियंत्रित रखने में अक्षम है तो रक्त को निश्चित रूप से कृत्रिम तरीके द्वारा साफ किया जाना चाहिए। यह **हीमो अपोहन** कहलाता है (चित्र 26.13)। अपोहन का तात्पर्य है कि बड़े कणों को छोटे कणों से वरणात्मक पारगम्य झिल्ली के उपयोग द्वारा अलग करना। अपोहन के लिए सबसे उपयुक्त उपकरण है कृत्रिम वृक्क यंत्र। एक नली द्वारा इस यंत्र को मरीज की रेडियल धमनी से जोड़ा जाता है। रक्त प्रवाह इन नलिकाओं से होता है तथा अपशिष्ट उत्पाद, जैसे कि, यूरिया तथा सीयेटीनीन, रक्त से घिरे हुए अपोहन घोल में चला जाता है। अपोहन नलिकाओं से गुजरने के पश्चात्, रक्त मरीज के शरीर में पुन: वापस आ जाता है। इस प्रकार, रक्त का शोधन एक मानक स्तर पर होता है।



चित्र 26.13 हीमो अपोहन संयंत्र

26.10 प्रोस्थेसिस (Prosthesis)

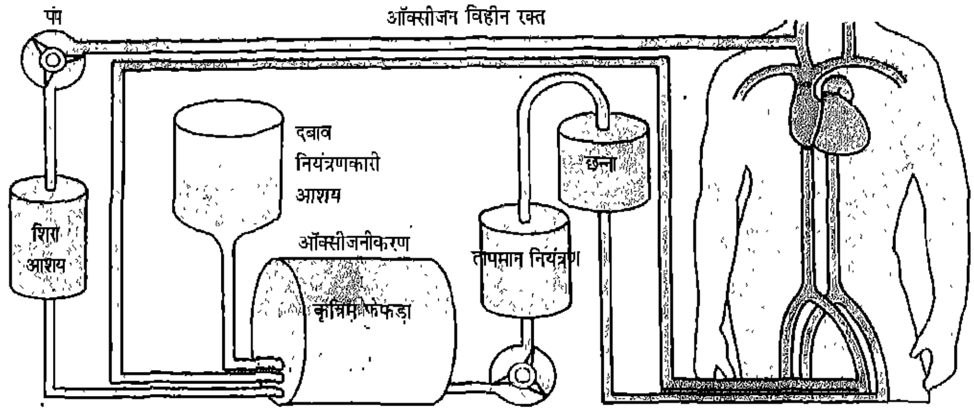
प्रोस्थेटिक्स, आधुनिक शल्य चिकित्सा की वह शाखा है, जो कि प्रोस्थेसिस के बारे में अध्ययन करती है, जैसे कि, शरीर के अंदर शरीर के अंगों के लिए एक कृत्रिम प्रतिस्थापी को अंतरोपित करना। आंतरिक बदलाव है - इंट्रा-ऑकुलर दर्पण का बाकी आंख के साथ उसके रंग तथा बनावट के अनुरूप निर्मित करना, नाक अंतरोपन द्वारा अंगराग की पुनराकृति देने में, कान के अंदर सुनने की इलेक्ट्रॉनिक मशीन डालना इत्यादि। बाह्य प्रोस्थसिस को उदाहरण के तौर पर उन बैक्टीरियों के द्वारा जिनका अंगोच्छेदन हुआ है, उनके कृत्रिम बांह या पैर के द्वारा उद्धृत किया जा सकता है। डा. पी. के. सेठ द्वारा वल्कनीकृत रबड़, काष्ठ तथा एल्यूमिनियम से सफलतम जयपुर पैर निर्माण एक उत्कृष्ट उपलब्धि है (चित्र 26.14)।



चित्र 26.14 प्रॉस्थेटिक जयपुर पांव

हृदय-फेफड़ा यंत्र (Heart-Lung Machine)

जब हृदय को खुले हृदय शल्य-चिकित्सा के लिए खोला जाता है तो संचरण तथा श्वसन क्रिया की हृदय-फेफड़ा यंत्र द्वारा देखभाल की जाती है। हृदय की क्रिया का निष्पादन एक बेलन पंप द्वारा होता है। जबकि, रक्त का ऑक्सीजनेशन एक ऑक्सीजनेटर द्वारा किया जाता है, जो कि कृत्रिम फेफड़े का कार्य करता है। यह यंत्र हृदय के साथ-साथ फेफड़े का कार्य पूर्णतः संपादित



चित्र 26.15 हृदय-फेफड़ा संयंत्र

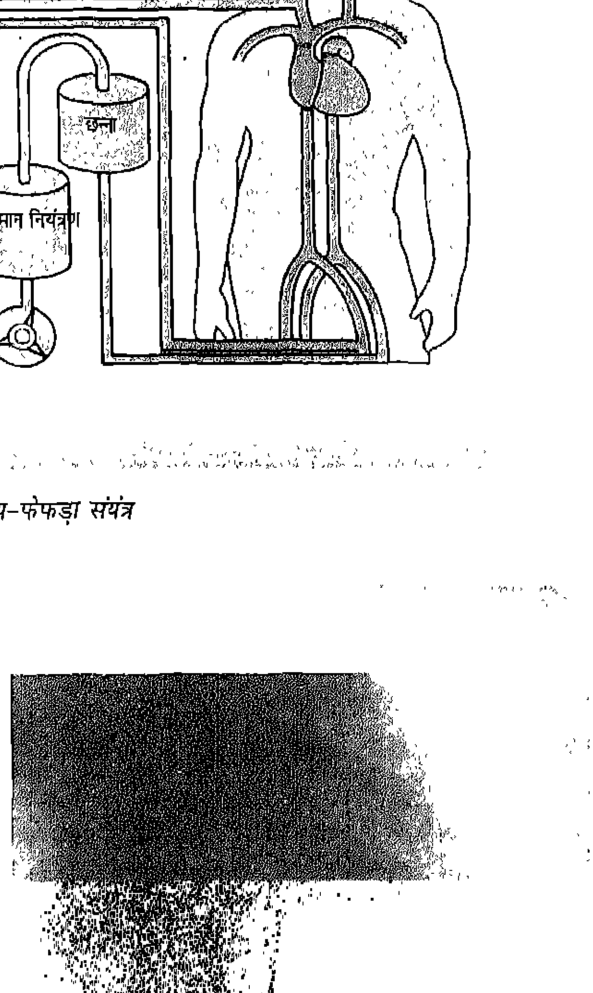
करता है तथा रक्त, बिना हृदय से गुजरे हुए शरीर में संचारित होता है। इस प्रकार यह शल्य चिकित्सक को जटिल कार्य विधि करने में आसानी प्रदान करता है (चित्र 26.15)।

प्रोस्थेटिक हृदयी गति-प्रेरक (Prosthetic Cardiac Pacemaker)

हृदयी गति-प्रेरक द्वारा शरीर के अंदर एक छोटे इलेक्ट्रॉनिक परिपथिकी को डालकर, प्राकृतिक वैद्युत स्पंदन को प्रतिस्थापित किया जाता है (चित्र 26.16)। लिथियम कंपोजीट बैटरी लगभग 10 वर्ष तक शक्ति प्रदान करती है। यह हृदय में बारंबार वैद्युत आवेग का संचार इस प्रकार करती है कि हृदय गति एक उपयुक्त स्तर पर बनी रहती है। अगर हृदय सामान्य रूप से कार्य करने लगे तो यांत्रिक गति- प्रेरक अवरुद्ध हो जाता है।

डीफाइब्रीलेटर (Defibrillator)

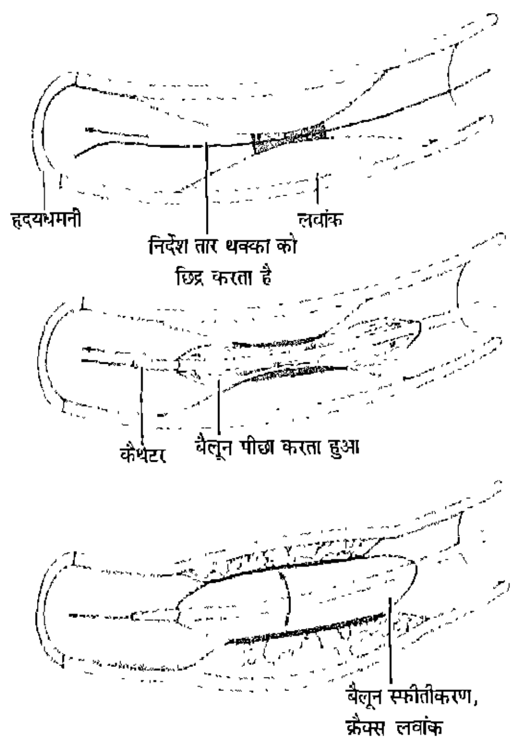
रेशकीयन, हृदय मांसपेशियों की असामान्य तथा तुल्यकाली संकुचन है इसलिए हृदय पंपिंग की प्रभाविता घटती है या पूर्णतः समाप्त हो जाती है। परिकोष्ठी रेशकीयन, मायो हृदयी इनफार्क्शन में, तथा तीव्र तथा दीर्घकालीन रूमेटिक हृदय रोग में हो सकता है। एक तीव्र वैद्युत धारा का एक अल्प समय के लिए वक्ष से होकर गुजरना निलय रेशकीयन को रोक सकता है। इसे डी रेशकीयन कहते हैं। इस प्रक्रिया से वैद्युत झटका बड़े पैदल युक्त इलेक्ट्रॉड के द्वारा वक्ष की त्वचा को दबाव डाल कर निष्पादित होता है।



चित्र 26.16 प्रोस्थेटिक हृदयी गति-प्रेरक

अंतःमहाधमनी बैलून पंप (Angioplasty)

एंजिओप्लास्टी का उपयोग हृदय वाहिनियों को साफ करने के लिए घंटों या दिनों तक किया जाता है, जब तक कि मरीज का अपना हृदय उसका सामान्य कार्य करने के लिए सक्षम नहीं हो जाता है। एक पॉलीयूरीथेन बैलून कैथेटर के ऊपर स्थित अंतरायिक स्फीत को अवरोही वक्षीय महाधमनी के अंदर प्रवेश कराया जाता है (चित्र 26.17)। यह एक नली द्वारा एक बाहरी पंप के साथ जुड़ा रहता है, जो कि बैलून को तालबद्ध तरीके से स्फीत तथा अपस्फीत करता है। निलय अनुशिथिलन के प्रारंभ में स्फीतीकरण की क्रिया रक्त दबाव को तथा हृदय पेरफ्यूजन को संवर्धित करता है उसके बाद अपस्फीती, ठीक अगले निलय प्रकुंचन के पहले, बाएं निलय के लिए यह आसान हो जाता है कि रक्त को बाहर निकाले। एंजियोप्लास्टी अपचार का प्राथमिक लक्ष्य है माइकोकार्डियल ऑक्सीजन मांग को घटाना।



चित्र 26.17 बैलून कैथेटेराइजेसन

26.11 प्रतिस्थापन शल्य चिकित्सा (Replacement Surgery)

इस प्रकार की शल्य-चिकित्सा का उपयोग एक नष्ट हुए या रोग ग्रसित अंगों या इसके भागों को हटाने के बाद प्रोस्थेसीस को प्रतिस्थापित करने में किया जाता है। ये अंग या तो हिप या कंधा या कोहनी जोड़ या घुटना हो सकता है (चित्र 26.18)। इसके बाद, धातु अंतरोपित को जैविक तरीके से इच्छित स्थान पर स्थिरीकृत किया जाता है।

संवहनी कलम (Vascular Graft)

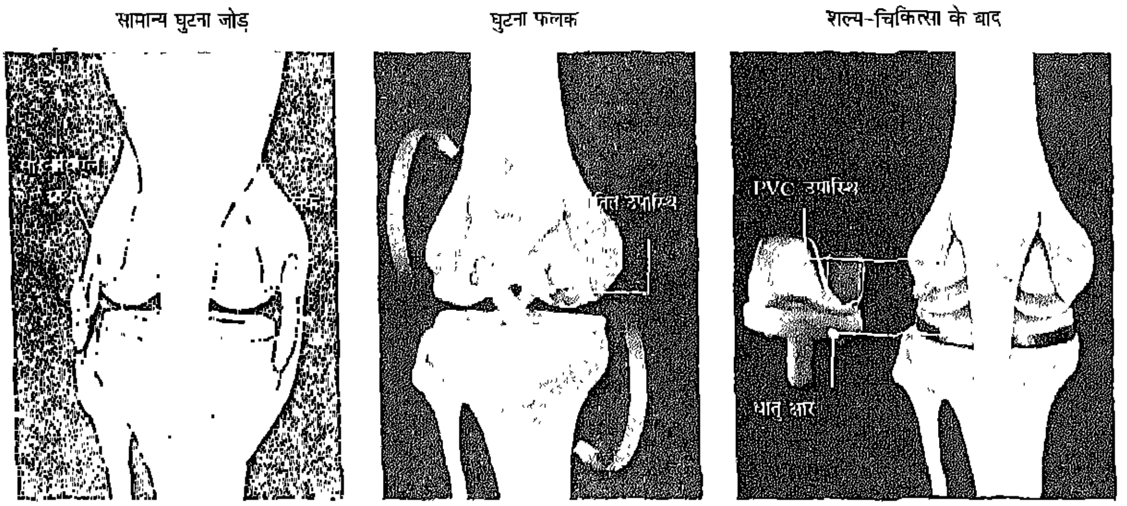
मृत्यु का सबसे प्रमुख कारण है किरीटीय घनास्रता (हृदय प्रहार), स्ट्रोक तथा कैंसर। किरीटीय घनास्रता के उपचार के लिए, क्षतिग्रस्त हुई धमनियों को पुनः निर्मित किया जाता है। यह सामान्यतया एक कृत्रिम छिद्रयुक्त नली जो कि टेफ्लॉन या बुने हुए डैक्रॉन से बनी होती है के द्वारा रोग ग्रसित धमनी या इसके भागों को प्रतिस्थापित किया जाता है। एक विशेष विधि जिसे स्टैंट (Stent) कहते हैं। यह स्टेनलेस इस्पात की बनी होती है एवं स्प्रिंग के छल्ले जैसी होती है। इसे प्लास्टिक तलों (eatheter) की सहायता से धमनी में स्थापित कर दिया जाता है। इससे हृदय की मांसपेशियों में आवश्यकतानुसार रक्त संचरण होता रहता है।

किरीटीय धमनी बाइपास ग्राफ्टींग (Coronary Artery Bypass Grafting-CABG)

यह हृदय में रक्त पूर्ति को बढ़ाने के लिए एक तरीका है। इस शल्य-चिकित्सा पद्धति के द्वारा, शरीर के दूसरे भाग से एक रक्त वाहिका का उपयोग किरीटीय धमनी के बंद हुए क्षेत्रों को बइपास करने के लिए किया जाता है। सामान्यतया उपयोग में लाए जाने वाली दो वाहिकाएं हैं-सेफेनस वीन जो कि पैर में रहता है तथा आंतरिक मैमरी धमनी जो कि वक्ष से ली जाती है। एक विशिष्ट उपकरण, जिसे स्टैंट कहते हैं, जोकि स्टैनलेस स्टील से बना होता है तथा जो एक स्प्रिंग क्वाइल जैसा दिखता है, उसे भी धमनी में एक कैथेटर (प्लास्टिक नली) के द्वारा स्थायी रूप से स्थानगत किया जाता है। इसके द्वारा धमनी से हृदय मांसपेशियों को समुचित रक्त संचरण जारी रहता है।

26.12 क्रायो शल्य-चिकित्सा (Cryosurgery)

क्रायो शल्य-चिकित्सा में जैसा कि नाम से उद्धृत है, इसमें ऊतकों को नष्ट करने के लिए हिमकारी ताप का उपयोग किया जाता है। तरल नाइट्रोजन, जिसका क्वथनांक 196^{0}C होता है, उसे ऊतकों पर या तो सीधा फैलाया जाता है, जैसे कि मस्से के उपचार में, या एक खाली प्रोब के द्वारा जो कि ऊतकों में प्रवेश कराया जाता है। कैंसर जनी ट्यूमर को इस प्रकार भी नष्ट किया जाता है।



चित्र 26.18 घुटना जोड़ प्रतिस्थापन शल्य-चिकित्सा

26.13 प्रतिरक्षी उपचार (Immunotherapy)

प्रतिरक्षी उपचार एक ऐसी उपचार प्रक्रिया है जिसमें असंक्राम्य प्रतिवेदन की अवरुद्धता या संवर्धन शामिल है तथा जिसके द्वारा चिकित्सीय प्रभाव प्राप्त किया जाता है। प्रतिरक्षी प्रतिवेदन का जोड़-तोड़, इसमें संलग्न विभिन्न अघटकों के द्वारा होता है। साइटोकाइन एक प्राकृतिक असंक्राम्य मॉड्यूलेटर है जो कि एक प्रकार की प्रतिरक्षण कोशिकाओं को उत्सर्जित करता है तथा जो दूसरे प्रकार की प्रतिरक्षण कोशिकाओं के एलीसीट (elicit) प्रतिवेदन को दर्शाता है, ये हैं इंटरल्यूकिंस (Interleukins), इंटरफेरॉन तथा ट्यूमर ऊतकक्षयकारक।

असंक्राम्यमोड्यूलेटर मुख्य रूप से ऐसी औषधि हैं जो कि मरीज के प्रतिरक्षण प्रतिवेदन की गतिविधियों को मोड्यूलेट करती है या तो ऊपरगामी या निम्न गामी तरीके से तब तक, जब तक कि चिकित्सीय प्रभाव एक इच्छित स्तर तक न पहुंच जाए। असंक्राम्यमोड्यूलेशन के दो सामान्य क्लीनिकल तरीके हैं :

(i) इम्यूनो पोटेंशिएशन उपचार : इसमें इम्यूनोपोटेंशिएटिंग कारकों, जैसे पूर्व निर्मित प्रतिरक्षियों या इम्यूनोपोटेंशिएटिंग औषधियों का उपयोग सम्मिलित है। इस रणनीति द्वारा प्रतिरक्षण प्रतिवेदन संवर्धित होता है।

(ii) इम्यूनो सप्रेसीव उपचार : जब मरीज का प्रतिरक्षण तंत्र उसके अपने शरीर के विरुद्ध सक्रिय हो जाता है, जैसे कि, स्वप्रतिरक्षण रोग, तो इस प्रतिवेदन को विशिष्ट उपचारों के द्वारा दबाया जाता हैं, ये है कोशिका विभाजन, साइटोकाइन उत्पादन, इत्यादि को अवरुद्ध करने वाले कारक।

26.14 हॉर्मोन उपचार (Hormone Therapy)

हॉर्मोन अवरोधी तथा हॉर्मोन पूरक उपचार का उपयोग विभिन्न रोगों को रोकने के लिए किया जाता है, जैसे कि, हॉर्मोनल न्यूनता या असंतुलन वाले रोगों में। रजोनिवृत्ति की कई जटिलताओं के लिए **इस्ट्रॉजेन प्रतिस्थापन** उपचार सबसे ज्यादा निर्धारित चिकित्सा है। इस प्रकार, प्रोजेस्टीन, इस्ट्रॉजेन के साथ लिया जाता है। लेकिन ऐसे मरीज जिनके गर्भाशय को शल्य-चिकित्सा द्वारा निकाला जा चुका हो, उन्हें मात्र इस्ट्रॉजेन ही दिया जा सकता है।

26.15 जीन उपचार (Gene Therapy)

जीन उपचार में एक सामान्य क्रियात्मक जीन को ऐसी कोशिकाओं में प्रविष्ट कराया जाता है जिसमें जीन के दोषपूर्ण एलील होते हैं, ताकि अव्यवस्था को ठीक किया जा सके। जीन को एक विशिष्ट रूप से निर्मित विषाणु वाहक के अंदर प्रविष्ट कराया जाता है जिसे उसके बाद, कायिक कोशिकाओं में प्रविष्ट कराया जाता है। वैकल्पिक तौर पर, इसे कायिक कोशिकाओं में या तो प्रोटीन-DNA यौगिक के रूप में, या नग्न DNA के रूप में प्रविष्ट कराया जाता है। सामान्यतया, प्रविष्ट कराया गया क्रियात्मक जीन कोशिका में उपस्थित दोषयुक्त जीन के अतिरिक्त होता है। वैकल्पिक तौर पर यह दोषपूर्ण जीन को प्रतिस्थापित कर सकता है। यह सबसे ज्यादा आवश्यक है लेकिन यह काफी समस्यापूर्ण भी है। जीन उपचार का उपयोग कुछ रोगों को ठीक करने के लिए किया जाता है, जैसे कि, संयुक्त प्रतिरक्षण न्यूनता सिंड्रोम (SCID) जिसमें कई स्तरों की सफलता प्राप्त हुई है। कैंसर,

सारणी 26.1 : कुछ महत्त्वपूर्ण **STD** तथा उनके जांचने के लिए सामान्य तकनीकी

STD	उत्पन्न करने वाले कारक	जांच तकनीकी
क्लैमेडिया	क्लैमेडिया ट्रेकोमैटिस	रोग लक्षण, उत्सर्ज का ग्राम-अभिरंजन, प्रतिजन जांच, न्यूक्लिक अम्ल संकरण
गोनोरीया	नाइसेरीया गोनोरीया	उत्सर्ग का ग्राम-अभिरंजन, संवर्ध
टाइकोमोनिएसिस	टाइकोमोनास बैजीनैलिस	सूक्ष्मदर्शी परीक्षण, संवर्ध
जेनीटल हर्प्स	हर्प्स सिंप्लैक्स विषाणु	रोग लक्षण, प्रतिजन जांच, PCR
सिफीलीस	ट्रीपोनीमा पैलीडम	प्रतिरक्षी जांच, जैसे, VDRL (वेनेरीयल रोग अनुसंधान प्रयोगशाला)
चैनक्रॉइड	हीमोफीलस ड्यूक्री	रोग लक्षण, संवर्ध
जनन मस्सा	मानव पैपिलोमा विषाणु	रोग लक्षण, प्रतिरक्षी जांच, संवर्ध, DNA संकरण

हृदय गति रुकना (Heart Attacks), इत्यादि जैसे गंभीर रोगों से लड़ने के लिए जीन उपचार का उपयोग करने का प्रयास किया जा रहा है।

जीन उपचार अभी भी एक प्रायोगिक स्तर पर है। इसका उपयोग सिर्फ वैसे ही रोगों में हो सकता है जहां वह जीन, जो रोग में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है अगर उसे पहचाना जा चुका हो तथा उसका क्लोन बनाया गया है।

26.16 एच.आई.वी. संक्रमण की जांच (Detection of HIV Infection)

सामान्यतया व्यक्ति में HIV संक्रमण के लक्षण विषाणु के संपर्क में आने से इसके 6 सप्ताहों के अंदर प्रकट हो जाते हैं। लेकिन कुछ व्यक्तियों में, विषाणु लंबी अवधि तक सुसुप्तावस्था में रहता है (10 वर्षों तक या) तब तक, जब तक कि पूर्ण प्रस्फुरित AIDS के लक्षण दिखने लायक न हो जाएं। संक्रमण में बुखार, सुस्ती, ग्रसनीशोथ, मचली, सिर दर्द, रैश, इत्यादि हैं।

AIDS से ग्रसित व्यक्ति में T सहायक कोशिकाओं के ह्रास होने से प्रतिरक्षण तंत्र बहुत ही कमजोर हो जाता है। ऐसे व्यक्तियों में **अवसरवादी संक्रमण** होता है; जैसे कि, वैसे कवक, बैक्टीरिया, तथा विषाणुओं द्वारा संक्रमण होता है जो कि एक सामान्य प्रतिरक्षण तंत्र युक्त व्यक्ति में उसके प्रति प्रतिरोध होता है। इस प्रकार, ऐसे व्यक्ति जो अवसरवादी संक्रमण के प्रति रुझान रखते हैं, वे HIV द्वारा संक्रमित होने की सुग्राहिता दर्शाते हैं, विशेषकर, अगर T सहायक कोशिकाओं की संख्या 200 ml या उस से कम हो तो।

HIV द्वारा संक्रमण की जांच सामान्यतया ELISA द्वारा की जाती है। संभावित मरीजों के सीरम में HIV के प्रति विशिष्ट प्रतिरक्षियों की उपस्थिति की जांच HIV प्रोटीन से तैयार निर्मित द्वारा ELISA में होती है। सकारात्मक प्रमाणों की पुष्टि के लिए उसका वैस्टर्न ब्लौट परीक्षण दौड़ से किया जाता है। वैस्टर्न ब्लौट आमापन में, HIV प्रोटीन के निर्मिति का विद्युत-कण संचलन किया जाता है। उसके बाद प्रोटीन को जेल (Gel) से स्थानांतरित किया जाता है तथा उसे नाइट्रो सेल्यूलोज झिल्ली पर बद्ध किया जाता है।

इस झिल्ली को ELISA सकारात्मक मरीज के सीरम में उष्मायित किया जाता है तथा एक लैबैल किए गए प्रतिरोधी प्रतिरक्षियों द्वारा प्रतिजन-प्रतिरक्षी के बीच की पारस्परिक क्रियाओं की जांच की जाती है (ELISA की तरह)। यह आमापन विशिष्ट HIV प्रोटीन पर सूचना प्रदान करता है जिसके लिए मरीज के सीरम में प्रतिरक्षी उपस्थित रहता है। क्लीनिकल लक्षणों की उपस्थिति या अनुपस्थिति दोनों ही परिस्थितियों में विषाणुओं द्वारा संक्रमण के 2 से 12 सप्ताहों के बाद HIV के विरुद्ध प्रतिरक्षी उपस्थित होता है। इसके अतिरिक्त, मरीजों के रक्त में विषाणुओं के जीनोम की उपस्थिति की जांच के लिए उपयुक्त तकनीकी का उपयोग किया जा सकता है।

26.17 लैंगिक संचरित रोग (STDs) की जांच (Detection of Sexualy Transmitted Diseases)

मनुष्य, AIDS के अतिरिक्त लगभग 30 से ज्यादा विभिन्न लैंगिक संचरित रोगों (STDs) से ग्रसित रहता है। कुछ महत्त्वपूर्ण STDs को सारणी 26.1 में सूचिबद्ध किया गया है। STDs बैक्टीरिया, प्रोटोजोआ तथा विषाणुओं द्वारा होता है। इस प्रकार,

उनकी जांच प्रारंभिक तौर पर रोग करने वाले जीवों तथा उसके लक्षणों इत्यादि पर निर्भर करती है। क्लीनिकल लक्षणों से STD के प्रकार का प्रारंभिक संकेत उपलब्ध होता है। पुष्टिकारक जांच है- संवर्ध, सूक्ष्मदर्शीय परीक्षण (विशिष्ट अभिरंजन द्वारा)। विशिष्ट प्रतिजन प्रतिरक्षी की जांच (ELISA या कुछ अन्य विधियों द्वारा), DNA संकरण तथा पॉलीमेरेज शृंखला प्रतिक्रिया (PCR) । संवर्धन के द्वारा रोग उत्पन्न करने वाले जीनों का पृथक्करण परीक्षण तथा पहचान संभव होता है। DNA संकरण, लैबैल्ड ओलीगो न्यूक्लीयोटाइड (छोटा पॉलीन्यूक्लीयोटाइड कड़ियों) पर आधारित है जो कि उक्त रोगाणु के जीनोम की विशिष्ट कड़ी के प्रति पूरक होता है। रोगाणु विशेष के जीनोम के एक कड़ी को बृहत् करने के लिए PCR एक उच्चस्तरीय विशिष्टता वाले प्राइमर का उपयोग करता है जिससे कि इसकी निश्चित रूप से जांच तथा पहचान संभव हो सके।

सारांश

असंक्रामक प्रतिबिंबन विधि, जैसे कि, अभिकलित टोमोग्राफी (CT), चुंबकीय अनुनाद प्रतिबिंबन (MRI), स्थानगत उत्सर्जन टोमोग्राफी (PET), अल्ट्रासाउंड सोनोग्राफी, रंगीन डॉप्लर, अंकीय सब्सट्रैक्शन एंजीयोग्राफी (DSA) द्वारा शरीर के भागों का 2D या 3D चित्रीय या ग्राफिक प्रतिनिधित्व प्रस्तुत होता है। इनसे फ़िजियोग्राफों द्वारा जैसे कि इलेक्ट्रोकार्डियोग्राम (ECG) तथा इलेक्ट्रोइनसेफेलोग्राफ (EEG) द्वारा अधिक जानकारी प्राप्त की जाती है जिससे बीमारियों की कार्यात्मक स्थिति तथा जांच में मदद मिलती है।

संक्रामक प्रक्रियाओं, जैसे कि अंतर्मुखी से चिकित्सक को प्रत्यक्ष तथा/या परोक्ष रूप से शरीर के भागों, जैसे कि ब्रोंकस, स्टौमैक, कॉलोन, मुत्राशय, इत्यादि को देखने में सहायता होती है। ELISA तथा वैस्टर्न ब्लौट तकनीकी सहित कई कैंसर तथा AIDS इत्यादि उत्पन्न करने वाले रोगाणुओं की जांच के लिए रीकॉबीनेंट DNA तथा संकरणीय तकनीकी, साथ ही ELISA तथा वैस्टर्न ब्लौट तकनीकी उपलब्ध हैं। कैंसरोत्पत्ति के आणविक आधार को समझने के लिए समुचित प्रगति संभव हो पाई है। नए उपचार जैसे कि चुने हुए लक्षित विकिरण तथा शल्य चिकित्सात्मक विधि के द्वारा रोगियों की पीड़ा को कम करने तथा उनके जीविता को बढ़ाने में मदद मिलती है।
अंगों, ऊतकों या यहां तक की कोशिकाओं का प्रत्यारोपण अब संभव हो पाया है क्योंकि, शल्यचिकित्सा में उत्कृष्टता तथा प्रतिरक्षादमन औषधि के उपयोग द्वारा अस्वीकारिता की समस्या को हल कर लिया जाता है। जैव पदार्थ विज्ञान तथा जैवमेडिकल प्रौद्योगिकी में प्रगति होने से मेडिकल उपकरणों का व्यूह दिया है जैसेकि अंतरोप में बाह्य तथा आंतरिक प्रॉस्थेटिक।

प्रतिजन प्रतिरूपी औषधि तथा हॉर्मोन विस्थापन उपचार का उपयोग उन रोगों में हो रहा है जिसमें पहले संभव नहीं था। जीन उपचार अभी भी क्लीनिकल अवस्था में है लेकिन इसमें आनुवंशिक बीमारी तथा अव्यवस्थाओं को उपचारित करने की बहुत अधिक क्षमता है।

मानव AIDS सहित 30 से ज्यादा लैंगिक संचरित रोगों (STDs) से ग्रसित हो सकता है। इन रोगों की जांच प्रारंभिक तौर पर क्लीनिकल लक्षणों के आधार पर होती है। इन जांचों को निम्नलिखित में से एक या अधिक परीक्षणों के द्वारा सुनिश्चित किया जाता है: सूक्ष्मदर्शी प्रेक्षण, प्रतिजन/प्रतिरक्षी जांच, संवर्धन, न्यूक्लिक अम्ल संकरण, PCR, इत्यादि।

अभ्यास

1. निम्नलिखित में से कौन-सा रक्त का कैंसर है?
   (क) लसिकाभ
   (ख) अधिश्वेतरक्तता
   (ग) माइलोमा
   (घ) सारकोमा

2. मस्तिष्क के कार्यों को परखने के लिए कौन-सा सबसे उपयुक्त प्रतिबिंबन तकनीकी है?
   (क) चुंबकीय अनुनाद प्रतिबिंबन
   (ख) अभिकलित टोमोग्राफी
   (ग) सोनोग्राफी
   (घ) पॉजीट्रॉन उत्सर्जन टोमोग्राफी
3. अपररूपांतरण प्रक्रिया है?
   (क) अत्यधिक कोशिका संवर्धन
   (ख) बिनाइन अर्बुद का दुर्दम अर्बुद में रूपांतरण
   (ग) कैंसर कोशिकाओं की शरीर में एक स्थान से दूसरे स्थान तक गतिकी
   (घ) सामान्य कोशिका का अर्बुद कोशिका में रूपांतरण
4. प्रॉस्थेसिस, जो कि हृदय में बार-बार विद्युतीय आवेग उत्पादित करता है उसे कहते हैं:
   (क) कृत्रिम हृदय पेसमेकर
   (ख) हृदय-फेफड़ा यंत्र
   (ग) कृत्रिम हृदय वाल्व
   (घ) अंतः महाधमनी बैलून पंप
5. कैंसर का वर्तमान उपचार निम्नलिखित में से कौन-सा नहीं है?
   (क) रासायनिक उपचार
   (ख) विकिरण उपचार
   (ग) शल्य-चिकित्सा
   (घ) भौतिक उपचार
6. सही और गलत को पहचानें –
   (क) EEG न्यूरॉन के अधिक संख्या मे उत्तेजक तथा अवरोधक विभव के उत्पादन को प्रदर्शित करता है।
   (ख) EEG आराम की स्थिति में तरंगों को प्रदर्शित करता है।
   (ग) EEC खोज, हृदय गति दर को नहीं बताता है।
   (घ) DSA प्रतिबिंबन तकनीकी है जो कि रक्त की संवहन वाहिका तथा उसकी रुकावटों के बारे में स्पष्ट रूप से दिखाती है।
7. निम्नलिखित के पूर्ण रूप लिखें:
   (क) ECG, (ख) EEG, (ग) CT, (घ) MRI, (ङ) PET, (च) ELISA
8. मेडिकल प्रैक्टिस में आक्रमणकारी तथा आक्रमणकारी तकनीकी के बीच क्या अंतर है? प्रत्येक का एक उदाहरण दें।
9. EEG के मेडिकल उपयोग का वर्णन करें।
10. अल्ट्रासाउंड के सिद्धांत तथा उसके उपयोग को संक्षेप में वर्णन करें।
11. MRI प्रतिबिंबन का सिद्धांत क्या है? MRI के फायदे की व्याख्या करें।
12. एक इलेक्ट्रोकार्डियोग्राम तथा एक इलेक्ट्रोइनसिफेलोग्राम से उपलब्ध सूचना की तुलना करें।
13. जैव रासायनिक विश्लेषक क्या है? मेडिकल परीक्षण में यह किस प्रकार उपयोगी है?
14. PET प्रतिबिंबन का क्या सिद्धांत है? इस तकनीकी की दो महत्त्वपूर्ण उपयोगिताओं का संक्षेप में वर्णन करें।
15. लेजर की मेडिकल उपयोगिता का संक्षेप में वर्णन करें।
16. प्रॉस्थेसिस क्या है? इस तकनीकी की मेडिकल उपयोगिता के बारे में संक्षेप में वर्णन करें।
17. अंतर्मुखी क्या है? इस तकनीकी की मेडिकल उपयोगिता के बारे में संक्षेप में वर्णन करें।
18. रक्त अपोहन का तात्पर्य तथा कार्य क्या है?
19. ELISA के सिद्धांत तथा कार्यों को संक्षेप में वर्णन करें।
20. अंग प्रत्यारोपण तथा कलम अस्वीकृति को रोकने के तरीके के बारे में संक्षेप में वर्णन करें।
21. निम्नलिखित में से किसी एक की संक्षेप में व्याख्या करें:- (क) जीन उपचार, (ख) हॉर्मोन उपचार, तथा (ग) प्रतिरक्षण उपचार।